पट्टमहादेवी शान्तला

भाग एक

पट्टमहादेवी शान्तला

भाग : एक

मूल कन्नड
सी० के० नागराजराव

हिन्दी रूपान्तर
पण्डित पी० वेंकटाचल शर्मा

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला ग्रन्थांक 425
पट्टमहादेवी शान्तला भाग एक
(उपन्यास)
सी के नागराजराव
प्रथम संस्करण 1983
मूल्य 48/-

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
बी/45-47 कनाट प्लेस,
नयी दिल्ली-110001
मुद्रक
अंकित प्रिंटिंग प्रेस,
शाहदरा, दिल्ली-110032
आवरण शिल्पी हरिपाल त्यागी

PATTA-MAHADEVI SHANTLA Novel by C K Nagaraja Rao Translated by Pt P Venkatachal Sharma Published by Bharatiya Jnanpith, B/45-47 Connaught Place, New Delhi Printed at Ankit Printing Press First Edition 1983 Rs 48/-

समर्पण

साहित्य मे अभिरुचि रखनेवाले

उन अनेक-अनेक वस्तुनिष्ठ सहृदय पाठको को

1947 मे मैं कन्नड साहित्य परिषद् का मानद सचिव चुना गया। यह मेरे लिए एक गर्व की बात थी। तब तक मेरी सात-आठ पुस्तके भी प्रकाशित हो चुकी थी। प्रसिद्ध साहित्यकारो मे मेरी गिनती होने लगी थी। 1942 की जनगणना रिपोर्ट मे, 1931-42 दशक मे कन्नड साहित्य की अभिवृद्धि के कारणकर्ता के इने-गिने नामो मे मेरा भी नाम था। यह मेरे लिए और भी गौरव की बात थी।

जब मै कन्नड साहित्य परिषद् का मानद सचिव हुआ तब मुझे कर्नाटक के इतिहास के बारे मे, कन्नड साहित्य के इतिहास के बारे मे या महाकाव्य एव कवियो के बारे मे पर्याप्त ज्ञान नही था। स्वभावत पीछे हटने की प्रवृत्ति का मैं नही हूँ। हाथ मे लिये हुए को साधित कर फल पान की निष्ठा अवश्य रखता हूँ। उस स्थान के योग्य ज्ञानार्जन हेतु मै लेखन को कम कर, अध्ययन तथा ज्ञानाभिवृद्धि मे लग गया। यो जब मै ज्ञानार्जन मे लगा था तब ही बेलूर मे, 1952 मे, कन्नड साहित्य सम्मेलन सम्पन्न हुआ।

परिषद् का मानद सचिव होने के कारण मुझ पर काफी जिम्मेदारी थी। उस कार्य के लिए बेलूर कई बार जाना पडा था। इतना ही नही, सम्मेलन से पूर्व दो-तीन सप्ताह तक वही ठहरना पडा था। तभी मुझे बेलूर एव पोय्सलो के इतिहास के बारे मे विशेष आकर्षण हुआ। शान्तला एव जकणाचारी के विषय मे मेरा भीतरी आकर्षण और तीव्र हो गया।

अभी तक यह धारणा थी कि शान्तला बन्ध्या थी, अध्ययन मे लग जाने के बाद मुझे लगा कि शान्तला का सन्तान-राहित्य और आत्महत्या दोनो गलत है। लेकिन गलत सिद्ध करने के लिए तब मेरे पास पर्याप्त प्रमाण नही थे। केवल मेरी भावना बलवती हो चली थी। मेरे उस अभिप्राय के सहायक प्रमाणो को ढढने के लिए मुझे समूचे पोय्सल इतिहास के एव तत्कालीन दक्षिण भारत के इतिहास के ज्ञान की अभिवृद्धि करनी पडी।

अध्ययन करते समय शिक्षा विभाग के मेरे अधिकारी मित्र का आग्रह था, "जकणाचारी के विषय मे 250 पृष्ठो का एक उपन्यास क्यो नही लिख देते ? इस क्षेत्र मे आपने परिश्रम तो किया ही है। पाठ्य-पुस्तक के रूप मे सम्मिलित करा लिया जायेगा।" इधर धनार्जन की आवश्यकता तो थी ही, इसलिए झटपट 1962 मे, सितम्बर-अक्तूबर मे, एक सौ पृष्ठ लिख डाले। इसी बीच मुझे 'शान्तला बन्ध्या नही थी' सिद्ध करने के लिए दृढ प्रमाण भी मिल गये और तुरन्त मेरा मन उस ओर लग गया। उक्त उपन्यास का लेखन फिर वही रुककर रह गया। बाद के कुछ वर्ष पर्यनुशीलन मे बीते। फलस्वरूप मुझमे यह सिद्ध करने की क्षमता जुट गयी कि शान्तला के तीन पुत्र और एक पुत्री थे। मैंने एक गवेषणात्मक लेख लिखा। वह मिथिक सोसाइटी की त्रैमासिक पत्रिका के 1967 के 59वे अक मे प्रकाशित हुआ।

मैसूर विश्वविद्यालय के इतिहास के स्नातकोत्तर विभाग द्वारा 'पोय्सल वंश' विषय पर आयोजित सगोष्ठी मे आमन्त्रित प्रतिनिधि के नाते मैंने इसी विषय को फिर एक बार प्रामाणिक तथ्यो के साथ प्रस्तुत किया। 'होय्सल डाइनेस्टी' (Hoysala dynasty) ग्रन्थ मे मेरे उस लेख को प्रकाशित किया गया।

गवेषणा भी एक धुन है। जिस किसी को वह लग जाय तो आसानी से नही छूटती। इसी धुन का ही फल था कि 'महाकवि लक्ष्मीश का स्थल और काल' नामक ग्रन्थ की रचना के लिए कर्नाटक साहित्य आकादमी ने मुझे सम्मानित किया।

इतना सब बताने का उद्देश्य यही है कि प्रस्तुत उपन्यास की रचना के लिए मूल सामग्री जुटाने मे ही मेरी बहुत अधिक शक्ति और समय लग गया। इसके लेखन का प्रारम्भ 18 सितम्बर, 1968 को हुआ था और परिसमाप्ति 25 दिसम्बर, 1976 को। जकणाचारी के सम्बन्ध मे 1962 मे लिखित लगभग सौ पृष्ठ भी इसी उपन्यास मे सम्मिलित है। इन आठ वर्षों मे इस उपन्यास का लेखन केवल 437 दिनो मे हुआ। कुछ दिन दो ही वाक्य, कुछ दिन केवल आधा पृष्ठ, तो कुछ दिन तीन-चार पृष्ठ और कुछ दिन तो पन्द्रह-बीस पृष्ठ भी लिख गया। बीच-बीच मे महीने-के-महीने भी निकल गये, पर कुछ भी नही लिखा जा सका।

अनावश्यक मानने योग्य एक प्रश्न को, जिसे दूसरे भी मुझसे पूछ सकने थे, अपनेआप से किया कन्नड मे शान्तला देवी के बारे मे अब तक तीन-चार उपन्यास आ चुके है तो फिर यह उपन्यास क्यो ?

मुझे यह भास हुआ कि इस समय एक ऐसे वृहद् उपन्यास की आवश्यकता है। और फिर, मेरी गवेषणा के कतिपय अश पिछले उपन्यासो मे नही आ सके थे। मुझे तो ऐतिहासिकाश ही कल्पितांशो मे प्रधान थे। तथ्यपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करने पर सत्य के समीप की एक भव्यकल्पना का निरूपण किया जा सकता है—यह मेरा विश्वास है।

यह उपन्यास शान्तलादेवी के जीवन के चालीस वर्षों की घटनाओ मे सम्बद्ध है। शान्तला देवी का परिपूर्ण व्यक्तित्व हमे अनेक शिलालेखो एव ताम्रपत्रों मे ज्ञात होता है। उनमे सूचित शान्तलादेवी के गुणी व्यक्तित्व और कृतित्व को उजागर करनेवाले कतिपय विशेषण इस प्रकार है—

सकलकलागमानूने, अभिनवरुक्मिणीदेवी, पतिहितसत्यभामा, विवेकैकवृहस्पति, प्रत्युत्पन्नवाचस्पति, मुनिजनविनेयजनविनीता, पतिव्रताप्रभावसिद्धसीता, शुद्ध-चरित्रा, चतुस्समयसमुद्धरणकरणकारणा, मनोजराजविजयपताका, निजकला-भ्युदयदीपिका, गीतवाद्यनृत्यसूत्रधारा, जिनसमयसमुदितप्रकारा, आहाराभयभेषज-शास्त्रदाना, सकलगुणगणानूना, व्रतगुणशीला, लोकैकविख्याता, पुण्योपार्जनकरण-कारणा, सौतिगन्धहस्ति, जिनधर्मकथाकथनप्रमोदा, जिनधर्मनिर्मला, भव्यजन-

वत्सला, अगण्यलावण्यसम्पन्ना, जिनगन्धोदकपवित्रीकृतोत्तमागा, मृदुमधुरवचन प्रसन्ना, पचलकार (वस्तु, शिल्प, साहित्य, चित्र, सगीत—ये ही 'ल'—ललित-कलापचक है) पचरत्नयुक्ता, सगीतविद्यासरस्वती, अभिनवारुधति, पतिहितव्रता, सर्वकलान्विता, सर्वमगलस्थितियुता, सर्वजीवहिता, भरतागमद तिरुलेनिमलुभय-क्रमनृत्य-(परिणता), लावण्यसिधु, भरतागमभवननिहितमहनीयमतिप्रदीपा, दया-रसामृतपूर्णा, अनूनदानाभिमानि, विचित्रनर्तनप्रवर्तनपात्रशिखामणि, सकलसमय-रक्षामणि, सगीतसगतसरस्वती, सौभाग्यसीमा, विशुद्धाचारविमला, विनयविनम-द्विलासिनी, सदर्थसरससमयोचितवचनमधुरसस्यदिवदनारविदा, सम्यक्त्वचूडा-मणि, विष्णुनृपमनोनयनप्रिया, विद्येयमूर्ति, परिवारफलितकल्पितकुजशाखा, सगीत-विद्यासरस्वती, कदबलबालकालबितचरणनखकिरणकलापा, बिर्णपद मे भूमिदेवते, रणव्यापारदोल् बल्गदेवते, जनक्केल्ल पुण्यदेवते, विद्येयोल् वाग्देवत, सकलकार्यो-द्योगदोल् मत्रदेवते "

कोई सन्देह नही कि वह अनेक विषयो मे पारगत तथा प्रतिभासम्पन्न थी। मात्र राज्ञी होने से ही उसे उपर्युक्त विशेषण, विरुद प्रशसा नही मिली थी, अन्यथा कर्नाटक की सभी रानियो का क्यो नहीं इस बिरुदावली मे निरूपित किया गया ? पट्टमहादेवी शान्तला मे निश्चित ही य योग्यताएँ रही होगी।

शान्तला एक साधारण हेग्गडे (ग्राम प्रमुख) की पुत्री थी। लेकिन अपने विशिष्ट गुणो के कारण वह पट्टमहादेवी बन गयी थी। अगर उपर्युक्त विशेष गुण उसमे नही रह होते तो वह उस स्थान को कैसे सुशोभित कर पाती ! उसका व्यक्तित्व निश्चित ही अपने आप म अद्भुत रहा होगा। उसकी विद्वत्ता ज्ञान, सयम, मनोभावना सभी कुछ विशेष है। उसका औदार्य, कलाकौशल एव सर्वसमदर्शित्व—सभी कुछ सराहनीय।

फिर, उसकी धर्मसमन्वय की दृष्टि भी निशिष्ट रही आयी। पिता शुद्ध शैव, तो माता परम जिनभक्त। वह भी माता की भाँति जिनभक्ति-निष्ठ। विवाह करनेवाला जिनभक्त रहकर भी मतान्तर स्वीकार किया हुआ विष्णु-भक्त। ऐसी परिस्थिति मे भी समरसता बनाये रखनेवाला सयम तथा दृढनिष्ठा कितने लोगो मे रह पाती ह ? सच तो यह ह कि शान्तला का व्यक्तित्व उसका अपना व्यक्तित्व था।

उसके जीवन के चारो ओर बाल्य से सायुज्य तक, उस समय की कला, संस्कृति शिल्प, धर्म, साहित्य, जन-जीवन, राजकारण, आर्थिक परिस्थिति, षड्यन्त्र, स्पर्धा, मानवीय दुर्बलताओ का आकर्षण, चुगलखोरी, राष्ट्रद्रोह, राष्ट्रनिष्ठा, व्यक्तिनिष्ठा, युद्ध, भयकर स्वार्थ, अन्धश्रद्धा आदि अनेकमुखी बन व्यापक होकर खडे थे। विभिन्नता और वैविध्य से भरे थे। उन वैभिन्न्य और वैविध्यो म एकता लाने का प्रयास मैने इस उपन्यास मे किया है। साथ ही, वास्तविक मानवीय मूल्यो का भी

ध्यान रखा गया है, फलत लौकिक विचारो के प्रवाह मे पारलौकिक चिन्तन भी अन्तर्वाही हो आया है।

जकणाचारी ऐतिहासिक व्यक्ति नही थे, ऐसा भी एक मत है। जकण नामक शिल्पी था, इसके लिए प्रमाण है। यह उस नाम के शिल्पियो के होने का प्रमाण है न कि इस उपन्यास से सन्दर्भित काल मे उसके रहने का। लेकिन जकण और डकण के जीवन की कथा सात-आठ सदियो से जन-समूह मे प्रसारित होती आयी है। इसके साक्षीभूत कप्पे (मण्डूक) चन्निगरायमूर्ति बेलूर मे है। हमारे पूर्वजो ने अपने सच्चे इतिहास को सप्रमाण सरक्षित रखने की दृष्टि से शायद विचार नही किया होगा। इसीसे हमे आज कितनी ही लोकगाथाओ मे ऐतिहासिक प्रमाण नही मिल पाते। आज हमे अपने पूर्वजो के बारे मे, शिलालेख तथा ताम्रलेखो द्वारा अनेक बातो का पता चलता है। यद्यपि साहित्यिक कृतियो मे भी कुछ-न-कुछ सम-सामयिक तथ्य मिल जाते है, पर उनकी पूरी प्रामाणिकता हमे नही मिल पा रही है। विष्णुवर्धन की पत्नियो मे एक—लक्ष्मीदेवी के माँ-बाप वश आदि के बारे मे ज्ञात नही हो सका है। शान्तला के माँ-बाप के बारे मे, रानी बम्मलदेवी के विषय मे, रानी किरिया शान्तला (इस उपन्यास मे उसका आगमन नही हुआ है) के सम्बन्ध मे, अथवा रानी राजलदेवी के विषय मे पर्याप्त साधन मिल जाते है, लेकिन लक्ष्मीदेवी के बारे मे नही। उसके गर्भ से उत्पन्न पोय्सल के सिंहासनारोहण होने म उसका नाममात्र मालूम हो रहा है। अन्य बातो का पता नही मिल पा रहा है। लेकिन इससे एक व्यक्ति के रहने के बारे मे प्रमाण नही मिले तो, उसका अस्तित्व ही नही, ऐसा मत व्यक्त करना कहाँ तक न्याय्य है ?

यह उपन्यास है। इतिहास का अपोह किये बिना रसपोषण के लिए अनेक पात्रो की उद्भावना आवश्यक हो जाती है। जकण-डकण की लोक-गाथाओ मे उपर्युक्त मानवीय मूल्य भरे पडे है, इसीलिए उन शिल्पाचार्यो को यहाँ लिया गया है। उपन्यासकार होने के नाते मैने वह स्वातन्त्र्य अपनाया है। और भी अनेक आलेखो मे उल्लिखित शिल्पियो को यहाँ लिया गया है।

इस उपन्यास मे करीब दो सौ शिलालेखो, ताम्र-पत्रो एव ताड-पत्रो मे उल्लिखित ऐतिहासिक पात्र आये है। वैसे ही लगभग 220 कल्पित पात्र भी है। इन सबमे लगभग 65 तो शिलालेखादि मे उल्लिखित पात्र और लगभग 30 कल्पित पात्र मुख्य है।

ऐतिहासिक प्रमाणो मे न रहनेवाली अनेक घटनाओ की भी यहाँ कल्पना की गयी है। उपन्यास होने से एव अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत होने से भी, पाठको की अभिरुचि को अन्त तक बनाये रखना आवश्यक था। वह सब कल्पना से ही साध्य था। जहाँ तक मै समझता हू, मेरी यह रचना पाठको को रुचिकर लगेगी, उन्हे तृप्ति देगी।

इसकी घटनाएँ कर्नाटक के अनेक तब और अब के प्रमुख स्थानो से सम्बद्ध हैं। उनमे से कुछेक हैं—बेलुगोल (श्रवण बेलुगोल), शिवगगा (कोडुगल्लु बसव), सोसेऊरु (अगडि), बेलापुरी (बेलूर), दोरसमुद्र (हलेबीडु), यादवपुरी (तोण्णूरु), यदुगिरि (मेलुकोटे), बलिपुर (बल्लिगावे बेलगाँवि), कोवलालपुर (कोलार), क्रीडापुर (कैदाल), पुलिगेरे (लक्ष्मेश्वर), हानुगल्लु, बकापुर, तलकाडु, कची, नगलि, धारा इत्यादि।

परमार, चालुक्य, चोल, कोगाल्व, चेंगाल्व, आलुप, सान्तर, उच्चगिपाण्ड्य, कदम्ब आदि पडोसी राज्यो के साथ के युद्ध, उस समय अनुसरण किये हुए युद्धतन्त्र भी इसमे सम्मिलित हैं।

जीर्णोद्धार हुए यादवपुरी के लक्ष्मीनारायण, यदुगिरि के चलुवनारायण, दोड्डगड्डुवल्लि की महालक्ष्मी, क्रीडापुर के केशवदेव ग्राम के धर्मेश्वर, मन्दिर, बेलुगोल की अँधेरी बसदि तथा शान्तिनाथ बसदि, पनसोगे की पार्श्वनाथ बसदि, वेलापुरी के चन्नकेशव मन्दिर, दोरसमुद्र के होयसलेश्वर-शान्तलेश्वर यमलशिवालय पोय्सल शिल्प के लिए पर्याप्त निदर्शन है।

यह उपन्यास, यद्यपि ग्यारहवी शती के अन्तिम दशक से आरम्भ होकर बारहवी शती के चौथे दशक के आरम्भ तक के, गतकाल के जन-जीवन को समग्र-रूप मे निरूपण करने की, कालक्रम की दृष्टि से एक रीति की परिसर भावनाओ के लिए सीमित वस्तु की रचना है, फिर भी सार्वकालिक शाश्वत, विश्वव्यापी मानवीय मूल्यो की समकालीन प्रज्ञा को भी इसमे अपनाया गया है।

वेलूर साहित्य-सम्मेलन के सन्दर्भ मे मुझे अनेक सुविधाएँ देकर, वहाँ मेरे मुकाम को उपयुक्त एव सन्तोषपूर्ण बनाने वाले मित्रो को इस सुअवसर पर स्मरण करना मेरा कर्तव्य है। तब वेलूर नगर-सभा के अध्यक्ष, एव साहित्य सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष रहनेवाले श्री एस आर अश्वत्थ, सदा हँसमुख श्री चिदम्बर श्रेष्ठि, साहित्य एव साम्कृतिक कार्यों मे अत्यन्त रुचि रखने वाले वकील श्री के अनन्त रामय्या, वाणी खड्ग जैसी तीक्ष्ण होने पर भी आत्मीयता मे किसी से पीछे न रहनेवाले श्री एच पी नजुडय्या, वहाँ के हाई स्कूल के पण्डित (अब स्वर्गवासी) रामस्वामी अय्यगर आदि ने इस कृति की रचना मे कितनी ही सहूलियतें दी है।

तोण्णूर (उस समय की यादवपुरी) अब खेडा है। यह पाण्डवपुर से छ मील दूर है। वहाँ जाकर आँखो देख आने की अभिलाषा से पाडवपुर जाकर मित्र श्री ममेतनहल्ली रामराव के यहाँ अतिथि रहा। तब वे शकुन्तला काव्य रच रहे थे। कम्बा इलाका रेवेन्यू अधिकारी (Revenue Inspector) श्री सी एस नरसिंह मूर्ति (प्यार का नाम 'मगु') ने समय निकालकर मेरे साथ साइकल पर तोण्णूर आकर सर्वे करने मे मेरी सहायता की। इसी तरह तलकाडु वैद्येश्वर मदिर के पुजारी श्री दीक्षित, मेलुकोटे (उस समय की यदुगिरि) के श्री अनन्त नारायण

अय्यगर भी उन-उन स्थानो को देखने मे सहायक बने । उसी तरह बादामी के दर्शन हेतु कथाकार श्री बिंदुमाधव, लक्कुंडि के सर्वे हेतु मित्र श्री कमलाक्ष कामत, तथा श्री कट्ठी मठ, बल्लिगावे (उस समय का बलिपुर) को सपूर्ण रूप से देखने मे मेरे आत्मीय मित्र एव सह-नट शिकारिपुर के श्री नागेशराव का पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त हुआ । इन सबके प्रति मेरा बहुत-बहुत आभार ।

18-19 वर्षों से कर्नाटक लेखक सघ मे, मिथिक सोसाइटी आदि सस्थाओ में मेरे साथ रहकर मेरे सशोधन कार्य मे प्रोत्साहन देनेवाले मित्र श्री एम. वि कृष्ण-मूर्ति, श्री तो सु सुब्रह्मण्य, श्री डी एन शेषाद्रि श्री के एस. सूलिबेले (इसी जनवरी मे हमसे बिछुड गये) इनको, मेरे सभी कार्यों मे आत्मीय भावना से सहायता करनेवाले श्री एच जि शितिकठ शर्मा को स्मरण करना मेरा प्रथम कर्तव्य है । यह सारा सहयोग ही तो मेरी कृतिरचना का मूल है ।

इसे मुद्रण के लिए देने पाण्डुलिपि तैयार करने का कार्य भी मुख्य था । परि-स्थितियाँ कैसे बदली हैं इसके लिए एक छोटा-सा उदाहरण दूँ—1937 मे मेरे प्रथम कथा-सग्रह 'काडुमल्लिगे' प्रकाशित हुआ । मात्र 72 पृष्ठो की पुस्तक । उसकी एक हजार प्रतियो के लिए सारा खर्च, कागज, कम्पोजिंग, मुद्रण और बाइडिंग मिलाकर, 75 रुपये मात्र । अब 1977 मे इस उपन्यास की पाण्डुलिपि तैयार करने के लिए खरीदे हुए कागज का दाम 77 रुपये । मेरे चालीस वर्ष के पुस्तक-जगत् के जीवन का यह परिवर्तन है । कैसी महती प्रगति है यह ?

इसकी हस्तप्रति करने का काम, आलस्य के बिना, उत्साह से अपने मे बाँट-कर मेरे पुत्र-पुत्री, सौ शोभा, सौ मगला, सौ गीता, सौ शाभवी, कुमारी राज-लक्ष्मी तथा कुमार सर्वेश ने किया है । और मुद्रण के प्रूफ सशोधन के काम मे भी सहायता की है । उनकी सहृदयता का स्मरण कर उनके प्रति शुभकामना करता हूँ ।

हस्तप्रति सिद्ध होने पर भी उसका प्रकाशन-कार्य आसान नही । उपन्यास का स्वरूप सुनकर ही प्रकाशको का उत्साह पीछे हट गया । किस-किसने क्या-क्या प्रतिक्रिया जतायी यह अप्रकृत है । इस उपन्यास का मुद्रण प्रकृत है । यह कैसे होगा ? इस चिन्ता मे रहते समय मुझे उत्साहित कर प्रेरणा देनेवाले थे—केनेडा मे रहने वाली मेरी पुत्री सौ उषा तथा जामाता चि डॉ बि के गुरुराजराव । उनके प्रोत्साहपूर्ण अनुरोध से मैंने इस उपन्यास का प्रकाशन कार्य स्वय करने का निर्णय किया । आर्थिक सहायता के लिए प्रयत्न किया । एक सस्थान ने सहायता मिलने की सभावना सूचित कर, मुद्रण कार्य प्रारम्भ करने के लिए भी प्रोत्साहित कर चार महीनो के बाद सहायता न कर पाने के अपने निर्णय से सूचित कर दिया । भँवर मे फँस जाने जैसी हालत थी । आगे जाना अशक्य था, पीछे हटना आत्मघात था ।

ऐसी विषम परिस्थिति मे मेरी प्रार्थना स्वीकार कर, मुझ पर भरोसा कर प्रकाशन-पूर्व चन्दा भेजनेवालो को मै क्या उत्तर द सकता था ? उनके बारे मे मेरे हृदय मे कृतज्ञता भरी थी । लकिन कृतघ्न बनने का समय आ गया था ।

मेरा प्रयत्न प्रारभ मे ही श्रद्धापूर्ण था, सत्यनिष्ठ था । मैंने अपने कुछ मित्रो से परिस्थिति का निवदन किया । श्री एच एस गोपालन, श्री रामराव, श्री एम के एम गुप्त, मेरा पुत्र चि एन गणेश आदियो ने मुद्रण कार्य न रुकने मे मेरी सहायता की । अन्त मे, केनरा बैंक से आर्थिक सहायता भी मिल गई ।

आत्मीय भावना से सलाह देने के साथ आकर्षक रक्षा कवच को सुन्दर ढग स तैयार कराकर मुद्रण कर दने वाली 'रचना' सस्था के श्री सि आर राव और उस सस्था के कलाकार श्री कुलकर्णी का मै आभारी हूँ । इस उपन्यास की घटनाओ क स्थानो का परिचय पाठको को करान क अभिप्राय स नक्शा तैयार करने म, मरे पुत्र चि सर्वेश, दामाद श्री चि राजकुमार और श्री क एम अनन्तस्वामी ने मेरा हाथ बँटाया है । उनके प्रति शुभकामना अर्पित मेरा कर्तव्य है ।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग ने वास्तु शिल्प चित्रो को देकर उनका उपयोग करने की अनुमति दी है । मे उनका कृतज्ञ हूँ ।

कन्नड का यह उपन्यास 2000 पृष्ठो वाला होने की आशा थी । लेकिन 2240 म भी अधिक हो गया । इसका चार ही महीना म सुचारु रूप म मुद्रण करने वाले इला प्रिटस की श्रीमती विजया और उनके कमचारी वग का भी मै आभारी हू ।

मुद्रण कार्य प्रारम्भ होने क बाद अचानक कागज का अभाव ! दाम बढ गया था । पृष्ठ भी इतने अधिक ! इससे भी प्रकाशन म कुछ देरी हुई । तथापि अधिक देरी न हो, इस उद्देश स मुझे कागज देनेवाले एसल पपर मार्ट के श्री गुप्त का मै कृतज्ञता पूवक स्मरण करता हू ।

मेरा प्रार्थना-पत्र मिलत ही, प्रकाशन पूव चन्दा भेजनेवाले साहित्यासक्त सहृदयो का, सघ-सस्थाओ का, एव इस दिशा मे सहायी अन्य अपने मित्रवर्ग का भी मै कृतज्ञ हू ।

उपन्यास के पात्रो की कल्पना सुलभ है । लिखते समय ही नवीन आलोचनाएँ आ जाती है । उनके भवर मे फँसकर बाहर आने म मुझ जो सहायता मिली उनके अनेक रचना का व्यक्तियो का देखने पर अनुभव मे आय हुए आत्मीयता के अनेक मुग्ध ता कल्पनातीत है ।

पैगन सम्पगर ध्यायण शद्ध द्वादशी
बगलार 6 मार्च, 1978

सी के नागराजराव

लेखकीय

(प्रस्तुत सस्करण के सदर्भ मे)

भारतीय भाषाओ के साहित्य के इतिहास को जाननेवाले किसी भी व्यक्ति को यह एक इन्द्रजाल-सा मालूम होगा। एक कन्नड का उपन्यास, वह भी कन्नड मे पकट हुए तीन ही वर्षा मे हिन्दी मे प्रकट हो रहा है, यह आश्चर्य की बात तो है ही। इस आश्चर्यकर घटना के लिए कारणीभूत साहित्यासक्त सहृदयो को मनसा स्मरण करना मेरा प्रथम कर्तव्य है।

'पट्टमहादेवी शान्तला' कन्नड मे जब प्रकाशित हुआ तो थोडे ही समय मे सभी वयोवस्था के, सभी स्तर के, सभी वर्ग के सामान्य एव बुद्धिजीवियो की प्रशसा का पात्र बन गया। उस प्रशसा का परिणाम ही, इसके हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन माना जाय तो शायद कोई गलती नही होगी। मुझ से सीधे परिचित न होने पर भी इस कृति को पढकर सराहनेवाले डॉ आर एस सुरेन्द्र जी, उनके बन्धु एव मित्रवर्ग की सहानुभूति के फलस्वरूप इस कृति को हिन्दी मे लाने की इच्छा से सम्मान्य श्री साहू श्रेयास प्रसाद जैन से परिचय कराया। इस उपन्यास को पढकर इस मे रूपित शान्तलादेवी के व्यक्तित्व से आकृष्ट होकर, इसे हिन्दी मे अनुवाद करने की तीव्र अभिलाषा रखने वाले मेरे वृद्ध मित्र श्री पि वेकटाचल शर्मा भी परिचय के समय अचानक साथ थे। इस परिचय और सन्दर्शन के फलस्वरूप ही, भारतीय ज्ञानपीठ इसके प्रकाशन के लिए इच्छुक हुआ।

भारतीय ज्ञानपीठ, के निर्देशक श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन से मेरा पहले से परिचय रहा है। किन्तु वर्षो से सम्पर्क न होने से जैसे एक-दूसरे को भूल-से गये थे। यह रचना तुरन्त पुरानी मैत्री को नया रूप देकर हम दोनो को पास लायी। और वह आत्मीयता इस बार स्थायी बन सकी। प्रकाशन के कार्य भार को सीधे वहन

करनेवाले भारतीय ज्ञानपीठ के भूतपूर्व कार्यसचिव डा विमलप्रकाश जैन मुझसे बिलकुल अपरिचित थे। सम्मान्य श्री साहू श्रेयांस प्रसाद जैन की इच्छा के अनुसार उन्होने मुझसे स्वय पत्रव्यवहार प्रारम्भ किया। सहज साहित्याभिरुचि, सूक्ष्मगुणग्रहणशक्ति के कारण उन्होने इसके हिन्दी अनुवाद को पढकर वस्तु-विन्यास, पात्र-निर्वहण, निरूपण-तन्त्रो से आकृष्ट होकर इसमे गौरव दर्शाया। और वही गौरव मुझे भी दर्शाकर वे इस प्रकाशन कार्य मे हृदय से तत्पर हुए थे। डॉ वि प्र जैन के बाद, वर्तमान मे भारतीय ज्ञानपीठ के कार्य सचिव का स्थान कवि श्री बालस्वरूप राही ने ग्रहण कर लिया है। वे और ज्ञानपीठ के प्रकाशन विभाग के अधिकारी डा गुलाबचन्द्र जैन दोनो ने त्वरित गति से इस ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य मे विशेष रुचि दिखायी। उनसे सभी तरह का सहयोग प्राप्त हो रहा है। उनके लिए मेरा आभार ज्ञापन।

श्रवणबेलुगोल के श्री जैन मठ के पीठाधिपति श्री चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी जी ने यद्यपि सीधा मुझे कुछ नही बताया, न ही लिखा, व्यक्तिगत परिचय का अवसर भी नही आया, तो भी मेरी कन्नड रचना को पढकर, परोक्ष मे ही उसकी प्रशसा श्री साहू श्रेयान्सप्रसाद जी के समक्ष प्रकट की। यह इस रचना के लिए उनसे प्राप्त शुभाशीर्वाद मानता हूँ।

हिन्दी अनुवाद के कार्य को अपनी इस आयु मे (पचहत्तर के करीब) बहुत ही आत्मीयता से अपने स्वत के कार्य के जैसे श्रद्धासक्ति से करनेवाले श्री पि वेकटाचल शर्मा जी का मैं कृतज्ञ हूँ। हस्तप्रति टाइप होकर, यथासभव कम गलतियो से ज्ञानपीठ को पहुँचाना था। हिन्दी मे टाइप करनेवाले श्री वेंकटरामय्य के सकालिक सहयोग का मैं आभारी हूँ। सभवनीय गलतियो को निवारण करने मे कन्नड मूल रचना के साथ हिन्दी अनुवाद को तुलनाकर अवलोकन करने मे, मेरे कन्नड भाषा के आत्मकथन तथा इस निवेदन को हिन्दी अनुवाद करने मे एवं अनेक विधो मे सदा के जैसे मेरे सभी कार्यों मे हमेशा सहायता करनेवाले मेरे मित्र विद्वान श्री एच जि शितिकण्ठ शर्मा एम ए साहित्यरत्न का मै कृतज्ञ हूँ।

ग्रथ प्रकाशन मे प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से सहायता करनेवाल सभी जनो का मैं पुन अभार मानता हूँ।

710 I बि' मुख्य मार्ग
7 ब्लॉक, बनशकरी III स्टेज बेंगलूर
दुंदुभि म कार्तिक बहुल द्वादशी
12 दिसम्बर, 1982

इति,
सी के नागराजराव

पट्टमहादेवी शान्तला

भाग एक

बाहरी बरामदे मे शान्तला अपनी सखियो के साथ खेल रही थी। वह हठात् खेलना छोड़कर रास्ते की ओर भाग चली। रह गयी तीन सखियाँ जो उसके साथ खेल रही थी। उसका अनुसरण करती हुई भाग चलीं। अहाते की दीवार से सटकर खड़ी शान्तला पास आती हुई घोड़ो के टापो की ध्वनि सुनती, जिधर से आवाज आ रही थी उसी ओर नजर गाड़े खडी रही।

सखियो में से एक ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर पूछा, "क्या देख रही हो शान्तला ?" शान्तला ने इशारे से चुप रहने को कहा। इतने मे राज-पथ की ओर मुड़ते हुए दो घुड़सवार दिखायी दिये। घोड़े शान्तला के घर के अहाते के सामने रुके। सवारो की सज-धज देखकर सखियाँ चुपचाप खिसक गयी।

रुके घोड़े हाँफ रहे थे। उनको फाटक पर छोड़कर अन्दर प्रवेश करते राज-भटो की ओर देखकर शान्तला ने पूछा, "आपको किससे मिलना है ?"

राजभट शान्तला के इस सवाल का जवाब दिये बिना ही आगे बढ़ने लगे।

शान्तला ने धृष्टता से पूछा, "जी ! मेरी बात सुनी नही ? यह हेग्गडे का घर है। यों घुसना नहीं चाहिए। आप लोग कौन हैं ?"

उस ढीठ लड़की शान्तला के सवाल को सुन राजभट अप्रतिभ हुए। आठ-दस साल की यह छोटी बालिका हमे सिखाने चली है ? इतने में उन दो सवारो मे से एक ने बालिका की तरफ मुड़कर कहा, "लगता है कि आप हेग्गडेजी की बेटी अम्माजी हैं। हम सोसेऊरु से आ रहे हैं। श्रीमान् युवराज एरेयंग प्रभु और श्रीमती युवरानी-जी एचल महादेवी ने एक पत्र भेजा है। हेग्गडेजी और हेग्गडतीजी हैं न ?"

"हेग्गडेजी नही हैं, आइए, हेग्गडतीजी हैं," कहती हुई शान्तला बैठक की ओर चली। राजभटो ने उस बच्ची का अनुसरण किया।

महाद्वार पर खड़ी शान्तला ने परिचारिका गालब्बे को आवाज दी और कहा, "देखो, ये राजदूत आये हैं, इनके हाथ-पैर धुलवाने और जल-पान आदि की व्यवस्था करो।" फिर वह राजभटो को आसन दिखाकर, "आप यहाँ बिराजिए,

मैं जाकर माताजी को खबर दूँगी।" कहकर अन्दर चली गयी।

राजभट यन्त्रवत बरामदे पर चढे और निर्देशानुसार गद्दी पर बैठ गये। राजमहल के ये भट पहले ही इस तरह के शिष्टाचार से परिचित तो थे ही। परन्तु इस तरह के शिष्टाचार का पालन यहाँ भी करना होगा, इसकी उन्होने अपेक्षा नहीं की थी। एक साधारण हेग्गडे की बालिका इस तरह का व्यवहार करेगी—इसकी उन्हे उम्मीद भी न थी। उस छोटी-सी बालिका का चलन-वलन, भाव-भंगी, सयमपूर्ण शिष्टाचार-व्यवहार और गाम्भीर्ययुक्त वाणी आदि देखकर व बहुत प्रभावित हुए।

इतने मे परिचारिका गालब्बे न थाली मे पनौटी, सरौता, गुड, एक बडे लोटे मे पानी और दो गिलास लाकर उनके सामने रखे और कहा, "इसे स्वीकार कीजिए।" फिर स्वय कुछ दूर हटकर खडी हो गयी।

उन भटो मे एक न गुड की भेली तोडकर मुँह मे एक टुकडा डालते हुए पूछा, "हेग्गडेजी कहाँ गये है ?"

परिचारिका गालब्बे ने उत्तर मे कहा, "मालिक जब कही जाते है तो हम नौकर-चाकरो से बताकर जाएँगे ?" उसके इस उत्तर मे सरलता थी। कोई अवहेलना का स्वर नही था। राजभट आगे कुछ बोल न सके। उन्होने गुड खाकर पानी पिया, पान बनाना शुरू किया। बीच-बीच मे यह प्रतीक्षा करते हुए नौकरानी की ओर देखते रहे कि वह कुछ बोलेगी। तीन-चार बार यो उसकी तरफ देखने पर भी वह चुपचाप ज्यो-की-त्यो खडी रही।

इतने मे परिचारिका गालब्बे को, इन दोनो राजभटो को अन्दर बुला लाने की सूचना मिली। उसने दोनो राजभटो से कहा, "हेग्गडतीजी न आपको अन्दर बुला लाने का आदश भेजा है।"

निर्दिष्ट जगह पर पान की पीक थूक दोनो अन्दर चलने को तैयार हुए। परिचारिका दोनो को अन्दर ले गयी। मुख्य-द्वार के भीतर प्रवेश करते ही बडी बारहदरी थी, उसे पार कर अन्दर ही दूसरी बारहदरी मे उन्होने प्रवेश किया। वहाँ एक सुन्दर चित्रमय झूला था जिस पर हेग्गडती बैठी थी। राजभटो ने अदब से झुककर प्रणाम किया।

हेग्गडती ने उन्हे कुछ दूर पर बिछी सुन्दर दरी की ओर सकेत करके "बैठिए" कहा।

राजभटो ने सकोच से झुककर विनीत भाव से पूछा, "हेग्गडेजी ·" इन राजदूतो की बात पूरी होने से पहले ही हेग्गडती ने कहा, "वे किसी राजकार्य से बाहर गये हैं। कब लौटेंगे यह कहना कठिन है। यदि आप लोग उनके आने तक प्रतीक्षा कर सकते है तो ठहरने आदि की व्यवस्था कर दूँगी। आप लोग राजदूत हैं, आप कार्य-व्यस्त होगे। हमे यह विदित नही कार्य कितना गम्भीर और महत्त्व

का है।"

राजभटो ने तत्काल जवाब नही दिया। वे हेग्गड़े के घर के व्यवहार मे यों असाधारण ढग देखकर जवाब देने मे कुछ आगा-पीछा कर रहे थे।

इन राजदूतों के इस सकोच को देख हेग्गडती ने कहा, "सकोच करने की जरूरत नही। सोमेऊरु से आप लोग आये हैं, इससे स्पष्ट है कि आप लोग हमारे अपने हैं। परन्तु, आप लोग राजकाज पर आये हैं, मैं नहीं जानती कि कार्य किस तरह का है। यदि वह गोप्य हो तो आप लोगो को हेग्गडेजी के आने तक प्रतीक्षा करनी पडेगी।"

"ऐसा कोई गोप्य विषय नही माताजी, फिर भी युवराज के सदेश को सीधे हेग्गडेजी से निवेदन कर सकने का अवकाश मिलना तो अच्छा होता। निश्चित रूप मे यह मालूम होता कि वे कब तक लौटेंगे तो हमे कार्यक्रम निश्चित करने मे सुविधा होती।"

"ऐसा कह नही सकती कि वे कब लौटेंगे। यदि आप लोगो को उनके दर्शन करने का भाग्य हो तो अभी इसी क्षण आ सकते हैं। नही तो पन्द्रह दिन भी लग सकते है।"

"तो हम एक काम करेंगे। हम जो पत्र वहाँ से लाये हैं, उसे आपको सौंपेंगे और श्रीमद्युवराज और युवरानीजी ने जो सदेश कहला भेजा है उसे आपसे निवेदन करेंगे। हम कल दोपहर तक हेग्गडेजी की प्रतीक्षा करेंगे। तब तक भी यदि वे न आये तो हमे जाने की आज्ञा देनी होगी। क्योकि हमे बहुत-से कार्य करने हैं। दस-बारह कोस दूर पर रहने के कारण आपको पत्र और सदेश पहुँचाना आवश्यक था जिससे आप लोगो को आगे का कार्यक्रम बनाने मे सुविधा रहे। श्रीमान् युवराज का ऐसा ही आदेश है कि सदेश पहले आपको मिले।" यह कह-कर राजमुद्राकित खरीता राजभट ने हेग्गडती के समक्ष प्रस्तुत किया।

हेग्गडती माचिकब्बे ने खरीता हाथ मे लेकर खोला और मन-ही-मन पढा। बाद मे बोली, "ठीक, बहुत सतोष की बात है। शुभ-कार्य सम्पन्न हो जाना चाहिए। इस कार्य मे पहले ही बहुत विलम्ब हो चुका है। लेकिन अब तो सम्पन्न हो रहा है—यह आनन्द का विषय है।"

"अब क्या आज्ञा है?"

"जब तक हेग्गडेजी नही आते और विचार-विमर्श न हो तब तक मैं क्या कह सकती हूँ।"

बडे राजदूत ने निवेदन किया, "आपका कहना ठीक है। फिर भी श्रीमान् युवराज एव विशेषकर श्रीमती युवरानी जी ने बहुत आग्रह किया है। उन दोनो ने हमे आज्ञा दी है कि इस शुभ-कार्य के अवसर पर आप दोनो से अवश्य पधारने की बिनती करें। श्रीमती युवरानी जी को आपके घराने से विशेष प्रेम

है।"

"यह सचमुच अहोभाग्य। ऐसे उन्नत स्थान पर विराजनेवाले, हम जैसे साधारण हेग्गडे के परिवारों पर विशेष अनुग्रह कर रहे हैं। यह हमारे पूर्व-पुण्य का ही फल है। और नहीं तो क्या ? आप लोगों की बात-चीत और व्यवहार से ऐसा लगता है कि आप लोग उनके अत्यन्त निकटवर्ती और विश्वसनीय हैं।"

"माँजी, आपका कथन ठीक है। उनके विश्वास-पात्र बनने का सौभाग्य, हमारे पूर्व-पुण्य का ही फल है। हम भाग्यशाली हैं। मेरा नाम रेविमय्या है और मैं राजगृह का द्वारपाल हूँ। यह मेरा साथी है, इसका नाम गोक है। हम दोनों—राज-परिवार के अत्यन्त निकटवर्ती सेवक हैं। इसीलिए हमें आपके सम्मुख भेजा गया है। कुछ औरों को भी निमन्त्रण-पत्र भेजने हैं। औपचारिक निमन्त्रण-पत्र बहुत है जो भेजने को हैं। ऐसे पत्र हम जैसे और नौकर पहुँचा आएँगे। मगर युवराज का खुद का सन्देश उन अन्य निमन्त्रितों के लिए नहीं होता। जिन्हें इस शुभ अवसर पर रहना अत्यन्त आवश्यक है, उन्हीं के पास हम जैसों के द्वारा निमन्त्रण के साथ सन्देश कहला भेजते है। राजवंशियों का विश्वासपात्र बनना उतना आसान नहीं है, माताजी ! विश्वास योग्य बनना कितना बड़ा सौभाग्य है—इसे मैं खुद अनुभव से समझ पाया हूँ।"

"बहुत अच्छा हुआ। अब आप लोग विश्राम कीजिए। बहुत थके होंगे। गालब्बे ! लेंका से जाकर कहो कि इनके घोड़ों को घुड़साल में बाँधकर उनकी देख-रेख करे।

"बाहर के बरामदे के दक्षिण की ओर के कमरे में इन्हें ठहराने की व्यवस्था करो। ये राजपरिवार में रहनेवाले है, इनकी मेजबानी में कोई कसर न हो।"

हेग्गडती के आदेश के अनुसार व्यवस्था करने के लिए सब लोग वहाँ से चले। आदेशानुसार व्यवस्था कर राजदूतों को कमरे में छोड़कर गालब्बे लौटी। हेग्गडती माचिकब्बे ने पूछा, "शान्तला कहाँ है ?"

"मैंने देखा नहीं, माताजी ! कहीं अन्दर ही होगी। बुला लाऊँ ?"

"न, यों ही पूछ रही थी।"

गालब्बे चली गयी। हेग्गडती झूले से उठी और अपने कमरे में चली गयी। उसका वह कमरा अन्दर के बरामदे के उत्तर की ओर था। शान्तला भी वहीं माँ के साथ रहती थी। शान्तला ने माँ के आने की ओर ध्यान नहीं दिया। शाम का समय था। वह भोजन-पूर्व भगवान का ध्यान करती हाथ जोड़े, आँख मूँदे बैठी थी। मन-ही-मन गुनगुनाती हुई प्रार्थना कर रही थी। माचिकब्बे राजगृह से प्राप्त पत्र को सुरक्षित स्थान पर रख ही रही थी कि इतने में दरवाजे से लेंका ने आवाज़ दी और कहा कि हेग्गडेजी आ गये। लेंका की बात सुन उस पत्र को हाथ में लेकर वैसे ही हेग्गडती बाहर आयी। लेंका की बात शान्तला ने भी सुनी तो वह

भी तुरन्त ध्यान से उठी, माँ के पीछे-पीछे चल पड़ी।

माचिकब्बे अभी बरामदे के द्वार तक पहुँची ही थी कि इतने में हेग्गड़े मारसिंगय्या अन्दर आ चुके थे।

हेग्गडती माचिकब्बे ने कहा, "उचित समय पर पधारे आप।"

"सो क्या ?"

"सोसेऊरु से राजदूत आये हैं।"

"क्या समाचार है ?" हेग्गडे मारसिंगय्या ने कुछ घबडाये हुए-से पूछा।

"सब अच्छा ही समाचार है। पहले आप हाथ-मुंह धोकर शिवार्चन कर लें। सूर्यास्त के पहले भोजन हो जाये।"

"मेरे लिए यह नियम लागू नही न ? मेरा शिवार्चन ऐसी जल्दबाजी मे पूरा नही होता। इसलिए आप लोग भोजन कर लें। मैं आराम से यथावकाश अपने कार्यों मे निबट लूँगा। इस बात को रहने दें—अब यह कहे राजमहल की क्या खबर है ?"

"यह पत्र आप पढ लें।"—कहती हुई उसे हेग्गडे जी के हाथ में देकर पीछे की ओर मुड बेटी को देखकर पूछा, "अम्माजी! तुम्हारी ध्यान-पूजा समाप्त हो गयी ? तो चलो, हम दोनो चलें और भोजन कर आवें। तुम्हारे अप्पाजी को हमारा साथ देने की इच्छा नही।"

"अप्पाजी ने ऐसा तो नही कहा न! अम्मी।"

"हाँ, मैं तो भूल ही गयी। लडकियाँ हमेशा पिता का ही साथ देती हैं। मेरे साथ तुम चलोगी न ?"

"चलो, चलती हूँ।" शान्तला ने कहा।

माँ-बेटी दोनो भोजन करने चली गयी।

इधर हेग्गडे मारसिंगय्या ने अपने उत्तरीय शिरोवेष्टन आदि उतारे और गद्दी पर रखकर तकिये के सहारे बैठ उस पत्र को पढने लगे। इतने मे नौकरानी गालब्बे ने पनौटी-पानी-गुड आदि ला रखा।

"राजदूत चले गये ?"

गालब्बे ने कहा, "अभी यही हैं मालिक। कल दोपहर तक वे आपकी प्रतीक्षा करने के इरादे से यही ठहरे हैं। आपके दर्शन करके ही प्रस्थान करने का उनका विचार है। क्या उन्हे बुलाऊँ ?"

"वे आराम करते होंगे, आराम करने दो। मुझे भी नहाना है। शीघ्र तैयारी करो। तब तक मैं भी आराम करूँगा। उन अतिथियो के लिए सारी व्यवस्था ठीक है न ?"

"हेग्गडतीजी के आदेशानुसार सभी व्यवस्था कर दी गयी है।"

"ठीक है। अब जाओ।"

स्नान, पूजा-पाठ से निवृत्त होकर भोजन समाप्त करके हेग्गडे मारसिगय्या बारह-दरी मे उसी झूले पर आ विराजे। उनके पीछे ही पान-पट्टी लेकर उसी झूले पर पतिदेव के साथ बैठी माचिकब्बे पान बनाने लगी।

हेग्गडे मारसिंगय्या ने पूछा, "हेग्गडती जी ने क्या सोचा है ?"

"किस विषय मे।"

"सोसेऊरु के लिए प्रस्थान करने के बारे मे।"

"मेरा क्या निश्चय होगा। जैसी आपकी आज्ञा होगी।"

"अपनी इच्छा के अनुसार मुझे अनुकूल बनाने मे हेग्गडतीजी बडी होशियार हैं। अब इस बात को रहने दे। यह बताएँ कि अब क्या करना है ?"

"युवरानीजी ने खुद अलग से सन्देश भेजा है। ऐसी हालत मे न जाना क्या उचित होगा ?"

"जाना तो हमारा कर्त्तव्य है ही। मगर यही शुभकार्य उनके महाराजा होने पर सम्पन्न हुआ होता तो कितना अच्छा लगता ?"

"महाराजा विनयादित्य प्रभु के जीवित रहते एरेयग प्रभु का महाराजा बनना कैसे सम्भव हो सकता है ?"

"युवराज एरेयग प्रभु की आयु अब कितनी है—समझती हो ?"

"कितनी है ?"

"उनका जन्म शालिवाहन शक म ९६९ सर्वजित् वर्ष मे हुआ था। इस आगीरस वर्ष तक पैंतालीस वर्ष के हो गये। फिर भी वे अब तक युवराज ही है। महाराजा विनयादित्य प्रभु की आयु अब करीब-करीब भीमरथ शान्ति सम्पन्न करने की है।"

"वह उनका भाग्य है। युवराज है, तो भी उन्हे किस बात की कमी है। सुनते है कि वास्तव मे सारा राजकाज करीब-करीब उन्ही के हाथ है।"

"किस गुप्तचर के द्वारा तुमने यह खबर पायी ?"

"सब लोग कहते फिरते है। इसके लिए गुप्तचर की क्या जरूरत है ?"

"लोगो मे प्रचलित विचार और वास्तविक स्थिति—इन दोनो मे बहुत अन्तर रहता है। इस अन्तर को वहाँ देखा जा सकता है। अब तो वहाँ जाने का मौका भी आया है।"

"मतलब यह कि जाने की आज्ञा है। है न ?"

"आज्ञा या सम्मति जो भी हो, वहाँ जाना आवश्यक है। क्योकि यह हमारा कर्त्तव्य है।"

पान तैयार कर हेग्गडे के हाथ मे देकर कहने लगी, "आप अकेले हो आइए।"

"क्यो ? राजकुमार का उपनयन राज-कार्य नही है ?"

"ऐसा तो नहीं। पुरुषो के लिए तो सब जगह ठीक हो सकती है। मगर स्त्रियो को बडे लोगो के यहाँ उनके अनुसार चलना कठिन होता है। हम छोटे हैं, क्या हम उनके बराबर हो सकेगे ?"

"मानव-जन्म लेकर, मनुष्य को अपने को कभी छोटा समझना ठीक नहीं। समझी ?"

"मैं अपने को कभी छोटी नही समझती, पर उनकी दृष्टि मे हम छोटे है इस-लिए कहा।"

"क्या यह तुम्हारा अनुमान है या अनुभव ?"

"राजमहल मे जो हेग्गडतियाँ हो आयी हैं उनसे मैंने ऐसी बातें सुनी हैं।"

"तभी कहा न ? दूसरो की बात पर कभी विश्वास नही करना चाहिए। यदि हमारी हेग्गडती को दु ख होगा तो वह हमारे लिए क्या सतोष की बात होगी ? अब की बार दोनो साथ चलेंगे। वहाँ से लौटने के बाद यदि दुबारा बुलावा आयेगा तब जाने न जाने का निर्णय तुम ही पर छोड दूँगा।"

"हेग्गडेजी की आज्ञा हुई तो वही करेगे। उपनीत होनेवाले राजकुमार की क्या आयु है ?"

"सोलह। क्यो ?"

"बस, यो ही पूछा। उपनयन करने मे इतनी देरी क्यो की ?"

"शायद पाँच वर्ष हुए होंगे। महाराजा की षष्ठिपूर्ति शाति के दो-तीन वर्ष बाद महाराजा एक गम्भीर बीमारी के शिकार हुए। उस रोग से वे मुक्त होंगे—ऐसी उम्मीद किसी को नही थी। रोग से मुक्ति तो मिल गयी, परन्तु बहुत कमजोर ही रहे। राजवैद्य भी कुछ कह नही सके थे। उस प्रसग मे युवराज अभिषिक्त हो जाये उसके बाद ही बडे लडके का उपनयन करने की शायद सोचते रहे होंगे।"

"तो क्या युवराज पिता की मृत्यु चाहते थे ?"

"छी, छी ! ऐसा नही कहना चाहिए। जो जन्म लेते है वे सब मरते भी है। कुछ पद वशपरम्परा मे चले आते है। युवराज महाराजा के इकलौते पुत्र है। ऐसी दशा मे युवराज का यह सोचना कि महाराजा होने के बाद बेटे का उपनयन करें—यह कोई गलत तो नही है। जो भी हो, पट्टाभिषेक भी स्थगित हुआ। उप-नयन करने मे विलम्ब हुआ। और अधिक विलम्ब न हो—सम्भवत इसलिए अब इसे सम्पन्न करने का निश्चय किया है।"

"जो भी हो, विवाह की उम्र मे यह उपनयन सम्पन्न हो रहा है।"

"होने दो ! तुम्हे उनकी समधिन तो नही बनना है। तुम्हे अपनी बेटी की शादी के बारे मे सोचने के लिए अभी बहुत समय है। उन राजभटो का भोजन हो चुका हो तो उन्हे कहला भेजो। उन्हें और भी बहुत से काम होंगे। वे यहाँ बैठे-बैठे व्यर्थ में समय क्यों व्यतीत करें।"

हेग्गडती वहाँ से उठी और जाकर दो-चार क्षणो मे ही लौटकर, "वे अभी आ रही हैं। मैं थोडी देर मे आऊँगी," कहकर भीतर चली गयी।

रेविमय्या और गोक—दोनो राजभट उपस्थित हुए और अदब से प्रणाम कर खडे हो गये। हेग्गडे के उन्हे बैठने को कहने पर वे बैठ गये।

"तुम लोगो ने हेग्गडतीजी को जो बताया है, उस सबसे हम अवगत हैं। युवराज की आज्ञा के अनुसार हम इस उपनयन महोत्सव के अवसर पर वहाँ अवश्य आएँगे। इतनी आत्मीय भावना से जब हम स्वय युवराज के द्वारा निमन्त्रित हैं तो यह हमारा अहोभाग्य ही है। मालूम हुआ कि आप लोगो ने मेरे लिए कल तक प्रतीक्षा करने का निश्चय किया था। आप लोग जितने दिन चाहे हमारे अतिथि बनकर रह सकते हैं। परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे आप लोग जैसा उचित समझें वैसा करें।"

"आपके दर्शन भी हो गये। इसलिए सुबह तडके ही ठडे वक्त मे हम यहाँ से चल देंगे। इसके लिए आप अनुमति दें।"

"जैसी इच्छा हो करें। अब आप लोग जाकर आराम करें। हमारे नौकर लेका मे कहेगे तो वह सारी व्यवस्था कर देगा।"

दोनो राजदूत उठ खडे हुए, परन्तु वहाँ मे हिले नही।

"क्यो क्या चाहिए था। क्या कुछ और कहना शेष है ?"

बडे सकोच से रेविमय्या ने कहा, "क्षमा करें। जब हम आये तब फाटक पर ही छोटी अम्माजी से मिले थे। वे ही हमे अन्दर ले आयी थी। फिर उनके दर्शन नही हुए। अगर हम सुबह तडके ही चले जाये तो फिर हमे उनके दर्शन करने का अवसर ही न मिलेगा। यदि कोई आपत्ति न हो, उन्हे एक बार और देखने की इच्छा है।"

"शायद सोती होगी। गालब्बे ! देखो तो अगर अम्माजी सोयी न हो तो, उसे कुछ देर के लिए यहाँ भेजो।" कहकर हेग्गडे मारसिगय्या ने राजदूतो से कहा, "तब तो उसने तुम लोगो को तग किया होगा।"

रेविमय्या ने कहा, "ऐसा कुछ नही। उनकी उम्र के बच्चो मे वह होशियारी, और बुद्धिमानी, वह गाम्भीर्य और सयम, और वह धीरता-निर्भयता दुर्लभ है। इसलिए उस बालिका को फिर से देखने की इच्छा हुई। आप अन्यथा न समझें।"

"कुछ नही। तुम लोग बैठो। बच्चो को प्यार करने का सबको अधिकार है। इसमे अन्यथा समझने की क्या बात है ?"

दोनो राजभट बैठ गये। गालब्बे शान्तला के साथ आयी।

शान्तला ने पूछा, "अप्पाजी ! मुझे बुलाया ?"

"ये लोग कल सुबह तडके ही जानेवाले हैं। आते वक्त तो इन्होने तुम्हे देखा था फिर तुम्हे देख नही सके। वे फिर तुम्हे देखना चाहते थे। अत. कहला

भेजा।"

"कल दोपहर आने की बात कह रहे थे।"

"हाँ, उन लोगो ने वैसा ही सोचा था। मैं आ गया तो उनका काम बन गया। इसलिए अभी आ रहे हैं।"

"कल दोपहर तक भी आप न आते तो तब ये लोग क्या करते?" शान्तला ने पूछा।

"अब तो आ गया हूँ न?" हेग्गडे ने कहा।

"आये तो क्या हुआ? ये लोग कल दोपहर ही को आयेंगे।"

"अम्माजी उन्हे बहुत काम करने के हैं। राज-काज पर लगे लोग यो ही समय नही बिता सकते। काम समाप्त हुआ कि दूसरे काम के लिए दौडना पडता है। तुम्हें यह सब मालूम नहीं होता, बेटी।"

"सब लोगो की भी तो यही दशा है। एक काम समाप्त हुआ कि नही, दूसरे काम पर आगे बढते जाना चाहिए।"

रेविमय्या टकटकी लगाये शान्तला को ही देखता रहा।

हेग्गडे मारसिंगय्याजी को हँसी आ गयी। वे बोले, "बेटी! तुम बडे अनुभवी लोगो की तरह बात करती हो।"

रेविमय्या ने कहा, "हेग्गडेजी, आप एक योग्य गुरु से अच्छी शिक्षा दिलाने की व्यवस्था करें तो बहुत अच्छा होगा। इसके लिए यहाँ की अपेक्षा राजधानी बहुत ही अच्छी जगह होगी। वहाँ बडे योग्य और निपुण विद्वान हैं।"

"यह बात तो महाराजा की इच्छा पर अवलम्बित है। यहाँ भी अच्छे शिक्षक की व्यवस्था की गयी है। अभी संगीत, साहित्य और नृत्य की शिक्षा क्रम से दी जा रही है। इसके गुरु भी कहते हैं कि अम्माजी बहुत प्रतिभासम्पन्न है।"

"गुरुजी को ही कहना होगा? अम्माजी की प्रतिभा का परिचायक आइना उनका मुखमण्डल स्वय है। यदि अनुमति हो तो एक बार बच्ची को अपनी गोद मे उठाऊँ?"

"यह उसे सम्मत हो तो कोई आपत्ति नही। गोद मे उठाने को वह अपना अपमान समझती है।"

"नही अम्माजी, गोद मे उठाना प्रेम का प्रतीक है। जिसे गोद मे लिया जाता है उसकी मानसिक दुर्बलता नही। इसमे अपमान का कोई कारण नही। आओ अम्माजी, एक बार सिर्फ एक ही बार अपनी गोद मे लेकर उतार दूँगा।" गिडगिडाते हुए रेविमय्या ने हाथ आगे बढाये।

शान्तला बिना हिले-डुले मूर्तिवत् खडी रही। आगे नही बढी। वही दो कदम आगे बढ आया। उसकी आँखें तर हो रही थी। दृष्टि मन्द पड गयी। वैसे ही बैठ गया। शान्तला अपने पिता के पास जाकर बैठ गयी। यह सब उसकी समझ मे

कुछ भी नहीं आया।

हेग्गडे मारसिंगय्या ने पूछा, "क्यो ? क्या हुआ ?" रेविमय्या की आँखो से धाराकार आँसू बह रहे थे। धारा रुकी ही नही। मारसिंगय्या ने गोक की ओर देखा और कहा, "वह बहुत भावुक है। उसके विवाह के छ वर्ष के बाद उसकी एक बच्ची पैदा हुई थी। दो साल तक जीवित रही। बच्ची बहुत होशियार थी। उसके मरने के बाद फिर बच्चे हुए ही नही। उसे बच्चे प्राणो से भी अधिक प्यारे हैं।"

"बेचारा !" अनुकम्पा के स्वर मे हेग्गडे मारसिंगय्या ने कहा।

रेविमय्या को स्वस्थ होने मे कुछ समय लगा।

हेग्गडे मारसिंगय्या ने कहा, "आप लोग एक काम करे। आप लोगो की यात्रा कल दोपहर को ही हो। अम्माजी भी यही कहती है। अब जाकर आराम करो। मैं भी आराम करूँगा।"

सुबह स्नान-उपाहार आदि समाप्त कर रेविमय्या और गोक दोनो हेग्गडे के घुडसाल मे गये। उनके घोडे मालिश-शुदा होकर चमक रहे थे। घोडे भी खा-पीकर तैयार थे। घोडो का प्रात कालीन आतिथ्य चल रहा था। पास ही जीन-लगाम से लैस एक टट्टू तैयार खडा था। दोनो उसकी ओर आकर्षित हुए। घुडसाल क उस कर्म-चारी को पिछले दिन इन लोगो न नही देखा था। उसके पास जाकर रेविमय्या ने पूछा, "यह टट्टू किसके लिए है ?"

"यह छोटी अम्माजी के लिए है।" उत्तर मिला।

"क्या ! अम्माजी घोडे की सवारी भी करती है ?" रेविमय्या ने चकित होकर पूछा।

नौकर न गर्व स कहा, "आप भी उन जैसी सवारी नही कर सकते।"

इसी बीच शान्तला वहाँ आयी।

वह वीरोचित वेषभूषा, काछ लगी धोती, ऊपर अँगरखे मे सजी हुई थी। "रायण ! अब चले !" कहती हुई वह अपने टट्टू के पास गयी और उसे थपथपाया। अपने टट्टू को लेकर घुडसाल से बाहर निकल पडी। रायण दूसरे घोडे को लेकर उसका अनुसरण करने लगा।

रेविमय्या शान्तला के पास आया। पूछा, "अम्माजी, आपके साथ चलने की मुझे इच्छा हो रही है, क्या मै भी चलूँ ?"

"आइए, क्या हर्ज है।" फिर उसने घुड़साल की ओर देखकर कहा, "अभी तो आपका घोडा तैयार नही है।"

रेविमय्या ने कहा, "अभी दो ही क्षणो मे तैयार हो जाऊँगा।" इतने मे हेग्गडे वहाँ आये। उन्होने पूछा, "कहाँ के लिए तैयारी है?"

रेविमय्या ने जवाब दिया, "अम्माजी के साथ जाने के लिए अपने घोडे को तैयार कर रहा हूँ।"

हेग्गडे ने कहा, "रायण! तुम ठहर जाओ।" फिर रेविमय्या से कहा, "तुम इसी घोडे को लेकर अम्माजी के साथ जा सकते हो।"

फिर क्या था? नयी मैत्री के लिए सहारा मिल गया।

शान्तला और रेविमय्या दोनो निकले, अपने-अपने घोडो पर। रेविमय्या चकित रह गया। वहाँ राजमहल मे घोडे के पास जाते हुए डरनेवाले राजकुमार उदयादित्य। यहाँ एक साधारण हेग्गडे की साहस की पुतली छोटी बालिका। यदि कोई और यह कहता तो वह समझता कि सब मनगढन्त है, और उस पर विश्वास नही करता। यहाँ खुद आँखो से देख रहा है। घोडे को चलाने के उसके ढग को देखकर वह चकित रह गया। एक प्रहर तक सवारी कर लौटने पर समझ मे आया कि रायण की बात सही है। रेविमय्या मन-ही-मन सोचने लगा—'जिसका जन्म राजमहल मे होना चाहिए था वह एक साधारण हेग्गडे के घर मे क्यो हुआ?' —उस सवाल का जवाब कौन दे? वही जवाब दे सकता है जिसने इस जगत् का सृजन किया है। परन्तु, वह सिरजनहारा दिखायी दे जब तो।

घुडसाल मे घोडा को पहुँचाकर दोनो ने अन्दर प्रवेश किया। पिछवाडे की ओर से अन्दर आये, वही बारहदरी मे हेग्गडे बैठे थे। उन्होने पूछा, "सवारी कैसी रही?"

रेविमय्या मौन खडा रहा। उसने समझा—शायद सवाल शान्तला से किया होगा।

रेविमय्या से हेग्गडे ने पूछा, "मैने तुम ही से पूछा है, घोडे ने कही तग तो नही किया?"

इतने मे शान्तला ने कहा, "ये रायण से भी अच्छी तरह घोडा चलाते है।"

हेग्गडे ने कहा, "उन्हे वहाँ राजधानी मे ऐसी शिक्षा मिलती है, बेटी।"

रेविमय्या ने पूछा, "जी आपको यह टट्टू कहाँ से मिला? यह अच्छे लक्षणो से युक्त है। इसे किसी को न दीजिएगा।"

हेग्गडे ने कहा, "हमारी अम्माजी बढेगी नही? जैसी अब है वैसे ही रहेगी?"

"न, ऐसा नही, कुछ वस्तुएँ सौभाग्य से हमारे पास आती है। उन्हे हमे कभी नहीं खोना चाहिए। उसके ठिगनेपन को छोडकर शेष सभी लक्षण राज-

वीर्य हैं। अगर उसकी टाँगों में घुँघरू बाँध दें और अम्माजी उसे चलायें तो उसके पैरों का लय नृत्य-सा मधुर लगेगा। हेग्गडेजी ! घोड़े पर सवार अम्माजी के कान हमेशा टापों पर ही लगे रहते हैं। आप बड़े भाग्यवान् हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि अम्माजी दीर्घायु होवें और आप लोगों को आनन्द देती रहे। फिर उसने शान्तला से कहा, "अम्माजी, कम-से-कम अब मेरी गोद में एक बार आने को राजी होगी ?" रेविमय्या के हाथ अपने-आप उसकी ओर बढे।

शान्तला उसी तरफ देखती हुई उसकी ओर बढी। रेविमय्या आनन्दविभोर हो उस नन्ही बालिका को गोद मे उठाकर "मेरी देवी आज मुझ पर प्रसन्न हैं" कहता हुआ मारे आनन्द के नाच उठा। ऐसा लगता था कि वह अपने आसपास के वातावरण को भूल ही गया है। शान्तला को उतारने के बाद मुसकराते बैठे हुए हेग्गडे को देखकर उसने सकोच से सिर झुका लिया।

सगीत सिखाने के लिए अध्यापक को आते देखकर उसने पिताजी से "मैं अध्यापक जी के पास जाऊँ ?" कहकर सगीत अध्यापक का अनुसरण करती हुई वहाँ से चली गयी।

"हेग्गडे जी ! आपके और अम्माजी के कहे अनुसार आज सुबह जो यहाँ ठहर गया, सो बहुत अच्छा हुआ। आज मुझे जो एक नया आनन्द मिला उससे—मुझे विश्वास है, मैं अपने पुराने सारे दु ख को भूल जाऊँगा। किसी भी तरह से हो आप इस बात की कोशिश करें कि आप राजधानी ही मे बस सके। मैं यह बात अम्माजी के लिए कह रहा हूँ, आप अन्यथा न समझे।"

"देखें ! आज बृहस्पतिवार है। आप लोग तेईस घड़ियाँ बीतने के बाद यात्रा करें। जहाँ तक हो सकेगा हम पहले ही वहाँ पहुँचेंगे। मुहूर्त काल तक तो किसी भी हालत मे जरूर ही पहुँच जायेंगे, चूकेंगे नही। युवराज से यह बात कह दें। हेग्गडतीजी से मिल लें और मालूम कर ले कि युवरानीजी से क्या कहना है"—इतना कहकर हेग्गडे वहाँ से उठकर अन्दर चलने को तैयार हुए।

इधर शान्तला का सगीत-पाठ शुरू हो चुका था।

शान्तला की मधुर ध्वनि सुनकर रेविमय्या दग रह गया और सगीत सुनता हुआ वही मूर्तिवत् खडा रहा।

राहुकाल के बीतने पर दोनों राजदूत हेग्गडे, हेग्गडती और शान्तला से विदा लेकर निकले। शान्तला रेविमय्या और उसके साथी को अहाते तक पहुँचा कर

लौटी। उसके माता-पिता झूले पर बैठे बातचीत कर रहे थे। शान्तला को आयी देखकर हेग्गडती माचिकब्बे—"किसी तरह रेविमय्या तुम्हें छोड़कर चला गया! मुझे आश्चर्य इस बात का है कि जो आसानी से किसी के पास न जानेवाली यह उस रेविमय्या में क्या देखकर चिरपरिचित की तरह बिना संकोच के उसके पास गयी?" कहकर हेग्गडे की ओर प्रश्नार्थक दृष्टि से देखने लगी।

"उसने क्या देखा, इसने क्या समझा, सो तो ईश्वर ही जाने। परन्तु इतना तो निश्चित है कि इन दोनों में प्रगाढ़ मैत्री हो गयी है।"

"जाने भी दीजिए। यह कैसी मैत्री। मैत्री के लिए कोई उम्र और हैसियत भी तो चाहिए? वह तो एक साधारण राजभट है। फिर वह आपकी उम्र का है।"

मारसिंगय्या मुस्कराये और बोले

"सच है। जो तुम कहती हो वह सब सच है। जितना तुम देख और समझ सकी हो उतना ही तुम कह रही हो। परन्तु उन दोनों का अन्तरंग क्या कहता है। सो तो यह तुमको मालूम नहीं। अम्माजी, यों क्यों खड़ी हो गयी, आओ, बैठो।"

शान्तला आकर दोनों के बीच में झूले पर बैठ गयी।

मारसिंगय्या ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "राजकुमार के उपनयन सस्कार के अवसर पर तुम हमारे साथ सोसेऊरु चलोगी न?"

शान्तला ने कोई जवाब नहीं दिया।

"छोड़िये तो, आपकी अकल को भी क्या कहूँ? वह तो अनजान बच्ची है, जहाँ हम होंगे वहाँ वह भी साथ रहेगी।"

"अप्पा जी, रेविमय्या ने जरूर आने को कहा है। मैंने 'हाँ' तो कह दिया। परन्तु जाऊँ तो मेरी पढ़ाई रुक न जाएगी?"

"थोड़े दिन के लिए रुके तो हर्ज क्या? लौटते ही फिर सीख लेना।" माचिकब्बे ने कहा।

"हमारे गुरुजी कह रहे थे कि यदि धन-सम्पत्ति गई तो फिर कमाई जा सकती है, राज्य भी गया तो वह फिर पाया जा सकता है। परन्तु समय चूक गया तो उसे फिर पा नहीं सकते। बीते समय को फिर से पाना किसी भी तरह से सम्भव हो ही नहीं सकता।" शान्तला ने कहा।

"तुम जो सीखोगी उसे एक महीने के बाद भी सीखो तो कोई नुकसान नहीं। गुरुजी को क्या नुकसान है? पढ़ावें या न पढ़ावें, ठीक महीने के समाप्त होते ही उनका वेतन तो उन्हें पहुँचा दिया जाता है।" माचिकब्बे ने कहा।

मारसिंगय्या को लगा कि बात का विषयान्तर हो रहा है। "फिलहाल जाने में चार महीने हैं। अभी से इन बातों को लेकर माथापच्ची क्यों की जाय? इस

बारे मे यथावकाश सोचा जा सकता है।" यो उन्होने रुख बदल दिया।

"उपनयन तो अभी इस कार्तिक के बाद आनेवाले माघ मास मे होगा? इतनी जल्दी चार महीने पहले निमन्त्रण क्यो भेजा गया है?" माचिकब्बे ने पूछा।

"राजकुमार का उपनयन क्या कोई छोटा-मोटा कार्य है? उसके लिए कितनी तैयारी की आवश्यकता है। जिन-जिनको बुलाना अनिवार्य है उन सभी के पास निमत्रण भेजना है। कौन-कौन आनेवाले है, जो आएँगे उनमे किन-किनको कहाँ-कहाँ ठहराना होगा, और उन-उनकी हस्ती-हैसियत के अनुकूल कैसी-कैसी सहूलियते करनी होगी, फिर यथोचित पुरस्कार आदि की व्यवस्था करनी होगी। यह सब कार्य पूर्वनिश्चित क्रम के अनुसार चलेगे। इसके लिए समय भी तो आवश्यक है। हमे चार महीनो का समय बहुत लम्बा दीखता है। उनके लिए तो ये चार महीने चार दिनो के बराबर है। इतनी पूर्वव्यवस्था के होने हुए भी अतिम घडी मे झुण्ड के झुण्ड लोग आ जायेगे तो तब ऐसे लोगो को ठहराने आदि-आदि की व्यवस्था करनी पडेगी। इसके अलावा यह राजमहल से सम्बन्धित व्यवहार है। सब व्यवस्था नपी-तुली होती है। इस काम मे लगना भी मुश्किल, न लगे तो भी दिक्कत। वहाँ जब जाकर देखेगे तब तुम्हे स्थिति की जानकारी होगी।"

"हम तो स्थिति के अनुसार हो लेगे, परन्तु आपकी इस बेटी को वहाँ की नयी परिस्थितियो से समझौता करने मे दिक्कत होगी।"

"उसकी वजह से तुम्हे चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नही। वह हम दोनो से अधिक बुद्धिमती है।"

"यह क्या अप्पाजी, आप लोगो के साथ, मेरे जाने न जाने के बारे मे आराम से सोच-विचार करके निश्चय करने की बात कह रहे थे, अभी ऐसा कह रहे है मानो निश्चय ही कर दिया हो।"

"हाँ अम्माजी! तुम्हे छोडकर जाना क्या हमारे लिए कभी सम्भव हो सकता है? यह तो निश्चय है कि तुम्हे अवश्य ले जाएँगे। परन्तु विचारणीय विषय यह नही। विचार करने के लिए अनेक अन्य बाते भी तो है।"

"मतलब, मेरे पाठ-प्रवचन का कार्यक्रम न चूके, इसके लिए कोई ऐसी व्यवस्था की सभावना के बारे मे विचार कर रहे है, यही न?"

"हाँ बिटिया, ठीक यही बात है, बडी होशियार हो तुम।"

"बहुत अच्छा, अध्यापकजी को साथ ले जाकर वहाँ भी 'सा रे ग म' गवाते रहेगे?"

"क्यो नही हो सकता?"

"क्या ऐसा भी कही होता है? वहाँ के लोग क्या समझेंगे? हमारे घर मे जैसे चलता है वैसा ही वहाँ भी चलेगा? यह कभी सम्भव है? क्या यह सब करना

उचित होगा ?"

"इसीलिए तो हमने कहा, इन सबके बारे मे आराम से विचार करेंगे, समझी ? उन अध्यापकजी से भी विचार-विमर्श करेंगे। गुरु और शिष्या दोनो जैसी सम्मति देंगे वैसा करेंगे। आज का पाठ-प्रवचन सब पूरा हो गया अम्माजी ?"

"सुबह सगीत और नृत्य के पाठ समाप्त हुए। साहित्य पढाने के लिए अब गुरुजी आएँगे।"

"इन तीन विषयो मे कौन-सा विषय तुम्हे अधिक प्रिय है, अम्माजी ?"

"मुझे तीनो मे एक-सी रुचि है। हमारे गुरुजी कहते हैं कि इन तीनो का पारस्परिक सम्बन्ध ऐसा है कि एक को छोड दूसरा पूर्ण नही हो सकता। साहित्य यदि चेहरा है तो सगीत और नृत्य उस चेहरे की दो आँखें हैं।"

ठीक इसी समय लेका ने आकर खबर दी कि कविजी आये हैं।

सुनते ही शान्तला झूले से कूदकर भागी। हेग्गडे मारसिंगय्या भी उसका अनुसरण करते चल दिये।

शान्तला के अध्यापक बोकिमय्या अपने ताड्पत्र ग्रथ खोलने लगे। अपनी शिष्या के साथ उसके पिता भी थे। हेग्गडे मारसिंगय्या को देखकर वे उठ खडे हुए और प्रणाम किया। हेग्गडे ने उन्हे बैठने को कहा और खुद भी बैठ गये।

कभी पढाने के समय पर न आनेवाले हेग्गडे के आज आने के कारण अध्यापक के मन मे कुछ उलझन-सी पैदा हो गयी थी। उनकी ओर देखा, फिर पोथी खोलने मे लगे।

हेग्गडे मारसिंगय्या ने पूछा, "आपकी यह शिष्या कैसी है ?"

"सैकडो विद्यार्थियो को पढाने के बदले ऐसी एक शिष्या को पढाना ही पर्याप्त है। हेग्गडेजी !"

"इतना बढा-चढाकर कहना ठीक नही।"

"यह अतिशयोक्ति नही हेग्गडेजी। सम्भवत आप नही समझते होगे। आपकी दृष्टि मे यह छोटी मुग्ध बाला मात्र है। अभी जन्मी छोटी बालिका आपके सामने आँखे खोल रही है। परन्तु इसकी प्रतिभा, धीशक्ति का स्तर ही कुछ और है। सचमुच आप बडे भाग्यवान है। आप और हेग्गडतीजी ने उत्तम पुष्पो से भगवान् की पूजा की है। इसी पुण्य से साक्षात् सरस्वती ही आपकी पुत्री के रूप मे अवतरित हुई है। आपको आश्चर्य होगा अभी बालिका दस साल की भी नही हुई होगी। दो साल से मैं पढा रहा हूँ। सोलह वर्ष की उम्र के बच्चो मे भी न दिखनेवाली सूक्ष्म ग्रहणशक्ति और तन्मयता इस बालिका मे है। पूर्व-पुण्य का फल और दैवानुग्रह दोनो के सगम से ही यह प्रतिभा इस बालिका मे है। आपकी यह बेटी आज अमरकोश के तीनो काण्ड कण्ठस्थ कर चुकी है। यह अम्माजी गार्गेयी-

मैत्रेयी की पंक्ति मे बैठने लायक है । ऐसे शिष्य मिल जाये तो सात-आठ वर्षों मे सकलविद्या-पारंगत बनाये जा सकते हैं ।"

"मैं मान लूँ कि अपनी इन बातो की जिम्मेदारी को आप समझते है ।"

"जी हाँ, यह उत्तरदायित्व मुझ पर रहा । यह अम्माजी मायके और ससुराल दोनो वशो की कीर्ति-प्रतिष्ठा को आचन्द्रार्क स्थायी बना सकने योग्य विचारशीला बनेगी ।"

"सभी माता-पिता यही तो चाहते हैं ।"

"इतना ही नही, यह अम्माजी जगती-मानिनी बनकर विराजेगी ।"

अब तक पिता और गुरु के बीच जो सम्भाषण हो रहा था, उसे सुनती रही अम्माजी । अब उसने पूछा, "गुरुजी ! इस जगती-मानिनी का क्या माने है ?'

गुरुजी ने बताया, "सारे विश्व मे गरिमायुक्त गौरव से पूजी जानेवाली मानव-देवता ।"

"मानव देवता कैसे बन सकता है ?" शान्तला ने पूछा ।

"उसके व्यवहार से ।"

शान्तला ने फिर से सवाल किया, "ऐसे, मानव से देवता बननेवाले है क्या ?"

"क्यो नही अम्माजी, हैं अवश्य । भगवान् महावीर, भगवान् बुद्ध, शकर भगवत्पाद और अभी हाल के हमारे स्वामी बाहुबलि, कितने महान् त्यागी हैं । आप सब कुछ विश्वकल्याण के लिए त्यागकर बिलकुल नग्न हो जो खडे है । उनका बृहत्काय शरीर, फिर भी सद्योजात शिशु की तरह भासित मुखमण्डल, निष्कल्मष और शान्त । भव्यता और सरलता का सगम है—यह हमारे बाहुबलि स्वामी । अम्माजी, तुम्हे हमारे इस बाहुबलि स्वामी को बेलुगोल मे जाकर देखना चाहिए ।"

"अप्पाजी, अबकी राजकुमार के उपनयन के अवसर पर जाएँगे न, तब लौटते समय बेलुगोल हो आएँ ?" शान्तला ने पूछा ।

बोकिमय्या ने पूछा, "किस राजकुमार का उपनयन है, हेग्गडेजी ?"

"होय्सल राजकुमार बल्लालदेवजी का ।'

"उपनयन कब है ?"

"अभी इसी माघ मास मे ।"

"कहाँ ?"

"सोसेऊरु मे ।"

"वहाँ से बेलुगोल दूर पडता है ? मैं समझता था कि उपनयन दोरसमुद्र मे होगा ।"

शान्तला ने कहा, "दोरसमुद्र से बेलुगोल तीन कोस पर है, सोसेऊरु से छ-

कोस की दूरी पर।"

मारसिंगय्या ने आश्चर्य से पूछा, "यह सब हिसाब भी तुम जानती हो?"

"एक बार गुरुजी ने कहा था, प्रजाजन मे राजभक्ति होनी चाहिए। हमारे राजा होय्सलवंशीय हैं। सोसेऊरु, बेलापुरी, दोरसमुद्र—ये तीनो होय्सल राजाओ के प्रधान नगर हैं। बेलुगोल जैनियो का प्रधान यात्रास्थान है और शिवगंगा शैवो का। यह सब गुरुजी ने बताया था।"

गुरु बोकिमय्या ने कहा, "बताया नही, इन्होने प्रश्न पर प्रश्न पूछकर जाना है।"

मारसिंगय्या ने उठ खडे होते हुए कहा, "अब पढ़ाई शुरू कीजिए। पढ़ाने के बाद जब घर जाने लगें तो एक बार हमसे मिलकर जाइएगा। आपसे कुछ बात करनी है। पढ़ाई समाप्त होने पर मुझे खबर दीजिएगा।" तब हठात् शान्तला वहाँ से उठकर जाने लगी।

"कहाँ जा रही हो, अम्माजी?"

"आप बातें पूरी कर लें, अप्पाजी। अभी आयी।" कहकर वह चली गयी।

"देखिए, हेग्गडे जी, इस छोटी उम्र मे अम्माजी की इंगितज्ञता किस स्तर की है।"

"समझ मे नहीं आया।"

"आपने कहा न? मुझसे बात करनी है, जाने के पहले खबर दीजिए। बात रहस्य की होगी, उसके सामने बात करना शायद आप न चाहते हों; इसलिए आपने बाद मे खबर देने के लिए कहा है—यह सोचकर अम्माजी अभी बातें कर लेने के लिए आपको समय देने के इरादे से चली गयी।"

"मेरे मन में ऐसी कोई बात नही थी। फिर भी अम्माजी ने बहुत दूर की बात सोची है।"

"बात क्या है?" बोकिमय्या ने पूछा।

"कुछ खास बात नही। उपनयन के लिए जायँ तो वहाँ जितने दिन ठहरना होगा उतने दिन के अध्यापन मे बाधा पडेगी न? मालूम होता है कि आपने उससे कहा, 'खोया हुआ राज्य पाया जा सकता है, परन्तु बीता हुआ समय फिर कभी लौटाया नही जा सकता।' अब क्या करें? उपनयन के लिए जाना तो होगा ही। और अम्माजी को साथ ले जाना ही होगा। पाठ भी न रुके—यह कैसे हो सकता है? इसके लिए क्या उपाय करें? यह आपसे पूछना चाहता था।"

"मुझे उधर की बातें मालूम नही। मेरे लिए निमन्त्रण तो है नही फिर भी मुझे कोई एतराज नही, अगर आप और हेग्गडतीजी इस बात को उचित समझें तो आपकी तरफ से मैं आप लोगो के साथ चलने को तैयार हूँ। शिल्पी नाट्याचार्य गणाचार्य को भी समझा-बुझाकर मैं ही साथ लेता आऊँगा।"

"तब ठीक है। मैं निश्चिन्त हुआ। अब जाकर अम्माजी को भेज दूँगा।" कहकर मारसिंगय्या वहाँ से निकल पड़े।

थोड़ी ही देर में शान्तला आयी। पढ़ाई शुरू हुई।

उधर मारसिंगय्या ने अपना निर्णय हेग्गडती को बता दिया।

हेग्गडे और हेग्गडती की यात्रा, सो भी राजधानी के लिए, कहने की जरूरत नहीं कि वह कोई साधारण यात्रा नहीं थी। उन्हें भी काफी तैयारियाँ करनी पड़ी। राजकुमार बल्लालदेव, युवराज एरेयग, युवरानी एचलदेवी, राजकुमार बिट्टिदेव और राजकुमार उदयादित्यदेव—इन सबके लिए नजराना-भेंट-चढ़ावे आदि के लिए अपनी हस्ती के मुताबिक और उनकी हैसियत के लायक वस्तुएँ जुटायी गयी। उपनीत होनेवाले वटु को 'मातृभिक्षा' देने के लिए आवश्यक चीजें तैयार की। ग्रामीणो की तरफ से भेंट की रकम भी जमा की गयी। हेग्गडे का परिजन भी कोई छोटा नहीं था। माँ, बाप और बेटी—ये तीन ही परिवार के व्यक्ति थे। पर अध्यापक कवितिलक बोकिमय्या, शिल्पी नाट्याचार्य गंगाचार्य—दोनो सपत्नीक साथ चलने को तैयार हुए। नौकर-नौकरानी मे लेंका, गालब्बे और रायण के बिना काम ही नहीं चल सकता है, इसलिए वे भी साथ चलने को तैयार हुए। उन अध्यापको के परिवारो की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए नौकर, गालब्बे की बहन नौकरानी दासब्बे, फिर रक्षकदल के सात-आठ लोग—इन सब के साथ वे सोसेऊरु के लिए निकले। हेग्गडे, हेग्गडती और छोटी अम्माजी के लिए एक, अध्यापको के लिए एक, बाकी लोगो के लिए एक, इस तरह अच्छे बैलो-वाली तीन बैलगाड़ियाँ तैयार हुईं। रायण और रक्षक-दल के लोग घोड़ो पर चले, साथ शान्तला का टट्टू अशोक भी था।

कवि बोकिमय्या की सलाह के अनुसार कुछ लम्बा चक्कर होने पर भी तुग-भद्रा के सगम कूडली क्षेत्र से होकर निकले। वहाँ एक दिन ठहरे और 'शारदा देवी' का दर्शन कर आगे बढ़े—ऐसा विचार था।

वहाँ एक विचित्र घटना हुई। जब श्री शारदा देवी के मंदिर मे गये तब देवी के दाये पार्श्व से हल्दी के रग का एक सुविकसित बड़ा फूल खिसककर नीचे गिरा। पुजारी ने उसे उठाया। चरणोदक के लोटे के साथ थाल मे रखकर हेग्गडती के पास आया। चरणोदक देकर "हेग्गडतीजी, आप बहुत भाग्यशाली हैं, माँ शारदा ने दायी ओर से यह प्रसाद दिया है, इसे लीजिए।" कहते हुए उसने

फूल आगे बढ़ाया। हेग्गडती माचिकब्बे ने हाथ पसारा ही था कि अध्यापक बोकिमय्या ने कहा, "पुजारीजी, वह हमारी छोटी शारदा के लिए देवी द्वारा दत्त प्रसाद है, उसे अम्माजी को दीजिए।" सब लोग एक क्षण के लिए स्तब्ध रह गये। पुजारी भी सन्न रह गये। उसे लगा कि अध्यापक की ज्यादती है, तो भी हेग्गडे और हेग्गडती की तरफ से किसी तरह की प्रतिक्रिया न दिखने के कारण उसने अपनी भावनाओ को अपने मे ही सयमित रखा। देने व लेनेवाले दोनों के हाथ पसरे ही रहे आये।

शान्तला ने कहा, "अम्मा को ही दीजिए, वे गाँव की प्रधान हेग्गडती हैं और बडी हैं। उन्हें दें तो मानो सबको मिल ही गया।"

पुजारी ने चकित नेत्रो से शान्तला की ओर देखा। कुछ निर्णय करने के पहले ही पुष्प हेग्गडतीजी के हाथ मे रहा। उन्होने प्रसाद-पुष्प लेकर सर-आँखो लगाया और कहा, "गुरूजी ने जो कहा सो ठीक है बेटी! यह प्रसाद तो तुमको ही मिलना चाहिए।"

शान्तला ने प्रसाद-पुष्प को दोनो हाथों मे लिया, आँखों लगाया। पुजारी को चरणोदक देने के लिए सामने खड़ा देख माचिकब्बे ने कहा, "फूल जूडे में पहन लो, पुजारी जी चरणोदक दीजिए।"

शान्तला बोली, "बाकी सबको भी दीजिए, इतने मे मैं फूल पहन लूँगी।" पुजारी ने हेग्गडे की ओर देखा। उन्होंने इशारे से अपनी सम्मति जता दी।

शान्तला के जूडे की शोभा को बढा रहा था वह प्रसाद-पुष्प। सबको तीर्थ-प्रसाद बाँटकर पुजारी शान्तला के पास आया। एकाग्र भाव से शान्तला शारदा की मूर्ति को अपलक देखती खडी रही। पुजारी ने कहा, "तीर्थ लीजिए अम्माजी।"

शान्तला ने तीर्थ और प्रसाद लिया।

शान्तला ने एक सवाल किया, "गुरुजी, यह देवी शारदा यहाँ क्यो खडी है? वहाँ बलिपुर मे महाशिल्पी दासोजा जी के यहाँ शारदा देवी की बैठी हुई मूर्ति देखी थी।"

"शिल्पी की कल्पना के अनुसार वह मूर्ति को गढता है। इस मूर्ति को गढने-वाले शिल्पी की आँखो मे खडी मूर्ति ही बस रही होगी।"

"लक्ष्मी चचला है। अत' वह जाने को तैयार खडी रहती है। सरस्वती ऐसी नही। एक बार उसका अनुग्रह जिस पर हो जाता है वहाँ स्थिर हो जाती है। इस-लिए वह सदा बैठी रहती है—ऐसा आपने ही एक बार कहा था न ?"

"हाँ, अम्माजी, कहा था। मैं भूल ही गया था। वह वास्तव मे साकेतिक है। इसके लिए कई प्रत्यक्ष प्रमाण देखे हैं। आज कोई निर्धन तो कल धनी। आज का धनी कल निर्धन। यह सब लक्ष्मी की चचलता का प्रतीक ही है। इसीलिए शिल्पी, चित्रकार ऐसे ही निरूपित करते हैं। परन्तु एक बार ज्ञानार्जन कर लें तो वह ज्ञान

स्थायी हो जाता है। वह अस्थिर नही होता। वह स्थिर और शाश्वत होता है।"

शान्तला ने फिर प्रश्न किया, "मतलब यह कि इस मूर्ति के शिल्पी को शारदा भी चचल लगी होगी।"

बीच मे पुजारी बोल उठा, "क्षमा करे, इसके लिए एक कारण है। यह शिल्पी की कल्पना नही। इस सम्बन्ध मे एक किवदन्ती है। थोडे मे कह डालूंगा श्री आदिशकराचार्यजी ने भारत की चारो दिशाओ मे चार पीठो की स्थापना करने की बात सोचकर, पुरातन काल मे महर्षि विभाडक की तपोभूमि और ऋष्यशृग की जन्मभूमि के नाम से ख्यात, तुगा तीर के पवित्र क्षेत्र मे दक्षिण-मठ की स्थापना करके, यहाँ श्री शारदा की मूर्ति को प्रतिष्ठित कर ज्ञानाराधना के लिए उपयुक्त स्थान बनाने की सोची। 'अह ब्रह्मास्मि' महावाक्य, यजुर्वेद सकेत, इस मठ के पीठाधीश चैतन्य-ब्रह्मचारी और भूरिवार-सम्प्रदाय के अनुसार यहाँ अनुष्ठान हो—यह उनकी इच्छा रही। इसी इरादे के साथ आद्य आचार्य शकर ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। इस दक्षिण यात्रा के समय एक विशेष घटना हुई। श्री शकराचार्य जी ने शास्त्रार्थ मे मण्डनमिश्र और सरस्वती की अवतार स्वरूपिणी उनकी पत्नी को हराया तो था ही। तब सरस्वती अपने स्थान ब्रह्मलोक चली जाना चाहती थी। उनकी इस इच्छा को जानकर आचार्य शकर ने वनदुर्गा मत्र के बल पर उस देवी को वश मे कर लिया और अपनी इस इच्छा को देवी के सम्मुख प्रकट किया कि उन्हे उस स्थान मे प्रतिष्ठित करना चाहते है जहाँ अपने दक्षिण के मठ की स्थापना करने का इरादा है। इस प्रकार की प्रार्थना कर उन्होने देवी को मना लिया।"

शान्तला ध्यान से सुनती रही, पूछा, "सिद्धि मन्त्र द्वारा वश मे कर लेने के बाद फिर प्रार्थना क्यो ?"

पुजारी ने इस तरह के प्रश्न की अपेक्षा नही की थी। क्षण-भर शान्तला को स्तब्ध होकर देखता रहा। फिर बोला, "अम्माजी ! हम जैसे अज्ञ, आचार्य जैसे ब्रह्मज्ञानियो की रीतिनीतियो को कैसे समझ सकते है। उनकी रीति-नीतियो को समझने-लायक शक्ति हममे नही है। कालक्रम से इस वृत्तान्त को सुनते आये है। उन आचार्य ने क्या किया सो बात परम्परा से सुनकर, उस पर विश्वास कर उसे हम बढाते आये है। आचार्य ने ऐसा क्यो किया, ऐसा क्यो करना चाहिए—आदि सवाल ही नही उठे। केवल परम्परा से सुनी-सुनायी बाते चली आयी है, उनपर हम विश्वास रखते चले आये है।" कहकर पुजारी ने मौन धारण किया।

शान्तला ने फिर पूछा, "फिर क्या हुआ ?"

"फिर देवी प्रसन्न होकर आचार्य की बात मान गयी। पर उन्होने एक शर्त लगायी, यह शर्त थी, 'मैं आपके पीछे-पीछे चलूंगी, परन्तु जहाँ आप मूर्ति को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं वहाँ पहुँचने तक आपको मुडकर नही देखना चाहिए।

जहाँ मुडकर देखेंगे वही मैं ठहर जाऊँगी। आगे आपके साथ नहीं चलूँगी।' इस शर्त को खुशी से आचार्य ने मान लिया। फिर उन्होंने अपनी दक्षिण की यात्रा शुरू की। रास्ते मे कहीं भी उन्होंने मुडकर नही देखा। चलते-चलते वे तुगा और भद्रा नदियो के सगम-स्थान पर पहुँचे। तब···"

इतने मे कवि बोकिमय्या ने पूछा, "क्यो कहने-कहते रुक गये ? बताइये, तब क्या हुआ ?"

"वसन्त समाप्त होने को था, और ग्रीष्म ऋतु के प्रवेश का समय था, वनश्री पूर्ण रूप से हरी-भरी होकर शोभा पा रही थी पर तुगा और भद्रा नदियाँ दुबली, पतली होकर बह रही थी। नदी-पात्र करीब-करीब बालुकामय ही था। आचार्य-जी के जल्दी-जल्दी चलने का प्रयत्न करने पर भी सूर्य की प्रखर किरणो से तप्त बालुका उन्हे रोक रही थी। आचार्य अचानक रुके और पीछे मुडकर देखने लगे। उनका अनुगमन करनेवाली देवी शारदा वही ठहर गयी।"

शान्तला ने पूछा, "आचार्य जी ने ऐसे मुडकर क्यो देखा ?"

"बताता हूँ ! माँ शारदा को खडी देखकर आचार्य स्तम्भित हो गये। तब माँ शारदा ने मुसकराते हुए पूछा, 'क्यो मुझपर आपको विश्वास नही हुआ ?' आचार्य को कुछ उत्तर नही सूझा। अन्त मे कहा, 'माँ, अविश्वास की बात नही। मगर अब जो काम मैंने किया उसका यह अर्थ भी हो सकता है। परन्तु, मुझे लगता है कि माँ को मेरी इच्छा पसन्द नही आयी।' अम्माजी, तब देवी शारदा ने आचार्य से वही प्रश्न किया जो आपने अभी पूछा। तब आचार्य ने कहा, 'मेरी दक्षिण यात्रा के आरम्भ के समय से आज तक लगातार चलती हुई माँ के पैरो के घुँघरुओ की मधुर-ध्वनि मेरा रक्षक-कवच बनकर रही, इस नदी-पात्र को पार करते हुए अचानक वह मधुर नाद रुक गया। इसलिए इच्छा के न होते हुए भी यन्त्रवत् मैंने मुडकर देखा। जब आपने यह निश्चय कर लिया है कि यही ठहरना है तब मुझे आपके इस निश्चय को मानना ही पडेगा। देवी की जैसी इच्छा। यही मैं मूर्ति की प्रतिष्ठा करूँगा।' तब माँ शारदा देवी ने कहा, 'मेरी ऐसी कोई इच्छा नही। जब मैं पीछे-पीछे चल रही थी तब घुँघरू के नाद के न सुनायी देने का कारण यह बालुका-मय भूमि है, मैं नही। मैं क्या करूँ ?' 'माँ, आपका यहाँ ठहरना एक अनपेक्षित घटना है, इसके लिए मुझे दु ख नही। परन्तु मेरा मन सकल्प पूर्ण करने का अनुग्रह करे।' आचार्य की इस विनती से देवी सन्तुष्ट हुई और कहा, 'दशहरे के पूरे नौ दिन, अपने सकल्प के अनुसार जिस स्थान पर प्रतिष्ठा करोगे, वहाँ मैं अपने सम्पूर्ण-तेज के साथ रहूँगी।' आचार्यजी के उस अनुभव का प्रतीक है यह खडी हुई शारदा माँ की मूर्ति। यह शारदा चचल नहीं। सर्वदा ज्ञान-भिक्षा देने के लिए तैयार होकर यह शारदा खडी है।" पुजारी ने कहा।

शान्तला ने उस खड़ी शारदा को देखा। आँखें बन्द कर हाथ जोडे रही। उसके

कान खड़े हो गये। शरीर हर्षोल्लास से रोमांचित हो उठा। उसके चेहरे पर मुसकराहट की एक लहर दौड़ गयी। होंठ खुले। कहा, "माँ, मुझे भी ज्ञान-भिक्षा दो।" ये शब्द शान्तला के मुँह से निकले। तुरन्त उसने दण्डवत् प्रणाम किया।

उस पूरे दिन वे लोग वही ठहरे। उस दिन श्री शारदा देवी के समक्ष मे उनकी सन्निधि मे ही पाठ-प्रवचन सम्पन्न हुआ। उस समय पुजारी भी वहीं उपस्थित रहा। शान्तला की श्रद्धा और विषय ग्रहण करने की प्रखर मेधा को देखकर पुजारी चकित रह गया। पाठ-प्रवचन समाप्त होने के बाद पुजारी ने बोकिमय्या से पूछा, "कविजी, सोसेऊरु जाने के लिए यह सीधा मार्ग तो नहीं है। फिर भी इधर से होकर जाने का क्या उद्देश्य है?"

बोकिमय्या ने कहा, "माँ शारदा का अनुग्रह प्राप्त कर आगे जाने के उद्देश्य से ही इस रास्ते से चले आये।"

"श्री शारदा देवी ने ही ऐसी प्रेरणा दी होगी। बहुत अच्छा हुआ। अम्माजी मे इस छोटी उम्र मे ऐसी प्रतिभा है जैसी इस उम्र के बच्चो मे सम्भव ही नही। आचार्य शकर भगवत्पाद छोटी उम्र मे, सुनते हैं, ऐसे ही प्रतिभासम्पन्न थे।" पुजारी ने कहा।

"न न, ऐसी बात न करें। यो तुलना नही करनी चाहिए, यह ठीक नही। हमारे गुरुजी ने श्री शकर भगवत्पाद के बारे मे बहुत-सी बाते बतायी हैं। वे विश्ववन्द्य हैं। आठ वर्ष की आयु मे चारो वेदो के पारगत और बारह की आयु मे सर्वशास्त्रो के ज्ञाता, सोलह मे भाष्यो की रचना करनेवाले वे ज्ञान-भण्डारी जगद्वन्द्य हैं। युग-युगान्तरो मे लोकोद्धार के कार्य को सम्पन्न करने के लिए ऐसे महात्मा जन्म धारण करते हैं। हम साधारण व्यक्तियो के साथ ऐसे महान् ज्ञानी की तुलना हो ही नही सकती। इतना ही नही, तुलना करना बिलकुल ही अनुचित है।" कहकर शान्तला ने बेहद बढा-चढाकर प्रशसा करनेवाले पुजारी को प्रशसा करने से रोक दिया।

छोटे मुँह मे कितनी बडी बात! पुजारी को मालूम हो गया था कि अम्माजी सगीत और नृत्य मे भी निष्णात हैं। अत उसने रात की पूजा के समय प्रार्थना की कि सगीत और नृत्य की सेवा देवी के समक्ष हो, जिससे देवी शारदा भी सन्तुष्ट हो। शान्तला ने सगीत और नृत्य की सेवा देवी को अर्पित भी की, बडी श्रद्धा और भक्ति के साथ। उस दिन लाल चपक पुष्पो की माला से देवी की मूर्ति सुशोभित थी। पूजा, सगीत-सेवा और नृत्य-सेवा के बाद आरती उतारी गयी। ठीक आरती उतारते समय देवी की दक्षिण भुजा पर से वह माला खिसकी। पुजारी ने उसे उठाया। माला को ज्यो-का-त्यो बाँधा। उसे लाया। अम्माजी से—"यह देवी का प्रसाद है, सेवा से सन्तुष्ट होकर देवी ने यह आपको दिया है। यह केवल मेरे

सन्तोष का प्रतीक मात्र नही, बल्कि यह सन्तोष एक नित्य सत्य हो जाये—इसको यह सूचना है।" कहकर निस्संकोच भाव से वह माला पुजारी ने शान्तला के गले मे पहना दी।

वे लोग वहाँ से पूर्व-निश्चय के अनुसार रास्ते मे जहाँ-जहाँ ठहरने की व्यवस्था की गयी थी वहाँ ठहरते हुए, आराम से आगे बढे। सुख से रास्ता पार करते हुए एक सप्ताह के बाद वे सब सोसेऊरु पहुँचे।

वहाँ उनका हार्दिक स्वागत हुआ। माचिकब्बे के सारे सन्देह दूर हो गये। खुद रेविमय्या और गोक ही इनकी व्यवस्था के काम पर नियुक्त थे। सूर्यास्त के पहले वे सोसेऊरु पहुँचे थे। सब लोग थोडे-बहुत थके हुए-से लग रहे थे। पहाडी प्रदेश के ऊबड-खाबड और ऊँची-नीची उतार-चढावोवाले रास्ते पर गाडियो के हिचकोले खाने के कारण थके होने से किसी को कुछ खाने-पीने की इच्छा नहीं थी। फिर भी थोडे मे सब समाप्त कर सब लोग आराम करने लगे।

दूसरे दिन सुबह राजमहल से हेग्गडती माचिकब्बे को ले जाने के लिए एक पालकी आयी। माँ माचिकब्बे बेटी शान्तला को साथ ले जाना चाहती थी। इस-लिए शीघ्र चलने को तैयार होने के लिए कहा।

शान्तला ने कहा "माँ, मैं अब नही जाऊँगी। आज मेरा नया पाठ शुरू होगा।"

"अगर युवरानीजी पूछें तो मैं क्या जवाब दूँ?"

"युवरानी ने तो मुझको देखा ही नही। वे क्यो मेरे बारे मे पूछेंगी? आप लोग बडे हैं। मेरा वहाँ क्या काम है?" शान्तला ने बडे अनुभवी की तरह कहा।

माचिकब्बे अकेली ही गयी। बडी आत्मीयता से युवरानी ने हेग्गडती का स्वागत किया। कुशल प्रश्न के बाद कहा, "सभी को राजमहल में ठहराने की व्यवस्था स्थानाभाव के कारण न हो सकी। अन्यथा न समझें। इसीलिए राज-महल से बाहर ही सबके लिए व्यवस्था की गयी है। हमारे प्रभु को बलिपुर के हेग्गडेजी के विषय मे बहुत ही आदर-भाव है। उनके बारे में सदा बात करते रहते हैं। रेविमय्या, जो आपके यहाँ निमन्त्रणपत्र दे आया था वह बारम्बार हेग्गडतीजी की उदारता के विषय में कहता ही रहता है। इतना ही नहीं, अम्माजी के बारे में भी कहता रहता है। जब वह अम्माजी के बारे मे कहने लगता

है तब उसकी उमग और उत्साह देखते ही बनता है। आप लोग आये, हमे इससे बहुत आनन्द हुआ। यदि आप लोगो के ठहरने की व्यवस्था मे कोई असुविधा हो तो बिना सकोच के कहला भेजे। वहाँ सब सुविधाएँ हैं न ?"

"सब हैं। ऐसे अवसर पर कुछ बातो मे यदि कमियाँ रह भी जाती हैं तो उनके बारे मे सोचना ठीक भी नही, उचित भी नही।"

"फिर भी राजघराने के लोगो को कर्तव्य से लापरवाह नही होना चाहिए न ? जो भी यहाँ आते हैं वे सब राजघराने के अपने हैं। सभी का शुभ आशीष राजकुमार को मिलना चाहिए। आये हुए अतिथियो को किसी तरह की असुविधा न हो ऐसी व्यवस्था करना और उनको सन्तुष्ट रखना हमारा कर्तव्य है। तभी उनसे हृदयपूर्वक आशीर्वाद मिलेगा। है न ? सुविधाओ की कमी से असन्तुष्ट अतिथियो के मन से वह आशीर्वाद न मिल सकेगा। यह हमारा-आपका प्रथम मिलन है। यह भविष्य की आत्मीयता के विकास का प्रथम चरण है, नान्दी है। क्योकि प्रजाजन, अधिकारी वर्ग, और उनके परिवार के लोग—इन सबकी आत्मीयता ही राजघराने का रक्षाकवच है। इसीलिए इस मागलिक अवसर पर सबकी आत्मीयता प्राप्त करने के विचार से ऐसे सभी लोगो को निमन्त्रित किया है।"

माचिकब्बे मौन होकर सब सुनती रही। युवरानी ने बोलना बन्द किया तो भी वे मौन ही रही। तब फिर युवरानी ने पूछा, "मेरा कहना ठीक है न ?"

"मैं एक साधारण हेग्गडती, युवरानीजी से क्या कहूँ ?"

"महारानी, युवरानी, दण्डनायक की स्त्री, हेग्गडती, ये सब शब्द निमित्तमात्र है, केवल कार्य निर्वहण के कारण उन शब्दो का प्रयोग होता है। राज्य-सचालन के लिए अधिकारी, कर्मचारी वर्ग आदि सब उपाधियाँ है। चौबीसो घण्टे कोई अधिकारी नही, कोई नौकर नही। हम सब मानव हैं। जगदीश्वर की सन्तान हैं। सब समान हैं। यदि हम यह समझेगे तो आत्मीयता सुदृढ़ होती है। आत्मीयता के बिना केवल दिखावे की विनय घातक होती है। इसलिए आपको हमसे किसी तरह का सकोच नही करना चाहिए। निस्सकोच खुले दिल से सुविधा-असुविधा के बारे मे कहे। हमारे आपसी व्यवहार मे किसी तरह का सकोच न हो।"

"ऐसा ही होगा, युवरानीजी।"

फिर मौन छा गया। माचिकब्बे कुछ कहना चाह रही थी, परन्तु सकोच के कारण असमजस मे पडी रही।

"हेग्गडतीजी क्या सोच रही हैं ?"

"कुछ नही, यही सोच रही थी और पूछना चाहती थी कि इस उपनयन के शुभ-अवसर पर महाराज पधारेंगे ही न ? परन्तु मन मे यह हिचकिचाहट हो रही थी कि पूछूं या न पूछूं। यह शका हो रही थी कि यह पूछा जा सकता है या

नहीं।"

"कोई बुरी बात हो तो कहने-पूछने में संकोच होना चाहिए। ऐसी बात पूछना भी नही चाहिए। अच्छी बात के कहने-पूछने मे संकोच करने की क्या जरूरत है? महाराज का स्वास्थ्य अच्छा नही है। अत वे आ न सकेंगे। हम उपनयन के बाद उपनीत वटु के साथ दोरसमुद्र जाएँगे और उनका आशीर्वाद लेंगे। वे बडे है, इस अवसर पर उनकी अनुपस्थिति हमे खटक रही है।"

"इस उपनयन सस्कार को दोरसमुद्र मे भी तो सम्पन्न किया जा सकता था?"

"हमने अपने परिवार के इष्टदेव की मनौती मानी थी। अप्पाजी का स्वास्थ्य शुरू से ही अच्छा नही रहा करता। बीच-बीच मे उनका स्वास्थ्य बिगडता ही रहता है। इष्टदेव की उस मनौती को यही समर्पित करने के विचार से इस मागलिक कार्य को यही सम्पन्न करने का निश्चय हमने किया। इन सारी बातो से महाराज अवगत हैं।"

ठीक इसी मौके पर नौकरानी बोम्मले ने आकर प्रणाम किया।

युवरानी ने पूछा, "क्या है?"

जवाब मे उसने कहा, "दण्डनायक की पत्नी चामव्वाजी, और उनकी पुत्रियाँ दर्शन करने आयी हैं।"

युवरानी कुछ असमजस मे पडी, कहा, "हेग्गडतीजी अब क्या करें? न कहे तो वे असन्तुष्ट होगी, अगर हाँ कह तो हमे अपनी बातचीत यहीं खत्म करनी पडेगी।"

माचिकब्बे ने कहा, "मैं फिर कभी आकर दर्शन कर सकती हूँ। वे बेचारी इतने उत्साह से आयी हैं तो उन्हे बुलवा लीजिए। मुझे आज्ञा दें।"

"आप भी रहिए, उन्हे आने दो।" युवरानी एचलदेवी ने कहा, "बोम्मले! उन्हे बुला लाओ।"

थोडी ही देर मे दण्डनायक की पत्नी चामव्वा अपनी तीनो बेटियो—पद्मलदेवी, चामलदेवी, बोप्पदेवी के साथ आयी। अपना बडप्पन दिखाने के लिए उन लोगो ने आभूषणो से अपने शरीरो को लाद रखा था, ऐसा लगता था कि वे युवरानी को मानो लजाना चाह रही हो। माचिकब्बे स्वय को उनके सामने देखकर लजा गयी। उसके पास आभूषणो की कमी न थी। वे इस दण्डनायक की पत्नी से भी अधिक जेवरों से लदकर आ सकती थी। परन्तु युवरानीजी के सामने आडम्बरपूर्ण सजावट और दिखावा उसे अनावश्यक लग रहा था। वह अपनी हस्ती-हैसियत के अनुरूप साधारण ढंग से सजकर आयी थी।

युवरानी एचलदेवी ने आदर के साथ कहा, "आइए, चामव्वाजी, विराजिये। लडकियाँ बहुत तेजी से बढ़ती जाती हैं, देखिए, अभी पिछले साल यह

पद्मला कितनी छोटी थी, अब तो यह दुलहन-सी लगने लगी है। खडी क्यों हैं। बैठिए न ? आप बलिपुर की हेग्गडती माचिकब्बेजी हैं। आप कल ही यहाँ आयी हैं।"

माचिकब्बे सर झुकाकर मुस्कुरायी।

चामव्वा उससे हटकर कुछ दूर पर बैठ गयी। बच्चियाँ भी माँ से सटकर बगल मे बैठ गयी।

"कब आप लोगो का आगमन हुआ ? यात्रा सुखमय रही ? वहाँ से कब रवाना हुईं। दण्डनायक मरियाने जी आये हैं न ? आपके बडे भाई आयेंगे या नही, मालूम नही पडा। यहाँ आपके मुकाम पर व्यवस्था सब ठीक है न ?" युवरानी जी ने पूछा।

"परसो वहाँ से रवाना हुए। पहुँचते-पहुँचते रात हो गयी थी, कल। यहाँ पहुँचकर हमने सोचा कि ठहरने के लिए राजमहल मे ही व्यवस्था होगी, इस-लिए हम सीधे यही आये। उस समय यहाँ जो सेवक काम पर तैनात था उसने हमे वहाँ ठहराया जहाँ अब हम ठहरे हैं।"

"वहाँ सब सुविधाएँ है न ?' युवरानी ने फिर पूछा।

"हैं, काम चल जाता है। राजमहल मे जो सुविधाएँ प्राप्त हो सकती हैं, वे वहाँ कैसे मिल सकेंगी। खैर ऐसे मौके पर छोटी-मोटी बातो की ओर ध्यान नही देना चाहिए।"

"ठीक है। ऐसे अवसरो पर हम भी ऐसी सहानुभूति एव सहयोग की अपेक्षा करते है। क्या, बडी बेटी के लिए कही योग्य वर की तलाश कर रहे है ?" कहती हुई युवरानी एचलदेवी पद्मला की ओर देखती रही।

युवरानी का यह सवाल चामव्वा को जँचा नही। फिर भी उसने कहा, "उसके बारे मे चिन्ता करने की मुझे क्या जरूरत है युवरानीजी ? हमारे दण्डनायकजी का यह विचार है कि वे राजघराने के साले है। महाराजा भी उन्हे उसी तरह मानते है। इसलिए अपनी हैसियत के मुताबिक योग्य वर खोजने करने का विचार कर रहे हैं। उनके मन मे क्या है, सो तो मैं नही जानती।" कह-कर चामव्वे ने बात टाल दी।

"ठीक ही तो है। दण्डनायक सचमुच भाग्यवान हैं। इसीलिए महारानी केलेयब्बरसि जी ने उन्हे अपना सगा भाई समझकर खुद विवाह कराया। वह विवाह हमारे विवाह से भी अधिक धूमधाम से सम्पन्न हुआ—ऐसा सुनते हैं।"

'उनकी-सी वह उदारता अन्यत्र कहाँ देखने को मिलेगी, आप ही कहिए युवरानी जी ? इस अवसर पर वे रहती तो कितना अच्छा होता ?"

"वह सौभाग्य हमारे भाग्य मे नही है। रहने दीजिए, यह बताइए महाराज का स्वास्थ्य अब कैसा है ?"

"सुना है कि अब कुछ आराम है।"

"उनके पधारने की बात के बारे में दण्डनायक को मालूम होगा ?"

"शायद उनको मालूम नहीं होगा। अगर ऐसा होता तो वे मुझे बताते। परन्तु मेरे बड़े भाई के वहीं ठहरे रहने के कारण ऐसा लगता है कि वे महाराजा के साथ शायद आयेंगे। उनसे बातचीत जो हुई उससे यह निश्चित रूप से मालूम न होने पर भी इस तरह सोचने की गुंजायश रही।"

युवरानी ने कहा, "यदि महाराज आ जायँ तो सबको आनन्द होगा। आज सुबह ही सुबह आकर आपने एक बहुत ही आनन्ददायक समाचार सुनाया।"

अब तक हेग्गडती माचिकब्बे यह सम्भाषण मौन सुनती बैठी रही। बीच-बीच में युवरानी उनकी ओर देखती रही। उनकी दृष्टि में कुछ प्रश्न करने के-से भाव लग रहे थे। परन्तु माचिकब्बे उस भाव को नहीं समझ सकी।

युवरानीजी ने जबसे माचिकब्बे का परिचय कराया तबसे चामव्वा ने अब तक उनकी ओर दृष्टि तक न फेरी थी।

इधर बच्ची बोप्पदेवी बैठी ही बैठी ऊँघने लगी थी। युवरानी ने उसे देखा और कहा, "बेचारी बच्चियों को आधी नींद में ही जगाकर सजाकर लायी हैं— ऐसा प्रतीत होता है। यात्रा की थकावट के कारण उनकी नींद पूरी नहीं हुई। देखिए, ऊँघ रही हैं। बच्चियों को ले जाकर उन्हें आराम करने दीजिए। यों ही उन्हें क्यों तकलीफ हो ?"

'अगर बच्चियों को साथ न लाऊँ तो आप अन्यथा समझेंगी, यह सोचकर उन्हें जगाकर लायी।" चामव्वा ने कहा।

"ऐसी बातों में अन्यथा समझने की क्या बात ? आखिर बच्चियाँ ही तो हैं। अब देखिए, हमारी हेग्गडतीजी अपनी लड़की को साथ नहीं लायी। क्या इसलिए हम आक्षेप करेंगी ?"

चामव्वा ने कहा, "शायद इकलौती बेटी होगी, बहुत प्रेम से पाला होगा।"

हेग्गडती माचिकब्बे को कुछ बुरा लगा। मगर उन्होंने भाव प्रकट नहीं किया। फिर बोली, "हमारा उतना ही भाग्य है जितना भगवान ने दिया है।" और चुप रही।

चामव्वा ने पूछा, "बेटी की क्या उम्र है ?"

"दसवाँ चल रहा है।" हेग्गडती ने कहा।

"इतना ही। तब तो हमारी चामला की समवयस्का ही है। इसलिए उसे छोड़कर अकेली आयी हैं। मेरी बच्चियों में दो-दो साल का अन्तर है। इनके साथ अगर भगवान् ने एक लड़का दिया होता तो कितनी तृप्त रहती।"

युवरानी ने पूछा, "चामव्वाजी के दो लड़के हैं न ? वे आपके बच्चे ही तो हैं।"

"एक तरह से वह ठीक है। भगवान् ने हमे बाँटकर दिया है, मेरी बडी बहन को लडके-ही-लडके दिये और मुझे दी लडकियाँ।"

"परन्तु भगवान् ने आपको एक अधिक भी दिया है न ?"

यह सुनकर चामव्वा ने कहा, "अगर वह एक लडका होता तो कितना अच्छा होता !"

"नही, किसने कहा। परन्तु यह तो सब देनेवाले भगवान् की इच्छा है। यह समझकर हमे तृप्त होना चाहिए।" युवरानी ने कहा।

चामव्वा ने कहा, "एक तरह से मुझमे और युवरानी मे एक तरह की समानता है।" यह बात हेग्गडती माचिकब्बे को ठीक नही लगी।

युवरानी ने पूछा, "वह साम्य क्या है ?"

"मेरी तीन लडकियाँ और युवरानीजी के तीन लडके।"

युवरानी ने कहा, "भगवान् के सन्तुलन की यही रीति है, ससार मे लडके-लडकियो की सख्या मे सन्तुलन हो, यही भगवान् की इच्छा है। एक पुरुष के लिए एक स्त्री।"

"मेरे मन की अभिलाषा को युवरानी जी ने प्रकारान्तर से व्यक्त किया है।"

"मैने किसी के मन की अभिलाषा या इच्छा की बात नही कही। मैंने यही कहा कि यदि ऐसा हो तो अच्छा है, एक साधारण नियम की बात कही। अमुक लडके के लिए अमुक लडकी हो—यह तो मैने कहा नही।" युवरानी ने स्पष्ट किया।

चामव्वा के चेहरे पर निराशा की एक रेखा दौड गयी।

इतने मे बच्ची बोप्पदेवी को नीद आ गयी थी। उसे देखकर युवरानी ने नौकरानी बोम्मले को आवाज देकर बुलाया और कहा, "पालकी लाने को कहो, देखो, बेचारी यह बच्ची सो गयी है। चामव्वा को ले जाकर उनके मुकाम पर छोड आवे।"

थोडी ही देर मे नौकरानी ने खबर दी, "पालकी तैयार है।"

युवरानी ने नौकरानी से कहा, "बच्ची को गोद मे लो।" फिर एक सोने की डिबिया मे रखे हल्दी-कुकुम से चामव्वा का सत्कार किया। जगी हुई दोनो लडकियो को भी कुकुम दिया, बाद मे उनके सिर पर हाथ फेरती हुई, "अच्छा, अब आप लोग जाकर आराम करे।" कहकर उन्हें विदा किया।

माचिकब्बे भी जाने को तैयार होकर उठ खडी हुई।

"इतनी जल्दी क्यो ? अभी आपकी लडकी का पाठ-प्रवचन समाप्त नही हुआ होगा। अभी और बैठिए फिर जाइएगा।" कहती हुई युवरानी बैठ गयी।

माचिकब्बे भी युवरानी की ओर आश्चर्य से देखती हुई बैठ गयी।

युवरानी ने कहा, "आपको आश्चर्य करने की जरूरत नही। रेविमय्या ने

सारी बातें बतायी है। सचमुच अम्माजी को देखने की मेरी बडी चाह है। मेरा मन उसे देखने के लिए तडप रहा है। परन्तु औचित्य के अनुरूप चलना ही ठीक है। राजघराने मे रहकर हमने यह पाठ सीखा है, हेग्गडती जी। अम्माजी के बारे मे सुनकर हमारे मन मे एक तरह की आत्मीयता उमड़ आयी है। आत्मीयता को अकुरित और पल्लवित करना आपका ही काम है।"

"बहुत बडी बात कही आपने। हम इस राजघराने के सेवक हैं, युवरानी जी। हमारा सर्वस्व इसके लिए समर्पित है।"

इसी समय एक नौकरानी ने आकर इशारे से ही सूचना दी।

"सभी तैयार हैं, कालब्बे ?"

नौकरानी ने इशारे से 'हाँ' कह दिया।

"चलिए, हेग्गडतीजी, अभी हमारा प्रात कालीन उपाहार नही हुआ है।"

"मेरा उपाहार अभी हुआ है। आप पधारिए। मुझे आज्ञा दीजिएगा।"

"आत्मीयता की भावना का यह प्रत्युत्तर नही है।"

इसके बाद दोनो उठी। माचिकब्बे ने युवरानी का अनुसरण किया।

शालिवाहन शक स १०१४ के आगीरस सवत्सर शिशिर ऋतु माघमास शुक्ल सप्तमी गुरुवार के दिन शुभ मेष लग्न के [illegible]टक नवाश, गुरु त्रिशांश मे गुरु लग्न मुहूर्त मे अश्विनी नक्षत्र के चौथे चरण में रहते कुमार बल्लाल का उपनयन सस्कार सम्पन्न हुआ। समारम्भ बडी [illegible] से शास्त्रोक्त रीति से सम्पन्न किया गया। महाराजा अस्वस्थता के कारण आ न सके थे। उन्हे उस स्थिति में छोडकर न आ सकने के कारण प्रधानमन्त्री गगाराज भी नही आ सके। शेष सभी मन्त्री, दण्डनायक आदि उपस्थित रहे। कुछ प्रमुख हेग्गडे जन भी आये थे। राज्य के प्रमुख वृद्ध व्यावहारिक और प्रमुख नागरिक आदि सभी आये थे।

अब हाल मे महाराज के प्रधान मुकाम वेलापुरी और दोरसमुद्र ही थे। अत समस्त राज-काज वही से सचालित होता था। इसलिए सोसेऊरु का प्राधान्य पहले से कम था। परन्तु इस उपनयन समारम्भ के कारण सब तरह से सुसज्जित किया गया था। और वहाँ के सारे भवन अतिथिगृह आदि लीप-पोतकर बन्दनवार आदि से अलकृत किये गये थे। मुख्य-मुख्य राजपथ एव रास्ते गोबर से लीप-पोतकर विविध रगो की रगोली आदि से सजाये गये थे। प्रत्येक घर सफेदी आदि करके साफ-सुथरा किया गया था। सारा शहर एक परिवार का-सा होकर इस समारोह

में सम्मिलित हुआ था।

युवराज एरेयग प्रभु के नेतृत्व मे समारोह यथाविधि सम्पन्न हुआ। परन्तु इस समस्त समारोह के सचालन की सूत्रधारिणी वास्तव मे युवरानी एचलदेवी ही थीं। उन्हीं के हाथो सारा कार्य सचालित होकर सम्पन्न हुआ। इनके साथ युवराज और युवरानी के विश्वस्त व्यक्ति चिण्णम दण्डनाथ और उसकी पत्नी श्रीमती चन्दलदेवी ने रात-दिन एक करके युवराज की और युवरानी के आदेशानुसार बहुत सतर्क होकर सारा कार्य निभाया था। चिण्णम दण्डनाथ से ऊँचे स्थान पर रहने पर भी मरियाने दण्डनायक तथा उनके परिवार के लोग केवल अतिथि ही बनकर रहे और कार्य-कलाप समाप्त होने पर घर लौट गये। अपने से कम- हैसियत के चिण्णम दण्डनाथ पर काम-काज की जिम्मेदारी डाली गयी थी इससे उन्हे थोडा-बहुत असमाधान भी हुआ हो—तो कोई आश्चर्य न था। फिर भी किसी तरह के असमाधान अथवा मन-मुटाव को अवकाश ही नहीं मिला।

चामव्वा को तो पूरा असन्तोष रहा। उसकी अभिलाषा को प्रोत्साहन मिल सके, ऐसी कोई बात युवरानीजी के मुँह से नही निकली। बदले मे उनकी बातो मे कुछ उदासीनता ही प्रकट हो रही थी। असमाधान क्यो होना चाहिए—यह बात चामव्वा की समझ से बाहर की थी। उसने क्या चाहा था सो तो नही बताया था। इस हालत मे इनकार की भावना के भान होने की कौन-सी बात हो गयी थी। स्वार्थी मन इन बातो को नही समझता—यो ही क्रोधाविष्ट हो जाता है। उसने सोचा था कि युवरानी के अन्त पुर मे स्वतन्त्र होकर खुलकर मिलने-जुलने और सबसे बाते करने का अवसर मिलेगा। ऐसा सोचना गलत भी नही था क्योकि दोरसमुद्र मे उसे इस तरह की स्वतन्त्रता थी। वह स्वातन्त्र्य यहाँ भी रहेगा—ऐसा सोचना भूल तो नही थी। परन्तु चामव्वा के इस मानसिक क्षोभ का कारण यह था कि अपने से कम हैसियतवाली चिण्णम दण्डनायक की पत्नी चन्दलदेवी को वह स्वातन्त्र्य मिला था जो इसे मिलना चाहिए था, और एक साधारण हेग्गडती को अपने से अधिक स्वतन्त्रता के साथ सबसे मिलने-जुलने का अवसर दिया गया था। इससे वह अन्दर-ही-अन्दर कुढ रही थी। परन्तु अन्दर की इस कुढन को प्रकट होने न दिया। दूर भविष्य की आशा-अभिलाषा उसके मन ही मे सुप्त पडी थी। उसे जागृत कर दूर भगाना किससे सम्भव हो सका था? अपने कोख की तीनो लडकियो का युवरानी के तीनो लडको से परिणय कराने की अभिलाषा को पूरा करने के लिए उपयुक्त प्रभावशाली रिश्ते-नातो के होते हुए, इस कार्य को किसी भी तरह से साधने की इस महत्त्वाकाक्षा को प्रकट करने की मूर्खता वह क्यों करेगी?

उपनयन-समारम्भ के समाप्त होने के बाद एक दिन अन्त पुर मे शान्तला के सगीत और नृत्य का कार्यक्रम रहा। इस समारम्भ मे केवल स्त्रियाँ ही उपस्थित रही। युवरानी एचलदेवी इस सगीत एवं नृत्य को देखकर बहुत प्रभावित हुईं।

बालक बिट्टिदेव और उदयादित्य तो थे ही। इन बालकों को अग्रहारपुर में रहने के लिए मनाही नहीं थी, क्योंकि वे अभी छोटे थे। बटु बल्लाल अभी उपनीत थे, इसलिए उनके लिए खास स्थान था। सभी ने गाना सुना, नृत्य देखा। सभी को बहुत पसन्द आया। नृत्य के बाद शान्तला अपनी माँ के पास आकर बैठ गयी।

युवरानी ने सहज ही चामव्वा से पूछा, "क्यों चामव्वाजी, आपने अपनी पुत्रियों को नृत्य-संगीत आदि सिखलाया है?"

उन्होंने उत्तर दिया, "नहीं, दण्डनायकजी इन विद्याओं को प्रोत्साहन नहीं देते। उनका मत है कि हमारे जैसे हैसियतवालों को इन विद्याओं मे लगना नहीं चाहिए।"

युवरानी ने कहा, "यदि आपकी इच्छा हो तो कहिए, मैं युवराज से ही दण्डनायक जी को कहलवाऊँगी।"

उत्तर मे चामव्वा ने कहा, "मैं ही कहूँगी। युवरानी जी का आदेश है कि हमारी बच्चियों को संगीत और नृत्य सिखावे।"

"मेरी इच्छा आपकी अनिच्छा हो सकती है।"

"न न, आपकी इच्छा ही मेरी इच्छा है।"

"विद्या सिखाने के लिए हमारे नाम का उपयोग करें तो हमें कोई एतराज नहीं।"

"आपकी सम्मति के बिना आपके नाम का उपयोग करें तो जो विश्वास आपने हम पर रखा है उसके लिए हम अयोग्य ठहरेंगे और आपके उस विश्वास को खो बैठेंगे। यह मैं अच्छी तरह समझती हूँ।" चामव्वा ने कहा।

"यही विश्वास राजघराने का भाग्य है। हमारे राज्य के अधिकारी-वर्ग पर जो विश्वास है वह यदि विद्रोह मे परिणत हो जाये तब वह राष्ट्रद्रोह मे बदल जायेगा क्योंकि राजद्रोह प्रजाद्रोह मे परिवर्तित हो जायेगा।"

"राज-काज के सभी पहलुओं को देख-समझकर उसी मे मग्न दण्डनायकजी कभी-कभी यह बात कहते ही रहते हैं युवरानीजी, कि श्रीमुनिजी के आदेशानुसार, अंकुरित सल वश के आश्रम मे इस तरह का विश्वासघाती कोई नहीं है, इससे होय्सल राज्य का विस्तार होगा और इसके साथ यहाँ की प्रजा सुख-शान्ति से रहेगी, इसमें कोई शका नहीं है।" चामव्वा ने कहा।

"ऐसे लोग हमारे साथ है—यह हमारा सौभाग्य है। लोगों के इस विश्वास की रक्षा करना हमारा भी कर्तव्य है। यह एक-दूसरे के पूरक हैं। अधिकार द्वारा या धन के द्वारा विश्वास की रक्षा करना सम्भव नहीं। अब राजभवन मे सम्पन्न इस मांगलिक कार्य के अवसर पर सब मिले, किसी भेदभाव के बिना आपस में मिल-जुलकर रहने और एक-दूसरे को समझने का एक अच्छा मौका प्राप्त हुआ—यह एक बहुत अच्छा उपकार हुआ। हमारे पूर्वजों ने हम स्त्रियों पर

एक बहुत बडी जिम्मेदारी थोपी है। 'कार्येषु मत्री' कहकर हम वह उत्तरदायित्व सौपा है कि पुरुष लोगो को समयोचित रीति से उपयुक्त सलाह देती हुई उन्हे सन्मार्ग पर चलने मे सहयोग देती रहे। वे सन्मार्ग मे डिगे नही—यह देखना हम स्त्रियो की जिम्मेदारी है। इसलिए स्त्री को विद्या-विनय सम्पन्न और सुसस्कृत होना आवश्यक है। इस दृष्टि मे हमारी हेग्गडती माचिकब्बे ने समुचित कार्य किया है—यह हमारी धारणा है। उनकी बेटी ने इस छोटी उम्र मे जो सीखा है वह हमे चकित कर देता है। इस शुभ समारोह पर आयी परन्तु समय व्यर्थ न हो और पाठ-प्रवचन निर्बाध गति मे चले, यह सोचकर शान्तला के गुरुओ को भी साथ लायी हैं। इससे हम उन लोगो की श्रद्धा और विद्यार्जन की आसक्ति की थाह जान सकते है। हमे हमारी हेग्गडती जी के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।" यो कहती हुई माँ के पास बैठी शान्तला को बुलाया, "अम्माजी, इधर आओ।"

युवरानी के बुलाने पर शान्तला उठकर पास तक जाकर थोडी दूर बडी गम्भीरता के साथ खडी हो गयी।

"दूर क्यो खडी हो। पास आओ, अम्माजी" कहती हुई युवरानी ने हाथ आगे बढाये। शान्तला बहुत गम्भीर भाव से ज्यो-की-त्यो खडी ही रही। पास नही गयी। तब युवरानी ने ही खुद झुककर अपने हाथो से उसके हाथो को पकडकर उसे अपने पास खीच अपने हाथो से उसके कोमल कपोलो को सहलाकर नजर उतारते हुए, "अम्माजी, तुमने बहुत सुन्दर गाया और नृत्य किया। प्रेक्षक और श्रोताओ की नज़र लग गयी होगी। ईश्वर करे कि तुम दीर्घायु हो और तुम्हारी प्रतिभा दिन दूनी-रात चौगुनी बढे। यही ईश्वर से मेरी बिनती है।" कहकर शान्तला को अपनी बाँहो मे कसकर आलिंगन किया। शान्तला हक्की-बक्की रह गयी। माँ की ओर देखने लगी तो माँ ने इशारे से बताया कि घबडाने की जरूरत नही। माँ का इशारा पाकर वह सहज भाव से युवरानी के बाँहो मे बँधी रही।

युवरानी ने उसे उठाकर अपनी गोद मे बैठा लिया और चन्दलदेवी से कहा, "कल हमने जो सामान चुनकर रखा था उसे उठवा लाइये।"

चन्दलदेवी दासी बोम्मले के साथ गयी और शीघ्र ही लौट आयी। बोम्मले दासी ने सन्दूकची आगे बढायी। चन्दलदेवी ने उसे खोलकर उसमे रखी हीरे-जडी चमकती हुई माला निकाली।

युवरानी ने कहा, "इसे इस नन्ही सरस्वती को पहना दीजिए।"

शान्तला युवरानी की गोद से उछलकर दूर खडी हो गयी और बोली, "अभी यह मुझे नही चाहिए।"

युवरानी यह सुनकर चकित हुईं। राजकुमार बल्लाल और बिट्टिदेव भी चकित होकर शान्तला की ओर देखने लगे। माचिकब्बे सदिग्ध अवस्था मे पड गयी।

उन्होने सिर झुका लिया।

चामव्वा को गुस्सा आ गया। कहने लगी, "युवरानीजी दें और उसे इनकार ! बित्ते-भर की लडकी है, ऐंठन दिखाती है। यह भूल गयी कि युवरानी के सामने बैठी है !"

शान्तला चामव्वा की ओर मुँह करके बोली, "क्षमा कीजिएगा। मैंने गर्व से इनकार नही किया। विद्या सीखने के बाद, गुरुदक्षिणा देकर विधिपूर्वक गुरु से आज्ञा ले और आशीर्वाद लेकर गाना और नृत्य मार्वजनिको के सामने प्रदर्शित करने के बाद ही इस तरह के पुरस्कार लेने का विधान है।" इतना कहकर वह सहजभाव से अपनी माँ के पास जाकर बैठ गयी।

शान्तला की बात सुनकर चामव्वा को गुस्सा चढ़ आया, वह बडबडाने लगी।

चामव्वा की बेटी पद्मला की आँखे चन्दला के हाथ मे चमक रही माला पर लगी थी। अनजाने ही उसके हाथ अपने गले की ओर गये।

युवरानी ने कहा, "यह बात हमे मालूम नही थी। इस हार को शान्तला की धरोहर मानकर एक जगह सुरक्षित रखवाने की व्यवस्था कीजिएगा। पुरस्कार लेने की अनुमति उसके गुरु जब उसे दें यह उसको देंगे।"

माला पेटी मे रखी गयी और बोम्मले उसे ले गयी।

"हेग्गडती माचिकब्बेजी, आपकी बेटी ने हमारे प्रेमोपहार को लेने से इनकार किया तो आपने कुछ हैरान होकर सिर झुका दिया था। शायद आपने समझा था कि अम्माजी की बात से हम असतुष्ट हुए होंगे और इसीलिए सिर नीचा कर लिया। इतनी छोटी उम्र मे यह सयम ! इतनी निष्ठा ! इस निष्ठा से वह आगे चलकर कितने महत्त्वपूर्ण कार्य को साधेगी—यह हम कैसे जानें ? ऐसी पुत्री की माँ होकर आपको सिर नीचा करने का कोई कारण ही नही। आप लोग आये, हमे बडा आनन्द हुआ। फिर आप लोग कब वापसी यात्रा करेंगे—इस बात की सूचना पहले दें तो उसके लिए समुचित व्यवस्था कर देंगे। यह बात केवल हेग्गडती माचिकब्बे के लिए ही हमने नही कही, यह सबके लिए हमारी सलाह है। बोम्मला ! जाकर हल्दी-कुकुम, पान-फल सबको दो।" युवरानी ने कहा।

मगल द्रव्य के साथ सब लोग वहाँ से चली गयी। चन्दलदेवी अकेली वहाँ रह गयी।

युवरानी बोली, "देखा चन्दलाजी, शान्तला कैसी अच्छी बच्ची है ! बच्चे हो तो ऐसे।"

"राजकुमार किस बात मे कम है ? युवरानीजी !"

"ऐसी लडकी का पाणिग्रहण करें तो उनके साहस-पराक्रमो के लिए अच्छा मार्ग-दर्शन मिलेगा।"

"पर करें क्या ? वह एक साधारण हेग्गडती की गर्भ-प्रसूता है। यदि ऐसा न

होता "

"हम इस दिशा मे नही सोच रहे है। हम खुद कहे तब भी हमारी बात मान्य हो सकेगी या नही, यह हम नही जानती। इस कन्या का पाणिग्रहण करने लायक भाग्यवान् कौन जन्मा है—यही सोच रहे है।"

"अभी उसके लिए काफी समय है न ?"

"यह ठीक है, अभी उसके लिए काफी समय है। फिर भी अभी से इस बारे मे सोचना अच्छा है।"

"वह अपने माँ-बाप की इकलौती बेटी है। क्या वे उसके लिए चिन्ता नही करते होगे ? जरूर सोचते होगे। युवरानी इसके लिए सिर क्यो खपा रही हैं ?"

"आपका कहना ठीक है। क्या यह सहज बात नही कि श्रेष्ठ वस्तु उसके योग्य उत्तम स्थान पर ही हो—यह चाहना स्वाभाविक ही तो है। यदि इस अम्माजी की योग्यता के अनुरूप योग्य वर प्राप्त न कर सके तो तब हमे उनकी सहायता करना क्या गलत होगा ? राजमहल का परिवार केवल कोख के जन्मी सन्तान तक ही तो सीमित नही, आप सब हमारे ही परिवार के है, यह हमारी मान्यता है। है या नही ?"

"हाँ, यह हमारा सौभाग्य है।"

"यदि कल आप ही अपनी सन्तान के लिए राजघराने मे ही व्यवस्था कराने की इच्छा करें तो क्या हम नाही कर सकेंगे ? हमारा बेटा उदयादित्य और आपका पुत्र उदयादित्य—दोनो का जन्म एक ही दिन हुआ न ? हमारी आपस मे आत्मीयता के होने के कारण आपने अपने कुमार का भी वही नाम रखा न, जो हमने अपने बेटे का रखा। कल यदि आपकी पुत्री रविचन्द्रिका और उसकी बहन शान्तिनी के लिए योग्य वर ढूँढना पडे तब हमारे सहयोग का इनकार सम्भव हो सकेगा ?"

चन्दलदेवी कोई जवाब नही दे सकी। उसका मौन सम्मत्ति की सूचना था। इतने मे बोम्मले ने आकर बताया कि शान्ति जाग उठी है और हठपूर्वक रो रही है।" चन्दलदेवी और उसके साथ ही बोम्मले भी चली गयी।

अब वहाँ माँ और बच्चे ही रह गये। अब तक वे मौन थे, यह चुप्पी असह्य हो उठी। छोटा उदयादित्य सो चुका था।

"माँ, हमारी शिक्षा पूरी हो गयी न ?" राजकुमार बल्लाल ने पूछा।

"हाँ तो, मैं भूल ही गयी थी। तुम लोग अभी तक यही हो ?" कहती हुई निद्रित उदयादित्य की पीठ सहलाती हुई युवरानी ने पूछा, "अप्पाजी, वह लडकी तुम्हे अच्छी लगी ?"

उत्तर मे बल्लाल ने पूछा, "कौन लडकी ? दण्डनायक की बडी लडकी ?"

युवरानी थोडी देर मौन हो उसकी ओर देखती रही, फिर मुस्कुराती हुई

पूछने लगी, "हाँ, बेटा, सुन्दर है न ?"

उसने अपने भाई की ओर देखा और सम्मतिसूचक दृष्टि से माँ को भी देखा।

"भले अप्पाजी ? मेरा पूछने का मतलब हेग्गडतीजी की लडकी शान्तला के बारे मे था। उसका गाना और नृत्य·· "

"वह सब अच्छा था। परन्तु उसे राजघरानेवालो के साथ कैसा बरतना चाहिए—सो कुछ भी नही मालूम है। खुद युवरानीजी ने जो पुरस्कार देना चाहा, उसे उसने इनकार किया—यह मुझे बरदाश्त नही हुआ। मैं गुस्से से जल उठा।"

"जलने की क्या जरूरत है ? वह कोई भिखारिन होती तो हाथ पसारकर ले लेती। वह भिखारिन नही। सत्कुल-प्रसूता है। अच्छे गुरु के पास शिक्षा पा रही है। मुझे आश्चर्य इस बात का हुआ कि वह लडकी इस छोटी उम्र मे कैसे इतनी औचित्य की भावना रखती है।" बिट्टिदेव ने ऐसे कहा मानो वह बहुत बडा अनुभवी हो।

"अगर तुमको अच्छी लगी तो उसे सिर पर उठाकर राजमहल के बाहरी मैदान मे नाचो। कौन मना करता है। मुझे तो ठीक नही लगी, वह अविनय की मूर्ति "

"अविनय ! न न, यह कैसा अज्ञान ? भैयाजी, उस अम्माजी की एक-एक बात बहुत स्पष्ट थी, बहुत गम्भीर और विनय से भरी।"

"मन मे चाह रही तो सब अच्छा।" बल्लाल ने कहा।

"हाँ, हाँ, चाह न हो तो सभी बुरा ही लगेगा।" बिट्टिदेव ने कहा।

बात को बढने न देने के उद्देश्य से युवरानी ने कहा, "तुम लोग आपस मे क्यो झगडते हो—सुदोपसुदो की तरह।"

"मैं तो सुदोपसुदो की तरह उस लडकी को चाहता नही।" बल्लाल कुमार ने कहा।

"अच्छा, अब इस बात को बन्द करो। जाओ, अपना-अपना काम करो।" युवरानी ने कहा।

बल्लाल कुमार यही चाहता था, वह वहाँ से चला गया।

"माँ, आप कुछ भी कहे। वह लडकी बहुत बुद्धिमान है, बहुत सयमी और विनयशील है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"हाँ बेटा ! हम भी तो यही कहती हैं। उसके माँ-बाप साधारण हेग्गडे-हेग्गडती न हुए होते तो कितना अच्छा होता !"

"माँ, कल हमारे गुरुजी ने पढाते समय एक बात कही। समस्त सृष्टि के सिरजनहार उस कारणभूत परात्पर सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की इच्छा के अनु-

सार ही समस्त कार्य चलते है। यदि उसकी इच्छा न हो तो एक तिनका भी नहीं हिल सकता। उस घर मे ही उस अम्माजी का जन्म यदि हुआ है तो वह भी उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर की इच्छा ही है न ? उसे छोटा या कम समझनेवाले हम कौन होते हैं ?"

"छोटा या कम नही समझ रही हूँ, अप्पाजी ! जैसे तुमने चाहा है वैसे ही हमने भी चाहा है, इसलिए उसके प्रति अनुकम्पा के भाव हमारे मन मे है। यदि वह कुछ और ऊँचे घराने मे जन्मी होती "

बीच मे ही बिट्टिदेव बोल उठा, "याने हमारा घराना ऊँचा है, यही है न आपका विचार ?"

"तुम्हारा मतलब है कि हमारा घराना ऊँचा नही ?" चकित होकर युवरानी ने पूछा।

"व्याहारिक दृष्टि से हमारा घराना अवश्य ऊँचा है। नही कौन कहता है ? परन्तु बडप्पन और जन्म इन दोनो का गठबन्धन उचित नही होगा, माँ। हमारे पूर्वज क्या थे ? हमारे पास राज्य कहाँ था ? हम भी तो साधारण पहाडी लोग थे न ? श्रीमुनिजी की करुणा से हमे एक राज्य निर्माण करने की सामर्थ्य प्राप्त हुई। गुरुवर्य के द्वारा प्रणीत सत्-सम्प्रदाय मे हम पले और बढे। उन्ही के बल मे, प्रजा-हित की दृष्टि से हमने राज्य को विस्तृत किया। अभी होय्सलवश क बारे मे लोग समझने लगे है। उन महात्मा श्रीमुनि ने हमारे पूर्वज 'मल' को 'पोय्' कहकर सूचना क्यो दी थी ? हो सकता है साधारण पहाड प्रान्त के निवासी सलराय मे किसी दैवी शक्ति के अस्तित्व को पहचानकर उनको ऐसा आदेश दिया था। उनका वह आदेश हमारे वश का अकित नाम हुआ, माँ। इससे भली-भाँति मालूम होता है कि छोटापन या बडप्पन हमारे व्यवहार के अनुरूप होता है, उसका जन्म से कोई सम्बन्ध नही।"

"क्या ये सब तुम्हारे गुरु ने सिखाया ?"

"हाँ, माँ।"

"तुम्हारे बडे भैया का ऐसा विशाल हृदय क्यो नही ? दोनो के गुरु तो एक ही हैं न ?"

"वे जितना सिखाते है और कहते है उतना सुनकर चुप बैठे रहने से ज्ञान-वृद्धि नही होती। उनकी उस सीख मे, कथन मे तत्त्व की खोज हमे करनी चाहिए। उनकी उस उपदेश-वाणी मे निहित ज्ञान और तत्त्व को खोजना और समझना ही तो शिष्य का काम है। इसी मे शिक्षा की सार्थकता है।"

"उस अम्माजी के गुरु ने भी यही कहा जो तुमने बताया।"

"माँ, आपने उन्हे कब देखा ?"

"वे यहाँ आये है। अम्माजी की पढाई मे विघ्न न पडे इसलिए हेग्गडेजी

उसके गुरु को भी साथ लेते आये हैं। मैंने एक दिन कवि बोकिमय्या को बुलवाया था और उनसे बातचीत की थी। उन्होंने कहा, 'कभी-कभी अम्माजी के सवालों का उत्तर देना मुश्किल हो जाता है।' ऐसी प्रतिभा है। उस जैसा एक भी विद्यार्थी उन्हें अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। वे कहते हैं कि ऐसी शिष्या को पढाने से हमारी विद्या सार्थक होती है—यही उन गुरुवर्य का विचार है।"

"माँ, मैं भी एक बार उन गुरुवर्य को देखना चाहता हूँ।"

"वे अब बलिपुर लौटने की तैयारी मे लगे होंगे। फिर भी देखेंगे, रेविमय्या से खबर भेजूँगी।"

बातें हो ही रही थी कि इतने मे दासी बोम्मले आयी और युवरानीजी की आज्ञा की प्रतीक्षा मे खडी हो गयी।

"बोम्मले, जाकर देखो रेविमय्या लौटा है या नहीं। वह हेग्गडती माचिकब्बेजी को उनके मुकाम पर छोड आने के लिए साथ गया था।" युवरानी ने कहा।

दासी बोम्मले परदा हटाकर बाहर गयी और तुरन्त लौट आयी।

"क्या है बोम्मले?"

"रेविमय्या लौट आया है, उसके साथ बलिपुर के कविजी भी आये हैं।"

"अच्छा हुआ। दोनो को अन्दर बुला लाओ।"

बोम्मले चली गयी।

"बेटा! तुम्हारी इच्छा अपने आप पूरी हो गयी।" युवरानी ने कहा।

वह कुछ कहनेवाला था कि इतने मे रेविमय्या और उसके पीछे कवि बोकिमय्या दोनो ने प्रवेश किया।

बोकिमय्या ने झुककर हाथ जोड प्रणाम किया।

"बैठिए कविजी! इस भीड-भाड मे पता नहीं आपको कितनी असुविधाएँ हुई होंगी?" युवरानी ने कहा।

"सब तरह की सुविधाएँ रही, युवरानीजी, रेविमय्या के नेतृत्व मे सारी व्यवस्था ठीक ही रही।" कहते हुए कवि बोकिमय्या बैठ गये।

"आप आये, अच्छा हुआ। मैं खुद बुलवाना चाहती थी। हाँ, तो अब आपके पधारने का कारण जान सकती हूँ?" युवरानी ने पूछा।

"कोई ऐसी बात नहीं। कल प्रात काल ही चलने का निश्चय हेग्गडेजी ने किया है। अम्माजी के कारण आप लोगो के दर्शन का सौभाग्य मिला। हमारी वापसी की खबर सुनकर आपसे आज्ञा लेने के लिए आया हूँ।"

"क्या सीधे बलिपुर ही जाएँगे?"

"नहीं, बलिपुर से निकलते समय ही यह निश्चय कर चुके थे कि बेलुगोल होते हुए बाहुबलि के दर्शन करके लौटेंगे। वहाँ जाकर फिर बलिपुर जाएँगे।"

"बहुत अच्छा विचार है। आप हमारी तरफ से हेग्गडतीजी से एक बात कहेंगे ?"

"आज्ञा कीजिए, क्या कहना है ?"

युवरानी थोडी देर मौन रही, फिर कुछ सोचकर बोली, "नही, हम ही खुद उन्हे बुलवा लेंगे और कह लेंगे।"

"तो मुझे आज्ञा दीजिए।"

"अच्छा।"

बोकिमय्या उठ खडे हुए और बोले, "क्षमा करें, भूल गया था। मुझे बुल-वाने का विचार सन्निधान ने किया था न ? कहिए, क्या आज्ञा है ?"

"कुछ नही, यह हमारा छोटा कुमार बिट्टिदेव है, यह आपसे मिलना चाहता था। इसीलिए अवकाश हो तो कल पधारने के लिए कहला भेजने की बात सोच रही थी। अब तो वह काम हो ही गया। अप्पाजी दर्शन तो हो गये न ? मगर तुम्हारी अभिलाषा अब पूर्ण नही हो सकेगी। क्योकि ये वापसी यात्रा की तैयारी मे है। अच्छा, कविजी, अब आप जा सकते है।" युवरानी ने कहा।

कवि बोकिमय्या चले गये। रेविमय्या ने उनका अनुगमन किया। बिट्टिदेव कुछ असन्तुष्ट हो माँ की ओर देखने लगा।

"क्यो, अप्पाजी, क्या हो गया ? क्रुद्ध हो गये ? बाते करने के लिए अवकाश न मिल सका, इसलिए ?"

"माँ, दर्शन मात्र मै कहाँ चाहता था ? क्या आपने समझा कि मैने उन्हे पहले देखा नही ?"

"तुमने भी देखा था, और उन्होन भी देखा था। फिर भी नजदीक की मुला-कात तो नही हुई न ? आज वह हो गयी। तुम्हारी जिज्ञासा के लिए आज कहाँ समय था ? इसलिए उन्हे बिदा कर दिया।"

"ठीक है, तब मुझे भी आज्ञा दीजिएगा। मैं चलूंगा।"

"ठहरो तो, रेविमय्या को आने दो।"

"पता नही, वह कब तक आयेगा। उन्हे मुकाम पर छोड आना होगा।"

"वह उनके मुकाम तक नही जायेगा। किसी दूसरे को उनके साथ करके वह लौट आयेगा। उसे मालूम है कि उसके लिए दूसरा भी काम है।" बात अभी पूरी हुई नही थी कि इतने मे रेविमय्या लौट आया।

"किसे साथ कर दिया रेविमय्या ?" युवरानी ने पूछा।

"गोक को भेज दिया। क्या अब हेग्गडती माचिकब्बे जी को बुला लाना होगा ?" रेविमय्या ने पूछा।

"अभी बुलवा लाने की जरूरत नही। कह देना कि कल की यात्रा को स्थगित कर दें। इसका कारण कल भोजन के समय युवरानीजी खुद बताएँगी, इतना

कहकर आओ।"

रेविमय्या चला गया। युवरानीजी की इस आज्ञा से उन्हें बहुत सन्तोष हुआ था। कारण इतना ही था कि अम्माजी शान्तला कम-से-कम कल तो नहीं जायेगी।

"इस बात के लिए मुझे यहाँ क्यो पकड रखा, माँ ?" बिट्टिदेव ने कहा।

"इतनी जल्दबाजी क्यो अप्पाजी ? तुम्हारे बडे भाई का स्वास्थ्य पहले से भी ठीक नही रहता। इसलिए वह जल्दी गुस्से मे आ जाता है। कम-से-कम तुम शात रहने का अभ्यास करो। तुम्हारी सहायता के बिना वह कुछ भी नही कर सकेगा। वह बडा है, इस कारण से वही महाराजा बनेगा। छोटा होने पर भी सारा राज-काज तुम ही को सँभालना पडेगा। इसलिए तुम्हे अभी से शान्त रहने का अभ्यास करना होगा। माँ होकर मुझे ऐसा सोचना भी नही चाहिए! फिर भी ऐसी चिन्ता हो आयी है। क्या करूँ ? पहले तुम्हारा जन्म होकर बाद को उसका जन्म हुआ होता तो अच्छा होता।" युवरानी ने कहा।

"मुझे सिहासन पर बैठने की तनिक भी चाह नही। भैया कुछ स्वभाव से जल्दबाज हैं, फिर भी उनका हृदय बडा कोमल है। आपकी आज्ञा को मैं कदापि न भूलूंगा। भैया का स्वभाव मैं अच्छी तरह समझता हूँ। उनके और सिंहासन के रक्षा-कार्य के लिए यह मेरे प्राण धरोहर है। प्राणपण से उनकी रक्षा करूँगा। आपके चरणो की कसम, यह सत्य है।"

युवरानी एचलदेवी ने बेटे को प्रेम से खीचकर, अपनी बाँहो मे उसे कसकर आलिगन कर लिया और कहा "सुनो, बेटा, अब सुनाती हूँ। जो आये हैं वे सभी कल-परसो तक चले जाएँगे। महाराजा से आशीर्वाद लेने के लिए तुम्हारे बडे भैया को साथ लेकर हमे दोरसमुद्र जाना ही है। हम त्रयोदशी गुरुवार के दिन रवाना होंगे। वे लोग बेलुगोल जानेवाले हैं न ? उन्हे हम अपने साथ दोरसमुद्र ले जाएँगे। वहाँ से बेलुगोल नज़दीक भी है। वहाँ से उन्हे विदा करेंगे। यह मैंने सोच रखा है। उस समय तुम्हे कविजी से मिलकर बातें करने के लिए बहुत समय मिलेगा। ठीक है न ?"

माँ ने उसके लिए कितना और क्या सोच रखा है, यह जानकर बेटा बिट्टिदेव चकित हो गया। और कहा, 'माँ, मेरी, मैं समझ न सका, अब ठीक हो गया।"

"तुमको जो पसन्द आये, वही करूँगी। अब तुम अपने काम पर जा सकते हो।" आज्ञा पाते ही बिट्टिदेव मे नयी जान आ गयी और वह चला गया।

युवराज की आज्ञा होने पर हेग्गडे मारसिंगय्या को अपनी यात्रा स्थगित करने के सिवाय दूसरा कोई चारा न था। श्रीमान् युवराज के परिवार के साथ ही इन लोगों ने दोरसमुद्र की यात्रा की। सोसेऊरु मे रहते वक्त रात की निद्रा और दिन के स्नान-पान मात्र के लिए हेग्गडती माचिकब्बे और अम्माजी शान्तला अपने मुकाम पर रहती, शेष सारा समय वे राजमहल मे ही व्यतीत करती। शान्तला के पाठ-प्रवचन के लिए बाधा न हो, ऐसी अलग ही व्यवस्था राजमहल मे की गयी थी। दोनो दिन राजकुमार बिट्टिदेव पढाते समय वही रहा। शान्तला अपनी पढ़ाई मे ऐसी मगन रहती कि उसे किसी के रहने न रहने की परवाह न थी। उसका इस तरह रहना बिट्टिदेव को अच्छा लगा। कभी-कभी तो उसे भान होता था कि शान्तला उससे भी ज्यादा बुद्धिमान और सूक्ष्मग्राही है। दोनो दिन वह भी मूक-प्रेक्षक बनकर न रहा। बीच-बीच मे सवाल करता रहता था। कवि बोकिमय्या सन्तोषजनक उत्तर भी देते रहते। कविजी ने पढाने के नये तरीके का आविष्कार कर लिया था, इन दो वर्षों की अवधि मे। शान्तला को पढाने के लिए वह आविष्कार आवश्यक हो गया था। चाहे छात्र कितना ही प्रतिभावान् हो उसकी उम्र अपने अस्तित्व को प्रदर्शित करेगी ही। कुछ क्लिष्ट विषयों को समझाते समय सक्षेप मे जिक्र कर आगे बढने की प्रवृत्ति होती तो शान्तला रोक देती और उसे समझाने की जिद कर बैठती। प्रारम्भिक दशा मे उसकी वय के अनुसार विषय समझाना बडा मुश्किल होता था, और वह कठिन कार्य था भी। परन्तु उन्होने केवल उस छोटी ग्रहणशील मेधावी छात्रा को समझाने के लिए एक नया ही तरीका अपनाया था। वास्तव मे उनके पढाने का वह नया तरीका बिट्टिदेव को भी बहुत अच्छा लगा। वह चाह रहा था कि उनके अध्यापक भी इसी मार्ग का अनुसरण करते तो क्या ही अच्छा होता! परन्तु वह अपनी इस इच्छा को खुलकर नही कह सकता था।

कवि बोकिमय्या ने आरम्भ मे ही जान लिया था कि बिट्टिदेव की मेधाशक्ति उसकी उम्र के लिए अपरिमित है। परन्तु बोकिमय्या का यह निश्चित मत था कि अम्माजी की प्रतिभा असामान्य है। उन दो दिनो मे उनके अन्दर एक नया आशाकुर प्रस्फुटित हुआ था। उनकी आशा थी कि यदि राजकुमार को पढाने का सुयोग मिला होता तो कितना अच्छा था! परन्तु उन्होंने सोचा, वह कहाँ, राज-महल कहाँ! कुछ पूर्व-पुण्यवश शान्तला के कारण यह प्रवेश मिला। इतना ही नही, उसकी अपेक्षा से भी अधिक गौरव भी उसे प्राप्त हुआ।

दूसरे दिन पढाते वक्त एक घटना घटी। उसका कारण था, बेलुगोल यात्रा का विषय। बाहुबलि के सम्बन्ध मे बताने के लिए आरम्भ करते तो बोकिमय्या का उत्साह चौगुना बढ जाता था। उनके बताये विषय सुनने मे शान्तला की बडी श्रद्धा थी। बाहुबलि की गौरवगाथा का वर्णन बोकिमय्या से सुनने के बाद बिट्टिदेव ने कहा, "परन्तु एक बात " यह कहते-कहते उसने अपने को रोक लिया। इस

तरह बात रोकने का कारण था कि शान्तला उसी को टकटकी लगाकर देख रही थी।

बोकिमय्या ने पूछा, "क्यो राजकुमार, बात कहते-कहते रुक क्यो गये ? क्या बात है ?"

बिट्टिदेव ने प्रश्न किया, "बाहुबलि स्वामि की भव्यता, त्याग आदि सबकुछ प्रशसनीय है। परन्तु वे बिलकुल नग्न क्यो खडे हैं ? क्या यह परम्परागत सस्कृति के प्रतिकूल नही है ?"

"मानवातीत, देवतुल्य के लिए साधारण मनुष्यो की तरह के रीति-रिवाजो का बन्धन नही, वे अतिमानव हैं।" बोकिमय्या ने जवाब दिया।

"क्या वे अपने जैन बन्धुओ की ही धरोहर है ?" फिर दूसरा प्रश्न किया बिट्टिदेव ने।

"उसका धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नही। निरहभाव की चरमावधि की प्रतीक है यह नग्नता। सुन्दर वस्त्रो से हम अपने शरीर को आच्छादित क्यो करते हैं ? केवल पसन्द करने के लिए ही न ?" बोकिमय्या ने सवाल किया।

बिट्टिदेव मौन रहा।

बोकिमय्या ने पूछा, "क्यो ? कहिए राजकुमार, मौन क्यो हो गये ?"

बिट्टिदेव कुछ कहना तो चाहता था, परन्तु शान्तला की उपस्थिति ने उसे मौन रखा।

आखिर बोकिमय्या ने समझाया, "वस्त्राच्छादन से उत्पन्न सुन्दरता और नग्नता से लगनेवाली असुन्दरता और असह्य भावना—इन दोनो के मूल मे एक ही वस्तु है शरीराभिमान। एक को सुन्दर मानते है और दूसरे को असुन्दर। उसको सशक्त समझकर गर्व करते है। यह सब दृग्गोचर है। इसलिए ही वस्त्र-विहीन होने पर वह सतोष की भावना क्षीण हो जाती है और असह्य की भावना हो आती है। यह भी बाह्य चक्षु से ही ग्राह्य ज्ञान है। दृश्यमान स्थूल शरीर को भेदकर अन्तश्चक्षु से शुद्ध अन्त करण को परखने पर वहाँ सुन्दर-असुन्दर, सह्य-असह्य आदि भावनाओ के लिए कोई गुजायश ही नही। एक तादात्म्य भावना की स्थिति का भान होने लगता है। इसीलिए बाहुबलि की नग्नता मे असह्य की भावना उत्पन्न नही होती। उसमे एक निर्विकल्प बाल-सौन्दर्य लक्षित होता है।"

बिट्टिदेव ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा, "परन्तु ऐसे रहना मुझसे दुस्साध्य है।"

"सहज ही है। उस स्तर की साधना होने से ही वह सम्भव हो सकता है। साधना से वह अनुभव साध्य है।" बोकिमय्या ने बतलाया।

"हमारे गुरुवर्य ने एक बार सत्य हरिश्चन्द्र की कथा बताते हुए कहा था, 'वसिष्ठ ने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि विश्वामित्र हरिश्चन्द्र को सत्यपथ से डिगा

दें तो मैं दिगम्बर हो जाऊँगा।' अर्थात् उनकी दृष्टि मे वह दिगम्बर हो जाना, यहाँ की इस दिगम्बरता मे निहित भावना के विरुद्ध ही लगता है न ?"

"वैदिक सम्प्रदाय के अनुसार यह माना जाता है कि दिगम्बर होना अपनी सस्कृति से बाहर होना है।"

"भारतीय धर्म का मूल वही है न ?"

"मूल कुछ भी रहे वह समय-समय पर बदलता आया है। अग्नि पूजा से जिस सस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ वह अनेक रूपो मे परिवर्तित होती आयी। अपने को ब्रह्मा कहा। त्रिमूर्तियो की कल्पना की उद्भावना हुई। सृष्टि-स्थिति-लय का अधिकार त्रिमूर्तियो को सौपा गया। इन तीनो मूर्तियो मे से सृष्टि के अधिकारी और लयाधिकारी के लिए अवतार-कल्पना नही की गयी। स्थितिकर्ता विष्णु मे अवतारो की कल्पना की।"

"मतलब क्या यह सब झूठ है ?"

"कल्पना-विलास जब सत्य को अलकृत करता है तब सत्य उस सम्भावित अलकार के आधिक्य से असत्य-सा लगने लगता है, यह सम्भव है।"

"तो क्या अवतार केवल कल्पना-विलास मात्र है ?"

"यह क्लिष्ट प्रश्न है। इसका उत्तर देना इतना सहल नही।"

"सत्य को सत्य कहने मे, असत्य को असत्य बताने मे, कल्पना को कल्पना कहने मे क्या दिक्कत होती है ?"

"सत्य-असत्य-कल्पना—इन तीनो शब्दो के एक निश्चित अर्थ है। परन्तु जो दृष्टिगोचर नही और जिस पर हमारा अडिग विश्वास है—ऐसे विषयो को इस मानदण्ड से मापना और तदनुसार निर्णय करना कठिन है।"

"हम इस विषय को लेकर दुनिया मे वाद-विवाद कराने, शास्त्रार्थ करवाने लगे तो चलनेवाला नही। विषय-ज्ञान से अनभिज्ञ हम जैसे छोटो को इन विषयो के बारे मे आप जैसे अभिज्ञो के दृष्टिकोण समझने की जिज्ञासा होती है। इतना समझाइये। इससे हमारी तर्कबुद्धि और जिज्ञासा का समाधान न हो सके तो भी हर्ज नही।"

"राजकुमार का कहना ठीक है। एक धर्मावलम्बी का दूसरे धर्मावलम्बी को समझने का दृष्टिकोण क्या हो सकता है, इस बात की जानकारी अलबत्ता हो सकती है। मगर जिज्ञासा का समाधान नही हो सकता। क्योकि वह विषय ही चर्चास्पद है।"

"यहाँ उपस्थित हम सब एक ही विश्वास के अनुगामी हैं। इसलिए आप निस्सकोच अपना विचार बतला सकते है।"

"राजकुमार गलत न समझे। यह सही है कि हम तीनो का विश्वास एक है। फिर भी हर विश्वास उतना ही दृढ़ नही होता है। तीनो मे विश्वास का

परिमाण भिन्न-भिन्न स्तरो का है। इसके अलावा बडे-बडे मेधावी विद्वानों के बीच तर्क और शास्त्रार्थ इस कठिन विषय पर चल ही रहा है, चलता ही रहेगा। ऐसे क्लिष्ट विचार को मस्तिष्क मे भर लेने योग्य आयु आपकी नही, अत मेरी राय मे ऐसे क्लिष्ट विषयो को अभी से दिमाग मे भर लेना उतना समीचीन नही होगा। क्योकि अभी विश्वास के बीज अकुरित होने का यह समय है। उस बीज से अकुर प्रस्फुटित हुआ है या नही इसकी जाँच करने उगते बीज को निकालकर देखना नही चाहिए। बीज अकुरित होकर पौधा जब अच्छी तरह जड जमा ले तब उसकी शाखा-प्रशाखाओ को हिला-डुलाकर जड कितनी गहराई तक जाकर जम गयी है, इस बात की परीक्षा की जाय तो ठीक होगा। विश्वास का बीज उत्तम और अच्छा रहा तो जडे गहराई तक पहुँच सकती हैं। बीज साधारण स्तर का होगा तो हिलाने-डुलाने से ही जडे उखड जाएँगी। जो भी हो, विश्वास की जड जमने तक प्रतीक्षा करना ही उत्तम है।"

बिट्टिदेव और बोकिमय्या के बीच हो रही इस चर्चा को तन्मय होकर शान्तला सुनती रही। यह चर्चा आगे बढ़े—यही वह चाह रही थी। बोकिमय्या ने इस चर्चा को अपने उत्तर से समाप्त कर दिया था। इससे वह निराश हुई। वह प्रतीक्षा करती रही कि राजकुमार कुछ पूछेगे। इसी आशय से उसने राजकुमार को देखा।

राजकुमार कुछ न कहकर उठ खडा हुआ और हाथ जोडकर बोला, "तो आज्ञा दीजिए, अब शाम हो गयी। मेरा घुडसवारी के लिए जाने का समय हो गया।"

शान्तला ने सहज ही पूछ लिया, "क्या मैं भी सवारी पर आ सकती हूँ?"

"उसमे क्या है? आ सकती है। आज बडे भैया नही आएँगे। उनका घोडा मैं लूँगा, मेरा घोडा तुम ले लेना। मगर तुमको अपने माता-पिता की अनुमति लेकर आना पडेगा।"

"मेरा अशोक है।"

"मतलब उसे भी साथ लेती आयी हैं? रेविमय्या ने कहा था, वह बडा ही सुलक्षणोवाला सुन्दर टट्टू है। मैं जल्दी तैयार होकर प्रतीक्षा करूँगा।" कहकर बिट्टिदेव चला गया।

गुरु का चरणस्पर्श कर शान्तला भी चली गयी।

उस दिन के अश्वारोहियो की यह जोडी दोरसमुद्र की यात्रा के लिए भी अपने-अपने घोडो पर चली।

पहले से दोरसमुद्र के लोगो को विदित था कि युवराज सपरिवार पधारने-वाले हैं। वहाँ राजमहल के द्वार पर आरती उतारकर लिवा ले जाने के लिए चामव्वा तैयार खडी थी। यह कहने की आवश्यकता नही कि उसकी बेटियाँ भी

सालकृत उसके साथ खडी थी।

सबसे पहले रेविमय्या, रायण और छोट राजकुमार बिट्टिदेव और अम्माजी शान्तला पहुँचे और राजमहल के सामने के सजे मण्डप मे उतरे। इसे देख चामव्वा उँगली काटने लगी। घोडे पर से उतरे बिट्टिदेव को चामव्वा ने तिलक लगाया और आरती उतारी।

राजकुमार बिट्टिदेव ने दूर खडी शान्तला के पास पहुँचकर, "चलो शान्तला, अन्दर चलें।" कहकर कदम बढाया।

वहाँ उपस्थित सभी प्रमुख व्यक्तियो ने सोसेऊरु मे शान्तला को देखा ही था। उनमे से किसी ने उसकी ओर ध्यान नही दिया यह बात वह समझ गयी। उन लोगो के वास्ते तो वह नही आयी थी। यदि बिट्टिदेव उसे न बुलाता तो दुःख होता अवश्य। परिस्थिति से परिचित राजकुमार ने औचित्य के अनुसार समझदारी से काम लिया। शान्तला उसके साथ अन्दर गयी।

बिट्टिदेव सीधा उस जगह पहुँचा जहाँ महाराजा का खास दीवानखाना था। उसने सुखासन पर आसीन महाराजा के चरण छूकर साष्टाग प्रणाम किया। शान्तला जो उसके साथ थी, उसने भी महाराजा के चरण छुए और प्रणाम किया।

महाराजा विनयादित्य ने दोनो के सिर सहलाये और कहा, "बैठो! इस पलग पर ही बैठो। क्या सब लोग आ गये? यह अम्माजी कौन है?" महाराज ने पूछा।

बिट्टिदेव दादा के पास पलग पर ही बैठा। शान्तला वहाँ रखे दूसरे एक आसन पर बैठी। "उनके आने मे थोडा समय और लगेगा। सब भोजन के बाद वेलापुरी से साथ ही निकले। हम घोडो पर चले आये। यह बलिपुर के हेग्गडे मारसिगय्याजी की पुत्री है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"तुम्हारा नाम क्या है, अम्माजी?" विनयादित्य ने पूछा।

"शान्तला।"

"शान्तला, बहुत सुन्दर। परन्तु तुम्हे इस छोटी वय मे घोडे पर सवारी करना आता है, यह बडे ही आश्चर्य का विषय है। क्या तुम दोनो ही आये?" विनयादित्य ने पूछा।

"नही, हमारा रेविमय्या और बलिपुर का इनका रायण—दोनो हमारे साथ आये है।"

"अच्छा, यात्रा से थके है। इस अम्माजी को अन्त पुर मे ले जाओ। दोनो आराम करो।"

दोनो चले गये।

उन दोनो ने बाहर निकलने के लिए देहली पार की ही थी कि इतने मे मरियाने दण्डनायक वहाँ पहुँचे।

दण्डनायक को बैठने के लिए कहकर महाराजा ने पूछा, "अभी हमारे छोटे अप्पाजी के साथ जो अम्माजी गयी उमे आपने सोसेऊरु मे देखा था न ? उसका तो एक बार आपने जिक्र भी किया था।"

"जी हाँ, वह तो हेग्गडे मारसिगय्या की बेटी है।" मरियाने दण्डनायक ने कहा।

"ऐसा लगता है कि हेग्गडेजी ने अपनी बेटी को बहुत अच्छी शिक्षा दी है।"

"इकलौती बेटी है, राजघराने से उमे किस बात की कमी है ?"

"मैंने यह नही कहा। उसकी व्यवहार-कुशलता के बारे मे बताया। छोटे अप्पाजी और वह अम्माजी दोनो ने आकर नमस्कार किया। दोनो से अपने पलग पर बैठने को कहा। परन्तु वह लडकी दूर पर रखे आसन पर जा बैठी। इस छोटी उम्र की बालिका मे इस औचित्य-ज्ञान को देखकर सन्तोष हुआ। सुना है कि वह छोटे अप्पाजी के साथ अपने घोडे पर ही आयी है।"

"उस हेग्गडे को अपनी बच्ची से बहुत प्रेम है। शायद यह सोचकर कि अपनी लडकी रानी बनेगी, उसने अश्वारोहण सिखाया हो।" मरियाने दण्डनायक ने कुछ व्यग्य से कहा।

"जिस किसी ने घोडे की सवारी करना सीखा हो वह सब राजा या रानी नही बन सकते, है न ? दण्डनायकजी, आपके मुँह से यह बात सुनकर मुझे बडा आश्चर्य होता है। आप खुद अपने बाल्यजीवन को याद कीजिए। कोई पूर्व-सुकृत था, हमारी महारानी ने आप पर अपने सगे भाई जैसा प्रेम और विश्वास रखा। आपका विवाह स्वय उन्होने कराया। आपकी हैसियत बढायी। आज आप महाराजा और प्रधानमन्त्री के निकट है। यह सब हम ही ने तो बाँट लिया है न ? सगे भाई न होने पर भी महारानी ने आपको प्रेम से पाला-पोसा तो औरस पुत्री को प्रेम-ममता और वात्सल्य से पाल-पोसने मे क्यों दिलचस्पी न ले ? उस अम्माजी का भाग्य क्या है—सो हम-आप कैसे जान सकेंगे ? अच्छे को अच्छा समझकर उसे स्वीकार करने की उदारता हो तो वही पर्याप्त है। अब हम एक बात सोच रहे है। अभी युवराज तो आ ही रहे है। हमारा भी स्वास्थ्य उतना अच्छा नही रहता। अबकी बार युवराज को सिंहासन देकर एव उपनीत वटु को युवराज पद देकर विधिवत् पट्टाभिषेक कर लें और हम निश्चिन्त हो जाये। इस बारे मे आपकी क्या राय है ?"

"हमारे साले गगराज इस विषय मे क्या राय रखते हैं ?" झुके सिर को उठाते हुए मरियाने दण्डनायक ने कहा।

"प्रधानमन्त्री से हमने अभी नही कहा है।"

"युवराज की भी स्वीकृति होनी है न ?"

"स्वीकार करेंगे, जब हमारी आज्ञा होगी तो वे उसका उल्लघन क्यो

करेंगे ?"

"ऐसी बात नही, सन्निधान के रहते सन्निधान के समक्ष ही सिंहासन पर विराजने के लिए उन्हें राजी होना चाहिए न ?"

"आप सब लोग हैं न ? अगर राजी न हो तो समझा-बुझाकर आप लोगो को उन्हे राजी कराना होगा।"

"तुरन्त राय देना कठिन कार्य है। सम्बन्धित सभी मिलकर विचार-विनिमय करने के बाद इसका निर्णय करना अच्छा होगा।"

"ठीक है, वैसा ही करेंगे।"

इसके बाद मरियाने आज्ञा लेने के इरादे से उठ खड़े हुए।

"बलिपुर के हेग्गडे दक्ष है ?"

"युवराज ने बता ही दिया होगा न ?"

"मतलब यह कि आप जवाब देना नही चाहते। है न ?"

"ऐसा कुछ नही। मेरा उनसे सीधा सम्पर्क उतना विशेष रूप से नही हो पाया है। मैंने इतना अवश्य सुना है कि विश्वासपात्र है और बलिपुर की जनता उन्हे बहुत चाहती है। हमारे युवराज उन्हे बहुत पसन्द करते हैं और चाहते भी है। इससे यह माना जा सकता है कि वे दक्ष भी है।"

"बहुत अच्छा।" महाराजा ने कहा।

इसके बाद मरियाने ने सिर झुकाकर प्रणाम किया और चला गया।

महाराजा विनयादित्य को लगा कि दण्डनायक सदा की तरह सहज रीति से आज व्यवहार क्यो नही कर रहे हैं। इसी चिन्ता मे वे पलग पर तकिये के सहारे पैर पसारकर लेट गये।

नूतन वटु कुमार बल्लाल के साथ राजपरिवार दोरसमुद्र पहुँचा। नवोपनीत वटु का भव्य स्वागत हुआ। चामव्वा के उत्साह का कोई ठिकाना ही नही था। वर-पूजा करने के लिए सन्नद्ध वधू की माता की-सी कल्पना मे वह अभिभूत हो गयी थी, इससे उसका मन-मुकुल खुशी से विकसित हो रहा था। सोसेऊरु से लौटने के पर दण्डनायक और उनकी पत्नी ने परस्पर विचार-विनिमय के बाद खूब सोच-समझकर यह निर्णय किया था कि राजघराने के समधी-समधिन बने और अपनी बेटी को पट्टमहिषी बनावे। यह निर्णय तो किया परन्तु उस निर्णय को कार्यान्वित करने का विधि-विधान क्या हो—इस सम्बन्ध मे कोई निश्चय नही किया था।

युवराज, युवरानी वट्टु के साथ आने ही वाले थे; तब प्रधानमन्त्री गंगराज से आप्त-समालोचना करने और कुछ युक्ति निकालने की बात मन में सोचते रहे।

परन्तु शान्तला को जब से देखा तब से चामव्वा के मन में यह काँटा बन गयी थी। उसने समझा था कि बला टल गयी—मगर यहाँ भी शान्तला को देखकर उसकी धारणा गलत साबित हुई। वास्तव मे चामव्वा ने यह सोचा न था कि हेग्गडे का परिवार दोरसमुद्र भी आयेगा। वह ऐसा महसूस करने लगी कि हेग्गडती ने युवरानी पर कुछ जादू कर दिया है। उसने सोचा कि हेग्गडती के मन मे कुछ दूर भविष्य की कोई आशा अकुरित हो रही है। कोई आशा क्या ? वही उस इकलौती बेटी को सजा-धजाकर खुद राजघराने की समधिन बन जाना चाहती है। मेरी कोख से तीन लडकियाँ जो जन्मी है, तदनुसार युवरानी के भी तीन लडके पैदा हुए है, तो हिसाब बराबर है, ऐसी हालत मे यह हेग्गडती हमारे बीच कूद पडनेवाली कौन है ? चामव्वा क्या ऐसी स्थिति उत्पन्न होने देगी ? इसलिए उसने पहले से ही सोच रखा था कि परिस्थिति पर काबू लाने के लिए कोई युक्ति निकालनी ही चाहिए।

हँसी-खुशी से स्वागत करने पर भी चामव्वा के हृदयातराल मे बुरी भावना के जहरीले कीडे पैदा होकर बढने लगे थे। वट्टु को युवरानी-युवराज की आरती उतारने के बाद वे जब अन्दर चलने लगे तब मौका पाकर अपनी बडी बेटी पद्मला को ढकेलकर उनके साथ कर दिया। इन सबके पीछे चामव्वा थी। साथ ही हेग्गडे मारसिंगय्या और हेग्गडती माचिकव्वे भी थे। उन्हे देखकर चामव्वा ने माचिकव्वे से पूछा, "हेग्गडतीजी ने सोसेऊरु मे यह नही बताया कि यहाँ आएँगी।" पूछने मे एक आक्षेप ध्वनित हो रहा था।

हेग्गडती माचिकव्वे ने सहज भाव से विनीत हो बताया, "हमने यहाँ आने का विचार ही नही किया था। युवरानीजी की आज्ञा हुई, इसलिए आये।"

"हेग्गडतीजी ! आपमे कोई जादू भरा है। नही तो युवरानीजी का एक साधारण हेग्गडती के साथ इतना लगाव कैसे सम्भव है ?" दण्डनायक की पत्नी ने कहा।

कितना व्यग्य ! इस हेठी के भाव से अनभिज्ञ हेग्गडती ने सहज भाव से कहा, "हाँ चामव्वाजी, मै एक साधारण हेग्गडती हूँ। पर युवरानीजी की उदारता ने मुझे भी चकित कर दिया है।"

"आपके गुन ही ऐसे है।" चामव्वा ने कुछ वक्रोक्ति भरी ध्वनि से यह बात कही।

"यह सब हम क्या जानें, चामव्वाजी ! बडो के दर्शाये मार्ग पर लीक-लीक चलनेवाले है, हम। यदि हमारा व्यवहार दूसरो को पसन्द आया और दूसरो ने उसे अच्छा समझा तो वह हमे मार्गदर्शानेवाले उन बडो की श्रेष्ठता का ही परिचय

देता है। वह उन बडो के बडप्पन का साक्षी है।"

"बडो का नाम लेकर खिसक जाने की बात छोडिए, हेग्गडतीजी, खुद आपने अपनी तरफ मे अपने पर लादे बडप्पन की यह बडाई है। यह उसी का प्रतीक है। आप मामूली थोडे ही है।" चामव्वा ने व्यग्य भरा तीर मारा।

माचिकब्बे ने बात बदलने के इरादे मे कहा, "युवरानीजी शायद मेरी प्रतीक्षा करती होगी।"

"नही, अभी तो वे आपकी प्रतीक्षा नही करेगी। उन्हे भी विश्रांति चाहिए न ? ठहरिए, नौकर को साथ कर दूँगी। वह आपको ठहरने के मुकाम पर ले जाकर छोड आयेगा।" कहती हुई चामव्वा झटपट चली गयी।

औरतो के बीच मारसिगय्या मौन खडे रहे। उनके लिए राजमहल नया नही था। वहाँ की गतिविधियाँ भी नयी नही थी। वे चुप रहे।

दो-एक क्षणो मे ही राजमहल का नौकर आया। साथ शान्तला भी आयी थी। 'चलिए' कहते हुए वह आगे बढा। शान्तला, माचिकब्बे और मारसिगय्या तीनो उसके पीछे चले। राजमहल के दक्षिण-पूर्व के कोने के एक अतिथि-भवन मे उन्हे छोडकर यह कहते हुए "आपके सभी अन्य लोगो को भिजवा दूँगा, आप लोग आराम करें"—नौकर चला गया। सभी वहाँ बिछे कालीन पर बैठ गये। नौकर अर्घ्य-पाद्य, पान-पट्टी आदि की व्यवस्था कर चले गये।

माचिकब्बे ने पूछा, "जब मे आयी, तुम कहाँ रही अम्माजी ?"

"महाराजा के दर्शन के बाद मैं और राजकुमार उनके अन्त पुर मे रहे।" शान्तला ने कहा।

"तुम लोग बहुत समय पहले आ गये होगे ?"

"हाँ माँ, एक प्रहर हो गया होगा।" शान्तला न कहा।

"अब तक क्या कर रही थी ?"

"बातचीत करते बैठे रहे।"

"क्या किसी राक्षस की कहानी कहते रहे ?"

"हाँ तो, हम दोनो अभी छोटे बच्चे है न ? मनगढत कहानियाँ कहते-हँसते खेलते-कूदते रहे।" कहती हुई शान्तला के चेहरे पर क्रोध की रेखा खिच गयी।

"लो, देख लो ! नाक की नोक पर ही गुस्सा उतर आया, देखो, नाक कैसी चढी हुई है। कुछ हँसी-खुशी की बात भी सह न सके—ऐसे बुढापे की शिकार इस छोटी उम्र मे ही ? अम्माजी, एक बात समझ लो। तुम्हारे गुरुजी ने भी कहा होगा। परन्तु मैं माँ, अपने अनुभव की बात बताती हूँ। हमेशा हँसमुख रहना सीखो। हँसमुख दीर्घायु का शुभ लक्षण है। इसलिए कभी चेहरे पर गुस्से से सिकुडन न आने देना।"

"मन मे जो पीडा हुई उसे भी कहे नही ?"

"मन मे पीडा हो, चाहे असह्य वेदना रहे, फिर भी हँसते रहना चाहिए। अम्माजी, अभी बेलुगोल मे स्थित बाहुबलि मे भी तुम देखोगी। उन्होने कितना दु ख सहा, कितनी कसक रही, जब कसक की पीडा अधिक हुई तो धीरज के साथ किस तरह अभिमानपूर्वक मुकाबिला किया, उस छिडी हुई दशा मे कितना दर्द सहना पडा। एकबारगी उस अभिमान-अहकार से छुट्टी पायी तो वहाँ उस कसक या दर्द के लिए स्थान ही न रह गया। यो वहाँ हँसमुख बाहुबलि की मूर्ति स्थायी रूप से स्थित हो गयी। वहाँ जाकर देखोगी तो यह सब समझ मे आ जायेगा। तुम अभी छोटी बच्ची हो। पर होशियार और प्रतिभाशाली हो। फिर भी अभी अनुभव नही है। अभी से मानसिक दु ख-दर्द के कारणभूत इस अभिमान को दूर कर देना चाहिए। समझी अम्माजी। अब बताओ, तुम लोग क्या-क्या बात कर रहे थे ?"

"राजकुमार ने पूछा, 'तुम्हारा गाँव कैसा है और वहाँ क्या-क्या है ?' मैने जो जाना था सो सब बता दिया।"

"क्या उन्हे हमारा गाँव पसन्द आया ?"

"क्या-क्या अच्छा लगा—सो तो मै बता नही सकती। परन्तु जब मैंने मानवाकार मे स्थित उस गण्डभेरुण्ड के बारे मे बताया तो उसके विषय मे उनका उत्साह लक्षित हुआ।"

"उसके बारे मे राजकुमार ने कुछ बाते की ?"

"मैंने बताया, 'उस मूर्ति का शरीर, हाथ और पैर तो फौलाद जैसे मजबूत लगते है। मगर देखने मे बडी सुन्दर है।' तब राजकुमार ने कहा, 'मर्द को तो ऐसा ही होना चाहिए।' उन्होने कहा कि उस मूर्ति को एक बार देखना चाहिए।"

"तुमने बुलाया ?"

"मैं बुलाऊँ तो राजकुमारजी आएँगे ?"

"बुलाना हमारा धर्म है। आना, न आना उनकी इच्छा।"

"भूल हुई माँ। तब तो उन्हे निमन्त्रित करूँगी।"

"अब बुलाने न जाना। जब बुलाने का मौका था तब नही बुलाया, अब बुलाना सगत न होगा। राजकुमार की इच्छा को पूरा करने के लिए दूसरा कुछ और उपाय सोचेगे।"

इतने मे रेविमय्या हाँफता हुआ आया और कहने लगा, "बडा गडबड हो गया हेग्गडतीजी ! राजमहल के अन्त पुर के पास उससे लगे उस दीवानखाने मे जिसमे महारानीजी रहा करती हैं, वही ठहराने की युवराज की आज्ञा थी। आप लोगो को यहाँ कौन लिवा लाया ? उठिए, उठिए, युवरानीजी बहुत गुस्सा कर रही है।"

"हमे क्या मालूम, रेविमय्या। हम सहज रीति से युवरानीजी का ही अनुसरण

कर रहे थे। चामव्वा ने हमे यहाँ भेज दिया। यहाँ भी अच्छा है। यहाँ रहने मे क्या हर्ज है ?" हेग्गडती माचिकब्बे ने कहा।

"जो भी हो, अब तो मुझे यह सब करना है। आप कृपा कर मेरे साथ चलें, नही तो मै जीवित नही रहूँगा। मेरा चमडा उधेडकर उसका झडा फहरा दिया जायेगा।"

"तुम्हारी इसमे क्या गलती है, रेविमय्या ? जब यह सब हुआ तब तुम वहाँ थे ही नही।"

"वह मेरी गलती है। वहाँ रहकर आप लोगो को उनके साथ राजमहल मे ले जाना चाहिए था। उन्होने खुद सोसेऊरु मे ही ऐसी आज्ञा दी थी। पहले वहाँ आगे रहकर मुझे अपना कर्त्तव्य करना था। नही किया। इसीसे यह सारी गड-बड पैदा हो गयी है। एक शुभकार्य समाप्त कर आये, अब इस व्यवहार से मुझे मन मारकर रहना पडा है। मुझे इस सकट मे बचाइए। आपके पैरो पडता हूँ।" कहते हुए रेविमय्या उनके पैरो पर पडा।

"उठो रेविमय्या, यह सब क्या ? चलो, हम जहाँ भी रह, एक जैसा है। हम किसी को दुखी करना पसन्द नही करते।" हेग्गडे मारसिंगय्या ने कहा। और सबने रेविमय्या का अनुसरण किया।

युवरानी एचलदेवी को जितना जल्दी गुस्सा चढता उतना ही शीघ्र वह उतर भी जाता है। सहज ही वह विशालहृदया है। उसका ध्येय है कि अपनी वजह से किसी को कोई दुख न हो। उसके बुलावे पर अतिथि बनकर जो आये उनकी देखभाल की व्यवस्था उसकी इच्छानुसार होनी चाहिए, यदि वह न हुआ तो सहज ही क्रोध आता ही है। अब की स्थिति यही थी। इसी वजह से उसे गुस्सा आया था। हेग्गडे के सारे परिवार के अन्त पुर मे आ जाने के बाद शान्त होकर सोचने पर पता चला कि इसके पीछे क्या कारण था। ऐसा क्यो हुआ था। फिर भी उसने प्रतिक्रिया व्यक्त करने की बात नही सोची। इसके साथ ही उसके मन मे एक निश्चित निर्णय भी हुआ। पद का मोह किस तरह से स्वार्थ-साधन के मार्ग का अनुगमन करता है—इस बात से परिचित युवरानी ने अबकी बार क्षमा कर देने की बात मन-ही-मन सोची। वहाँ सोसेऊरु मे रहते समय भी चामव्वा ने शान्तला के बारे मे जो भला-बुरा कहा था, उसीसे वह असन्तुष्ट हुई थी। मगर तब उसने उसे कोई महत्त्व नही दिया था। यहाँ जो घटना घटी उसने उसके मन मे एक

सुस्पष्ट ही चित्र प्रस्तुत कर दिया था, साथ ही उसके हृदयातराल पर विषाद की गहरी रेखा भी खिच गयी थी।

यह सब क्या है ? युवरानी एचलदेवी के मन मे तरह-तरह के प्रश्न उठ खड़े हुए। निष्कल्मष दृष्टि से एक दूसरे से प्रेम करना क्या असह्य नही ? मानव ऐसे शुद्ध प्रेम को भी यदि सह नही सकता और असूया से नीच भावना का शिकार होकर हीनवृत्तियो का आश्रय ले तो वह पशु से भी बदतर न होगा ? पशु इस ऐसे मानव-पशु से कुछ बेहतर मालूम होता है। उससे प्यार के बदले प्यार मिलता है। वह प्रेम करनेवाले की हस्ती-हैसियत, मान-प्रतिष्ठा का ख्याल भी नही करता। उसे उम्र की भी परवाह नही। एक छोटा बालक उसे प्रेम से खिलाए या बड़े अथवा गरीब या धनी कोई भी प्रेम से खिलाएँ तो वह कुत्ता भी सबको बराबर के प्रेम भाव से देखता है। पर हम कितनी भेद-भावना रखते हैं। क्या यह ईश्वर के वरप्रसाद के रूप मे प्राप्त बुद्धि के दुरुपयोग की चरमसीमा नही है ? उस ईश्वरदत्त बुद्धि के सदुपयोग को छोडकर उसका अन्यथा उपयोग नीचता की परिसीमा नही ? जन्म, अधिकार और ऐश्वर्य आदि न जाने कौन-कौन से मानदण्डो का ढेर लगाकर मापते-मापते थक न जाएँगे ? अहिंसा, त्याग आदि के बहानो का सहारा लेकर व्रत-नियमो की आड मे स्वर्ग-साधना करने के बदले मानवता की नीव पर शुद्ध मानव-जीवन जीने का प्रयत्न मानव क्यो नही करता ? ऐसा अगर हो तो यह भूलोक ही स्वर्ग बन जाए। इसे स्वर्ग बनाने के लिए ही समय-समय पर अलग-अलग रूप धारण कर सच्चे मानव के रूप मे ईश्वर अवतरित होकर मानवता के धर्म का उपदेश देता आया है, स्वय मानवता का आदर्श बनकर उदाहरण देकर मानव-धर्म का अनुष्ठान करके दिखाया है। एक बार उसने जो मार्ग दर्शाया उसमे कँटीले पौधे, झाड-झखाड जो पैदा हो गये तो कालान्तर मे वे विकृत हो जाते हैं। हम जब उसी टेढे-मेढे रास्ते को अपना विश्वस्त मार्ग मानकर जिद् पकडकर चलना आरम्भ कर देते है तो वह एक नया ही रूप धारण कर लेता है और तब इसी को एक नया नाम देकर पूर्वोपदिष्ट मानव-धर्म का सुसंस्कृत नवीन रूप कहकर मानव अपने उद्धार करने की कोशिश करने लगता है। फिर भी मानव मानव ही है। उस सहज मानव-धर्म का तथाकथित टेढे-टेढे मार्ग के निर्माण के प्रयत्न मे ही उसकी बौद्धिक शक्तियो का अपव्यय होता है। यह मेरे द्वारा प्रणीत नवीन मार्ग है, यह उन सबसे उत्तम मार्ग है—कहते हुए अहकार से आगे बढने का उपक्रम करने लगता है। यह अहकार उस पीठ पर के विस्फोटक फोडे की तरह बढकर उसी के सर्वनाश का कारण बनता है। असली मूल वस्तु को छोडकर इस तथाकथित नवीनता के अहकार से ऊँच-नीच के भेद-भाव उपजाने से मानव-मानव मे भेद पैदा हो जाता है; और मानवता की एकता के उदात्त भाव नष्ट हो जाते हैं।

मानव के साथ मानव बनकर रहने मे अडचन पैदा हो जाती है। मानवता ही खण्डित हो जाती है। कभी मानव को मानव बनकर जीना सम्भव होगा या नही भगवान् जिनेश्वर ही जाने।

इस तरह युवरानी एचलदेवी का कोमल मन उद्विग्न हो रहा था। उसके मन की गहराई मे तारतम्य की इस विषम परिस्थिति ने कशमकश पैदा कर दी थी। मन के उस तराजू के एक पलडे मे चामव्वा थी और दूसरे मे हेग्गडती माचिकब्बे। पद और शिष्टाचार इनमे किसका वजन ज्यादा है, किसका मूल्य अधिक? तराजू झूलता ही रहा, कोई निश्चित निर्णय नही हो पाया। क्योकि मन की गहराई मे उस तराजू को जिस अन्तरग के हाथ ने पकड रखा था वह काँप रहा था। उस हाथ का कम्पन अभी रुका न था। हृदय की भावना कितनी ही विशाल क्यो न हो उस भावना की विशालता को व्यावहारिक जीवन मे जब तक समन्वित न करे और वास्तविक जीवन मे कार्यान्वित न कर व्यवहार्य न बनावे तो उससे फायदा ही क्या? कार्यान्वित करने के लिए एक प्रतिज्ञाबद्ध दृढता की जरूरत है। यह दृढता न हो तो कोई काम साध नही सकते। क्योकि उस सहज मार्ग मे आगे बढने का यह पहला कदम है। इस सीधे मार्ग पर चले तो ठीक है। चलते-चलते आडे-तिरछे और चारो ओर घेरे रहकर बहनेवाले चण्डमारुत का शिकार बने और आगे का कदम और आगे चलने को उद्यत हो जाय तो बहुत सम्भव है कि वही अटक जाएँ। इससे बचने के लिए मानसिक दृढता चाहिए। एचलदेवी सोचने लगी कि ऐसे बवण्डर से बचकर चलने की दृढता उसमे कितनी है। फिर वह स्वय सर्वेसर्वा तो है नही। युवराज इन सद्भावनाओ को पुरस्कृत करे भी, पर महाराजा की बात का तो वे प्रतिरोध नही कर सकते, यह सब वह जानती थी। इसके अलावा महाराजा का मुँह-लगा दण्डनायक राजमहल के वातावरण मे पलकर-बढकर वहाँ के सुख-सन्तोष मे पनपा है और उस पर महाराजा की विशेष कृपा भी है—इस बात से वह परिचित तो थी ही। चामव्वा के मन मे क्या-क्या विचार होगे—इसका अनुमान भी वह कर चुकी थी। वह जिसे अपनी बहू बनाना चाहेगी, इसके लिए यह सारा वातावरण सहयोगी बनकर नही रहेगा—इस बात को भी वह समझती थी। इस सबके अलावा एक और मुख्य बात यह थी कि अपने बडे बेटे का मन चामव्वा की बडी लडकी के प्रति विशेष आकर्षित था—यह भी उससे छिपा न था। अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए एक दूसरी लडकी को बलिवेदी पर चढाना उचित नही—इस बात को वह अच्छी तरह समझती थी। यह सब ठीक है। परन्तु चामव्वा को हेग्गडती और उसकी उस मासूम बालिका पर विद्वेष की भावना क्यो है? शायद उसके मन मे यह शका हो कि हेग्गडती की लडकी की उसकी लडकी के साथ स्पर्धा हो रही है। हो सकता है। इसी वजह से चामव्वा यह सब खेल खेल रही हो।

कैसे लोग हैं ? मैंने खुद भी यह नही सोचा था। हेग्गडती तो इस तरह की बात सोचने तक का साहस नही कर सकती। अपने स्थान-मान का उसे बोध नही ? ऐसी हालत मे इतनी ईर्ष्या क्यो ? सम्भवत चामव्वा मन मे अपने पद को हमसे अधिक समझती होगी। इसीलिए हेग्गडती और उसकी बेटी का अस्तित्व सहन नही कर पाती। उसके विचार मे राजमहल का आदर, प्रीति और विश्वास आदि सब उसी का स्वत्व है, उनपर दूसरे का अधिकार उसे सह्य नही। हम उसके इन विचारो के अनुसार कैसे रह सकेंगे ? प्रजा ही हमारा धन है। प्रजाजन का आदर-प्रेम ही तो हमारा जीवन है। अगर हम अपने प्रजा-जन के प्रति आदर-प्रेम-विश्वास न रखे तो हमको जो बडप्पन उनसे मिला है, वह अयोग्य और अपात्र को दिये दान के समान अनादरणीय ही होगा। प्रजा-जन हमपर जो प्रेम-विश्वास और आदर रखते हैं उसके योग्य हम है—इस बात को साबित करना होगा, इसके लिए उनके साथ सद्व्यवहार कर उन्ही से प्राप्त बडप्पन को सार्थक करना ही हमारा ध्येय होना चाहिए। हे भगवन् जिननाथ ! ऐसा अनुग्रह करो कि हमारे मन मे ऐसी दुर्भावना, ईर्ष्या पैदा न हो। हमारा प्रत्येक व्यवहार प्रजा-जन के सन्तोष के लिए ही बना रहे, यह आशीर्वाद हमे दो, यही आपसे हमारी प्रार्थना है। भगवन् ! हमे बल दो। उसने भगवान् के सामने यो निवेदन किया। इस तरह मानसिक सघर्ष से मुक्त होकर मन मे उत्पन्न सभी विकारो को दूर करके युवरानी निश्चल भाव से अपने ध्येय-धर्म पर अटल बनी रही।

चामव्वा के व्यवहार मे हेग्गडती माचिकव्वे के मन मे कशमकश पैदा हो गयी थी। परन्तु युवरानी एचलदेवी के उदार व्यवहार से चामव्वा के व्यवहार के बारे मे लापरवाह हो रही। शान्तला का ध्यान तो इस ओर गया ही नही। बलिपुर मे जिस ढग से उनके कार्यक्रम चलते थे उस क्रम मे कोई बाधा नही आयी। यथावत् सब चलता रहा। एक विशेष बात यह थी कि यहाँ के कार्यक्रमो मे राजकुमार बिट्टिदेव का साथ रहा। युवरानी के आग्रह से उन लोगो को कुछ अधिक समय तक ठहरना पडा था। इसके बाद हेग्गडेजी का परिवार महाराजा, युवराज और युवरानी प्रधान गगराज, बडे दण्डनायक मरियाने और छोटे दण्डनायक माचण, डाकरस आदि सभी से बिदा लेकर बेलुगोल की यात्रा के लिए तैयार हो गया। आखरी वक्त बिट्टिदेव ने उनके साथ बेलुगोल जाने की इच्छा प्रकट करते हुए माँ से अनुमति माँगी।

"वहाँ से वे सीधा बलिपुर जाएँगे, अप्पाजी, तब तुम्हे अकेले लौटना पडेगा। इसके अतिरिक्त तुम तो बेलुगोल हो आये हो न ? अब क्या काम है ?" एचलदेवी ने अपनी बात कही।

"लौटते समय मेरे साथ रेविमय्या रहेगा। अगर चाहे तो दो-एक और मेरे साथ चलें।" कहकर बिट्टिदेव ने यह सूचित किया कि अपने मन की इस इच्छा

को बदलना नही चाहता।

"छोटे अप्पाजी ! महाराज इसे स्वीकार नही कर सकेंगे।" एचलदेवी ने अपने इस बेटे के मन की इच्छा को बदलने के इरादे से कहा।

"क्यो नही स्वीकार करेगे ?"

"राजकुमार यदि साधारण हेग्गडे के परिवार के साथ चलेंगे तो लोग तरह-तरह की बाते करने लगेगे। इस वजह से वे स्वीकार नही करेगे।"

"क्या महाराज के मन मे ऐसे विचार है ?"

"न न, कभी नही। उनमे अगर ऐसी भावना होती तो बडे दण्डनायक मरियानेजी का आज इतना ऊँचा स्थान न होता।"

"यदि ऐसा है तो मेरे जाने मे क्या बाधा है ?"

"निम्न स्तर के लोगो को ऊपर उठाना ठीक होने पर भी ऊपर के स्तरवालो को नीचे उतरना ठीक नही, अप्पाजी।"

"अगर ऊपरवाले नीचे नही उतरे तो नीचेवालो को ऊपर उठाना सम्भव कैसे हो सकेगा, माँ ?"

"इसीलिए ऐसे लोगो को जो ऊपर उठाने योग्य सब तरह मे है, उन्हे चुनकर हम अपने पास बुलवाते है—ऊपर उठने के लिए मौका देना हमारा धर्म है। इस काम के लिए हमे नीचे उतरने की आवश्यकता नही।"

"तो आपके कहने का मतलब यह कि उन्हे हम अपने साथ ले आ सकते है, परन्तु हमे उनके साथ होना ठीक नही, यही न माँ ?"

"लोग हमसे यही अपेक्षा करते है।"

"लोगो को हम ही ने अपने व्यवहार से ऐसा बनाया है।"

"जो भी हो, अप्पाजी, मै इस विषय मे निश्चय कर अपना निर्णय नही द सकती। मै केवल माँ हूँ। मै केवल प्रेम करना ही जानती हूँ। ऐसी जिज्ञासा मै नही कर सकती।"

"मतलब, क्या मैं प्रभु से पूछूँ या महाराज से ?"

"महाराज से ही पूछो, अप्पाजी।"

"क्या पूछना है ?" एरेयग प्रभु जो तभी वहाँ आये थे, पूछा। परिस्थिति की जानकारी हुई। थोडी देर तक सोचकर उन्होने कहा, 'अप्पाजी, क्या कुछ दिन ठहरकर पीछे बलिपुर हो आना न हो सकेगा ?"

"बलिपुर मे मेरा क्या काम है ?"

"उस हेग्गडे की लडकी के साथ घोडे की सवारी, इधर-उधर घूमना-फिरना यह सब बेरोकटोक चल सकेगा न ?"

"उसके लिए मैं उनके साथ जाना नही चाहता। एक दिन बाहुबलि के बारे मे कवि महोदय के साथ काफी चर्चा हुई थी। उनके साथ बेलुगोल मे बाहु-

बलि का दर्शन कर लूँ तो वह अधूरी बात पूर्ण हो सकेगी; इसी आशा से मैं जाने की अनुमति चाहता था।"

"यदि ऐसा है तो हो आओ अप्पाजी ! पर तुम्हारे साथ ··"

"रेविमय्या आयेगा।"

"ओह-ओह, तब तो सारी तैयारी हो गयी है। सो भी स्वीकृति के पहले ही।"

"प्रभु से अच्छे काम मे कभी बाधा ही नही हुई।" कहते हुए आगे बात के लिए मौका न देकर बिट्टिदेव वहाँ से चल पडा।

युवरानी एचलदेवी अपने बेटे की उत्साह-भरी दृष्टि को देखकर मन-ही-मन कुछ सोचती हुई खडी रही।

"क्या, युवरानीजी बहुत सोचती हुई-सी लग रही है।"

"कुछ भी तो नही।" कहती हुई युवराज की तरफ देखने लगी।

"हमसे छिपाती क्यो है ? छोटे अप्पाजी और हेग्गडेजी की बेटी की जोडी बहुत सुन्दर है—यही सोच रही थी न ?"

"न न, ऐसा कुछ नही। हमारी सभी इच्छाओ और आकाक्षाओ के लिए राज-महल की स्वीकृति मिलनी चाहिए न ? लोगो की भी स्वीकृति होनी चाहिए न ?"

"राजपरिवार और प्रजाजन स्वीकार कर ले तो युवरानी की भी स्वीकृति है। यही न ?" युवराज ने स्पष्ट किया।

"क्या युवरानी की स्वीकृति पर्याप्त है ? मुझे अगर स्वातन्त्रता हो तो मैं स्पष्ट रूप से कहूँगी कि इसमे कोई एतराज नही।"

"यदि बडा बेटा होता तो प्रश्न कुछ जटिल होता। लेकिन अब ऐसी समस्या के लिए कोई कारण नही है।"

"वास्तव मे मैंने इस दिशा मे कुछ सोचा ही नही। हेग्गडेजी की लडकी का पाणिग्रहण जो भी करेगा वह महाभाग्यवान् होगा। परन्तु इस सम्बन्ध मे जिसने जन्म दिया उसी ने जब सोच-विचार नही किया हो तो हम क्यो इस पर जिज्ञासा करे ?"

"रेविमय्या कहता है कि हमारे अप्पाजी का उस लडकी के साथ गाढा स्नेह हो गया है। वह मैत्री—पता नही कि इन दोनो को कहाँ ले जायेगी ?"

"इतना सब सोचने जैसी उन बच्चो की उम्र ही कहाँ है ? उन दोनो मे जो प्रेम अकुरित हुआ है वह परिशुद्ध है। दोनो मे ज्ञानार्जन की पिपासा बराबर-बराबर है। यही उनके बीच इस मैत्री सम्बन्ध का कारण है। इतना ही।"

"अब तो इतना ही है, परन्तु वह ऐसे ही आगे बढा तो उसका क्या रुख होगा, कौन जाने।"

"यदि प्रभु को यह बात आतक पैदा करनेवाली लगती है तो अभी प्रभु ने

जाने की अनुमति ही क्यो दी ?" युवरानी एचलदेवी ने दुविधाग्रस्त मन से पूछा।
"इसके लिए कारण है।"
"क्या है वह ?"
"फिर कभी आराम से कहूँगा। अब इस बात को लेकर दिमाग खराब करने की जरूरत नही। अधिकार-सुख मिलने पर मनुष्य अपनी पूर्वस्थिति को भूल जाता है, यह बात यहाँ आने के बाद, प्रत्यक्ष प्रमाण से साबित हो गयी। ये सब बाते सोसेऊरु मे बताऊँगा। हमे भी कल सोसेऊरु की यात्रा करनी है। अप्पाजी यही महाराजा के साथ रहेगे। छोटे अप्पाजी से कहना है कि वह बेलुगोल मे सीधे सोसेऊरु पहुँचे।" इतना कहकर युवराज वहाँ से चल पडे।

अपने पतिदेव कुछ परेशान हो गये है, इस बात को युवरानी एचलदेवी ने समझ लिया। परन्तु इस परेशानी का कारण जानने के लिए उन्हे सोसेऊरु पहुँचने तक प्रतीक्षा करनी ही होगी।

हेग्गडे मारसिंगय्या के परिवार के साथ कुमार बिट्टिदेव रेविमय्या और राजघराने के चार रक्षकभट भी चले।

दो दिनो मे ही चार कोस की यात्रा पूरी कर वे बेलुगोल क्षेत्र जा पहुँचे। शान्तला और बिट्टिदव ने अपने-अपने घोडो पर ही पूरी यात्रा की थी। उन दोनो के अगरक्षक बनकर रेविमय्या उनके साथ रहा। सबसे आगे हेग्गडे का रक्षक-दल, सबसे पीछे राजमहल के रक्षा-दल थे। आराम से यात्रा करते हुए उन लोगो ने गोम्मटराय नाम से प्रसिद्ध चामुडराय से नव-निर्मित बेलुगोल ग्राम मे मुकाम किया।

दूसरे दिन प्रात काल उठकर कटवप्र और इन्द्रगिरि के बीच नवनिर्मित ग्राम से लगे सुन्दर पुष्करणी दैवर-बेलुगोल मे नहा-धोकर बाहुबलि स्वामी के दर्शन करने के लिए सबने इन्द्रगिरि पहाड का आरोहण किया। अधिक उम्र होने पर भी मारसिंगय्या-माचिकब्बे कही बैठकर सुस्ताये बिना ही पहाड पर चढ चले। हँस-मुख, स्वागत करने के लिए तैयार खडे विराट् रूप बाहुबलि स्वामी के प्रभावलय से राजित विशाल मुखमण्डल का स्मरण करते हुए आरोहण करनेवालो को थकावट कहाँ ?

बाहुबलि की परिक्रमा कर उनके चरणारविंद मे साष्टाग प्रणाम समर्पित किया। इस विराट् मूर्ति को चामुडराय द्वारा निर्मित कराये एक सदी बीत चुकी

थी। इस मूर्ति ने इस अवधि मे उतने ही ग्रीष्म बिताये, फिर भी ऐसा लग रहा था कि मानो अभी हाल प्रतिष्ठित हुई है, उसकी चमक मे किंचिन्मात्र भी कमी नही हुई है। मूर्ति के चरणो के अँगूठे देखते हुए वे दोनों छोटे बच्चे हाथ जोडे खडे-खडे सोचते रहे कि वह अँगूठा उनके शरीर का कितना अश है, इस परिमाण के अनुसार मूर्ति की ऊँचाई कितनी होगी। उस ऊँचाई तक पहुँचकर उस मुस्कुराहट मे युक्त सुन्दर मुखडा देखकर उसकी मुस्कुराहट के आनन्द का अनुभव कर सकेंगे ? आदि-आदि ये बच्चे सोचते रहे होंगे। बहुत समय तक हाथ जोडे खडे रह-कर पीछे की ओर खिमकने-खिसकने कुछ दूर जाकर मूर्ति के पैरो से मस्तक तक नजर दौडायी। हाँ, यह तो नग्न मूर्ति है। फिर भी असह्य भावना नही आयी, एकटक देखते ही रहे।

बडे बुजुर्ग इन बच्चो को देखते हुए दूर बैठे रहे।

शान्तला ने हाथ जोडे, आँखें बन्द की। गाने लगी—

"गोम्मट जिनन नरनागामर दितिज खचरपति पूजितन।
योगाग्नि हत स्मरन योगिध्येयननमेयन स्तुतियिसुवें।।"

इस पद को भूपाली राग मे गाया, भगवान् की स्तुति की। बैठे हुए सब उठ खडे हुए और हाथ जोडकर प्रणाम किया। बिट्टिदेव भी हाथ जोडे आँख मूँदे रहा। श्रुति-बद्ध और स्वरयुक्त मुक्त कठ से शान्तला ने गाना गाया, उस गान-लहरी से दसो दिशाएँ गूँज उठी। गिरि-शिखर पर भक्ति-परवश हो तादात्म्य भाव मे गाये उस गान ने, उस स्तुति ने, मानो भगवान् के हृदय मे एक अनुकप उत्पन्न कर दिया हो, ऐसा भान हो रहा था। वास्तव मे वहाँ जितने जन उपस्थित थे वे सभी एक अनिर्वचनीय आनन्द से पुलकित हो रहे थे।

बाहुबलि के चरणपूजक पुजारी ने स्त्रोत-पाठ के बाद शान्तला के पास आकर कहा, "सगीत शारदा ने तुम पर प्रसन्न होकर पूर्ण अनुग्रह किया है, अम्माजी, आज तुमने बाहुबलि के हृदय को जीत लिया है।" फिर उन्होने उस बच्ची के सिर पर आशीर्वादपूर्ण हाथ रखते हुए उसके माता-पिता हेग्गडे दम्पति की ओर मुड-कर कहा, "आपके और आपके पूर्वजो के पुण्य प्रभाव के कारण यह अम्माजी आपकी बेटी होकर जन्मी है। देश-विदेशो से अनेक प्रख्यात गायक आये, उन्होने स्वामी बाहुबलि को सन्तुष्ट करने के अनेक प्रयत्न किये। अपनी विद्या-प्रौढिमा का प्रदर्शन भी किया। लोगो के प्रशसा-पात्र भी बने। मैंने भी बहुतो के स्तुतिपरक गायन सुने हैं और आनन्द भी पाया। मगर इस अम्माजी के स्वर-माधुर्य मे एक दैवी शक्ति है जो अन्यत्र दुर्लभ है। आप भाग्यवान है। बाहुबलि की कृपा से अम्माजी एक योग्य घर की गृहिणी होकर पितृकुल और श्वसुर-कुल दोनो की कीर्ति को बढाने लायक बनेगी, इसमें कोई सदेह नही। वैरी से प्रेम कर सकनेवाले हमारे बाहुबलि स्वामी इस मासूम बच्ची को उठाकर अपने सिर पर बैठाकर नाच

उठेंगें। उनकी कृपा रही तो असाध्य भी आसानी से साध्य हो जायेगा। राजदृष्टि भी आप पर विशेष रूप से कृपालु है। ऐसी दशा मे कहना ही क्या है ?"

हेग्गडे मारसिंगय्या ने कहा, "हमारे महाराज प्रजावत्सल है। वे सभी से प्रेम करते है। हमपर विशेष प्रेम है, यह कहना ज्यादती होगी। उनकी कृपा और प्रेम के हम पात्र है, और उस कृपा और प्रेम का हम निर्वहण करने योग्य बने रहे, यही हमारा कर्तव्य है।"

"तो क्या महाराज जिस-तिस के साथ राजकुमार को भेजेगे ?" पुजारी के सवाल का उत्तर हेग्गडेजी से क्या मिल सकेगा ? वे मौन रहे।

परिस्थिति से परिचित राजकुमार बिट्टिदेव ने कहा, "इसमे महाराज की और हेग्गडेजी की इच्छा-अनिच्छा नही, मै स्वय अपनी इच्छा से आज्ञा लेकर इनके साथ आया हूँ।" उसे अपनी माता की बात याद आ गयी।

"बात तो वही ही हुई न।" पुजारी ने बात को टाल दिया।

बाहुबलि के प्रसाद को सबमे बाँट दिया गया। उसे प्रसाद के बदले भोजन ही कहना ज्यादा सगत होगा। प्रसाद स्वीकार करते वक्त भी बिट्टिदेव की आँखे उस भव्य बाहुबलि की मूर्ति पर ही लगी थी। बोकिमय्या राजकुमार की उस दृष्टि को पहचान चुका था। उसे उस दिन की चर्चा याद आयी। उन्होने पूछा, "आज राजकुमार के मन मे बाहुबलि की इस नग्नता के कौन-से भाव का स्फुरण हुआ है ?"

अन्य सभी लोगो की उपस्थिति मे इस प्रश्न के कारण राजकुमार के मन मे कुछ कशमकश पैदा हो गयी। उत्तर न देकर बोकिमय्या की ओर और अन्य उपस्थित जनो की ओर भी नजर दौडायी।

शान्तला ने परिस्थिति को समझा, और कहा, "गुरुवर्य ! इस विषय पर दोपहर के पाठ के समय चर्चा की जा सकेगी न ? स्वामी की सन्निधि मे नही। यह चर्चा करने का स्थान नही। भगवान् की सन्निधि मे अपने आपको अर्पित किये बिना फल-प्राप्ति नही होगी, यह आप ही ने कहा था। अब आप ही चर्चा का आरम्भ करे ?"

शान्तला का यह सवाल बाहुबलि के चरणसेवी पुजारी के मन मे काँटे की तरह चुभ गया। उसने कुतूहल से बोकिमय्या और शान्तला की ओर देखा। उसने सोचा कुछ गरमी पैदा होगी। परन्तु ऐसा कुछ नही हुआ।

"अम्माजी, तुम्हारा कहना सच है। आखिर मै भी तो मनुष्य हूँ न ? नई बात याद आती है तो पुरानी बात पिछड जाती है। तुम्हारा कहना ठीक है। यहाँ चर्चा करना ठीक नही।" कहकर बोकिमय्या ने अपनी सम्मति प्रकट की। प्रसाद स्वीकार करने के बाद सभी वहाँ से चले और पहाड पर से उतरकर अपने मुकाम पर पहुँचे।

दोपहर को पाठ-प्रवचन के पश्चात् बिट्टिदेव ने ही बात शुरू की।

"गुरुजी, मैं बाहुबलि का दर्शन अब दूसरी बार कर रहा हूँ। कभी पहले एक बार देखा जरूर था परन्तु उस समय मुझपर क्या प्रभाव हुआ था, सो तो याद नही। परन्तु मेरी माताजी कभी-कभी उस सम्बन्ध मे कहती रहती है कि सब जाने को तैयार होकर खडे थे तो भी मैं और थोडी देर देखने के इरादे से जिद् पकडकर वही खडा रहा था। वे मुझे वहाँ से जबर्दस्ती लाये थे। तब शायद मेरी उम्र चार-पाँच साल की रही होगी। मैंने ऐसा हठ क्यो किया सो मुझे मालूम नही। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती आयी, और तदनुसार ज्ञान भी बढने लगा तो बार-बार नग्नता की बात सुन-सुनकर एक असह्य भावना उत्पन्न हुई थी। इसीलिए उस दिन मैंने आपसे प्रश्न किया था। परन्तु आज बाहुबलि की वह नग्नता सह्य मालूम पडी। वह नग्नता असंस्कृत नही लगी।" खुले दिल से बिट्टिदेव ने कहा।

"इस भाव के उत्पन्न होने का क्या करण है ?"

"कारण मालूम नही, परन्तु जो भावना उत्पन्न हुई उसे प्रकट किया।"

"वह सान्निध्य का प्रभाव है। इसीलिए हमारे यहाँ क्षेत्र-दर्शन श्रेष्ठ माना गया है। हम कहते है कि ईश्वर सर्वांतर्यामी है। उसकी खोज मे हमे क्षेत्रो मे क्यो जाना चाहिए ? जहाँ हम है वही हमे वह नही मिलेगा ? यो कहकर व्यग्य करनेवालो की कमी नही है। अब राजकुमार समझ गये होंगे कि सान्निध्य से उत्पन्न भावना और दूर रहकर अनुभूत भावना, इन दोनो मे अन्तर क्या है ?"

"अन्तर तो है, परन्तु क्या जहाँ रहे वही भगवान् को जानना न हो सकेगा ?"

"हो सकेगा। व्यग्य वचन कहनेवालो को, कही भी रहे, ईश्वरीय ज्ञान का बोध नही होगा। कुतर्क करनेवालो मे निष्ठा और विश्वास का अभाव होता है। जहाँ निष्ठा और विश्वास हो वहाँ ज्ञानबोध अवश्य होता है। परन्तु इसके लिए सयम और सहनशक्ति की आवश्यकता होती है। सबमे दोनो भाव नही रहते। इसीलिए क्षेत्र की महत्ता है। ज्ञान के लिए यह सुगम मार्ग है।"

"अनुभव से आज यह तथ्य विदित हुआ।"

शान्तला दत्तचित्त होकर गुरुदेव और बिट्टिदेव के इस सभाषण को सुन रही थी। उसने कहा, "गुरुदेव कूडली क्षेत्र मे जब हम शारदा माई के दर्शन करने गये थे तब वहाँ के पुजारीजी ने जो कहा था, उसे सुनने के बाद मेरे मन मे एक शका पैदा हो गयी। आप सब लोग जब चुप रहे तो बोलना उचित नही है, यह सोचकर मैं चुप रही। अब लगता है कि उस विषय के बारे मे पूछकर समझने का मौका आया है। क्या मैं पूछ सकती हूँ ?"

"पूछो अम्माजी, किसी भी तरह की शका को मन मे नही रहने देना चाहिए। अगर शंका रह जाती है तो वह विश्वास की जड को ही उखाड देती है।"

"ब्रह्मलोक जाने के लिए उद्यत सरस्वती को शकर भगवत्पाद ने नवदुर्गा मन्त्र से अपने वश मे कर लेने की बात पुजारीजी ने कही थी। क्या इस तरह देवी को वश मे कर लेना सम्भव हो सकता है? लगाम कसकर अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ चाहे चलाये जानेवाले घोडे की तरह देवताओ को ले जाना सम्भव है?" शान्तला ने पूछा।

"अपरोक्ष ज्ञानियो की शक्ति ही ऐसी होती है। उनकी उस शक्ति से क्या-क्या साधा जा सकता है, यह कहना कठिन है। जो दु साध्य है और जिसे साधा ही नही जा सकता वह ऐसे महात्माओ से साधा जा सकता है। वह साकेतिक भी हो सकता है। शकर भगवत्पाद महान् ज्ञानी थे, इसमे कोई सदेह नही। उनका वशवर्ती ज्ञान ही सरस्वती का सकेत हो सकता है। यो समझना भी गलत नही होगा। वशीकरण को जाननेवाले जिसे वश मे कर लिया है उसे, सुना है, चाहे जैसे नचा सकते है। ऐसी हालत मे सात्विक शक्तिसम्पन्न ज्ञानी के वशवर्तिनी होकर ज्ञान की अधिदेवी शारदा रही तो इसमे कोई आश्चर्य की बात नही। साधारण लोग जिसे स्थूल चक्षु से नही देख सकते ऐसी मानवातीत अनेक वस्तुओ का ज्ञान-चक्षुओ से दर्शन हो सकता है। इसलिए ऐसे विषयो मे शकित नही होना चाहिए। इन चर्म-चक्षुओ के लिए जो गोचर होना है उतना ही सत्य नही है। इन चर्मचक्षुओ से हम जितना जो कुछ देखते है वह दूसरो से देखा जा सकता है। इसमे जो परे है वह अविश्वसनीय है, ऐसा नही समझना चाहिए। दैवी शक्तियो का विश्लेषण, लौकिक अथवा भौतिक दृष्टि से करना ही उचित नही। इसके अलवा इस विषय के लिए कोई आधिकारिक सूत्र नही, यह भक्ति का ही फल है, विश्वास का निरूपण है। इसलिए लगाम कसे घोडे का साम्य यहाँ उचित नही। मैने पहले भी एक बार तुमसे कहा था। मानव-देवताओ की पक्ति मे जैसे हमारे बाहुबलि है वैसे ही मानव-देवताओ मे शकर भगवत्पाद भी एक है। तुम्हे याद होगा न?"

"हाँ, याद है।"

"तो फिर तुम्हे सदेह क्यो हुआ?"

"मत्र बल से देवी वशवर्तिनी न हो सकेगी, इस भावना से।"

"मत्र निमित्त मात्र है। यहाँ मन प्रधान है। सदुद्देश्यपूर्ण निस्वार्थ लोक-कल्याण भावना मे प्रेरित सभी कार्यों के लिए देवता वशवर्ती ही रहते है। इसी कारण से देवी शकर भगवत्पाद के वशवर्तिनी होकर उनके साथ चली आयी है।"

"आपकी बात सत्य ही होगी, गुरुवर्य। उस दिन वहाँ देवी के सम्मुख जब मैने नृत्य किया था तब मेरे घुँघुरू के नाद के साथ एक और घुँघुरू का नाद मिल-कर गतिलीन हो गया था। शारदा देवी जब भगवत्पाद के साथ आती रही, तब सुना है, घुँघुरू का नाद सुनायी पडा था। पुजारीजी ने उस दिन जो यह बात कही

वह सत्य प्रतीत हो रही है। परन्तु तब अगर यह बात कहती तो लोग हँसेगे यह सोचकर चुप रही।"

"देवी के गले से खिसककर जो माला तब नीचे खिसकती आयी उसका कारण अब समझ मे आया। पुजारीजी ने जो बात कही वह सत्य है, अम्माजी। देवी तुमपर कृपालु है। तुम्हे वरदान दिया है।"

"बलिपुर से वह स्थान कितनी दूर पर है?" बिट्टिदेव न पूछा।

"तीन-चार कोस होगा। क्यो?" बोकिमय्या ने पूछा।

"कभी अगर बलिपुर आना होगा तो मै भी वहाँ हो आ सकूँगा ओर देवी का दर्शनलाभ पा सकूँगा, इस इरादे से पूछा।" बिट्टिदेव ने कहा।

"अभी हमारे साथ चल सकेगे न?" शान्तला न उत्साह स पूछा।

"अब सम्भव नही। मुझे आज्ञा नही है। मुझे सोसेऊरु लौट जाना है, यह पिताजी की आज्ञा है।"

"तो कब आएँगे?" शान्तला ने दूसरा प्रश्न किया।

"वैसे हमको राजमहल से अकेले कही नही भेजेगे। हमारे गुरुजनो का कभी इस तरफ आने का कार्यक्रम बनेगा तब उनके साथ आने की सहूलियत हो सकेगी।"

ये छोटे, बडो के प्रवास के कार्यक्रमो का निर्णय करेगे भी कैसे? अनपेक्षित ही अकुरित इस दर्शनाभिलाषा का अब तो उपसहार ही करना होगा। बात का आरम्भ कही हुआ और अब जा पहुँचे और कही। अपने से सीधा सम्बन्ध इस बात से न होने के कारण बोकिमय्याजी इसमे दखल नही करना चाहते थे। इसलिए वे मौन रहे। उन लोगो ने भी मौन धारण किया। पता नही और कितनी देर वे वहाँ बैठे रहे या किसी अन्य विषय को लेकर चर्चा करते रहे कि इतने मे रेविमय्या उधर पहुँचा और बोला, "उठिए, उस छोटे पहाड पर भी जाना है।"

उस मौनावृत स्थान मे एक नये उत्साह ने जन्म लिया। सब उठ खडे हुए।

इन्द्रगिरि से भी अधिक आसानी से सब कटवप्र पहाड पर चढ गये। वहाँ के मन्दिर 'चन्द्रगुप्त बसदि', 'चन्द्रप्रभ' और 'चामुण्डराय बसदि' को देखने के बाद सब आकर एक प्रस्तर पर विश्राम करने बैठे। तब सूर्यास्त का समय हो गया था। सूर्य की लाल सुनहली किरणो की आभा बाहुबलि के मुखारविन्द पर पड रही थी और इस आभा ने मूर्ति के मुखारविन्द के चारो ओर एक प्रभावलय का सृजन

किया था। शान्तला ने इस प्रभावलय मे प्रकाशमान बाहुबलि के मुखारविन्द को पहले पहल देखा। उसने कहा, "देखिए गुरुजी, बाहुबलि स्वामी के मुखारविन्द पर एक नयी ही प्रभा का उदय हुआ है।"

"हाँ अम्माजी, प्रभा से सदा द्युतिमान बाहुबलि स्वामी के मुखारविन्द पर प्रतिदिन सुबह इस तरह की नयी ज्योति उत्पन्न होती है। दिगम्बर इस बाहुबलि स्वामी के प्रतिदिन की इस नित्यसत्य प्रभा के कारण यह निष्ठावान् प्रभावाहक भगवान् सूर्य है। आवरण रहित इस विराट् रूप के लिए कभी अन्धकार ने आवृत नही किया है। चाहे कही से तुम स्वामी का दर्शन कर लो वही भव्यता उभरकर दिखायी देगी। ध्रुवतारे को देखते हुए खडे स्वय ध्रुवतारे की तरह प्रकाशमान इन स्वामी का यह रूप अब जिधर खडा है, उसी प्रस्तर मे से उदित यही रूप, चामुण्डराय को दिखायी पडा था।" बोकिमय्या का ध्यान यो ही सहज भाव से भूतकाल की ओर सरक गया।

"तब क्या इस मूर्ति को उसी स्थान पर गढा गया है ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"हाँ तो, नीचे गढकर मूर्ति को ऊपर ले जाकर रखी गयी है—ऐसा आप समझते है ?" बोकिमय्या ने पूछा।

"मान भी ले कि, नीचे गढी ही तो, उसे बिना विकृत किये ऊपर ले जाना सम्भव हो सकता था ?" शान्तला ने गुरु की बात का समर्थन करते हुए कहा।

"सम्भवत चामुण्डराय को अपने नाम से निर्मित करवाये उस मन्दिर के उसी स्थान से इन्द्रगिरि की उस चट्टान पर बाहुबलि की मूर्ति का दर्शन हुआ होगा। इसीलिए यह मूर्ति और यह मन्दिर जहाँ निर्मित है वह स्थान बहुत ही पवित्र है। अपनी माता की इच्छा को पूरा करने के इरादे से पोदनपुर की यात्रा पर निकले चामुण्डराय को मध्यवर्ग मे ही यही, इसी स्थान पर भगवान् ने दर्शन दिये, इसी से यही मूर्ति की स्थापना हुई। वहाँ शकर विद्याशकर हुए, यहाँ चामुण्डराय गोम्मटराय बने।" बोकिमय्या ने कहा।

"चाहे सम्प्रदाय कोई भी हो भक्ति का फल इसी तरह से मिलना है। क्या ये दोनो स्थान इस बात की गवाही नही दे रहे है ?" शान्तला ने कहा।

"हाँ अम्माजी, इस सबके लिए मूल कारण निश्चल विश्वास है। इस निश्चल विश्वास की नीव पर ही भक्त की सब कल्पनाएँ ईश्वर की कृपा से साकार हो उठती है।"

"मतलब यह कि सभी धर्म एक ही आदर्श की ओर सकेत करते है—है न ?"

"सभी धर्मो का लक्ष्य एक ही है। परन्तु मार्ग भिन्न-भिन्न है।"

"यदि ऐसा है तो 'मेरा धर्म श्रेष्ठ है—मेरा धर्म ही श्रेष्ठ है'—कह-

कर वाद-विवाद क्यों करना चाहिए ? इस वाद-विवाद के फलस्वरूप एक मानसिक अशान्ति क्यों मोल ली जाय ? धर्म का आदर्श मन को शान्ति और तृप्ति देना है। उसे अशान्ति और अतृप्ति का कारण नहीं बनना चाहिए। है न ?" शान्तला ने पूछा।

"सच है अम्माजी ! परन्तु मानव का मन बहुत कमज़ोर है। इसलिए वह बहुत जल्दी चचल हो जाता है। वह बहुत जल्दी स्वार्थ के वशीभूत हो जाता है। साथ ही 'मैं मेरा' के सीमित दायरे मे वह बँध जाता है। उस हालत मे उस मन को कुछ और दिखायी ही नही देता और कुछ सुनायी भी नही पडता। उसके लिए दुनिया वही और उतनी ही प्रतीत होती है। यदि नया कुछ दिखायी पडा या सुनायी पडा तो वह उसके लिए क्षुद्र प्रतीत होने लगता है। तब वाद-विवाद की गुजाइश निकल आती है। इन सबका कारण यह है कि हम ऐसी कच्ची नीव पर अपने विश्वास को रूपित करने लगते हैं।" बोकिमय्या ने कहा।

"तो आपका अभिमत है कि मजबूत नीव पर स्थित विश्वास यदि रूपित हो तो यह वाद-विवाद नही रहेगा ?" बिट्टिदेव बीच मे पूछ बैठा।

"वाद-विवाद हो सकते है। वह गलत भी नही। परन्तु जब विश्वास सुदृढ होता है तब उसमे प्राप्त होनेवाला फल और है। उससे तृप्ति मिलती है और इस तृप्ति मे एक विशाल मनोभाव निहित रहता है। तात्पर्य यह कि वाद-विवाद कितना भी हो उसमे कडुवापन या अतृप्ति पैदा नही होती। अब उदाहरण के लिए अपने हेग्गडेजी के परिवार को ही देखिए। हेग्गडे शिवभक्त है, हेग्गडती जिन भक्त है। एक दूसरे के लिए अपने विश्वास को त्याग देने की जरूरत ही नही पडी है। भिन्न-भिन्न मार्गावलम्बी होने के कारण पारिवारिक स्थिति मे असन्तोष या अशान्ति के उत्पन्न होने की सम्भावना तक नही पैदा हुई है। है न हेग्गडेजी ?"

"कविजी का कथन एक तरह से सही है। परन्तु हमे इस स्थिति तक पहुँचने के लिए कई कडुआहट के दिन गुजारने पडे।" मारसिगय्या ने कहा।

"कडुआहट आये बिना रहे भी कैसे ? वे कहते है, वह धर्म जिस पर उनका विश्वास है वही भारत का मूल धर्म है, हम जिस पर विश्वास रखते है वह परिवर्तित धर्म है। ऐसा कहेगे तो क्या हमारे मन को बात चुभेगी नही ?" किसी पुराने प्रसग की बात स्मृति-पटल पर उठ खडी हुई-सी अभिभूत माचिकब्बे ने कहा।

यह देखकर कि बडे भी इस चर्चा मे हिस्सा ले रहे हैं, उन छोटो मे रुचि बढी और वे भी कान खोलकर ध्यान से सुनने लगे।

"कविजी, आप ही कहिए, जिन धर्म का आगमन बाद मे हुआ न ?" मारसिगय्या ने पूछा।

"कौन इन्कार करता है ।" बोकिमय्या ने उत्तर दिया ।

"जिन धर्म बाद मे आया ठीक, परन्तु क्या इसी वजह से वह निम्न-स्तरीय है ? आप ही कहिए !" माचिकब्बे ने फिर सवाल किया ।

"कौन ऊँचा, कौन नीचा—इस ऊँच-नीच की दृष्टि को लेकर धर्म-जिज्ञासा करना ही हमारी पहली और मुख्य गलती है । भारतीय मूल धर्म जैसे उद्भूत हुआ वह उसी रूप मे कभी स्थिर नही रहा । जैसे-जैसे मानव के भाव और विश्वास बदलते गये तैसे-तैसे वह भी बदलता आया है । मानवधर्म ही सब धर्मों का लक्ष्य है और आधार है । हम धर्मों को जो भिन्न-भिन्न नाम देते है वे उस लक्ष्य की साधना के लिए अनुसरण करने के अलग-अलग मार्ग-मात्र है । जिनाराधना और शिवाराधना दोनो का लक्ष्य एक ही है । सत्य, शिव, सुन्दर की आराधना ने शक्ति की आराधना का रूप जब धारण किया तब वह मानव के स्वार्थ की ओर अनजाने ही अपने-आप परिवर्तित हो गया । इसके फलस्वरूप हिंसा व्यापक रूप से फैल गयी । हिंसा मानवधर्म की विरोधी है । इसीलिए अहिंसा तत्त्व प्रधान जैन धर्म का आविर्भाव हुआ और मानवधर्म की साधना के लिए एक नये मार्ग का सूत्रपात हुआ । जानते हुए भी हिंसा नही करनी चाहिए—इतना ही नही, अनजाने मे भी हिंसा अगर हो तो उसके लिए प्रायश्चित करके उस हिंसा से उत्पन्न पाप से मुक्त होने का उपदेश दिया । आशा और स्वार्थ दोनो मानव के परम शत्रु है । इन्हे जीतने का मार्ग 'त्याग' मात्र है । यही श्रेष्ठ मार्ग है । यह कोई नया मार्ग नहीं । हमने भारतीय-धर्म की भव्य परम्परा मे 'त्याग' को बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान इसीलिए दिया है । अतएव सब कुछ त्याग करनेवाले हमारे ऋषि-मुनि एव तपस्वी हमारे लिए पूज्य है एव अनुकरणीय है । वेद ने भी स्पष्ट निर्देश नही दिया कि हमे किसका अनुसरण या अनुगमन करना चाहिए । लेकिन यह कहा—अथ यदि त कर्म विचिकित्सा वा वृत्ति विचिकित्सा वा स्यात्, ये तत्र ब्राह्मणा समदर्शिन, युक्ता आयुक्ता, अलूक्षा धर्मकामा स्यु, यथा ते तत्र वर्तेरन, तथा तत्र वर्तेथा ।' बताया ।"

"इसका अर्थ बताइए, कविजी ।" मारसिगय्या ने पूछा ।

"हम जिन कर्मों का आचरण करते है, जिस तरह के व्यवहार करते है, इसके विषय मे यदि कोई सन्देह उत्पन्न हो तो युक्तायुक्त ज्ञान सम्पन्न, सदा सत्कर्मनिरत, क्रूरता रहित, सद्गुणी एव दुर्मार्गानुसरण करनेवालो के प्रभाव से मुक्त, स्वतन्त्र मार्गावलम्बी ब्रह्मज्ञानी महात्मा जैसे बरतते है, वैसा व्यवहार करो, यह इसका भाव है ।" कवि बोकिमय्या ने कहा ।

"यह इस बात की सूचना देती है कि हमे किनका अनुकरण करना चाहिए और जिनका अनुकरण किया जाय उनका किस तरह रहना चाहिए, इस बात की भी सूचना इससे स्पष्ट विदित है । है न गुरुजी ?" शान्तला ने पूछा ।

"हाँ, अम्माजी, जब वे जो अनुकरणीय हैं, युक्तायुक्त ज्ञान रहित होकर सत्कार्य करना छोड देते हैं और क्रूर कर्म एव हिंसा मार्ग का आचरण करने लगते है, तब वे अनुकरणीय कैसे बनेगे ? उनके ऐसे बन जाने पर मानव धर्म का वह राज-मार्ग गलत रास्ता पकडता है । तब फिर अन्य सही मार्ग की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है । उस मार्ग को दर्शानेवाले महापुरुष के नाम से लोग उस धर्म को पुकारते है, वह नया धर्म बनता है ।"

"नये धर्म के नाम से जो ऊधम मचता है वही आपसी सघर्ष का कारण बनता है न ?" मारसिंगय्या ने प्रश्न किया ।

"हाँ, अब देखिए, चोल राज्य मे ऐसा सघर्ष हो रहा है सुनते हैं । वहाँ के राजा शैव है । जो शिवभक्त नही उन्हे बहुत तग किया जा रहा है । शैवधर्म को छोडकर अन्य धर्म के अनुसरण करनेवालो को गुप्त रीति से अपने घरो मे अपने धर्म का आचरण करना पड रहा है ।" बोकिमय्या ने बताया ।

"यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे होय्सल राज्य मे उस तरह का बन्धन नही। किसी से डरे बिना निश्चिन्त होकर हम अपने धर्म का पालन कर सकते है । जैन प्रभुओ ने शैव भक्तो को कभी सन्देह की दृष्टि से नही देखा । जब उनमे किसी तरह का सन्देह ही नही तो हम अपनी निष्ठा को छोडकर क्यो चलने लगे ?" मारसिगय्या ने कहा ।

"धर्म भिन्न-भिन्न होने पर भी परस्पर निष्ठा-विश्वास ही मानव का लक्ष्य है, इस लक्ष्य की साधना ही मानव-समाज का ध्येय बनना चाहिए। ईश्वर एक है । हम अपनी-अपनी भावनाओ के अनुसार मूर्ति की कल्पना कर लेते हैं । भिन्न-भिन्न रूपो मे कल्पित अपनी भावना के अनुरूप मूर्तियो की पूजा निडर होकर अपनी आराध्य मूर्ति को साक्षात् करने का मौका सबको समान रूप से मिलना चाहिए। यदि राजाओ के मनोभाव विशाल न हो तो प्रजा सुखी नही होगी। जिस राज्य की प्रजा सुखी न हो वह राज्य बहुत दिन नही रहेगा। यह सारा राज्य प्रजा का है । मै इसका रक्षक हूँ, मै सर्वाधिकारी नही हूँ, मैं प्रजा का प्रतिनिधि मात्र हू, ऐसा मानकर जो राजा राज्य करता है उसका राज्य आचन्द्रार्क स्थायी रहेगा । जो राजा यह समझता है कि मै सर्वाधिकारी हूँ, प्रजा मेरी सेवक मात्र है, जैसा मैं कहूँगा वैसा उन्हे करना होगा, ऐसी स्थिति मे तो वह खुद अपने पैरो मे आप कुल्हाडी मार लेता है । 'मै केवल प्रतिनिधि मात्र हूँ, प्रजा की धरोहर का रक्षक मात्र हूँ, राज्य प्रजा का है' ऐसा मानकर जो राजा राज करता है वह निर्लिप्त रहकर जब चाहे तब उसका त्याग कर सकता है । अब हम जिस पहाड पर बैठे है उसका नाम चन्द्रगिरि है । यह इसका दूसरा नाम है । यह नाम इसे इसलिए मिला है कि यह उस महान् चक्रवर्ती राजा के त्याग का प्रतीक है । हिमा-लय से लेकर कुन्तल राज्य तक फैले इस विशाल साम्राज्य का त्याग करके यहाँ

आकर व्रतानुष्ठान मे रत रहनेवाले सम्राट् चन्द्रगुप्त ने यही से इन्द्रलोक की यात्रा की थी। इसीलिए इस कटवप्र का नाम 'चन्द्रगिरि' पडा।"

"आठवे तीर्थकर चन्द्रप्रभ मूर्ति के इस पर्वत पर स्थापित होने के कारण ही न इसका नाम 'चन्द्रगिरि' हुआ ?" शान्तला ने पूछा।

"हो सकता है। परन्तु किवदन्ती तो यह है कि उस राजा का नाम इस पहाड के साथ जुडा हुआ है। तुम्हारा कहना भी युक्तियुक्त ही नही प्रशसनीय भी है, ऐसा लगता है।" बोकिमय्या ने कहा।

बिट्टिदेव मौन हो सुनता रहा। उसके मन मे बोकिमय्या की कही राज्य और राजपद की सम्बन्धित बाते थी, जो बार-बार चक्कर काट रही थी।

"गुरुजी, महान हठी नन्दो मे साम्राज्य छीनकर अपने अधीन करनेवाले चन्द्रगुप्त अर्थशास्त्रविशारद कौटिल्य पडित के प्रिय शिष्य थे न ? महान् मेधावी शास्त्रवेत्ता चाणक्य के आज्ञाधारी थे न ?" शान्तला ने पूछा।

"हाँ, अम्माजी।"

"तब वह चन्द्रगुप्त जिनभक्त कब बना ? क्यो बना ? यहाँ क्यो आया ? राज्य को क्यो छोडा ? क्या राज्यभार सँभालते हुए अपने धर्म का पालन नही कर सकता था ? इस बात मे कही एक-सूत्रता नही दिखती। इसपर विश्वास कैसे किया जाय ?"—इस तरह शान्तला ने सवालो की एक झडी ही लगा दी।

बिट्टिदेव के अन्तरग मे जो विचारो का सघर्ष चल रहा था वह थोडी देर के लिए स्तब्ध रह गया और उसका ध्यान उस ओर लग गया।

बोकिमय्या जितना ऐतिहासिक तथ्य इस विषय मे जानता था बताया और आगे कहा, "चौबीस वर्ष राज्य करने के बाद इस राजकीय लौकिक व्यवहारो मे विरक्त हो जाने की भावना उनके मन मे उत्पन्न हुई तो उन्होने त्याग को महत्त्व देकर राज्य की सीमा से बाहर दूर जाकर रहने की सोची होगी। क्योकि निकट रहने पर राज्याधिकार की ओर मन आकर्षित हो सकता है, इसीलिए इतनी दूर यहाँ आकर रहे तो इसमे कोई आश्चर्य नही। मनुष्य जब आशा-आकाक्षाओ के अधीन होकर उनका शिकार बनता है तो अन्य सब बातो की ओर अन्धा होकर अपनी आशा-आकाक्षाओ को साधने की ओर लगातार सघर्ष करने लगता है। वर्षों तक सघर्ष करने के बाद अपनी साधना के फलस्वरूप उपलब्ध समस्त प्राप्तियो को क्षणभर मे त्यागने को तैयार हो जाता है, ऐसे मगलमय मुहूर्त के आने की देर है। क्योकि ज्ञान की ज्योति के प्रकाश मे उसे सारी उपलब्धियाँ महत्त्वहीन प्रतीत होने लगती है। कब और किस रूप मे और क्यो यह ज्ञान-ज्योति उसके हृदय मे उत्पन्न हुई, इसकी ठीक-ठीक जानकारी न होने पर भी, इस ज्योति के प्रकाश मे जो भी कर्म वह करने लगता है, वह लोक-विदित होकर मानवता के स्थायी मूल्यो का एव चरम सत्य का उदाहरण बन जाता है। साधारण जनता के

लिए अनुकरणीय हो जाता है। चन्द्रगुप्त के इस महान् त्याग से यहाँ उनकी महत् साधना ने स्थायी रूप धारण किया। उन्होंने यहाँ आत्मोन्नति पाकर सायुज्य प्राप्त किया, इतना स्पष्ट रूप से विश्वसनीय हो सकता है।"

"उन्होंने आत्मोन्नति प्राप्त की होगी; परन्तु इससे क्या उनका कर्तव्य-लोप नहीं हुआ ?" राजकुमार बिट्टिदेव सहसा पूछ बैठा।

"इसमे कर्तव्य-लोप क्या है, राजकुमार !" बोकिमय्या ने जवाब मे पूछा।

"अपना रक्षक मानकर उनपर इतना बड़ा विश्वास रखनेवाली समस्त प्रजा को क्षणभर मे छोड़ आने से कर्तव्य-लोप नही होता ? कर्तव्य निर्वहण न करने मे उनकी कमजोरी का परिचय नही मिलता ? राजा का पूरा जीवन आखिरी दम तक प्रजा-हित के ही लिए धरोहर है न ?"

"आपके कथन का भी महत्त्वपूर्ण अर्थ है। परन्तु हमे एक बात नही भूलनी चाहिए। जो जन्मता है उसे मरना भी होता है, है न ?"

"हाँ।"

"मरण कब होता है, इस बात की सूचना पहले से तो नही मिलती ?"

"नही।"

"क्या सभी मानव अपनी इच्छा के अनुसार मरते हैं ?"

"नही।"

"ऐसी हालत मे जब अचानक राजा की मृत्यु हो जाय तो उसकी रक्षा मे रहनेवाली प्रजा की देखभाल कौन करेगा ! जो मरता है उस पर कर्तव्य-लोप का आरोप लगाया जा सकता है ?"

"मरण हमारा वशवर्ती नही। परन्तु प्रस्तुत विषय तो ऐसा नही है। यह स्वयकृत है। जो वशवर्ती नही उसकी तुलना इस स्वयकृत के साथ करना ठीक है ?"

"दोनो परिस्थितियो का परिणाम तो एक ही है न। अतएव निष्कर्ष यह है कि कर्तव्य-निर्वहण के लिए भी कुछ सीमा निर्धारित है। इस निर्धारित सीमा मे रहने न रहने का स्वातन्त्र्य हर व्यक्ति को होना चाहिए। इस व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को छीनने का अधिकार किसी को नही। तिस पर भी आत्मोन्नति के सकल्प से किये जानेवाले सर्वसग परित्याग पर कर्तव्य-च्युति का दोष नही लगता। क्योकि कर्तव्य निर्वहण की उचित व्यवस्था करके ही वे सर्वसग परित्याग करते हैं। वे कायरो की तरह कर्तव्य से भागते नही। मौर्य चक्रवर्ती चन्द्रगुप्त भी योग्य व्यवस्था करके ही इधर दक्षिण की ओर आये होंगे।"

"नही, सुनने मे आया कि उनके गुरु भद्रबाहु मुनि ने मगध राज्य मे बारह वर्ष तक भयकर अकाल के पड़ने की सूचना दी थी जिससे डरकर बहुत-से लोगो को साथ लेकर वह चक्रवर्ती दक्षिण की ओर चले आये।"

"लोग कैसी-कैसी कहानियाँ गढते है ! यह तो ठीक है कि भद्रबाहु मुनिवर्य त्रिकाल ज्ञानी थे। उन्होने कहा भी होगा। उनके उस कथन पर विश्वास रखने वालो को उन पर दया करके उन्होन साथ चलने के लिए कहा भी होगा। उस विश्वास के कारण कई लोग आये भी होगे। परन्तु इसे भय का आवरण क्यो दें ? वास्तविक विषय को तो कोई नहीं जानता। इस तरह भाग आनवाला प्रभाचन्द्र नामक मुनि हो सकता है। वह तो भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त से आठ सौ वर्ष बाद का व्यक्ति है। उसने भी इसी कटवप्र पहाड पर 'सल्लेखनव्रत' किया, सुनते है। त्रिकाल ज्ञानी भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त को उनके द्वारा दीक्षित होने के बारे मे अनेको ने लिखा है। परन्तु कथा के निरूपण विधान मे अन्तर है। इसलिए चन्द्रगुप्त की दीक्षा का लक्ष्य जब त्याग ही है तो इन कही-सुनी कथाओं का कोई मूल्य न भी दे तो कोई हर्ज नही। इसी पहाड मे भद्रबाहु गुफा भी है। उसमे उस महामुनि का पदछाप भी है। उस चरणछाप की पूजा चन्द्रगुप्त न की थी, ऐसी भी एक कहानी है। भद्रबाहु यहाँ आये ही नही। अकाल पीडित राज्य मे खुद रहकर अपने शिष्याग्रणी चन्द्रगुप्त के नेतृत्व मे शिष्यों को पुन्नाट राज्य मे भेजकर स्वय उज्जयिनी मे रहकर वहाँ सायुज्य प्राप्ति की, ऐसी भी एक कथा है। इसलिए उनकी साधना की उपलब्धि मात्र की ओर ध्यान देना सही है। ऐसा समझने पर कि गुरु की आज्ञा पालन करने व इरादे से दक्षिण की ओर प्रस्थान किया, उसमे कायरता की बात कहाँ उठती है ?"

"आपके इस कथन मे यह विदित हुआ कि लिखनवाले के कल्पना-विलास के कारण वस्तुस्थिति बदल जाती है। इसके आधार पर किसी बात का निर्णय करना ठीक नही उचित भी नही।" बिट्टिदेव ने कहा।

"यो विचार कर सबकुछ का त्यागने की आवश्यकता नही। हमे भी अपने अनुभव के आधार पर उन कथानको मे से उत्तम विषयो को ग्रहण कर उन्हे अपने जीवन मे समन्वित कर उत्तम जीवन व्यतीत करने मे कोई आपत्ति नहीं। दूसरो के अनुभवो से उत्तम अशो का ग्रहण करना उचित होने पर भी सब प्रसगो मे उनका यथावत् अनुकरण ठीक नहीं। समय और प्रसग तथा परिस्थिति के अनुसार जिसे हम सही समझते है—उसके अनुसार चलना उत्तम है।"

"आपका यह कथन स्थितिकर्ता के समय-समय के अवतारो के लिए भी लागू हो सकता है न गुरुजी ?" अब तक केवल सुनती बैठी शान्तला ने पूछा।

"कहाँ-से-कहाँ पहुची अम्माजी ?"

"धर्मग्लानि जब होगी और अधर्म का बोलबाला अधिकाधिक व्याप्त जब हो जायेगा तब स्वय अवतरित होकर धर्म का उद्धार करने का वचन भगवान कृष्ण ने गीता मे स्पष्ट कहा है न ?"

"हाँ, कहा है।"

"उन्होंने पहले मत्स्यावतार लिया, फिर कूर्म, वराह और नरसिंह के रूप मे क्रमश अवतरित हुए। वामन, त्रिविक्रम का अवतार लेकर फिर अवतरित हुए, वही, परशुराम और राम बनकर पुन अवतरित हुए। फिर कृष्ण के रूप में भी अवतरित हुए अर्थात् एक जलचर मत्स्य के रूप से आरम्भ होकर उनके अवतार ज्ञानयोगी कृष्णावतार तक क्रमश बदलते ही आये। इस क्रमश' अवतार क्रिया पर ध्यान दिया जाय तो यह विदित होता है कि परिस्थिति को समझकर समय के अनुसार धर्म-संस्थापन को ही लक्ष्य बनाकर अवतरित इन अवतारों में कितना रूपान्तर है। है न गुरुजी ?" शान्तला ने कहा।

"तो मतलब यह हुआ कि छोटी हेग्गडती अवतारो पर विश्वास रखती है, यही न ?" बीच मे बिट्टिदेव ने कहा।

"हम विश्वास करते है—यह कहने से भी यो कहना अधिक उचित होगा कि दूसरो का जिसपर दृढ विश्वास है उसे हम योग्य मूल्य देते हैं।"

"अम्माजी, आपका यह दृष्टिकोण बहुत ही उत्तम है। हममे रूढ मूल विश्वास जो है उससे भिन्न किसी और विश्वास रखनेवालो के दृढ विश्वास पर छीटाकशी न करके उदार दृष्टि मे परखना वास्तव मे सही मानवधर्म है। यदि प्रत्येक व्यक्ति इसी नीति का अनुसरण करे तो धर्म द्वेष का रूप न धरेगा और अनावश्यक दुख क्लेश आदि के लिए भी स्थान नही रहेगा। खासकर राज्य-निर्वहण करनेवाले राजाओ के लिए यह अत्यन्त आवश्यक और अनुकरणीय नीति है। हम जिस पर विश्वास रखते है और हम जिस मार्ग का अनुसरण करते हैं वही सही है—ऐसा मानकर चले तो वे राज्य के पतन के लिए निश्चित आधार बन जाते हैं। इसीलिए मैंने पहले ही कहा कि इन हमारे हेग्गडेजी का परिवार एक बहुत ही उत्तम उदाहरण है। इसी तरह की प्रवृत्ति के कारण उनके परिवार मे शान्ति विराज रही है। हेग्गडेजी की विशाल दृष्टि के कारण हेग्गडतीजी को अपने विश्वास के अनुसार चलने मे कोई बाधा नही हो पायी है। इसी तरह से राजा की नीति और कर्तव्य बड़े पैमाने पर व्यापक है। जब भी मैं हेग्गडेजी के विषय मे सोचता हूँ तो मुझे वे सदा पूजनीय ही लगते है। यह उनके समक्ष उनकी प्रशसा करने की बात नही। यदि उनकी इच्छा होती तो हमे यहाँ भेजकर वे सीधे जा सकते थे। ऐसा न करके हेग्गडती के एव हमारे विश्वास को प्रोत्साहन देकर साथ चले आये। इतना ही नही, हम जहाँ भी गये वहाँ साथ रहकर हमारी पूजा-अर्चा मे भाग लेते रहे। सम्भवत जहाँ हम जिननाथ के दर्शन करते है वही वे अपने आराध्य शिव का दर्शन भी करते होगे। यो राज्य सचालन मे निरत राजाओ के मन मे भी विशाल भावना का उद्गम होना चाहिए। हेग्गडेजी मे यह विशालता है, इसे मैंने कई बार अनुभव किया है।"

"तो आपका तात्पर्य है कि बाहुबलि मे, चन्द्रप्रभ स्वामी मे, पार्श्वनाथ स्वामी

मे उन्होंने शिव को ही देखा, यही न ?" बिट्टिदेव ने सीधा सवाल किया।

"यदि हम विश्वास रखते है कि चामुण्डरायजी ने कठिन प्रस्तर खण्ड मे बाहुबलि का दर्शन किया तो इसे भी मानना ही चाहिए।" बोकिमय्या ने कहा।

अब तक हेग्गडे मार्रासगय्या मौन रहे, अब बोल उठे, "कविजी, हमारी जो प्रशसा की वह आपके बडप्पन का सूचक है। एक बात तो सत्य है, शिवजी को हमने मानव के आकार मे गढवाया नही, इसका कारण यही है कि वह निराकार, सर्वव्यापी है। अतएव हम उसकी आराधना लिंग के रूप मे करते है। शिव के आराधक हम जन्म मे ही विशालहृदयी है। इसी वजह से शेष अनेक धर्म मार्गों का उदय तथा उनका विकास हमारे इस पवित्र देश मे हो सका। परन्तु हम, हम ही रह गये है। हमारी वह मूल कल्पना सर्वत्र सबमे जिसे जैसा चाहे प्राप्त करने मे समर्थ है। यदि कुछ भी प्रतीक न हो तो हम तात्कालिक रूप से बालुका-लिग बनाकर पूजा करते है और उसी मे तृप्ति पाते है। उस ईश्वर का वह छोटा गोलाकार रूप ही बहुत बडा दिखायी दे सकेगा। क्योकि यह सब हमारे विश्वास के परिणामस्वरूप जो कल्पना करते है उस पर निर्भर करता है। इसी कारण से हरि, हर और ब्रह्मा, महासती अनुसूया को छोटे-छोटे बच्चो जैसे दिखे। प्रवृद्ध आशा-युक्त कलुषित मन के लिए नग्नता अतिरजित अथवा असह्य होकर दीखती है। परन्तु परिशुद्ध बाल-मन के लिए नग्नता सुन्दर एव सह्य लगती है। दिगम्बर तत्त्व मे यह बाल-मन निहित होने के कारण बाहुबलि की यह मूर्ति बालोचित सुन्दरता से विराजती हुई सह्य लगती हैं। अनुसूया ने जैसे भगवान को देखा और अपने को दर्शाया उसी तरह बाहुबलि स्वामी हमे दिखायी पडते है। नाम अलग है, सन्निवेश भी भिन्न है। परन्तु इनकी तह मे निहित निष्कल्मष भावना नित्य-सत्य है, अनुकरणीय भी है। ऐसी हालत में पृथक् दृष्टि से देखने का अवसर कहाँ ?"

"सच है। निष्कल्मष भावना ही मूल है। आज आपके कारण हम लोगो मे एक नवीन भावना उत्पन्न हुई। हेग्गडेजी, मात्सर्य-रहित निष्कल्मष भावना ही के कारण आपके पारिवारिक जीवन के सुख-सन्तोष की नीव पडी है। यदि सब लोग आप जैसे हो जायँ तो चोल राजा जैसे लोगो के लिए स्थान ही नही रहेगा। धर्म के नाम से हिंसा करने के लिए अवसर ही नही मिलेगा। सुनते है वे भी आप ही की तरह शिव भक्त है। फिर भी कितना अन्तर है ?" बोकिमय्या ने कहा।

"इस तरह के अन्तर का कारण यह समझना है कि हमारा धर्म ही बडा है। हमारा विश्वास दूसरो के विश्वास से कम नही है, इस तरह का विश्वास होने पर समानता, सहिष्णुता की भावना विकसित होती जायेगी। आज हमे उस तरह की ही भावना की आवश्यकता है।" मार्रासगय्या ने कहा।

"इस तरह की भावना सबमे हो, इसके लिए ईश्वर की कृपा होनी चाहिए।" बोकिमय्या ने कहा।

बातचीत के इस उत्साह मे किसी को समय का पता ही नहीं चला। कृष्ण पक्ष की रात्रि का समय था। सारा आकाश तारामय होकर विराज रहा था। शिशिर की ठण्डी हवा के झोंके क्रमश अधिकाधिक तीव्र होने लगे। तपा हुआ प्रस्तर शीतल होने लगा। और उस पर बैठे हुए उन लोगो को सरदी का अनुभव होने लगा।

"कविजी, बातो की धुन मे समय का पता ही नही चला। आज हेग्गडती को और आप लोगो को निराहार ही रहना पडा।"

"क्षेत्रोपवास भी महान् श्रेयस्कर है। यह कटवप्र पर्वत उपवास व्रत से सायुज्य प्राप्ति करानेवाला स्थान है। इसलिए चिन्ता की कोई बात नही। यह अच्छा ही हुआ। परन्तु अब और देर करने से आपके भोजन का समय भी बीत जायेगा। अब चलें।" बोकिमय्या ने कहा।

"आज सोमवार है न ? हमे भी भोजन नही करना है।"

"मतलब हमे भी सोमवार के निराहार व्रत का फल मिलेगा न, अप्पाजी ?" शान्तला ने प्रश्न किया।

"हाँ अम्माजी, तुम्हे सदा दोनो तरफ से भी फल मिलता है। जैन-शैव धर्मो का सगम बनी हो। मेरी और हेग्गडती की समस्त पूजा-आराधना का फल तुम्हारे लिए धरोहर है। राजकुमार जी क्या करेगे पता नही।" कहते हुए मारसिगय्या ने उनकी ओर देखा।

"प्रजा को सुख पहुँचाने का मार्ग ही पोय्सल वश का अनुसरणीय मार्ग है, हेग्गडेजी। राजकुमार होने मात्र से मैं उसमे भिन्न पृथक् मार्ग का अनुसरण कैसे कर सकता हूँ ? मुझे भी आप लोगो के पुण्य का थोडा फल मिलना चाहिए।"

"प्रजा के हित के लिए हम सबके पुण्य का फल पोय्सल वश के लिए धरोहर है। इसके लिए हम तैयार है।" मारसिगय्या ने कहा।

कही से घण्टानाद सुन पडा। बिट्टिदेव और शान्तला मे एक तरह का कम्पनयुक्त रोमाच हुआ। उनकी दृष्टि बाहुबलि की ओर लगी थी। अँधेरी रात मे चमकते तारो के प्रकाश से बाहुबलि का मुखारविंद चमक उठा था। वहाँ प्रशान्त मुद्रा दृष्टिगोचर हो रही थी। किसी आन्तरिक प्रेरणा से प्रेरित होकर दोनो ने दीर्घदण्ड प्रणाम किया।

द्वारपाल रेविमय्या ने उनको कुतूहलपूर्ण दृष्टि से देखा। कुछ क्षण बाद दोनो उठे।

"अब चले।" कहते हुए मारसिगय्याजी भी उठ खडे हुए। क्या यह कहना होगा कि सबने सम्मति दी ? एक प्रशान्त मनोभाव के साथ सब अपने-अपने शिविर पर वापस आ गये।

यह निश्चय हुआ था कि दूसरे दिन बेलुगोल से प्रस्थान किया जाये। बिट्टिदेव को सोसेऊरु लौटना था, अत निर्णय किया गया कि बाणऊरु तक वह इन लोगो के साथ चलें, फिर जावगल्लु से होकर सोसेऊरु जायें। इस निश्चय के बाद आखिरी वक्त शा तला ने कहा, "अप्पा जी, सुनते है कि शिवगगा शैवो के लिए एक महान् पुण्यक्षेत्र है। यह बात गुरुजी ने कही थी। वहाँ होते हुए बलिपुर जाया जा सकेगा न ?"

"पहले ही सोचा होता तो अच्छा था न, अम्माजी ! हमारे साथ राजकुमार भी तो आये है।" कहकर यह बात जताई कि अब न जायँ तो अच्छा है। मारसिगय्या ने अपना अभिमत स्पष्ट किया, सलाह का निराकरण नही किया था।

"आप लोग शिवगगा जायेगे तो मैं भी साथ चलूँगा।" बिट्टिदेव ने कहा।

"युवराज को बताकर नही आये है। यदि आपको सोसेऊरु पहुँचने मे विलम्ब हो गया तो हमे उनका कोपभाजन बनना पडेगा।"

"रक्षक दल मे किसी एक आदमी द्वारा चिट्ठी लिख भेजी जाय वह उसे पहुँचाकर सीधा शिवगगा को ही पहुँच जायेगा।" बिट्टिदेव ने कहा।

मारसिगय्या ने रेविमय्या की ओर देखा।

परिस्थिति को समझकर उसने कहा, "हेग्गडेजी, आप चिन्ता न करे, मैं खुद हो आऊँगा। युवरानी जी से कहकर उनसे पहले स्वीकृति पा ले तो बाद को कोई अडचन नही रहेगी।" रेविमय्या के इस कथन से मारसिगय्या और बिट्टिदेव की सहायता मात्र की नही, शान्तला की सलाह की मान्यता भी थी। अब यात्रा का मार्ग बदल दिया गया। रेविमय्या सोसेऊरु की तरफ रवाना हुआ। इन लोगो ने शिवगगा की ओर प्रस्थान किया।

हिरेमावे, यडियूरु, मोलूरु होते हुए वे शिवगगा जा पहुँचे। चारो दिशाओ से चार अलग-अलग रूपो मे दिखनेवाले शिवगगा के इस पहाड को देखकर बिट्टिदेव और शान्तला सोचने लगे कि इसे किसी शिल्पी ने गढा होगा। इन्द्रगिरि चट्टान मे बाहुबलि के रूप को गढनेवाले उस शिल्पी ने यहाँ भी चारो दिशाओ से दर्शनीय चार रूपो मे गढकर निर्माण किया है, उसमे उस महान् शिव-शक्ति की विशिष्ट महिमा की प्रतीति इन दोनो बच्चो के मन मे होने लगी। पूरब की ओर से देखने पर शिव जी के वाहन नन्दी का दर्शन होता है, उत्तर की तरफ से लिग रूप मे, पश्चिम दिशा से कुमार गणपति जैसा और दक्षिण से शिव जी के आभूषण नागराज जैसा दिखनेवाला वह पर्वत शिव जी का एक अपूर्व सदेश-सा लगा उन दोनो को। वे प्रातकाल उठकर नहा-धोकर पहाड पर चढे। माँ-बेटी ने अन्तरगगा की पूजा की। फिर भगवान के दर्शन किये। पहाड की सीधी चढ़ाई और शरीर की स्थूलता के कारण हेग्गडती

माचिकब्बे ने उस चट्टान पर के नन्दी तक पहुँचने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

"इन्द्रगिरि पर एकदम चढ गयी थी न अम्मा ?" शान्तला ने सवाल किया।

"वहाँ चढने की शक्ति बाहुबलि ने दी थी।" माचिकब्बे ने कहा।

"वहाँ अप्पाजी को शिवजी ने जैसी शक्ति दी, वैसी यहाँ बाहुबलि तुम्हे शक्ति देंगे, चलिए।" शान्तला ने अपना निर्णय ही सुना दिया।

"उसको क्यो जबरदस्ती ले जाना चाहती हो, उसे रहने दो, अम्माजी। वह जब महसूस करती है कि चढ नही सकती तो उसे ऐसा काम नही करना चाहिए। अपने पर भरोसा न हो तो किसी को उस कार्य मे नही लगना चाहिए। चलो, हम चले। कविजी आप आयेगे न ?" मारसिंगय्या ने पूछा।

"क्यो चढ नही सकूँगा, ऐसी शका है ?" बोकिमय्या ने सवाल किया।

"ऐसी बात नही, सीधी चढ़ाई है। जो आदी नही उन्हे डर लगता है। इसलिए पूछा।"

"डर क्यो ?"

"कही अगर फिसल जायँ तो हड्डी तक नही मिलेगी।"

"यदि ऐसा है तो क्षेत्र-मरण होगा। अच्छा ही है न ?"

"ऐसा विश्वास है तो चढने मे कोई हर्ज नही।"

सब चढ चले। माचिकब्बे भी पीछे न रही। सक्राति के दिन पहाड के शिखर पर जलोद्भव होनेवाले तीर्थस्तम्भ को देखा। लेकिन पहाडी की चोटी पर के नन्दी की परिक्रमा के लिए माचिकब्बे तैयार नही थी, इतना ही नही, बिट्टिदेव और शान्तला को भी परिक्रमा करने से रोका। इसका कारण केवल डर था। क्योकि नन्दी के चारो ओर परिक्रमा करनेवालो को पैर जमाने के लिए भी पर्याप्त स्थान नही था, इसके अलावा चारो ओर गिरने मे बचाने के लिए कोई सहारा भी नही था। नन्दी का ही सहारा लिया जा सकता था। थोडी भी लापरवाही हुई कि फिसलकर पाताल तक पहुँचेगे। ऐसे कठिन परिसर मे स्थित नन्दी को देखने मात्र से ऐसा लगता है कि बस दूर मे ही दर्शन-प्रणाम कर ले। स्थिति को देखते हुए सहज ही ऐसा लगता है। मरण कौन चाहता है ? फिर भी माचिकब्बे की मनाही को किसी ने नही माना। सबने नन्दी की परिक्रमा की। आगे-आगे मारसिंगय्या, उनके पीछे बिट्टिदेव और उसके पीछे शान्तला, शान्तला के पीछे बोकिमय्या, गगाचारी और उनके परिवार थे, इन सबके पीछे सेवकवृन्द।

मारसिंगय्या जो सबसे आगे थे, एक बार फाँदकर नन्दी के पास के मूल पहाड पर जा पहुँचे। बिट्टिदेव भी फाँदकर उसी मूल पहाड पर पहुँच गया। परन्तु शान्तला को ऐसा फाँदना आसान नही लगा। यह देख बिट्टिदेव ने हाथ आगे बढ़ाये। उनके सहारे शान्तला भी फाँद गयी। फाँदने के उस जोश मे सीधे

खड़े न होकर वह जैसे बिट्टिदेव के हाथो मे लटक गयी। पास खड़े मारसिगय्या ने तुरन्त दोनो को अपने बाहुओ मे सँभाल लिया। यदि ऐसा न करते तो दोनो लुढ़क जाते और घायल हो जाते। माचिकब्बे ने स्थिति को देखा और कहा, "मैने पहले ही मना किया था, मेरी बात किसी ने नही मानी।"

"अब क्या हुआ ?" मारसिंगय्या ने पूछा।

"देखिए, दोनो कैसे काँप रहे हैं।" व्यग्र होकर माचिकब्बे ने कहा।

"नही तो।" दोनो ने एक साथ कह उठे।

कहा तो सही। परन्तु उन दोनो मे पुलकित कम्पन जो हुआ उसने, भय का नही, किसी अपरिचित सन्तोष का आनन्द पैदा कर दिया था। उसका आभास माचिकब्बे को नही हुआ था।

सभी सेवक-वृन्द परिक्रमा कर आये। इस क्षेत्र दर्शन का पुण्य फल प्राप्त करना हो तो यहाँ इस नन्दी की परिक्रमा अवश्य करनी चाहिए, सो भी प्राणो का मोह त्यागकर। यह आस्था सभी भक्तो मे हो गयी थी और सभी इस विधान को आचरण मे लाते थे।

शान्तला के मन मे यह भावना बनी रही कि माँ को क्षेत्र-दर्शन का वह भाग्य नही मिल सका। इसलिए उसने माँ से कहा "माँ, आप भी इस नन्दी की परिक्रमा करती तो क्षेत्र-दर्शन के पुण्य को प्राप्त कर सकती थी।"

"वह तो बेलुगोल मे ही मिल चुका है।" माचिकब्बे ने कहा।

"यहाँ भी मिले तो अच्छा ही होगा न ?" शान्तला ने फिर सवाल किया।

"उसकी तरफ से उसके लिए मै ही एक बार और परिक्रमा कर आऊँगा।" कहते हुए मारसिगय्या किसी की सम्मति की प्रतीक्षा किये बिना ही चले गये और एक परिक्रमा के बाद लौटकर बेटी के पास खड़े हो गये और बोले, "अम्माजी, अब तो समाधान हुआ न ? तुम्हारी माँ को भी उतना ही पुण्य मिला जितना हमे।"

"सो कैसे अप्पाजी आपने जो पुण्य अर्जन किया वह आपका। वह बाँटकर अम्मा को कैसे मिलेगा ?" शान्तला ने पूछा।

"पाप का फल बँटता नही, अम्माजी। वह अर्जित स्वत्व है। परन्तु पुण्य ऐसा नही, वह पति-पत्नी मे बराबर बँट जाता है। यह हमारा विश्वास है।"

"माँ को यहाँ पुण्यार्जन जब नही चाहिए तब उसे आर्जित करके देने की आपको क्या आवश्यकता है ?" शान्तला ने प्रश्न किया।

"यही तो दाम्पत्य जीवन का रहस्य है। जो माँगा जाय उसे प्राप्त करा दे तो वह सुख देता है। परन्तु वाछा को समझ, माँगने से पूर्व ही यदि प्राप्त करा दिया जाय तो उससे सुख-सतोष अधिक मिलेगा। यही तो है एक दूसरे को समझना और परस्पर अटल विश्वास।"

"पुरुष और स्त्री दोनो जब पृथक्-पृथक् हैं तब एक-दूजे को सम्पूर्ण रूप से समझना कैसे सम्भव ? अनेक विचार अन्तरग मे ही, एक दूसरे की समझ मे न आकर, टकराकर रह जाते हैं।"

"जब तक पृथकत्व की भावना बनी रहेगी तब तक यही हाल रहता है। अलग-अलग होने पर भी पुरुष और स्त्री एक हैं, अभिन्न हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। अर्धनारीश्वर की यही मधुर कल्पना है। शरीर का आधा हिस्सा पुरुष और शेष आधा स्त्री रूप होता है। ये जब एक भाव मे सयुक्त हो जायें तो अभिन्न होकर दिखते है। यही अर्धनारीश्वरत्व का प्रतीक दाम्पत्य है। इसी मे जीवन का सार है। क्यो कविजी, मेरा कथन ठीक है न ?"

"सभी दम्पतियो को ऐसा अभिन्न भाव प्राप्त करना सम्भव है, हेग्गडेजी ?"

"प्रयत्न करने पर ही तो दाम्पत्य सुख मिलता है। पृथक्-पृथक् का, एक बनना ही तो दाम्पत्य है। पृथक् पृथक् ही रह गया तो उसे दाम्पत्य कहना ही नही चाहिए। उसे स्त्री-पुरुष का समागम कह सकते है।"

"यह बहुत बडा आदर्श है। परन्तु ऐसी मानसिकता अभी ससार को नही हुई है।"

"हमारी अयोग्यता इस बुनियादी तत्त्व को गलत अर्थ देने का साधन नही होना चाहिए।"

"हाँ ठीक है, इसीलिए लक्ष्मीनारायण, सीता-राम, उमा-शकर कहते है। है न ?"

"दुनिया का सिरजनहार परमात्मा अपना कार्य, यह सृष्टि, करके उसकी इस विविधता और विचित्रता को देखकर सन्तोष पाता होगा।"

"हम सब जब उसकी सतान हैं तब उसे सन्तोष ही होगा। मुझे एक नया अनुभव आज हुआ है, हेग्गडेजी।" बोकिमय्या ने कहा।

दोनो शिष्य गुरुजी की बात सुनकर उनकी ओर देखने लगे। उनकी उस दृष्टि मे उस नये अनुभव की बात सुनने का कुतूहल था। बोकिमय्या को इसका भान हुआ तो उन्होने कहा, "नन्दी के सीगो के बीच से वहाँ के शिवलिग को क्यो देखना ही चाहिए, यह मेरे मन मे एक समस्या है।"

"आपने भी देखा था ?" मारसिगय्या ने प्रश्न किया।

"इसके पहले नही देखा था। यहाँ नन्दी के सामने तो लिग है नही। फिर भी परिक्रमा के बाद आपने सीगो पर उँगलियाँ रखकर उनके बीच मे से क्या देखा, सो तो मालूम नही पडा। आपकी यह क्रिया भी मुझे विचित्र लगी। इसीलिए मैंने भी देखा।"

"आश्चर्य की बात यह है। आँखो को चकचौंधया देनेवाला प्रकाश दिखायी पडा मुझे!"

"तब तो आप धन्य हुए, कविजी ? शिव ने आपको तेजोरूप मे दर्शन दिया।"

"तेजोरूप या ज्वालारूप ?"

"मन्मथ कामदेव के लिए यह ज्वाला है। भक्तो के लिए वह तेजोरूप है। इस-लिए ईश्वर आपसे प्रसन्न है।" मारसिंगय्या ने कहा।

"जिनभक्त को शिव साक्षात्कार ?"

"यही तो है भिन्नता मे एकता। इसके ज्ञान के न होने से ही हम गडबड मे पडे हुए है। जिन, शिव, विष्णु, बुद्ध, सब एक है। आपको जो साक्षात्कार हुआ वह केवल मानव मात्र को हो सकनेवाला देव साक्षात्कार है, वह जिनभक्त को प्राप्त शिव साक्षात्कार नही।"

"बहुत बडी बात है। मै आज का यह दिन आजीवन नही भूल सकता, हेग्गडेजी। आपकी इस अम्माजी के कारण मुझे महान् सौभाग्य प्राप्त हुआ।"

"असूया-रहित आपके विशाल मन की यह उपलब्धि है। इसमे और किसी का कुछ भी नही। चले, अब उतर चले।" मारसिंगय्या ने सूचित किया।

"अप्पाजी, मैने नन्दी के सीगो के बीच से नही देखा। यो ही चली आयी। एक बार फिर परिक्रमा कर देख आऊँ ?" शान्तला ने पूछा।

"आज नही, अम्माजी। भाग्य की बात है कि कल ही शिवरात्रि है। यहाँ रहेगे ही। फिर अमावस्या है उस दिन प्रस्थान नही। तात्पर्य यह कि अभी तीन-चार दिन यहाँ रहेगे ही। और एक बार हो आयेगे।"

सब उतर आये। इस बीच रेविमय्या भी आ पहुचा था। सबको आश्चर्य हुआ।

मारसिंगय्या ने पूछा, 'रेविमय्या, यह क्या, बिना विश्राम किये ही चले आये ? राजकुमार की रक्षा क्या हमसे नही हो सकेगी, इसलिए इतनी जल्दी लौट आये ?"

"राजकुमार और अम्माजी को सदा देखता ही रहू, यही मेरी आशा-आकाक्षा है हेग्गडेजी। मेरी इस अभिलाषा का पोषण कौन करेगा ? और फिर इन दोनो को देखते रहने का जो मौका अब मिला है, इसका भरपूर उपयोग करने की मेरी अपनी आकाक्षा थी, इसी कारण भाग आया। आप लोगो के पहाड पर चढने से पहले ही आना चाहता था। पर न हो सका। वह मौका चूक गया।" रेविमय्या ने कहा।

"कुछ भी नही चूका। यहाँ तीन-चार दिन रहना तो है ही। यहाँ दूसरा क्या काम है। पहाड पर चढ आयेगे एक और बार।" मारसिंगय्या ने कहा।

"युवराज और युवरानी ने तो कोई आपत्ति नही की रेविमय्या ?" माचिकब्बे ने पूछा।

"राजकुमार को अभी यहाँ से आप लोग बलिपुर ले जायेगे तो भी वे आपत्ति

नही करेंगे।"

तुरन्त शान्तला बोली, "वैसा ही करेंगे।"

बिट्टिदेव ने उत्साह से उसकी ओर देखा।

"परन्तु अब की बार ऐसा कर नही सकेंगे। शिवगगा मे राजकुमार को मुझे सीधा सोसेऊरु ले जाना है। अब आपके साथ इधर आने मे उनको कोई आपत्ति नही होगी।"

"रेविमय्या, यह क्या ऐसी बातें कर रहे हो? अभी हमारे साथ आये तो आपत्ति नही की और अब यहाँ से बलिपुर ले जायँ तो आपत्ति नही करेंगे। दोनो बातें कहते हो। उसी मुँह से यह भी कहते हो कि अब ऐसा नही हो सकता। कथन और क्रिया मे इतना अन्तर क्यो?" शान्तला न सीधा सवाल किया।

"अम्माजी, आपका कहना सच है। कथन और क्रिया दोनो अलग-अलग है। कुछ प्रसगो के कारण ऐसा हुआ है। राजकुमार आप लोगो के साथ कही भी जाये, उन्हे कोई आक्षेप नही। परन्तु अभी कुछ राजनैतिक कारणो से राजकुमार को सोसऊरु लौटना ही होगा। और हाँ, राजकुमार के आप लोगो के साथ यहाँ आने की खबर तक दोरसमुद्रवालो को मालूम नही होनी चाहिए।" रेविमय्या ने कहा।

बात को बढने न देने के इरादे से मारसिगय्या बोले, "प्रभु सयमी है, बहुत दूर की सोचते है। उनके इस आदेश के पीछे कोई विशेष कारण ही होगा, इसलिए आदेशानुसार वही करो।"

"ठीक है हेग्गडेजी। पता नही क्यो अब की बार दोरसमुद्र से लौटने के बाद प्रभुजी स्फूर्तिहीन से हो गये है। इसका रहस्य मालूम नही हुआ।" रेविमय्या ने कहा।

"तुम्हारा स्नान आदि हुआ।"

"नही, अभी आधा घण्टा ही तो हुआ है।"

"जल्दी जाकर नहा आओ। भोजन आदि की तैयारी कराकर प्रतीक्षा करेंगे।" कहकर मारसिगय्या अन्दर चले गये। साथ ही और सब लोग चले गये।

शिवभक्त मारसिगय्या, शिवभक्त शिल्पी गगाचारी, और उनके साथ के जिनभक्तो के दल ने शिवरात्रि के शुभ-पर्व पर निर्जल उपवास कर जागरण किया, गगाधरेश्वर के मन्दिर मे चारो प्रहरो की पूजा-अर्चा मे शामिल हुए, उस दिन प्रात-

काल रेविमय्या, शान्तला, बिट्टिदेव और बोकिमय्या ने पर्वतारोहण किया, और उस चोटी पर चढ़कर नन्दी की परिक्रमा की। नन्दी के सीगो के बीच से पर्वत शिखर को देखा। शान्तला और बिट्टिदेव को सीगो तक पहुँच पाना न हो सकने के कारण रेविमय्या ने उन दोनो को उठाकर उनकी मदद की।

चारो प्रहर की पूजा के अवसर पर शान्तला की नृत्य-गान-सेवा शिवार्पित हुई। नृत्य सिखानेवाले गगाचारी बहुत प्रसन्न हुए। अपनी शिष्या को जो नृत्य सिखाया था वह नादब्रह्म नटराज को समर्पण करने से अधिक सतोष की बात और क्या हो सकती है? गगाचारी ने कहा, "अम्माजी, ज्ञानाधिदेवी शारदा तुम पर प्रसन्न है। तुम्हारे इष्टदेव बाहुबलि भी प्रसन्न है। और अब यह नादब्रह्म नटराज भी तुम पर प्रसन्न हो गये। शिवगगा मे प्रादुर्भूत शुद्ध निर्मल अन्तरगगा की तरह तुम्हारी निर्मल आत्मा की अधिकाधिक प्रगति के लिए एक सुदृढ नीव बन गयी। है न कविजी ?" गगाचारी ने कहा।

"हाँ आचार्य, इस बार की यात्रा के लिए प्रस्थान एक बहुत अच्छे मुहूर्त मे हुआ है। इस सबका कारण यह रेविमय्या है।" बोकिमय्या ने कहा।

"मैं एक साधारण सेवक, बलिपुर भेजना मेरा अहोभाग्य था। मेरे मन मे ही सडे पुराने दु ख को बहाकर उसके स्थान पर पवित्र और नयी प्रेमवाहिनी बहाने मे यह सब सहायक हुआ। यह किसी जन्म के पुण्य का फल है। भिन्न-भिन्न स्तरो के अनेक लोगो को इस प्रेम-सूत्र ने एक ही लडी मे पिरो रखा है। राजमहल के दौवारिक मुझ जैसे छोटे साधारण सेवक से लेकर हम सबसे ऊपरी स्तर पर रहनेवाले प्रभु तक—सभी वर्गों के लोग इस प्रेम-सूत्र मे एक हो चुके है। क्या यह महान् सौभाग्य की बात नही ? परन्तु अब शीघ्र ही अलग-अलग हो जाने का समय आ गया लगता है, इससे मै बहुत चिन्तित हूँ।" रेविमय्या ने कहा।

"दूर रहते हुए भी निकट रहने की भावना रखना बहुत कठिन नही, रेविमय्या। ईश्वर दृग्गोचर न होने पर भी वह है, सर्वत्र व्याप्त है, ऐसी भावना क्या हममे नही है ? वैसे ही ।"

"वह कैसे सम्भव है, कविजी !"

'तुम्हे कौन-सा पक्वान्न इष्ट है ?"

"तेल से भुना बैगन का शाक।"

"इस शाक को खाते समय यदि रेविमय्या की याद आ जाय और यह तुम्हारे लिए अत्यन्त प्रिय है, इसकी कल्पना ही से यह तुम्हारे पास ही है, ऐसा लगेगा। इसी तरह सेवियो की खीर जब तुम आस्वादन करोगे और सोचोगे कि यह अम्माजी के गुरु के लिए बहुत प्रिय है तो मैं और अम्माजी तुम्हारे ही पास रहने के बराबर हुए न ? ऐसा होगा। क्या यह आसान नही ?"

"प्रयत्न करूँगा। सफल हुआ तो बताऊँगा।" रेविमय्या ने कहा।

"वैसा ही करो। मेरा अनुभव बताता है कि वह साध्य है।"

शिवार्चन का कार्य सम्पूर्ण कर सब लोग चरणामृत और प्रसाद लेकर गगाधरेश्वर की सन्निधि से अपने मुकाम पर पहुँचे। थोडी देर मे सूर्योदय हो गया।

फिर सब लोगो ने स्नानादि समाप्त कर अपना-अपना पूजा-पाठ करके शिवरात्रि के दिन के व्रत को तोडा। भोजन आदि किया। उसके बाद वे वहाँ दो दिन जो रहे, शान्तला और बिट्टिदेव दोनो आग्रह करके पहाड पर पुन गये, गगोद्भव स्तम्भ, नन्दी की परिक्रमा आदि करके आये। रेविमय्या की सरक्षकता मे यह काम सुरक्षित रूप से सम्पन्न हुआ। दूसरे दिन ही वहाँ से प्रस्थान निश्चित था, इसलिए बिट्टिदेव और शान्तला ने नन्दी के शृगो के बीच से बहुत देर तक देखा। रेविमय्या ने भी सबकी तरफ देखा।

जब उतरने लगे तब शान्तला ने राजकुमार से पूछा, "आपको क्या दिखायी दिया ?"

"तुमने क्या देखा ?" राजकुमार ने पूछा।

"पहले आप बतावे।"

"न, तुम ही बताओ।"

"नही, आप ही बतावे। मैंने पहले पूछा था।"

"मुझे पहले नीलाकाश मे एक बिजली की चमक-सी आभा दिखायी पडी।" रेविमय्या ने बीच मे ही बोल उठा।

"मैने तुमसे नही पूछा, पहले राजकुमार बतावे।" शान्तला ने कहा।

"बताना ही होगा ?"

"हाँ तो, इसीलिए तो पूछा।"

"विश्वास न आये तो ?"

"मुझपर अविश्वास ?" शान्तला ने तुरन्त कहा।

"तुमपर अविश्वास नही। मैने जो देखा वह बहुत विचित्र विषय है। मैं स्वय अपनी ही आँखो पर विश्वास नही कर सकता, इसलिए कहा। बाहुबलि स्वामी चीनाबरालकृत हो वैजयन्तीमाला धारण किये किरीट शोभित हो हाथो मे गदा चक्र धरे मे दिखायी पडे।"

"सच ?"

"झूठ क्यो कहूँ ? परन्तु मुझे यह मालूम नही पडा कि ऐसा क्यो दिखायी पडा। बाहुबलि और चीनाबर ? सब असगत।" बिट्टिदेव ने कहा।

"गुरुजी से पूछेगे, वे क्या बताते है !" शान्तला ने सलाह दी।

"कुछ नही। अब तुम बताओ, क्या दिखायी पडा ?"

"प्रकाश, केवल प्रकाश। दूर से वह प्रकाश-बिन्दु क्रमश पास आता हुआ बढते-बढते सर्वव्यापी होकर फैल गया। इस प्रकाश के अलावा और कुछ नही दीखा।"

"यहाँ विराजमान शिव ने दर्शन नहीं दिया ?"

"न।"

"देना चाहिए था न ? नटराज तुमसे प्रसन्न है, कहा न नाट्याचार्य ने ?"

"भावुकतावश कहा होगा। वह शिष्य-प्रेम का संकेत है, उनकी प्रसन्नता का प्रदर्शन, इतना ही।"

"जिस प्रकाश को देखा उसका क्या माने है ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"मुझे मालूम नहीं। गुरुजी से ही पूछना पड़ेगा। वह सब बाद की बात है। कल चलने पर बाणऊरु तक ही तो राजकुमार का साथ है। बाद को हम हम हैं और आप आप ही। जब से सोसेऊर में आये तब से समय—करीब-करीब एक महीने का यह समय क्षणों में बीत गया-सा लगता है। फिर ऐसा मौका कब मिलेगा, कौन जाने।"

"मुझे भी वैसा ही लगता है। बाणऊरु पहुँचने का दिन क्रमोकर निकट आता जा रहा है ?" बिट्टिदेव ने कहा।

"युवरानीजी और युवराज को मेरे प्रणाम कहें। आपके छोटे भाई को मेरी याद दिलावें। आपके बड़े भाई जी तो दोरसमुद्र में हैं, उन्हें प्रणाम पहुँचाने का कोई साधन नहीं। रविमय्या! राजकुमार को शीघ्र बलिपुर लाने की तैयारी करेंगे ?"

"अम्माजी, यह मेरे हाथ की बात नहीं। फिर भी प्रयत्न करूँगा। यहाँ कोई और नहीं। मैं और आप दोनों। और वह अदृश्य क्षेत्रनाथ ईश्वर, इतना ही। अन्यत्र कहीं और किसी से कहने का साहस मुझमें नहीं है। अगर कहूँ तो लोग मुझे पागल समझेंगे। परन्तु कहे बिना अपने ही मन में दबाकर रख सकने की शक्ति मुझमें नहीं है। आप लोग भी किसी से न कहें। अपने मन के बोझ को उतारने के लिए मैं कह देता हूँ। यदि आप लोग भी मुझे पागल कहें तो भी कोई चिन्ता नहीं। उस दिन रात को कटवप्र पहाड़ पर आप दोनों ने माथा टेककर बाहुबलि को प्रणाम किया था, याद है ?"

"हाँ है।" दोनों ने एकसाथ कहा। कहते हुए दोनों उतरना बन्द कर खड़े हो गये। तब तक वे मन्दिर के द्वार तक नीचे उतर चुके थे।

"तभी मैंने एक अद्भुत दृश्य देखा। इन्द्रगिरि के बाहुबलि स्वामी की सचेतन मूर्ति अलंकृत होकर जैसे अभी यहाँ चिक्कप्पाजी को जिस रूप में दर्शन हुआ, ठीक वैसे ही दिखायी पड़े और उन्होंने अपने दीर्घ बाहुओं को पसारकर आप दोनों को आशीर्वाद दिया। अम्माजी और चिक्कप्पाजी, आप दोनों का जीवन उस भगवान के आशीर्वाद से एक-दूसरे में समाविष्ट हो, यह मेरी हार्दिक आकांक्षा है। मैं एक साधारण व्यक्ति राजमहल का द्वारपाल मात्र हूँ। मेरी इस

आकाक्षा का मूल्य आँकेगा कौन ? इस तरह से आप लोगो के विषय मे आशा भरी आकाक्षा रखने का मुझे क्या अधिकार है ? खैर, इस बात को रहने दें। यह जो मैंने कहा इसे आप लोग अपने तक ही सीमित रखें। किसी से न कहे।" यह कहकर चकित हो सुनते खडे उन बच्चो को अपलक देखने लगा।

फिर सर्वत्र मौन व्याप गया। शान्तला और बिट्टिदेव का अन्तरग क्या कहता था सो अन्तर्यामी ही जाने। परन्तु दोनो की आँखें मिली। मुँह पर स्नेह के लघु हास्य की एक रेखा खिच गयी। कोई कुछ न बोला। ज्यो-के-त्यो मौन खडे रहे।

"किसी से नही कहेगे न ? वचन दीजिए !" कहते हुए रेविमय्या ने अपनी दायी हथेली आगे बढायी। शान्तला ने उसके हाथ पर अपना हाथ रखा। बिट्टिदेव ने भी अपना हाथ रखा। रेविमय्या ने उन दोनो के छोटे शुद्ध हाथो को अपने दूसरे हाथ से ढँक लिया और उन्हे वैसे ही छाती से लगाकर कहने लगा, "हे परमेश्वर ! ये दोनो हाथ ऐसे ही सदा के लिए ही जुडकर रहे, यह आश्वासन दें।" कहते-कहते आँखे डबडबा आयी।

तुरन्त हाथ छुडाकर बिट्टिदेव ने पूछा—

"क्यो, क्या हुआ, रेविमय्या ?"

"कुछ नही हुआ। रेविमय्या का हृदय बहुत कोमल है। उसे जब बहुत आनन्द होता है तब उसकी स्थिति ऐसी ही होती है। अब चलें, देर हुई जा रही है। कोई फिर खोजता हुआ इधर आ जायेगा।" शान्तला ने कहा।

तीनो नीचे उतरे। कोई किसी से बोला नही। मौन रहे। बाणऊरु तक दोनो के अलग-अलग होने तक यह मौन बना रहा। हेब्बूरु, कडब, तुरुवेकेरे होते हुए बाणऊरु पहुँचने मे तीन दिन लगे। तीनो दिन सबको मौन रहते देख रेविमय्या ने पूछ ही लिया—

"यह मौन क्यो ?"

"जब एक दूसरे के अलगाव का समय निकट होने लगता है तब ऐसा ही हुआ करता है।" मारसिंगय्या ने कहा। बिट्टिदेव और शान्तला मौन भाषा मे ही एक दूसरे से विदा हुए। शेष लोगो ने युवराज और युवरानी के पास अपनी कृतज्ञतापूर्वक वन्दना पहुँचाने को कहा। बिदा के समय माचिकब्बे की आँखे आँसुओ से भरी थी। सोसेऊरु और बलिपुर जानेवाले दोनो दल पृथक्-पृथक् अपने-अपने गन्तव्य स्थान पहुँचे।

दिन व्यतीत होने लगे।

बाणऊरु से बिदा होने के बाद बिट्टिदेव, रेविमय्या वगैरह, यदि चाहते तो जावगल्लु, दोरसमुद्र और बेलापुरी से होकर सोसेऊरु पहुँच सकते थे। परन्तु रेविमय्या ने प्रभु से जो आदेश पाया था उसके कारण इस रास्ते से जाना नहीं हो सका था। इसलिए वे जावगल्लु, वसुधारा से होकर सोसेऊरु पहुँचे। वास्तव में वे रास्ते में कहीं नहीं ठहरे, बाणऊरु से सुबह का नाश्ता कर रवाना होने के बाद एकदम सीधा शाम तक सोसेऊरु ही पहुँचे।

युवरानी जी राजकुमार के सकुशल पहुँचने पर बहुत खुश थी। उनको इसमें कोई सन्देह नहीं था कि राजकुमार की सुरक्षा व्यवस्था में कमी न रहेगी। फिर भी मन में एक आतंक छाया रहा। खासकर दोरसमुद्र में अपने पतिदेव के मन को परेशान करनेवाली घटना जो घटी, उसका परिचय होने के बाद युवरानी के मन में, पता नहीं क्यों, एक तरह का आतंक अपने-आप पैदा हो गया था। जिस बात से प्रभु परेशान थे उसका इस आतंक भावना में कोई सरोकार न था। फिर भी सदा कल्पनाशील मन को समझाना भी सम्भव नहीं।

राजकुमार, जो सकुशल लौटा था, कुशल समाचार और कुछ इधर-उधर की बातें जानने के बाद, बिदा होकर युवराज के दर्शन करने उनके पास गया। बिट्टिदेव से बातें करने के बाद माँ एचलदेवी अनुभव करने लगी कि स्वभाव से परिशुद्ध हृदय और अधिक परिशुद्ध हुआ। वह उसके विशाल से विशालतर मनोभाव को जानकर बहुत सन्तुष्ट हुई। वह सोचने लगी कि इस तरह का विशाल मन और शुद्ध हृदय सिंहासनारूढ होनेवाले में हो तो प्रजा के लिए और उसकी उन्नति के लिए कितना अच्छा रहेगा। सोसेऊरु लौटने के बाद रात को अपने पतिदेव युवराज एरेयंग प्रभु ने जो बातें बतायी थी वे सारी बातें एक-एक कर स्मरण हो आयी।

"इसका तात्पर्य यह कि मेरे स्वामी एरेयंग प्रभु का महाराजा बनना इस मरियाने दण्डनायक को वाछनीय नहीं। कैसी विचित्र बात है। खुद महाराजा ने इस बात की स्वयं इच्छा प्रकट की, उसी बात को एक पेचीदगी में उलझाकर युवराजा के ही मुँह से नाहीं कहलाना हो तो इस कुतन्त्र के पीछे कोई बहुत बड़ा स्वार्थ निहित होना चाहिए। प्रधान गंगराज ने भी दण्डनायक मरियाने की बात को पुष्ट करते हुए प्रकारान्तर से उसी का अनुमोदन किया। इससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि पहले से ही विचार-विनिमय कर लिया गया है। बड़ी महारानी केलेयब्बरसि जी ने भ्रातृ-वात्सल्य से इस मरियाने को कहीं से उठाकर आज उसे इस स्तर तक ला बिठाया। उसका विवाह कराकर बड़ा बनाया। अपनी योग्यता से अधिक अधिकार पा जाने पर अधिकार की पिपासा बढ़ती गयी। अपने अधिकार को दृढ़ बनाकर अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न कर रहा है वह। इस अधेड़ उम्र में भी पुन प्रधान जी की बहन से अपना

दूसरा विवाह करके उसे भी अपने वश मे कर लिया है। अब चामव्वा राजघराने की समधिन बनने की तैयारी मे लगी हुई है। अगर उसे अपनी इस आशा मे सफलता पानी हो तो मेरे और मेरे पतिदेव की सम्मति तो होनी चाहिए न ! इस स्थिति मे हमे छोडकर दण्डनायक का मन अन्यत्र क्यो वांछा-पूर्ति की योजना मे लगा है ! बात बहुत पेचीदी है और हल करना कठिन है। इस सबके पीछे कोई बहुत बडा स्वार्थ छिपा हुआ है—यो युवरानी एचलदेवी विचारमग्न हो सोच मे पड गयी। सच है, जिस महान् स्वार्थ से प्रेरित होकर यह सब हो रहा है, वह क्या हो सकता है ? एचलदेवी इस उलझन को सुलझा न सकी।

सोसेऊरु मे लौटने के बाद अपने माता-पिता के मन मे हो रही एक तरह की परेशानी और एक कशमकश का स्पष्ट अनुभव बिट्टिदेव को हो रहा था। इस सम्बन्ध मे वह सीधा कैसे पूछ सकता है ? पूछकर जाने बिना रहना भी उससे नहीं हो पा रहा था। लौटने के दो-तीन दिन बाद वह और रेविमय्या दोनो, घोडो को लेकर सवारी करने चले। उस एकान्त मे यह सोचकर कि शायद रेविमय्या इस परेशानी का कारण जानता होगा, बिट्टिदेव ने बात छेडी।

"रेविमय्या ! माता जी और युवराज कुछ चिन्तित से दिखायी पडते है। हो सकता है कि मेरा सोचना गलत हो। फिर भी जो मैं महसूस करता हूँ उसे उन्ही से पूछने को मेरा मन नही मान रहा है। उनकी इस मानसिक अस्वस्थता का कारण क्या हो सकता है, इस सम्बन्ध मे तुमको कुछ मालूम है ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

रेविमय्या ने कुछ जवाब नही दिया। उसने घोडे को रोका। बिट्टिदेव ने भी अपना घोडा रोक लिया। दोनो आमने-सामने हो गये। रेविमय्या ने बिट्टिदेव को इस तरह देखा कि मानो वह उनके हृदयान्तराल मे कुछ खोज रहा हो। बिट्टिदेव प्रतीक्षा मे कुछ देर तक मौन रहा। जब रेविमय्या ने कुछ कहा नही तो पूछा, "क्यो रेविमय्या, चुप क्यो हो ? क्या कोई रहस्य है ?"

रेविमय्या ने बहुत धीमे स्वर मे कहा, "अप्पाजी, राजघराने की बातो के विषय मे इस तरह सैर करते समय बोलना होता है ?"

बिट्टिदेव ने होठ दबाकर चारो ओर नजर दौडायी। और कही कोई नजर नही आया। फिर कहा, "हाँ रेविमय्या, ठीक है। मुझे इसका ध्यान नही रहा। मैंने माँ के चेहरे पर कभी किसी तरह की चिन्ता की रेखा तक नही देखी, पर अब उन्हे चिन्तित देखकर मैं बहुत परेशान हो गया हूँ। यह मुझसे सहा नही गया, इससे पूछा।"

"यहाँ कोई नही है, ठीक है। फिर भी हमे चौकन्ना रहना चाहिए, अप्पाजी। सुना है कि दीवारो के भी कान होते हैं, वैसे ही इन पेड-पौधो के पत्तो के भी कान हो सकते है। इसलिए यहाँ इन विषयो पर बाते नही करनी चाहिए।" रेविमय्या

ने कहा।

"मतलब कि तुम्हे सब बाते मालूम है ?"

सब कुछ सभी को मालूम नही होता। राजमहल मे बहुत-सी बातो को देख-कर वातावरण को परखकर समझना पडता है। अन्तरग सेवक होने के कारण वह एक तरह से हमारी समझ मे आ तो जाती है। यह अनुभव से प्राप्त वरदान भी हो सकता है और एक अभिशाप भी।" रेविमय्या ने कहा।

"वरदान शाप कैसे हो सकता है, रेविमय्या ?"

"अप्पाजी, आपको इतिहास भी पढाया गया है न ?"

"हाँ, पढाया है।"

"अनेक राज्यो के पतन और नये राज्यो के जन्म के विषय मे आपको जान-कारी है न ? इसका क्या कारण है ?"

"स्वार्थ ! केवल स्वार्थ।"

"केवल इतना ही नही, छोटे अप्पाजी, विश्वासद्रोह। अगर मुझ जैसे विश्वास-पात्र व्यक्ति द्रोह कर बैठे तो वह शाप न होगा ? समझ लो कि मै सारा रहस्य जानता हूँ और यदि मै उस रहस्यमय विषय को अपने स्वार्थ-साधन के लिए उप-योग करूँ या उपयोग करने का प्रयत्न करूँ तो वह द्रोह की ओर मेरा प्रथम चरण होगा। है न ? प्रभु से सम्बन्धित किसी भी बात को उनकी अनुमति के बिना हमे प्रकट नही करना चाहिए।"

"मतलब है कि यदि मुझसे कहे तब भी वह द्रोह होगा, रेविमय्या ? मै तुम्हारे प्रभु का पुत्र और उनके सुख-दुःखो मे सहभागी हूँ।"

"पिता पर बेटे ने, भाई पर भाई ने विद्रोह किया है, इसके कितने ही उदाह-रण मिलते है, अप्पाजी। है न ? आपके विषय मे मुझे ऐसा सोचना नही चाहिए। मैने केवल बात बतायी। क्योकि बडे होने पर कल आप पर कैसी-कैसी जिम्मे-दारियाँ आ पडेगी, ईश्वर ही जाने। खासकर तब जब बडे अप्पाजी का स्वास्थ्य सदा ही चिन्ताजनक रहा करता है तो वह जिम्मेदारी ज्यादा महान् होगी।" रेविमय्या ने कहा।

"माँ ने कई बार इस बारे मे कहा है। मैने माँ की कसम खाकर यह वचन दिया है कि भैया की रक्षा मे मेरा समग्र जीवन धरोहर है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"यह मै जानता हूँ, छोटे अप्पाजी। अब यहाँ इस विषय को छोड दे। रात मे महल मे चर्चा करेगे।"

"तो इस बीच तुम प्रभु से अनुमति पा लोगे, रेविमय्या ? वही करो। तुम्हारी स्वामिनिष्ठा मेरे लिए भी रक्षा कवच बने।"

रेविमय्या का घोडा दो कदम आगे बढा। बिट्टिदेव के घोडे से हाथ-भर की दूरी पर रेविमय्या खडा रहा। "छोटे अप्पाजी, आपने कितनी बडी बात कही।

मुझमे उतनी योग्यता कहाँ ? मुझे आपने एक दुविधा से पार कर दिया। मैं इसके लिए आपका सदा के लिए ऋणी हूँ। यह मेरा जीवन प्रभु के लिए और उनकी सतति के लिए धरोहर है।" कहते हुए उनकी आँखें आँसुओ से भर आयी।

बिट्टिदेव ने इसे देखा और यह सोचकर कि इसके मन को और अधिक परेशानी मे नही डालना चाहिए, कहा, "अब चलो, लौट चलें।" उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही अपने टट्टू को मोड दिया।

दोनो राजमहल की ओर रवाना हुए।

उधर दोरसमुद्र मे मरियाने दण्डनायक के घर मे नवोपनीत वटु बल्लाल कुमार के उपनीन होने के उपलक्ष्य मे एक प्रीतिभोज का आयोजन किया गया था। महाराजा विनयादित्य ने इसके लिए सम्मति दे दी थी। इसीलिए प्रबन्ध किया जा सका। आमतौर पर ऐसे प्रीति-भोजो के लिए स्वीकृति मिल जाना आसान नही था। प्रभु एरेयग और एचलदेवी यदि उस समय दोरसमुद्र मे उपस्थित रहते तो यह हो सकता था या नही, कहा नही जा सकता। अब तो चामव्वा की इच्छा के अनुसार यह सब हुआ है। कुछ भी हो वह प्रधान मन्त्री गगराज की बहन ही तो है। इतना ही नही, वह मरियाने दण्डनायक को अपने हाथ की कठपुतली बनाकर नचाने की शक्ति और युक्ति दोनो मे सिद्धहस्त थी। उसने बहुत जल्दी समझ लिया कि कुमार बल्लाल का मन उसकी बेटी पद्मला की ओर आकर्षित है। ऐसी हालत मे उसके मन की अभिलाषा को पूरा करने के लिए बहुत प्रतीक्षा करने की जरूरत नही, इस बात को वह अच्छी तरह समझ चुकी थी। ऐसा समझने मे भूल ही क्या थी ? उसे इस बात का पता नही था कि अभी से उनके मन को अपनी ओर कर लूँ तो पीछे चलकर कौन-कौन मे अधिकार प्राप्त किये जा सकेगे ? वह दुनियादारी को बहुत अच्छी तरह समझती थी। इसी वजह से आयु मे बहुत अन्तर होने पर भी वह मरियाने दण्डनायक की दूसरी पत्नी बनी थी। उसे पहले से यह मालूम भी था मरियाने की पहली पत्नी के दो लडके पैदा हुए थे। बाद मे सात-आठ वर्ष बीतने पर भी वह गर्भ धारण न कर सकी थी। वह बीमार थी और उसे बच्चे न हो सकने की स्थिति का पता भी चामव्वा ने दाई से जान लिया था। ऐसी ऊँची हैसियतवालो के घर मे लडकियाँ जन्म लें तो उन्हे राजघराने मे सम्मिलित करना उस ज़माने मे कठिन नही था। पर राजघराने की लडकी को अपने घर लाकर अपनी प्रतिष्ठा-हैसियत बढाने का मौका कम मिलता

था। इसलिए युवराज के लडके के लिए, खुद लडकी की माँ बन जाने और महा-राज की सास बनने की बलवती इच्छा चामव्वा की रही आयी। प्रतिदिन अपनी आराध्या वासन्तिका देवी से भी यही प्रार्थना करती थी।

मानव-स्वार्थ को मानो भगवान् भी पूरा करने मे सहायक होता हो, विवाह के थोडे ही दिनो के बाद चामव्वा के गर्भधारण के लक्षण दिखायी दिये। अब उसकी इच्छाएँ सब ओर से बढने लगी। समय आने पर चामव्वा ने पद्मला को जन्म दिया। बच्ची को गोद मे ले पति के सामने जाकर उसे दिखाते हुए कहा, "देखिए, मैने महारानी को जन्म देकर आपकी कीर्ति मे चार-चाँद लगा दिये है।" यो उकसाकर मरियाने के मन में कुतूहल पैदा करके उसे अपने वश मे कर लिया। उसकी आराध्या वासन्तिका देवी ने प्रार्थना स्वीकार करके और उस उसकी इच्छा से भी अधिक फल देकर उसे निहाल कर दिया। पद्मला के जन्म के दो ही वर्ष बाद उसने चामला को जन्म दिया। इस बार चामव्वा ने दण्डनायक से कहा, "दण्डनायकजी, अब आपकी चारो उँगलियाँ घी मे। युवराज के दोनो लडको के लिए ही मैने दो लडकियो को जन्म दिया है। जिस मुहूत मे हमारा पाणिग्रहण हुआ था वह कितना अच्छा मुहूर्त था!" यह सुनकर दण्डनायक मरियाने खुशी मे फूलकर कुप्पा हो गया था। तब मरियाने इतना बूढा तो नही, शायद पचास और पचपन के बीच की उसकी आयु रही होगी। पहले उसके प्रत्येक कार्य मे स्वामि-निष्ठा और देशहित स्पष्ट था, अब उसका प्रत्येक कार्य अपनी आकाक्षाओ को सफल बनाने के लिए होने लगा। उन्ही दिनो युवरानी ने एक और पुत्र, तीसरे पुत्र, को जन्म दिया। चामव्वा का स्वभाव ही कभी पिछडे रहने का नही था। मानसिक और दैहिक दोनो तरह से वह बहुत आगे रही। इस कारण उसने एक तीसरी लडकी को जन्म दिया। जिस वासन्तिका देवी की वह आराधना करती थी वह बहुत उदार है, इसकी गवाही उसे मिल गयी। इसी वजह से वह साल मे किसी-न-किसी बहाने चार-छ बार वासन्तिका देवी की पूजा-अर्चा करवाती और राज्य के प्रतिष्ठित लोगो को निमन्त्रण देकर बुलवाती। इस प्रकार वह अपने साध्वीपन पतिपरायणता, और औदार्य आदि का प्रदर्शन करती थी। हर कोई कम-से-कम दिन मे एक बार दण्डनायक की पत्नी का नाम ले, इस तरह से उसने कार्य का नियोजन कर रखा था। इस सबके पीछे छिपे उसके स्वार्थ का आभास तक किसी को नही हो पाया था। मन की बात को प्रकट न होने दे, ऐसा अनु-शासन दण्डनायक पर भी लागू करा रखा था। उपनयन के अवसर पर जब सोसेऊरु गये थे तभी उसने अपने मन की अभिलाषा प्रकट कर दी थी। युवरानी की ओर से अपेक्षित प्रतिक्रिया न दिखने पर भी भावी दामाद से उसकी इच्छा के अनुकूल प्रतिक्रिया स्पष्ट मालूम पड गयी थी, इससे उसको आगे के कार्य करने मे बल मिला। इसी कारण सोसेऊरु से लौटने के बाद अपने पतिदेव के साथ उसने

क्या-क्या विचार-विनिमय किया सो तो वे ही जानें।

चामव्वे के कार्यक्रम बराबर जारी थे, परन्तु उसकी अपेक्षा के विरुद्ध शान्तला, उसके माता-पिता, किसी कोने मे पडे हेग्गडे-हेग्गडती, दोरसमुद्र पहुँच गये थे। उनकी इतनी बढायी ? कहीं सम्भव है ? जो स्थान-मान उसे भी मयस्सर नही वह इस साधारण हेग्गडती को मिले ? उसकी अपनी बेटी को जो प्रेम प्राप्त होना चाहिए था वह इस हेग्गडती की बेटी को मिले ? इस हेग्गडती ने, कुछ भी हो, युवरानी को किसी तरह से अपने वश मे कर रखा है। इसीलिए यह वैपरीत्य। युवरानी की हैसियत क्या और साधारण हेग्गडती की हस्ती क्या ? कहीं ऐसा होना सम्भव है ? इन दोनो मे कितना अन्तर है ! युवरानी से बुलावा आया नही कि सीधे राजमहल मे पहुँच गयी और वही बस गयी। मैंने ही खुद उसके ठहरने की व्यवस्था करके उसे और उसकी बेटी को वहाँ भेज दिया था। उस चोबदार के आकर बुलाने पर एकदम अपने समस्त कुनबे को उठाकर राजमहल मे ही उसने अड्डा जमा लिया ! कैसी औरत है ? देखने म अनजान-सी, पर अँगूठा दिखाने पर हाथ ही को निगलने की सोचती है यह औरत ! अभी से हमे इससे होशियार रहना चाहिए। नही तो वह येनकेन प्रकार से अपनी लडकी को महारानी बनाने की युक्ति जरूर निकालेगी। बडी भयकर है, यह तो ! इसके योग्य कुछ दवा करनी ही होगी।

यह विचार आते ही चामव्वे ने अपने पतिदेव मरियाने से सलाह करने की ठानी। सोसेऊरु से युवराज के परिवार समेत पहुँचने के समय से ही उसने अपना काम शुरू कर दिया। बिस्तर पर लेटे अपने पतिदेव के पास पान-बीडा देते हुए बात छेडी

"दण्डनायक जी आजकल, पता नही क्यो, पारिवारिक कार्यकलापो की ओर ध्यान कम देने लगे है। इतने व्यस्त है ?"

"आपकी इच्छा के अनुसार कार्य निर्विघ्न चल ही रहे है तो हमे इसमे सिर खपाने की क्या जरूरत है ? हम आराम से है।"

"हम भला क्या कर सकेगी ? दण्डनायक से पाणिग्रहण होने से दण्डनायक की पत्नी का खिताब मिला है, यही पुण्यफल है। आपके प्रेम और विश्वास से ही मेरा सिर ऊँचा है। नही तो· "

उसने बात को वही रोका। आगे नही बोली।

दण्डनायक मरियाने पान चबा रहे थे। होठ सफेद मूँछो के नीचे लाली से रँग गये थे। कोहनी टेककर थोडा-सा उठे और बोले, "क्यो कहना रोक दिया, कहो। तुम्हारी बातो से लगता है कि कुछ अनहोनी बात हुई है।"

"अगर आप इन बातो की ओर से आँखे मूँद ले तो क्या मैं भी अन्धी होकर बैठी रह सकती हूँ ?"

"क्या ? क्या हुआ ?"

"क्या होगा ? क्या होना चाहिए था ? यह सोचकर कि युवरानीजी हेग्गडती पर सन्तुष्ट है, मैंने उस बलिपुर की हेग्गडती की ठहरने की व्यवस्था वहाँ की थी। पर मेरे ही पीछे-पीछे कुछ कुतन्त्र करके वह राजमहल मे ही घुस बैठी। उस साधारण हेग्गडती के साहस को तो देखिए ? मतलब यह हुआ कि मेरी व्यवस्था का कोई मूल्य ही नही है। यही न ?"

"ओह ! इतना ही। इसके लिए तुम्हे यह, असमाधान ? जैसा तुमने कहा, वह एक साधारण हेग्गडती है सही। पर जब युवराज और युवरानी ने जब राजमहल मे खुद बुलवा भेजा तो कौन क्या कर सकता है ?"

"ठीक है, तब छोडिए। आप भी ऐसा सोचते है ! एक युवरानी कही ऐसा कर सकती है ? आपने देखा नही कि सोसेऊरु जब गये थे तब हमे दूर ही ठहराया नही था ?"

"तुम्हे एक यह बात समझनी चाहिए। यह ठीक भी है। इसमे हेग्गडती का कोई षड्यत्र नही है। खुद युवराज ने ही मुझे बताया। मैने ही रेविमय्या को बुलाकर पूछा, 'तुमने इन लोगो को अलग क्यो ठहराया।' उसने कहा, 'यह विषय मुझे मालूम नही।' युवरानी जी की इच्छा के अनुसार उन्हे बुला लाने के लिए मैने ही रेविमय्या से कहा। युवरानी जी सचमुच बहुत गुस्से मे आयी थी। परन्तु मुझे यह मालूम नही था कि तुमने उन लोगो को अन्यत्र भेज रखा था। तुम्हे यह सब क्यो करना चाहिए था, किसने करने को कहा था ?"

"जाने दीजिए। कल महाराज के ससुर बनकर इतराते बड़प्पन दिखानेवाले आप ही ऐसा कहे तो मैं ही आशा लेकर क्या करूँ ? प्रयोजन ही क्या है ? अपनी इन बच्चियो को किसी साधारण सैनिक अधिकारी को या पटवारी को देकर उनसे विवाह कर दीजिएगा और वह साधारण हेग्गडती अपनी लडकी को भावी महाराजा की रानी बनाकर बडप्पन दिखाती फिरे ? इसे देखने के लिए मैं जीवित रहूँगी। ठीक है न ?"

"क्या बात कह रही हो ? ऐसा होना कही सम्भव है ?"

"सम्भव है, मैं कहती हूँ यह होकर रहेगा। हजार बार कहूँगी। वह हेग्गडती कोई साधारण स्त्री नही। उसने युवरानी को वशीकरण मे अपने वश मे कर रखा है। आप मर्द इन सब बातो को नही समझते। अभी मे आप चेते नही तो फिर हमारी अभिलाषाएँ धरी-की-धरी रह जायेगी। मैंने सोसेऊरु मे ही कह दिया था कि युवरानी ने मेरी सलाह को कोई मान्यता नही दी। अभी भी एक भरोसा है। वह यह कि कुमार बल्लाल का मन हमारी बेटी से लगा हुआ है। लेकिन उसके मन के इस रुझान को भी अकुश लग सकता है। इसलिए आप कुछ भी सही, अब ऐसा करे कि कुमार यही ठहरे। उन्हे अपने माँ-बाप के साथ सोसेऊरु जाने न दे। यदि

वहाँ चले गये तो हमारा काम ही ठप हो जायेगा।"

मरियाने दण्डनायक ने यह सब सोचा न था। उसने केवल इतना ही समझा था कि छोटी उम्र की बच्ची शान्तला की बुद्धिमानी, उसका कार्य-कौशल्य आदि से युवरानी प्रभावित हुई है और इसी वजह से वे उसपर सन्तुष्ट है। यह तो केवल युवरानी की सहज उदारता मान रहा था। परन्तु युवरानी की प्रसन्नता पीछे चलकर यो रिश्तेदारी मे परिणत होगी, इसका उसे भान नही था। चामव्वा की बातो मे कुछ तथ्य का भान होने लगा। सम्भवत युवरानी की प्रसन्नता ऐसे सम्बन्ध की नान्दी हो सकती है, यह उसकी समझ मे नही आया। स्त्री की चाल स्त्री ही जाने। इस हालत मे यह नही हो सकता था कि कुछ दिनो तक और वे चुप बैठे रहे।

यो मन मे एक निश्चय की भावना के आते ही उस दिन दोपहर के समय महाराज के साथ जो उसकी बातचीत हुई थी उसका सारा वृत्तान्त उसने पत्नी को बताया। मरियाने से सारी बाते सुन चामव्वा अप्रतिभ-सी हो गयी।

"तो महाराज अब भी आपके बाल्यकाल की उस स्थिति-गति का स्मरण रखते है। आपके वर्तमान पद के अनुरूप आपके प्रति गौरव की भावना नहीं रखते ?"

"गौरव की भावना है, इसमे कोई शक नही। परन्तु उनका मत है कि हमारी हैसियत कितनी भी बढे, हमे अपनी पूर्वस्थिति को नही भूलना चाहिए।"

"तो मतलब यह कि हमारे मन की अभिलाषाएँ उन्हे स्वीकार्य नही हो सकेगी। हमारी बच्चियो को युवराज के बच्चो के लिए स्वीकृत करने पर उन्हे एतराज होगा।'

'वैसे सोचने की जरूरत नही। हमारे बच्चो को भी स्वीकार कर सकेगे, वैसे ही हेग्गडती की बच्ची को भी स्वीकार कर सकेगे।"

"हमे अपने कार्य को शीघ्र साध लेना चाहिए। भाग्यवश हमारी पद्मला विवाह-योग्य तो हो ही गयी है। एक-दो साल मे विवाह करवा देना चाहिए। तब तक कुमार बल्लाल को यही रोक रखना चाहिए, उन्हे अपने माँ-बाप के पास रहने न दे, ऐसी व्यवस्था करनी होगी।"

"बेहतर है कि अब तुम अपनी सारी आशा-आकाक्षाओ को भूल जाओ। मेरी लडकी की किस्मत मे रानी होना न लिखा हो तो वह रानी नही बन सकेगी। रानी बनना उसके भाग्य मे बदा हो तो कोई नही रोक सकेगा। इन बातो को लेकर माथापच्ची करना इस प्रसग मे ठीक नही।"

"ऐसा प्रसग ही क्या है ?"

'महाराज राजकाज से निवृत्त होना चाहते है। युवराज को राजगद्दी पर बिठाने की उनकी इच्छा है। आगे क्या होगा सो अब कहा नही जा सकता। इस

विषय मे महाराज ने मुझसे पूछा भी। यह सुनकर मेरे भी मन मे कुछ खलबली हुई। मुझे तो गद्दी मिलनेवाली नही। अगर पिता ने बेटे को गद्दी पर बिठाना चाहा तो मेरे मन मे खलबली क्यो हो? यह मेरी समझ मे नही आया। यदि ऐसा हो जाय तो हमे अपनी अभिलाषाओ को तिलाजलि देनी होगी। शायद इसी कारण मे यह खलबली हुई हो। फिर भी मैने पूछा कि प्रधानमन्त्रीजी इस बारे मे क्या कहते है। महाराज ने बताया कि अभी उनसे बात नही हुई है। इसके अलावा युवराज की भी स्वीकृति होनी चाहिए न? मैने पूछा। जवाब मिला—ऐसी हालत मे आप सभी लोग तो समझाने के लिए है न? आप लोग समझाकर स्वीकार करा सकते है। स्पष्ट है कि महाराज के विचार किस ओर है। ऐसी स्थिति मे हम भी क्या कर सकेंगे? युवराज को गद्दी पर बिठाने पर युवरानीजी महारानी बनेगी।"

"ऐसा हुआ तो वे इस रिश्ते को स्वीकार नही कर सकेंगे।"

"तब हम क्या कर सकते है?"

"यो हाथ समेटे बैठे रहने पर क्या होगा? हमारी अभिलाषाओ को सफल बनाने के लिए हमे कुछ मार्ग निकालना होगा। इसपर विचार-विनिमय करना पडेगा। फिलहाल इस पट्टाभिषेक की बात को स्थगित तो करावे?"

"जिस पत्तल मे खाया उसी मे छेद? यह सम्भव है? अपने स्वार्थ के लिए मै ऐसा नही कर सकता। मुझे ऐसा नही लगता कि इसमे कोई प्रयोजन सिद्ध होगा।"

"दण्डनायकजी इसपर कुछ सोच-विचार करे। फिलहाल पट्टाभिषेक न हो, यह हमारी अभिलाषा है। पद्मला का पाणिग्रहण कुमार बल्लाल कर ले, इसके लिए महाराज की ओर से कुछ दबाव पडे—ऐसा करना चाहिए। इसके पश्चात् ही युवराज एरेयग प्रभु का पट्टाभिषेक हो। ऐसा करने पर दोनो काम सध जायेंगे। हमारी आकाक्षा भी पूरी हो जायेगी। युवराज भी महाराजा हो जायेंगे। उनके बाद कुमार बल्लालदेव महाराजा होंगे ही, तब पद्मला महारानी होगी। यदि यो दोनो कार्यों को साधने की योजना बनाये तो इसमे द्रोह की कौन-सी बात होगी?"

"यह मध्यम मार्ग है। फिर भी यह योजना कुछ ताल-मेल नही रखती। तुम अपने भाई से सलाह कर देखो। उनका भी अभिमत जान लो। बाद मे सोचेंगे, क्या करना चाहिए।"—यह कहकर इस बात पर रोक लगा दी, और सो गये। वे आराम से निश्चिन्त होकर सोये, यह कैसे कहे?

प्रधानमन्त्री गगराज मितभाषी है। उनका स्वभाव ही ऐसा है। अपनी बहन की सारी बातें उन्होने सावधानी से सुनी। इसमे कोई गलती नही—कहकर एक तरह से अपनी सम्मति भी जता दी। अपनी बहन की बेटी महारानी बने—यह तो खुशी की बात है न? उनके विचार मे यह रिश्ता सब तरह से ठीक ही लगा।

परन्तु युवरानी की इच्छा क्या है, यह स्पष्ट रूप से उन्हे विदित नही था। इसलिए गगराज ने अपनी बहन से कहा, "चामू, तुमने युवरानी से सीधे इस विवाह के बारे मे बात तो नही की और उनसे इनकार की बात भी नही जानी। तब तुमने यह निर्णय कैसे किया कि उनकी इच्छा नही ?"

"जब मैंने इसका सकेत किया तो उसके लिए कोई प्रोत्साहन नही मिला, तब यही समझना चाहिए कि उनकी इच्छा नही है।"

"सास की जब इच्छा न हो तो उस घर की बहू बनाने की तुम्हारी अभिलाषा ठीक है—यह मैं कैसे कहूँ ?"

"एक बार सम्बन्ध हो जाने पर, बाद मे सब अपने आप ठीक हो जायेगा, भैया। युवरानीजी का मन साफ है।"

"ऐसा है तो सीधी बात करके उनसे मनवा लो।"

"उनकी सम्मति के बिना विवाह करना सम्भव नही, भैया जी ! परन्तु आसानी से सम्मति मिल जाय—ऐसा कार्यक्रम बनाना अच्छा होगा न ? कुमार बल्लालदेव की भी अनुकूल इच्छा है। पद्मला का भी उनमे लगाव है। विवाह का लक्ष्य ही वर-वधू का परस्पर प्रेम है, एक-दूसरे को चाहना है। है न ? शेष हम, हमारा काम उन्हे आशीष देना मात्र है। महाराजा विनयादित्य के सिंहसनासीन रहते यह कार्य सम्पन्न हो जाय, फिर उनकी इच्छा के अनुसार एरेयग प्रभु का पट्टाभिषेक हो, और कुमार बल्लाल को युवराज बना दे—तो यह अच्छा होगा न ? दण्डनायकजी पर महाराज का पुत्रवत् वात्सल्य है ही। अत उनके सिंहसनासीन रहते उनकी स्वीकृति पा ले और इस विवाह को सम्पन्न करा दें, ठीक है न, भैया जी ? आप इस प्रसग मे कैसे बरतेंगे—इसपर हमारी पद्मला का भविष्य निर्भर है। इस काम मे न तो स्वामिद्रोह है नही राष्ट्रद्रोह। बल्कि इस कार्य से महाराजा, प्रधानमन्त्री और दण्डनायक के बीच अच्छी तरह से जोड बैठ जायेगा। आप ही सोच देखिए, भैया।"

"अच्छी बात है चामू, मैं सोचूँगा। दण्डनायकजी मुझसे मिले थे। कल दोपहर आगे के कार्यक्रम के बारे मे महाराजा के साथ मन्त्रणा करनी है। इसलिए हम सुबह ही विचार कर ले—यह अच्छा है।"

"कुछ भी हो, भैया, मेरी आशा को सफल बनाने का यत्न करो।"

"इसमे राजद्रोह और राष्ट्रद्रोह के न होने की बात निश्चित हो जाय। और फिर इस कार्य से किसी को किसी तरह की मानसिक वेदना न हो यह भी मालूम हो जाय, तभी इस दिशा मे प्रयत्न करूँगा।"—इतना कहकर प्रधान गगराज ने बहन को बिदा कर दिया। वह विचार करने लगा। मन-ही-मन वह कहने लगा बहन की अभिलाषा मे कोई गलती नही। परन्तु युवराज के राज्याभिषेक होने पर उसकी इच्छा की पूर्ति न हो सकेगी—इस बात मे कोई सार नही। उसकी

समक्ष मे नही आया कि ऐसा कैसे और क्यो होगा ? निष्कारण भयग्रस्त है मेरी बहन । दण्डनायक के विचार जानकर ही आगे के कार्यक्रम का निश्चय करेगे—प्रधान गगराज ने निर्णय लिया ।

दूसरे दिन बहनोई दण्डनायक के साथ प्रधान गगराज की भेंट हुई । दोनो ने इस विषय पर विचार-विनिमय किया । खून-पानी से गाढा होता है न ? दोनो के विचार चामव्वा के विचार मे प्राय मेल खाते थे ।

उस दिन दोपहर को महाराजा के साथ की मन्त्रणा-गोष्ठी मे कुछ नयी स्फूर्ति लक्षित हो रही थी ।

महाराजा विनयादित्य ने कहा, "प्रधान जी ! दण्डनायक जी ! आप सभी को यह बात विदित है कि हमारा स्वास्थ्य उस स्थिति मे नही कि हम राजकाज सँभाल सकें । इसलिए इस दायित्व से मुक्त होकर हम आपके युवराज एरेयग प्रभु को अभिषिक्त कर निश्चिन्त होने की बात सोच रहे है । अब तो मै नाममात्र का महाराजा हूँ । वास्तव मे राज्य के सारे कारोबार उन्ही के द्वारा सँभाले जा रहे है, इस बात से आप सभी लोग भी परिचित है । वह कार्य निर्वहण मे दक्ष हैं, यह हम जानते है । उनकी दक्षता की बात दूसरो मे सुनकर हमे सन्तोष और तृप्ति है । उनपर हमे गर्व है । पोय्सल राज्य स्थापित होने के समय मे गुरुजनो की कृपा से राज्य क्रमश विस्तृत भी होता आया है । प्रजा मे वह प्रेम और विश्वास के पात्र बने है । हमे विश्वास है कि हमारे पुत्र इस प्रजाप्रेम और उनके इस विश्वास को बराबर बनाये रखेगे । जैसा आप लोगो ने हमारे साथ सहयोग किया और हमे बल दिया तथा राष्ट्ररक्षा के कार्य मे निष्ठा दिखायी वैसे ही हमारे पुत्र के प्रति भी, जो भावी महाराजा है, दिखावेगे । आप सब राजी हों तो हम कोई शुभ मुहूर्त निकलवाकर उनके राज्याभिषेक का निश्चय करे !"

महाराजा की बात समाप्त होने पर भी तुरन्त किसी ने कोई प्रतिक्रिया नही दिखायी । कुछ समय के मौन के बाद, महाराजा विनयादित्य ने ही फिर कहा, "ऐसे विषय पर तुरन्त कुछ कह पाना कठिन है । इसमे क्या सही है, क्या गलत है—यह बात सहज ही मे नही समझी जा सकती । वास्तव मे यह पिता-पुत्र से सम्बन्धित बात है, ऐसा समझकर हमे ही निर्णय कर लेना चाहिए था । और उस निर्णीत विषय को आप लोगो के समक्ष कह देना ठीक था । परन्तु आप सब राष्ट्रहित के लिए समर्पित, निष्ठावान, और विश्वासपात्र है, एकान्त मे हमारे कुमार हमारी सलाह को स्वीकार करेगे—इसमे हमे सन्देह है । इसलिए हमने अपने मित्रो के सामने इस बात को प्रस्तुत किया है । हम अपने कुमार की मनस्थिति मे अच्छी तरह परिचित है । हमारे जीवित रहते इस हमारे विचार को वे स्वीकार नही करेगे । उनका स्वभाव ही ऐसा है, वे यही कहेगे कि अभी जैसा चल रहा है वैसा ही चलता रहे । वे दिखावे के धोखे मे नही आते । भेदभाव रहित

परिशुद्ध मन है उनका, यह अनुभव हम स्वय कर चुके हैं। आप सबसे विचार-विनिमय करने के पीछे हमारा यही उद्देश्य है कि उन्हे समझा-बुझाकर उनसे 'हाँ' करा ले। सिहासन त्याग का हमे कोई दु ख नही हैं। जिस किसी तरह सिहासन पर बैठने की इच्छा हमारे कुमार की कभी नही रही। इसलिए यदि सर्व-सम्मति से यह कार्य सम्पन्न हो जाय तो इसका विशेष मूल्य होगा। खुले दिल से आप लोग कहे। हमारी इच्छा के विरुद्ध कहना चाहे तो भी निडर होकर कहे। सकोच की कोई जरूरत नही, क्योकि यह एक तरह से आत्मीय भावना से विचार-विनिमय करने के लिए आयोजित अपनो की ही गोष्ठी हैं। हमारे निर्णय के अनुकूल आप लोग चलेंगे तो हमे लौकिक विचारो से मुक्त होकर पारलौकिक चिन्तन के लिए अवकाश मिलेगा। हमारे कुमार युवराज पर अधिक उत्तरदायित्व का भार पडेगा जरूर, पर निर्वहण करने की दक्षता, प्रबुद्धता उनमे है।"

प्रधान गगराज ने मरियाने दण्डनायक की तरफ देखा।

"इस उत्तरदायित्व को निभानेवाले युवराज ही तो है, अत वे इस बारे मे स्वय अपनी राय बता दे तो अच्छा होगा।"—मरियाने दण्डनायक ने निवेदन किया।

"एक दृष्टि से दण्डनायक की बात ठीक जँचती है। जैसे महाराज ने स्वय ही फरमाया कि युवराज शायद स्वीकार न करे। इसलिए इस सम्बन्ध मे निर्णय अभी नही करना चाहिए—ऐसा मुझे लगता है। युवराज भी सोचे और हम भी सोचेगे। अभी तो युवराज यहाँ रहेगे ही। सबके लिए स्वीकार्य हो—ऐसा निर्णय करेगे वे।"—प्रधान गगराज ने कहा।

फिर थोडी देर के लिए वहाँ खामोशी छा गयी।

युवराज एरेयग के मन मे विचारो का तुमुल चल रहा था। वे सोच रहे थे—'इन सब लोगो के समक्ष यह सलाह मेरी ही उपस्थिति मे मेरे सामने खुद महाराज ने रखी है, इसका कोई कारण होना चाहिए। यदि सभी को मेरा पट्टाभिषिक्त होना स्वीकार्य होता तो तुरन्त स्वीकृति की सूचना देनी चाहिए थी, किसी ने यह नही कहा, ऐसा क्यो? महाराज ने स्वय इस बात को स्पष्ट किया है कि मेरा मन क्या है और मेरे विचार क्या है। उन्होंने जो कहा वह अक्षरश सत्य है। मेरे स्पष्ट विचार है कि महाराज के जीवित रहते मेरा सिहासनासीन होना उचित नही। तिस पर भी मेरे सिहासनासीन होने के बाद मेरी सहायता करनेवाले इन लोगो को यह बात स्वीकार्य न हो तो पीछे चलकर कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। तब महाराज की इस सलाह को न माननेवाले भी कोई है? अगर नही मानते हो तो उसका कारण क्या है? युवराज होने के नाते मुझे प्राप्त होनेवाला सिहासन का अधिकार यदि मुझे मिले तो इसमे किसी और को कष्ट क्यो? हकदार को उसका हक मिले तो किसी को क्या आपत्ति?

कौन क्या सोचता है पता नहीं, भगवान् ही जाने। सीधे किसी ने हृदय से यह स्पष्ट नहीं किया, इसलिए लोगों को समझना मेरा पहला कर्तव्य है।' यह विचार कर एरेयग प्रभु ने कहा, "दण्डनायक ने सही कहा है। उत्तरदायित्व हम पर होगा, तो यह उचित है हमारी राय भी जान लेनी चाहिए। महाराज ने स्वाभाविक रूप से अपने विचार रखे। प्रधानजी ने उनके उन विचारों को पुष्टि देते हुए हमें उत्साहित एवं प्रेरित भी किया है। हम अपने पूज्य जन्मदाता और हम सबके वयोवृद्ध महाराज की सेवा में निरत रहकर उनकी चरण-सेवा करते रहनेवाले सेवक मात्र हैं। उन पूज्य के जीवित रहते और सिंहासनासीन रहते हम सिंहासन पर नहीं बैठेंगे। इस विषय पर विचार करने की बात प्रधान जी ने भी कही। इसमें विचार करने जैसी कोई बात ही नहीं है, यह मेरी भावना है। विचार करने जैसी कोई बात हो तो वे ही जानें। और फिर, महाराज से मेरी एक प्रार्थना है। सन्निधान के रहते उन्हीं के समक्ष हमारा सिंहासनारूढ़ होना हमारे इस राजवंश पर कलंक का टीका लगाना है। कोई हमें ऐसा काम करने के लिए न उकसावे। यह अविनय नहीं, प्रार्थना है। हम पर इतना अनुग्रह करें।" कहकर प्रभु एरेयग ने झुककर प्रणाम किया।

तुरन्त मरियाने दण्डनायक के मुँह से निकला, "युवराज ने हमारे मन की ही बात कही।"

गंगराज बोले, "अपने वंश की प्रतिष्ठा के अनुरूप ही युवराज ने व्यवहार किया है। जैसे हम महाराजा के प्रति निष्ठा रखते हैं, युवराज के प्रति भी वही निष्ठा है। हम व्यर्थ ही दुविधा में पड़े रहे। युवराज ने उदारता से हमें उस दुविधा से पार लगा दिया।"

मरियाने दण्डनायक ने फिर कहा, "हमने उसी वक्त अपना अभिमत नहीं दिया, इसका कारण इतना ही था कि युवराज स्वयं अपनी राय बतावें या सम्मति दें—यही हम चाहते थे। इस विषय में युवराज को अन्यथा सोचने या सन्देह करने की कोई जरूरत नहीं है, न ऐसा कोई कारण ही है जिससे वे शंकित हों। हम पोय्सल वंश के ऋणी हैं। आपने इस वंश की परम्परा के अनुरूप ही किया है और हमारी भावना के ही अनुरूप समस्या हल हो गयी। इससे हम सभी को बहुत सन्तोष हुआ है। जैसा प्रधान जी ने कहा, हम किसी भेदभाव के बिना पोय्सल वंश के प्रति निष्ठा रखनेवाले हैं, इसमें किसी तरह की शंका नहीं। इस बात पर जोर देकर दुबारा यह बिनती है।"

महाराजा विनयादित्य कुछ अधिक चिन्तित दिखे, "मैंने चाहा क्या? आप लोगों ने किया क्या? क्या आप लोग चाहते हैं कि हमें मुक्ति न मिले? यहाँ जो कुछ हुआ उसे देखने से लगता है कि आप सबने मिलकर, एक होकर, हमें अपने भाग्य पर छोड़ दिया। हमने आप लोगों से बिनती की कि युवराज को समझा-बुझा लें और हमें

इस दायित्व से मुक्त करे। पर आप लोगो ने हमारी इच्छा के विरुद्ध निश्चय किया है। हमें सिहासन पर ही रहने देकर आप लोगो ने यह समझ लिया होगा कि हम पर बडा उपकार किया। हम ऐसा मानने को तैयार नही। आप लोगो का यह व्यवहार परम्परागत क्रम के विरुद्ध न होने पर भी, हमारे कहने के बाद, हमारे विचारो की उस पृष्ठभूमि से देखने पर यह निश्चय ठीक है ऐसा तो हमे नही लगता। यह गोष्ठी बिलकुल व्यर्थ साबित हो गयी। इसकी जरूरत ही क्या थी?" महाराज के कहने के ढग मे असमाधान स्पष्ट लक्षित हो रहा था।

एरेयग प्रभु ने कहा, "महाराज को असन्तुष्ट नही होना चाहिए। सबकी सम्मति के अनुसार बरतने मे राष्ट्र का हित है—ऐसा समझने पर शेष स्वार्थ गौण हो जाता है। अत महाराज को इस सर्व-सम्मति के अनुकूल होकर रहना ही उचित है। आपकी छत्रछाया हम सबको शक्ति देती रहेगी। आपकी सन्निधि राष्ट्र के लिए रक्षा-कवच है।"

चिण्णम दण्डनाथ अब तक मौन होकर सारी बाते सुन रहे थे। अब वे उठ खडे हुए और बोले, "एक तरह मे बात अब निश्चित हो गयी है, ठीक। फिर भी महाराजा और युवराज की अनुमति से मैं भी कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। यह गोष्ठी आत्मीयो की है, आत्मीयता से विचार-विनिमय करने के इरादे से बुलायी गयी है—स्वय महाराज ने ही यह बात स्पष्ट कर दी है। एक तरह से समस्या के सुलझ जाने की भावना तो हो आयी है, फिर भी महा सन्निधान ने जो विचार प्रस्तुत किये उन विचारो पर बिना किसी सकोच के निश्शक होकर हमे सोचना चाहिए। बस यही मेरी बिनती है। प्राय साथ रहकर मै अपने श्रीमान युवराज की पितृभक्ति, राज्यनिष्ठा और उनके मन की विशालता आदि को अच्छी तरह समझता हूँ। उनका व्यवहार उनके व्यक्तित्व की दृष्टि से बहुत ही उत्तम और आदरणीय है। उनके आज के वक्तव्य और व्यवहार ने उन्हे और भी ऊँचे स्तर पर पहुँचा दिया है। महासन्निधान की इच्छा उनके अन्त करण मे प्रेरित होकर अभिव्यक्त हुई है। इस तरह उनकी यह सहज अभिव्यक्ति किसी बाहरी प्रभाव के कारण नही। हमारी इस पवित्र पुण्यभूमि पर परम्परा से ही अनेक राजे-महाराजे और चक्रवर्ती वार्धक्य मे स्वय प्रेरित होकर अपना सिहासन सन्तान को सौंप राज्य भार से मुक्त हुए है। उसी परम्परा के अनुसार, महराज ने भी अपनी ही सन्तान, युवराज-पद पर अभिषिक्त, ज्येष्ठ पुत्र को अपने जीवित रहते सिहासना-रूढ कराने का अभिमत व्यक्त किया है। यह इसलिए भी कि पिता के जीवित रहते, युवराज सिहासन पर बैठने मे सकोच करेगे, यह सोचकर ही युवराज को समझा-बुझाकर उन्हे स्वीकृत कराने के उद्देश्य से महाराज ने अपना मन्तव्य आप लोगो के समक्ष रखा। परन्तु हम इस दिशा मे कुछ प्रयत्न किये बिना ही निर्णय पर पहुँच रहे है—ऐसा लग रहा है। इसलिए मैं अपनी ओर से और आप

सभी की तरफ से आग्रहपूर्वक यह विनती करता हूँ कि इस समय महाराज के आदेशानुसार, सिंहासनारूढ होकर राज्याभिषेक के लिए युवराज की आत्मस्वीकृति सभी दृष्टियों स उचित होगी। कृपा करके युवराज ऐसा करे, यह मेरी विनीत प्रार्थना है।"

मरियाने दण्डनायक झट से बोल उठे, "इस तरह युवराज पर जोर डालने के लिए हमारी कोई विशेष इच्छा नही है।"

चिण्णम दण्डनाथ ने फिर प्रश्न किया, "तो फिर जैसा है वैसा ही बने रहने मे आपका स्वार्थ है—यह मतलब निकाला जाये ?"

"मैने ऐसा नही कहा। हमारे कथन का आपने विपरीतार्थ लगाया।" मरियाने दण्डनायक ने उत्तर दिया।

"विपरीतार्थ या वैकल्पिक अर्थ करने के लिए मै कोई व्याकरणवेत्ता नही हूँ। महाराज का आदेश था सो मैने अपना निष्कर्ष बताया। इसमे मेरा कोई स्वार्थ नही है। मेरे लिए तो दोनो पूज्य और वन्दनीय है।" चिण्णम दण्डनाथ ने कहा।

मरियाने दण्डनायक कुछ व्यग्य भरे शब्दो मे बोले "तो दोनो हमारे लिए पूज्य नही है—यही आपका मतलब हुआ न ?"

प्रधान गगराज ने सोचा कि बात को बढने न देना चाहिए, इसलिए उन्होने कहा, "दण्डनायक जी, हम यहाँ इस तरह के वाग्युद्ध करने के लिए एकत्र नही हुए है। जैसा कि मैने पहले ही कहा कि इस विषय का जल्दबाजी मे कोई निर्णय लेना उचित नही होगा, सब लोग बहुत शान्त मन से सोच-विचार करेगे—यह सलाह दी थी। अब भी हमारा यही मन्तव्य है। महासन्निधान से आज्ञा लेकर आज की इस विचार गोष्ठी को समाप्त करेगे।" यह कहकर उन्होने महाराज की ओर देखा। महाराज ने अपनी सम्मति जता दी। सभा समाप्त हुई।

खूब सोच-विचार कर निर्णय करने के लिए सबको पर्याप्त समय देकर छोटे पुत्र उदयादित्य को साथ लेकर सोसेऊरु के लिए युवराज ने प्रस्थान कर दिया।

चामव्वे की इच्छा पूरी हुई। मरियाने के आग्रह से स्वय गगराज ने कुमार बल्लाल को यही ठहराने के लिए महाराज से बिनती की थी। एरेयग प्रभु के बाद पट्टाभिषिक्त होनेवाले राजकुमार है न ? अभी से उनके योग्य शिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए, फिर सारे राजकाज से परिचित भी कराना होगा—इसलिए उन्हे यहाँ रखना अच्छा है। इस बात की सलाह दी थी। इन सबके अलावा महाराज के सग मे रहने के लिए भी उनका ठहरना उचित है—यह भी उनकी सलाह थी।

कुमार बल्लालदेव के ठहर जाने मे वास्तव मे कोई विरोध भावना नही थी।

इस समय एचलदेवी के मन मे यह शका हुई होती कि यह सब चामव्वा का षड्यन्त्र है, तो सम्भव था कि वे इसका विरोध करती। फिर भी जितनी खुशी से वे राजधानी दोरसमुद्र मे आये थे, लौटते समय उसी सन्तोष से युवराज और युवरानी सोसेऊरु नही लौट पाये। हाँ, चामव्वे को जरूर असीम आनन्द हुआ।

फलस्वरूप चामव्वा ने अपने यहाँ आज के इस आनन्दोत्सव का आयोजन किया था। यह आनन्दोत्सव सभारम्भ भावी सम्बन्ध के लिए एक सुदृढ नीव बने, इसलिए उसने सब तरह से अच्छी व्यवस्था की थी। बेटी पद्मला को समझाकर अच्छी तरह मे पाठ पढाया था। उसने बल्लाल का कभी साथ नही छोडा। उसकी सारी आवश्यकताओ को पूरा करने की जिम्मेदारी उसी पर थी। उसका गोल चेहरा, बडी-बडी आँखे, जरा फैले होठ, विशाल भाल, सहज ही नखरे दिखाकर अपनी तरफ आर्कापत करने योग्य लम्बी ग्रीवा, ये सब तारतम्य ज्ञानशून्य उस बल्लालदेव को भा गयी थी।

भोजनोपरान्त आराम करने जब राजकुमार निकला तो पद्मला भी उसके साथ थी। शेष समयो मे भी वह उसके सामने रहती लेकिन तब अन्य लोग भी होते थे। इसलिए थोडा सकोच रहा करता। पर अब तो केवल दो ही थे। राजकुमार को पलग दिखाकर आराम करने के लिए पद्मला ने कहा। यह भी बता दिया कि यदि कोई आवश्यकता हो तो यहाँ जो घटी टँगी है उसे बजा दे, वह आ जायेगी। यह कहकर वह जाने लगी।

"तुम दोपहर के वक्त आराम नही करोगी ?"

"करूँगी।"

"तब घटी बजाने से भी क्या होगा !"

"आज नही सोऊँगी।"

"क्यो ?"

"जब राजकुमार अतिथि बनकर आये हो, तब भला सो कैसे सकती हूँ ?"

"अतिथि को नीद नही आ रही हो तो ?"

"मतलब ?"

"क्या माताजी ने यहाँ न रहने को कहा है ?"

"उन्होंने तो ऐसा कुछ नही कहा।"

"ऐसा नही कहा तो और क्या कहा है ?"

"आपकी आवश्यकताओ की ओर विशेष ध्यान देते रहने को कहा है।"

"तुम्हे यह कहना चाहिए था, क्या नौकर नही है ?"

"मुझ-जैसी देखभाल नौकर कर सकेंगे ?"

"क्या माताजी ने ऐसा कहा है ?"

"हाँ, प्रत्येक कार्य ध्यान देकर करना और सब तरह से ठीक-ठीक क

उनकी इच्छा रहती है। कहीं भी कुछ कमी-बेशी नहीं होनी चाहिए। उसमें भी आपके प्रति जब विशेष प्रेम गौरव है तब और अधिक ध्यान देकर देखभाल करनी होगी।"

"ऐसा क्यों ? मुझमें ऐसी विशेष बात क्या है ?"

"आप तो भावी महाराजा हैं न ?"

"उसके लिए यह सब क्यों ?"

"हाँ तो।"

"यदि मेरा महाराजा बनना सम्भव नहीं हुआ तो यह सब "

"ऐसा क्यों सोचते हैं आप ?"

"यों ही।"

'मैं आपको बहुत चाहती हूँ।"

"मतलब ?"

राजकुमार के इस प्रश्न से पद्मला को ध्यान आया कि उसने एकाएक क्या कह दिया। उसका चेहरा सहज लज्जा से लाल हो आया। दृष्टि ज़मीन की ओर झुक गयी।

कुमार बल्लाल उत्तर की प्रतीक्षा में उसे देखने लगा।

"अभी आयी," कहती हुई पद्मला वहाँ से भाग गयी।

कुमार बल्लाल ने पुकारा, "पद्मला पद्म ।" उसे आवाज़ तो सुनायी दी, मगर लौटी नहीं।

भागते वक्त जो दरवाज़े का परदा हटाया था वह वैसे ही हिलता रहा। बल्लाल ने समझा वह परदे के पीछे खड़ी होकर उँगली से परदा हिला रही होगी। वह पलंग से धीरे से उठा और परदे की ओर गया। उधर परदे का हिलना बन्द हो गया। सावधानी से उसने परदा हटाया। कोई नहीं था। पलंग की ओर लौटा, और पैर पसारकर लेट गया।

घण्टी बजाने के इरादे से बजाने का डण्डा उठाना चाहा। फिर उसका मन बदला। डण्डे को वहीं रख दिया।

'आपको मैं चाहती हूँ'—यह ध्वनि सजीव होकर उसके कानों में झंकृत हो रही थी। एक हृदय की बात ने दूसरे हृदय में प्रविष्ट होकर उसमें स्पन्दन पैदा कर दिया था। इस स्पन्द से वह एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव कर रहा था। हृदय प्रतिध्वनित हो कह रहा था 'ठीक, मैं भी तो तुम्हें चाहता हूँ। मुझे भी तुमसे प्यार है।'—होंठ हिले नहीं, जीभ भी गतिहीन थी, गले की ध्वनि-तन्त्रियाँ भी ध्वनित नहीं हुईं, कहीं कोई स्पन्दन नहीं। साँस चल रही थी, उसी निश्वसित हवा पर तैरती हुई बात निकली थी। भाव समाधि से जागे तो मन में एक नयी स्फूर्ति भर आयी। उसने घण्टी बजायी और परदे की तरफ़ देखने लगा।

परदा हटा। जो आयी वह पद्मला नहीं। उसकी बहन चामलदेवी थी। अनजाने ही बल्लाल के मन मे पद्मला छा गयी थी। इस धुन मे उसने सोचा न था कि पद्मला के बदले कोई दूसरी आयेगी। किसी दूसरे की वह कल्पना ही नहीं कर सकता था। क्योंकि घण्टी बजने पर खुद उपस्थित होने की बात स्वय पद्मला ने कही थी न ?

"बुलाते रहने पर भी भागी क्यो ? मैं भी तो तुम्हे चाहता हूँ।" बल्लाल ने कहा।

चामलदेवी कदम आगे न रखकर वही खडी रही। वही से पूछा, "क्या चाहिए था राजकुमार ?"

"तुम्हे ही चा " बात वही रुक गयी। उसने वहाँ खडी हुई चामला को एक पल देखा। और फिर "तुम्हारी बहन कहाँ है ?" कुछ सकोच से पूछा।

"उसे ही चाहिए क्या ? मुझसे न हो पायेगा क्या ? कहिए, क्या चाहिए ?" चामलदेवी मुसकुराकर बोली। उसके बात करने के ढग मे कोई व्यग्य नही था, सीधी-सादी भावना थी। अपनी बहन को जो काम करना था उसे वह करे तो उसमे तो कोई गलती नही—यह उसकी बातो मे ध्वनित हो रहा थ ।

"नही, कुछ भी नही चाहिए " बल्लाल ने कहा।

साडी पहनकर यदि चामला आयी होती तो वह भी पद्मला ही की तरह लगती। उसने लहँगा-कुरती पहन रखी थी। वास्तव मे वह पद्मला से दो वर्ष छोटी थी। मझोली होने के कारण कुछ हृष्ट-पुष्ट भी थी। यदि दोनो को एक ही तरह का पहनावा पहना दे तो जुडवाँ-सी लगती। ऐसा रूप-साम्य था। केवल आवाज मे फर्क था। पद्मला की आवाज कास्य के घण्टे की आवाज की तरह थी तो चामला की मधुर और कोमल।

'उसे ही चाहिए क्या ?'—चामला की इस स्वर-लहरी मे जो माधुर्य था वह कुमार बल्लाल के हृदय मे स्पन्दित हो रहा था। कहने मे कुछ अटपटा होने पर भी वह अपने भाव को छिपाने की कोशिश कर रहा-सा लगता था। फिर भी उसकी दृष्टि चामला पर से नही हट पायी थी।

चामला भी कुछ देर ज्यो-की-त्यो खडी रही। उसे कुमार बल्लाल के अन्तरग मे क्या सब हो रहा है, समझ मे न आने पर भी, इतना तो समझ गयी कि वे कोई बात अपने मन मे छिपाये रखना चाहते हैं।

"यदि रहस्य की बात हो तो बहन को ही भेजती हूँ।" कहती हुई जाने को तैयार हुई।

झट बल्लाल कुमार ने कहा, "रहस्य कुछ नही। अकेले पडे-पडे ऊब गया था, यहाँ कोई साथ रहे, इसलिए घण्टी बजायी।"

जाने के लिए तैयार चामला फिर वैसे ही रुक गयी।

बल्लाल ने प्रतीक्षा की कि वह शायद पास आये। प्रतीक्षा विफल हुई। तब उसने कहा, "पुतली की तरह खड़ी रहना और किसी का न रहना दोनों बराबर है। आओ, यहाँ पास आकर बैठो।" कहकर पलग पर अपने ही पास जगह दिखायी।

वह उसके पास गयी, पर पलग पर न बैठकर, पास ही दूसरे आसन पर जा बैठी। बोली, "हाँ, बैठ गयी, अब बताइए क्या करूँ।" उसकी ध्वनि मे कुछ नट-खटपन से मिश्रित ढीठपन था।

"तुम्हे गाना आता है?" बल्लाल ने पूछा।

"आता है, परन्तु दीदी की तरह मेरी आवाज भारी नही।"

"मधुर लगती है न।"

"मैने अभी गाया ही नही।"

"तुम्हारी बातचीत ही मधुर है। गाना तो और ज्यादा मधुर होगा। हाँ, गाओ न!"

चामला गाने लगी। बल्लाल को वह अच्छा लगा। उसने पूछा, "तुम्हारे गुरु कौन है?"

"दण्डनायकजी को यह सब पसन्द नही। इसलिए गुरु नही।"

"तो फिर तुमने सीखा कैसे?"

"किसी-किसी को गाते सुनकर सीखा है, पता नही कितनी गलतियाँ है!"

"मुझे क्या मालूम? तुमने गाया। मैने सुना, अच्छा लगा। एक गाना और गाओगी?"

"हाँ"—चामला ने गाना शुरु किया।

कुमार बल्लाल वैसे ही लेट गया। भोजन गरिष्ठ था। एक दो तीन गाने गा चुकी। समय सरकता गया। कुमार बल्लाल को नीद आ गयी। चामव्वा भावी जामाता को देख जाने के इरादे से उधर आयी तो देखा वहा चामला है। तब पद्मला कहाँ गयी? यहाँ न रहकर क्यो चली गयी? क्या हुआ? दरवाजे पर लटक परदे की आड मे से गाने की ध्वनि सुनकर धीरे से परदा हटाकर झाँका और बात समझ गयी। चामव्वा समझ गयी कि राजकुमार सन्तुष्ट है। उसका अभीष्ट भी यही था।

उसके उधर आने की खबर किसी को न हो, इस दृष्टि से चामव्वा चली गयी।

एक गाना समाप्त होने पर दूसरा गाने के लिए कहनेवाले राजकुमार ने तीसरा गाना पूरा होने पर जब कुछ नही कहा, तो चामला ने पलग की ओर देखा। वह इसकी ओर पीठ करके सोया हुआ था। चामला चुपचाप पलग के चारो ओर चक्कर लगा आयी। उसने देखा कि राजकुमार निद्रामग्न है। वह

भागी और अपनी बडी बहन पद्मला को खबर दी।

"ओह, मैं तो भूल ही गयी थी। तुम्हारा गाना सुनते-सुनते बोप्पी सो जाती है। राजकुमार तुम्हारे गाने को सुन खुश हो गये, लगता है।"

"तुम ही उनसे पूछकर देख लो।"

"न न, मैं तो उनसे कुछ नही पूछूँगी।"

"क्यो ?"

"यह सब तुम्हे क्यो ? जाओ।"

"तुम न कहो तो क्या मुझे मालूम नही होगा ? सकोच और लज्जा है न ? क्योकि आगे पति होनेवाले हैं ? इसलिए न ?"

"है, नही, देखो। फिर • "

"क्या करोगी ? महारानी हो जाने पर क्या हमे सूली पर चढवा दोगी ?"

"अभी क्यो कहूँ !"

"देखा न ! मुँह से बात कैसे निकली, महारानी बनेगी।" कहती हुई खुशी से ताली बजाती हुई भाग गयी।

"ठहर, मैं बताती हूँ तुझे ।" कहती हुई पद्मला ने उसका पीछा किया। अपनी माँ को उधर आयी हुई देखकर दोनो जहाँ थी वही सिर झुकाकर खडी हो गयी। इतने मे माँ ने दोनो बहनो की करतूत देखकर कहा, "बहुत अच्छा है, दोनो बिल्ली की तरह क्यो झगड रही हो ?"

माँ को कोई उत्तर देने का प्रयत्न दोनो ने नही किया। दोनो आपसी बात को आगे बढाना उचित न समझकर वहाँ से भाग निकली।

चामव्वा ने सुख निद्रा से मग्न बल्लाल कुमार को फिर से एक बार देखा, और तृप्ति का भाव लिये अन्दर चली गयी।

उधर बिट्टिदेव रेविमय्या के पीछे पडा ही था। उसने जो बात घूमने समय के समय नही कही उसे अब कहे—रेविमय्या इस असमजस मे पडा था, तो भी वह चाहता था कि राजकुमार बिट्टिदेव को निराश न करें। इससे भी बढकर उनके मन मे किसी तरह का कडुआपन पैदा न हो—इस बात का ध्यान रखकर रेविमय्या किसी के नाम जिक्र न करके बोला, "दोरसमुद्र मे जो बातें हुई थी—सुनते हैं, किसी के स्वार्थ के कारण, तात्कालिक रूप से ही सही, युवराज का पट्टाभिषेक न हो—इस आशय को लेकर कुछ बातें हुई हैं। इससे युवराज कुछ परेशान हो

गये हैं।" रेविमय्या ने बताया।

"मतलब यह कि युवराज शीघ्र महाराजा न बने ? यही न ?" बिट्टिदेव ने कहा।

"न, न, ऐसा कही हो सकता है, अप्पाजी ?" रेविमय्या ने कहा।

"ऐसा हो तो यह परेशानी ही क्या है ?"

"नमक खाकर नमकहरामी करनेवालो के बरताव के कारण यह परेशानी है। सचमुच अब युवराज पर महाराजा का प्रेम और विश्वास दुगुना हो गया है।"

"ठीक ही तो है। परन्तु इससे बाकी लोगो को क्या लाभ ? यदि सिंहासन पर अधिकार जमाने की ताक मे कही और से उसको मदद मिल रही हो तो चिन्ता की बात थी। पर ऐसा तो कुछ है नही।"

"मेरे लिये भी वही हल न होनेवाली समस्या बनी हुई है। युवराज या युव-रानी ने—किसी ने इस बारे मे कुछ कहा भी नही। ये सारी बाते तो मैने दूसरो से जानी है।"

"फिर तो मै माँ से ही पूछ लूँगा।"

"नही, अप्पाजी, कुछ पूछने की आवश्यकता नही। समय आने पर सारी बाते अपने आप सामने आ जायेगी।"

"कैसा भी स्वार्थ क्यो न हो, इस तरह का बरताव अच्छा नही, रेविमय्या। युवराज को और जरा स्पष्ट कहना चाहिए था।"

"युवराज का स्वभाव तो खरा सोना है। किसी को किसी तरह का दर्द न हो, इसलिए सबका दु खन्दर्द खुद झेल लेते है।"

"सो तो ठीक। अब भैया क्यो नही आये ? वही दोरसमुद्र मे क्यो ठहरे हुए है ?"

"सुनते है, महाराजा ने खुद ही उन्हे अपने पास रख लिया है। खासकर मरियान दण्डनायक ने इस बात पर विशेष जोर दिया था। व सेना और उसके सचालन आदि के बारे म अप्पाजी को शिक्षित करना चाहते है। युवराज जब महाराजा बनेगे तब तक अप्पाजी को महादण्डनायक बन सकने की योग्यता प्राप्त हो जानी चाहिए—ऐसा उनका विचार है। यह सब सीखने के लिए यही उपयुक्त उम्र है।"

"प्रारम्भ से ही भैया का स्वास्थ्य अच्छा नही। बार-बार बिगडता रहता है। इस शिक्षण मे कही थक जाय और कुछ-का-कुछ हो जाय तो ? भैया का स्वभाव भी तो बहुत नाजुक है। क्या दण्डनायक को यह बात मालूम नही ?"

"सो तो ठीक है। अब तो अप्पाजी को वहाँ ठहरा लिया।"

"माँ ने कैसे इसके लिए स्वीकृति दे दी ?"

"वास्तव मे युवराज और युवरानी की इच्छा नही थी। खुद अप्पाजी ही ठहरने के लिए उत्साही थे—ऐसा सुनने मे आया है। महाराजा का कहना था, तुरन्त खुशी से माँ पर ज़ोर डालकर ठहरने की स्वीकृति अप्पाजी ने ले ली—यह भी सुनने मे आया।"

"ऐसा है ? आखिर भैया को वहाँ ठहरने मे कौन-सा विशेष आकर्षण है ?"

"मै कैसे और क्या कहूँ, अप्पाजी ? जो भी हो, महाराज की सलाह को इनकार न करते हुए उन्हे वहाँ छोड आये है।"

"तो हमारे लिए युवराज ने ऐसी आज्ञा क्यो दी कि लौटते समय दोरसमुद्र न जाकर सीधे यही आवें ?"

"वह तो युवरानी की इच्छा थी।"

"यह सब पहेली-सी लग रही है, रेविमय्या। मैं माँ से अवश्य पूछूँगा कि यह सब क्या है।"

"अप्पाजी, अभी कुछ दिन तक आप कुछ भी न पूछे। बाद मे सब अपने-आप सामने आ जायेगा। आप पूछेगे तो वह मेरे सिर पर बन आयेगी। इसलिए अभी जितना जान सके उतने से सतुष्ट रहना ही अच्छा है। मैं यह समझूँ कि अब आगे इस बारे मे आप बात नही छेडेगे ?"

"ठीक है। यदि कभी ऐसी बात पूछ भी लूँ तो तुम्हारा नाम नही लूँगा।"

"कुछ भी हो, अब न पूछना ही अच्छा। फिर आप जैसा सोचते हो !"

"ठीक है, जैसी तुम्हारी इच्छा।"

रेविमय्या की बात पर बिट्टिदेव ने सम्मति दे दी। परन्तु उसके मन मे अनेक विचार उठते रहे। उस ऊहापोह मे वह किसी एक का भी समाधान करने मे अपने को असमर्थ पा रहा था। यदि युवराज महाराजा बने तो उससे किसी को क्यो तकलीफ होगी ? भैया के वहाँ रह जाने की इच्छा युवराज और युवरानी—दोनो की नही थी। इसका परिणाम क्या होगा ? जानते हुए भी भैया वहाँ ठहरने के लिए उत्साही क्यो हुए ? माता से यो ज़बरदस्ती अनुमति लेने की कोशिश भैया ने क्यो की ? मुझे दोरसमुद्र होकर लौटने की मनाही क्यो हुई ? मेरी शिवगगा जाने की बात दोरसमुद्रवालो को क्यो मालूम नही होनी चाहिए ?—आदि-आदि इन सारे सवालो का उठना तो सहज ही है। इन सब बातो की उलट-पुलट उसके मन मे होती रही। इनमे से किसी एक प्रश्न का भी समाधान उसे नही मिल रहा था। समाधान न मिलने पर भी इन सवालो के बारे मे सोचे बिना रहना भी तो नही हो सकता था। छोटी-छोटी बातो पर भी गम्भीर रूप से सोचना उसका जैसे स्वभाव बन गया था। कुछ तो पता लगना चाहिए। यह कहना उचित न होगा कि उसे कुछ सूझा ही नही। माँ की इच्छा के विरुद्ध कुछ हुआ ज़रूर है। भैया के वहाँ ठहरने, एव हेग्गडे परिवार के साथ इसके शिवगगा जाने और इस बात को गोप्य रखने—

इन बातो मे अवश्य कोई कार्य-कारण सम्बन्ध होना चाहिए। इतना ही नही, युबराज के पट्टाभिषेक सभारम्भ को स्थगित करने के साथ भी इन बातो का सम्बन्ध हो सकता है। अनेक तरह की बाते सूझ तो रही थी, परन्तु इस सूझ मात्र से वस्तुस्थिति को समझने मे कोई विशेष मदद नही मिल पायी। काफी देर तक दोनो मौन बैठे रहे।

खामोशी को तोडते हुए बिट्टिदेव ही बोला, "रेविमय्या !"

"क्या है अप्पाजी ?"

"माँ ने मेरे हेग्गडे परिवार के साथ शिवगगा जाने की बात को गुप्त रखने के लिए तुमसे क्यो कहा ?"

रेविमय्या अपलक देखता रहा, बिट्टिदेव की ओर।

"लगता है इसका कारण तुम्हे मालूम नही, या तुम बताना नही चाहते ?"

"अप्पाजी, मै केवल एक नौकर मात्र हूँ। जो आज्ञा होती है उसका निष्ठा से पालन करना मात्र मेरा कर्तव्य है।"

"तुम्हारी निष्ठा से हम परिचित है। तो तुम्हे कारण मालूम नही है न ?"

"जी नही।"

"मालूम होता तो अच्छा होता।"

"हाँ, अप्पाजी। पर अभी मालूम नही है।"

"क्या मालूम नही है रेविमय्या ?" अचानक आयी एचलदेवी पूछ बैठी।

रेविमय्या झट मे उठ खडा हुआ।

बिट्टिदेव भी उठा। माँ से बोला, "आओ माँ, बैठो।" कहते हुए आसन दिखाया। युवरानी बैठ गयी। बिट्टिदेव भी बैठ गया। क्षण भर वहाँ खामोशी छायी रही।

युवरानी एचलदेवी ने मौन तोडते हुए कहना शुरू किया "आप लोगो के सम्भाषण मे बाधा पड गयी, छोटे अप्पाजी ? क्यो, दोनो मौन क्यो हो गये ?"

बिट्टिदेव ने एक बार रेविमय्या को देखा, फिर माँ की ओर मुख करके बोला, "कोई बाधा नही। सचमुच आप ठीक समय पर आयी।"

"कैसा ठीक समय ?"

"मै रेविमय्या से पूछ रहा था—मेरे शिवगगा जाने की बात दोरसमुद्र मे किसी को विदित न हो, यह गुप्त रखने के लिए आपने कहला भेजा था। मैने उससे इसका कारण जानना चाहा तो वह कह रहा था कि मैं तो नौकर मात्र हूँ। मुझे जो आदेश होता है उसका निष्ठा के साथ पालन करना मात्र मेरा कर्तव्य है। इतने मे "

"मै आ गयी। इसीलिए यह ठीक समय हुआ, है न ?"

"जी हाँ। इसका मतलब क्या है, माँ ?"

"अप्पाजी, हम सब पहले मानव है। फिर उस मानवत्व के साथ 'पद' भी लग गया। पद की परम्परा रूढ़िगत होकर हमसे चिपक गयी हैं। मानव होने की हमारी आशा सफल हुई, पर उसके बाद यह पदवी जो लगी उससे अड़चन पैदा होने पर कुछ बातें सब लोगो को मालूम न होना ही अच्छा रहता है। यहाँ भी कुछ ऐसी ही बात थी, इसलिए ऐसा कहला भेजा था।"

"मतलब यह कि कुछ लोगो को यह बात मालूम हो गयी तो आपकी किसी सहज आशा मे अड़चन पैदा हो सकती है—ऐसी शका आपके मन मे आयी होगी। यही न ?"

"एक तरह से तुम्हारा कहना भी ठीक है।"

"युवरानी होकर भी कुछ लोगो के कारण आपको ऐसा डर ?"

"अप्पाजी, अभी तुम छोटे हो। सफेद पानी को भी दूध मान लेना तुम्हारे लिये सहज है। मैं युवरानी हूँ, सच है। परन्तु मानव-सहज कुछ मेरी भी अपेक्षाएँ हो सकती है। हाल की घटनाओ पर ध्यान देने से लगता है कि हमे भी सावधान रहना होगा। खुद महाराज की अभिलाषाएँ उनकी इच्छा के अनुसार फलीभूत हो सकने मे भी आशका हो तो हमारी आकाक्षाओ का क्या हाल होगा ?"

"तो महाराज की कोई आशा पूरी नही हुई ?"

युवरानी चुप रही। कुछ सोचने लगी। रेविमय्या भी सोचने लगा, आखिर बात यहाँ तक आ पहुँची !

"यदि न कहने की बात है तो मै आग्रह नही करूँगा, माँ। कल जब मैं बडा हो जाऊँगा तब यदि राजा नही होऊँ तब भी अनेक जिम्मेदारियाँ मुझपर पड सकती है। ऐसी स्थिति मे मुझे कैसे बरतना होगा—इसके लिए मुझे शिक्षा देकर उस योग्य बनाना चाहिए। ऐसी विरोधी शक्ति सगठित हो रही है इस राज्य मे जो महाराज को भी झुका दे, आपकी बातो मे ऐसा ही मालूम पडता है।"

"नही अप्पाजी, ऐसी कोई विरोधी शक्ति सगठित नही हुई है।"

"तो फिर ?"

"मानव का मन आम तौर पर दुर्बल है। नियम और सयम से उसे अपने अधीन रखना होता है। परन्तु जब स्वार्थ प्रबल हो आता है तब वही सबकुछ बनकर अन्य विषयो की ओर से अन्धा हो जाता है। बहुमत के सहयोग और निष्ठा मे ही राजाओ के अस्तित्व का मूल्य होता है।"

"तो क्या राजा को ऐसे लोगो के स्वार्थ के वशीभूत होना चाहिए ? क्या इसका प्रतिकार नही किया जा सकता ?"

"सब कुछ मानवीय पहलू से देखना होता है, अप्पाजी। स्वार्थ भी मानव का एक सहज गुण है। एक हद तक वह क्षम्य होता है। पर यदि वही स्वार्थ राष्ट्रहित मे बाधक बने तो उसे खतम ही करना होगा।"

"राष्ट्रसेवक स्वार्थवश यदि कभी ऐसा बने तो राजा को भी झुकना होगा ?"

"झुकने के माने यही नही, उसे क्षमा का एक दूसरा रूप माना जा सकता है।"

"माँ, क्षमा यदि अति उदार हो जाय तो दण्डनीय गलतियाँ भी उस उदारता मे अनदेखी हो जाती है। न्याय के पक्षपाती राजाओ को इस विषय मे बहुत जागरूक रहना चाहिए। उदार हृदय राजाओ के लिए एक बहुत ही श्रेष्ठ गुण है। फिर भी उसका दुरुपयोग न हो, ऐसी बुद्धिमत्ता तो होनी ही चाहिए—गुरुवर्य ने मुझसे यह बताया है।"

"औदार्य, दया, क्षमा—ये तीनो राजाओ के श्रेष्ठ गुण है, अप्पाजी। जैसा तुमने कहा, इनका दुरुपयोग नही होने देना चाहिए। इस विषय मे सतर्क रहना आवश्यक होता है। अतएव " युवरानी कहते-कहते रुक गयी। और फिर जाने को उद्यत हो गयी।

"क्यो माँ, बात अधूरी ही छोड दी ?" कहते हुए बिट्टिदेव भी उठ खडा हुआ।

"घण्टी की आवाज नही सुनी, अप्पाजी ? प्रभुजी पधार रहे है।"

रेशम का परदा हटा। युवराज एरेयग प्रभु अन्दर आये। रेविमय्या बाहर चला गया। युवराज के बैठ जाने पर युवरानी और बिट्टिदेव दोनो बैठ गये।

"क्यो अप्पाजी, आज गुरुजी नही आये ?" युवराजा ने पूछा।

बिट्टिदेव उठ खडा हुआ। "नही, आज अध्ययन का दिन नही है।" फिर माँ की तरफ मुडकर कहने लगा, "माँ, यह घुडसवारी का समय है जाऊँगा।" कहकर वहाँ से निकल गया।

अन्दर युवराजा और युवरानी दो ही रहे। कुछ देर तक मौन छाया रहा। फिर युवराज एरेयग ने ही बात छेडी, "चालुक्यराज त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्य की ओर से एक बहुत ही गुप्त पत्र आया है। क्या करना चाहिए—इस सम्बन्ध मे मन्त्री और दण्डनायक से सलाह करने के पहले अन्त पुर का मत जानने के लिए यहाँ आया हूँ।"

"हम स्त्रियाँ भला क्या समझे ? जैसा आप पुरुष लोग कहते है, हम तो बस स्त्री ही हैं।"

"स्त्री, स्त्री होकर रह सकती है। और चाहे तो मर्दाना स्त्री भी हो सकती है, पौरुष की प्रतीक। मृदु-स्वभाव का कवियो ने जैसा वर्णन किया है, वह सब अपने पर क्यो आरोपित किया जाये ? उस वर्णित मार्दव को दीनभाव से क्यो देखा-समझा जाये ? हमारे इस भव्य राष्ट्र की परम्परा मे स्त्री के लिए परमोच्च स्थान है। वाक्-शक्ति ने सरस्वती का रूप धारण किया है। अर्थ-शक्ति ने लक्ष्मी का रूप

धारण किया है। बाहुबल ने स्वय-शक्ति का रूप धारण किया। जीवन के लिए आधारभूत शक्ति ने अन्नपूर्णा का रूप धारण किया। पुरुष और प्रकृति के बारे मे कल्पना की आँख ने जो भी देखा वह सब भी भव्य-स्त्री के रूप मे निरूपित किया गया। वास्तव मे स्त्री-रूप कल्पना की यह विविधता ही इस राष्ट्र की परम्परा की भव्यता का प्रमाण है।"

"हाँ हाँ, यो प्रशसा करके ही स्त्रियो को वश मे कर पुरुष हम अबलाओ को जाल मे फँसा लेते हैं। और फिर 'अबला-रक्षक' पद से अलकृत हो विराजते हैं। इस सबके मूल मे पुरुष का स्वार्थ है। इसमे स्त्री होकर कोई भव्यता नही देखती हूँ।"

"देखने की दृष्टि मन्द पड गयी है।"

"न, न आचरण की रीति बदल गयी है। वह परम्परागत भव्य कल्पना अब केवल कठपुतली का खेल बन गयी है।"

"इधर-उधर की बाते समाप्त करके, अभी जिस विषय को लेकर विचार-विनिमय करने आया उसे बताऊँ या नही ?"

"ना कहने का अधिकार ही कहाँ है मुझे ?"

"फिर वही व्यग्य !"

"व्यग्य नही, हम, याने स्त्रियाँ अपने आपको सम्पूर्ण रूप से समर्पण कर देती है। हमारे पास अपना कुछ भी नही रह जाता। ऐसी दशा मे हमारे हाथ मे कोई अधिकार ही नही रह जाता। अच्छा, कहिए क्या आज्ञा है ?"

"मालव के राजा का विक्रमादित्य से वैर पहले से ही है। चालुक्य और परमारो मे पीढी-दर-पीढी से यह शत्रुता चली आती रही है। पहले परमार राजा मुज को हराकर चालुक्य तैलप चक्रवर्ती ने परमारो की सारी बिरुदावली को छीन लिया था। अब धारानगरी पर हमला करना है। यदि हम साथ न दें तो उनका दायाँ हाथ ही कट जायेगा। चक्रवर्ती ने यह बात स्पष्ट कहला भेजी है। अब क्या करना चाहिए ?"

"विश्वास रखकर सहायता चाहनेवालो के तो आप सदा आश्रयदाता रहे हैं, इस बारे मे सोचने-विचारने जैसी कोई बात ही नही है।"

"वाह ! आपने अपने घराने के अनुरूप बात कही।"

"किस घराने के ?"

"हेम्माडी अरस के गगवशी घराने के, जिसमे तुमने जन्म लिया और वीरगग पोय्सल घराने के जिसमे तुम पहुँची। इतनी आसानी से स्वीकृति मिल जायेगी—इसकी मुझे कल्पना भी नही थी।"

"क्यो ? आप जैसे वीरश्रेष्ठ का पाणिग्रहण करनेवाली मुझको आपने कायर कैसे समझ लिया ?"

"ऐसा नही, राजमहल मे एक शुभकार्य सम्पन्न हुए अभी एक महीना भी पूरा नही हुआ है। अभी युद्ध के लिए जाने की बात पर शायद कोई स्वीकृति नही दे सकेगा—ऐसा लग रहा था मुझे।"

"वर्तमान प्रसग मे यह मचमुच अच्छा है। दोरसमुद्र मे जो नाटक हुआ, यहाँ बैठे-बैठे उसे बार-बार स्मरण करते हुए मन को कड आ बनाकर परेशान होने के बदले, सबको भूल-भालकर जयमाला पहनने को सिर आगे बढाना अच्छा ही है न? इसमे कीर्ति तो मिलती ही है, मन को शान्ति भी प्राप्त होती है। और भरोमा रखनेवालो को मदद देने के कर्त्तव्य-निर्वहण का आत्म-सतोष भी। ये सब एक माथ प्राप्त नही होगे क्या?"

"हमे तो ये सब प्राप्त होंगे ही। परन्तु यहाँ एकाकी रहकर ऊब उठेगी तो?"

"इस विषय मे प्रभु को चिन्तित होने की आवश्यकता नही। हमारे छोटे अप्पाजी ऐसा मौका ही नही देगे।"

"अब तो वही हमारा सहारा है। अप्पाजी अभी दोरममुद्र मे ठहर गये है, वहाँ उनका मन कब किम तरह परिवर्तित हो जाये या कर दिया जाये कहा नही जा मकता।"

"यह तो मही है। अप्पाजी को वहाँ ठहराने की बात पर आप राजी ही क्यो हुए?"

"जिम उद्देश्य से हमने मिहासन को नकार दिया, उमी तरह मे इमे भी हमने स्वीकार किया। दूमरा चारा भी न था। महाराज की अब उम्र भी बहुत हो गयी है, काफी वृद्ध हो गये हे। वास्तव मे वे नचानेवालो के हाथ की कठपुतली बन गये है।"

"कल राज्य ही दूसरो के हाथ मे हो जाये तो?"

"वह मम्भव नही। पिछले दिनो जिम-जिसने उस नाटक मे भाग लिया है, उनका लक्ष्य राजद्रोह नही था—इतना तो निश्चित है।"

"यदि यह बात निश्चित है, तो इस नाटक का उद्देश्य क्या है—आपको मालूम रहना चाहिए न?"

"उसका कुछ-कुछ आभाम तो हुआ है।"

"यदि अपनी इम अर्धांगिनी को बता मकते है तो बताइये न?"

"हमारी अर्धांगिनी हममे भी ज्यादा निपुण है। हमारा अनुमान था कि आपने पहले से ही इस बारे मे कुछ अन्दाज लगा लिया होगा।"

"प्रशसा नही, अब वस्तुस्थिति की जानकारी चाहिए।"

"चामव्वे की इच्छा है कि वह युवरानी की समधिन बने। इस इच्छा की पूर्ति के लिए यह सारा नाटक रचा जा रहा है।"

एचलदेवी हँस पडो।

"हँसती क्यो हो ?"

"बात कुछ अटपटी लगी। कहावत है, 'अफारा गाय को, दाग दिया बैल को।' इसलिए हँसी आ गयी।"

"राजनीति तो ऐसी ही होती है।"

"होती होगी ! फिर भी मुझे, इसका सिर-पैर क्या है—सो तो मालूम नही पडा।"

"ठीक ही तो है। दिये तले अँधेरा। अपन ही पाँव तले जो होता रहा, वह दिखायी नही दिया।"

"क्या सब हुआ ?"

"एक माधारण हेग्गडती को जितना गौरव मिलना चाहिए उससे कही मौ गुना अधिक गौरव पा जाने से, राजघराने से मिल सकनेवाले समस्त गौरव को मात्र अपने ही लिए माननेवालो के मन मे असहिष्णुता और सन्देह के लिए युवरानी ने मौका ही क्यो दिया ?"

"किसी को कुछ विशेष गौरव दिया तो दूसरो के मन मे असहिष्णुता और सन्देह क्यो ?"

"हमसे पूछने से क्या लाभ ? प्रधानमन्त्रीजी की बहन आपकी समधिन बनना चाहती है, आपकी ओर से कोई प्रोत्साहन नही मिला, सुनते है।"

"तो क्या चामव्वा की राय मे हमे जैसी बहू चाहिए वैसी चुनने की स्वतन्त्रता भी नही और हमारे बेटे को अपनी जीवनसगिनी बनने योग्य कन्या को चुनने की आजादी भी नही ! ऐसी है उसकी भावना ? मेरी स्वीकृति से ही तो वह समधिन बन मकेगी ?"

"उमने तुम्हारे स्वातन्त्र्य के बारे मे सवाल नही उठाया। बल्कि खुद को निराश होना पडा, उसकी यह प्रतिक्रिया है। अपने प्रभाव और शक्ति को प्रकारान्तर से दिखाकर हममे भय उत्पन्न करने की सूत्रधारिणी बनी है, वह दण्डनायकिनी !"

"तो क्या हमे डरकर उसकी इच्छा के आगे समर्पित होना होगा ?"

"आप झुके या न झुकें, वह तो अपना काम आगे बढायेगी ही।"

"यदि हम यह कह दे कि हम यह रिश्ता नही चाहते, तब क्या कर सकेगी ?"

"इतनी आसानी से ऐसा कह नही मकते। इस सवाल पर अनेक पहलुओ से विचार करना होगा। माता-पिता होने पर भी सबसे पहले हमे कुमार की राय जाननी होगी।"

"तब तो काम बिगड गया समझो ! आप अब कृपा करके तुरन्त अप्पाजी को

दोरसमुद्र से वापस बुला लें।"

"तो क्या यह रिश्ता आपको पसन्द नही ?"

"अब तक मेरे मन मे ऐसी भावना नही थी। परन्तु अब इस कुतन्त्र की बात सुनकर लगता है, यह रिश्ता नही चाहिए। घर-फोड स्वभाववाले लोगो की रिश्तेदारी घराने की सुख-शान्ति के लिए घातक होगी। यह अच्छा नही।"

"इतनी दूर तक सोचने की जरूरत नही। यद्यपि किसी हद तक यहाँ स्वार्थ है, तो भी जैसा तुम समझती हो वैसे घर-फोड स्वभाववाले है—ऐसा मुझे नही लगता।"

"आप कुछ भी कहे, मै इससे सहमत नही हो सकती। उनके स्वार्थ को मैं समझ सकती हूँ। परन्तु स्वार्थ के कारण उत्पन्न होनेवाली असूया बडी घातक है। नि स्वार्थ और सरल स्वभाव की उस हेग्गडती और उसकी मासूम बेटी से इस चामव्वा को डाह क्यो ?"

"उसके दिल मे ईर्ष्या पैदा हो—ऐसा सन्निवेश ही तुमने पैदा क्यो किया ? लोग आँखे तरेरकर देखें—ऐसा काम ही क्यो किया ?"

"मैंने कौन-सा गलत काम किया ?"

"हम यह तो नही कह सकते कि गलत काम किया। लेकिन जो किया सो सबको ठीक लगेगा—ऐसा नही कहा जा सकता। राजघराने के परम्परागत सम्प्रदाय मे आदर और गौरव स्थान-मान के अनुसार चलता है। निम्न वर्गवालो को उच्च वर्ग के साथ बिठावे तो उच्च वर्गवाले सह सकेगे ?"

"तो क्या दण्डनायक अपनी पूर्वस्थिति को भूल गये है ?"

"वे भूल गये है या नही, मालूम नही। परन्तु महाराजा अब भी स्मरण रखते है।"

"सो कैसे मालूम ?"

उन लोगो से पहले बिट्टिदेव और शान्तला जब दोरसमुद्र मे पहुँचे, उसके बाद वहा राजमहल मे, मरियाने दण्डनायक की जो बातचीत महाराजा से हुई, और उसका साराश जितना कुछ रेविमय्या से मालूम हुआ था, वह पूरा युवराज एरेयग प्रभु ने अपनी पत्नी को कह सुनाया।

"हमारे महाराजा तो खरा सोना है। उनका नाम ही अन्वर्थ है। अर्हन ! अब निश्चिन्त हुई। तब तो मेरे मन की अभिलाषा पूरी हो सकेगी।" युवरानी ने जैसे स्वय मे कहा। उसके कथन का प्रत्येक शब्द भावपूर्ण था जो एरेयग प्रभु के हृदयस्थल मे पैठ गया।

अभिलाषा ऐसी नही थी जो समझ मे न आ सके। अभिलाषा का सफल होना असम्भव भी नही लगता था। परन्तु उनकी दृष्टि मे अभी वह सफल होने का समय नही आया था।

"तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी परन्तु उसे अभी प्रकट नही करना।" युवराज ने कहा।

"महाराजा का आशीर्वाद मिलेगा। युवराज की भी सम्मति है। इसी एक विश्वास से अपेक्षित को पाने मे चाहे समय जितना भी लगे, मै निश्चिन्त रह सकूँगी।"

"तो कल प्रस्थान करने मे कोई अडचन न होगी न !"

"नही, मुझसे इसके लिए कभी अडचन न होगी। परन्तु इस युद्ध का कारण क्या है कुछ मालूम हुआ ? यदि कह सकते हो तो कहे।"

"विक्रमादित्य ने अपना 'शक' जो आरम्भ किया वह परमारो के लिए द्रोह का कारण बना है।"

"विक्रमी शक का आरम्भ हुए अब तक सोलह साल पूरे हो गये। सत्रहवाँ शुरू हुआ है। इतने साल बीतने पर भी अभी वह द्रोह की आग बुझी नही ?"

"द्रोह अब सोलह वर्ष का युवा है। यौवन मे गर्मी चढती है। इसके साथ यह भी कि सिलहार राजपुत्री चदलदेवी ने विक्रमादित्य चक्रवर्ती के गले मे स्वयवर-माला पहना दी। इस घटना ने अनेक राजाओ मे द्रोह पैदा कर दिया है। उस समय परमार भोजराज का भी जलन रही आयी। वे स्वयवर मे भी हारे। उस अनिन्द्य सुन्दरी ने इन राजाओ के समक्ष इनके परम शत्रु के गले मे माला पहनायी तो उनके दिलो मे कैसा क्या हुआ होगा ? परमार की इस विद्वेषाग्नि को भडकाने मे कश्मीर के राजा हर्ष ने जो स्वय इस सुन्दरी को पाने मे असफल रहा, उसने भी शायद मदद दी हो। इन सबके कारण भयकर युद्ध होना सम्भव है।"

"स्वयवर-विधि तो इसलिए बनी है जिसमे कन्या को उसकी इच्छा ओर भावनाओ को उचित गौरव के साथ उपयुक्त स्थान प्राप्त हो। तो यह स्वयवर विधान क्या सिर्फ नाटक है ?"

"किसने ऐसा कहा ?"

"हमारे इन राजाओ के बरताव ने। स्वयवर के कारण एक राज्य दूसरे राज्य से लडने को उद्यत हो जाय तो इसका मतलब यह तो नही कि स्वयवर पद्धति को ही व्यर्थ कहने लगे।"

"पद्धति की रीति, उसके आचरण का चाहे जो भी परिणाम हो, स्त्री, धन और ज़मीन—इसके लिए लडाइयाँ हमेशा से होती रही है। होती ही रहेगी। खुद सिरजनहार भी इसे नही रोक सके। सीता के कारण रामायण, द्रौपदी की वजह से महाभारत के युद्ध हुए। यो स्त्री के लिए लडकर मर मिटना मानव समाज के लिए कलक है। ये घटनाएँ जोर देकर इस बात की साक्षी दे रही है। जानते हुए भी हम बार-बार वही करते है। यह छूटता ही नही। हमारे लिए अब यही एक सतोष की बात है कि आत्म-समर्पण करनेवाली एक स्त्री की स्वतन्त्रता

की रक्षा करने जा रहे हैं।"

"ऐसी हालत मे खुद स्त्री होकर नाही कैसे कर सकती हूँ। फिर भी एक स्त्री को लेकर इन पुरुषो मे जो झगडे होते है वे खतम होने ही चाहिएँ। हाँ, तो कल प्रस्थान किस वक्त होगा ?"

"यह अभी निश्चित नही किया है। गुरुवर्य गोपनन्दी जो समय निश्चित करेंगे, उसी समय रवाना होंगे। यहाँ के रक्षा कार्य मे चिण्णम दण्डनाथ रहेंगे। महामात्य मानवेग्गडे कुन्दमराय, हमारे साथ चलेंगे।"

"इस बात को महाराजा के समक्ष निवेदन कर उनकी सम्मति ले ली गयी है ?"

"नही, अब इसके लिए समय ही कहाँ है ! विस्तार के साथ सारी बात लिखकर पत्र द्वारा उनसे विनती कर लेंगे।"

"उनकी सम्मति मिलने के बाद ही प्रस्थान करते तो अच्छा होता। प्रस्थान के पहले बडो का आशीर्वाद भी तो लेना उचित होता है।"

"मतलब यह कि हम खुद जावे, महाराजा को सारी बात समझावे और उनसे स्वीकृति ले एव आशीर्वाद पावे, इसके बाद यहाँ लौटकर आ जाये—तभी यहाँ हमारी वीरोचित विदाई होगी, अन्यथा नही, यही न ? ठीक है, वही करेंगे। शायद इसीलिए कहा है—स्त्री, कार्येषु मन्त्री।" यह कहकर उन्होने घण्टी बजायी।

रेविमय्या अन्दर आया।

"रेविमय्या, शीघ्र ही हमारी यात्रा के लिए एक अच्छा घोडा तैयार किया जाय। साथ मे न न कोई भी नही चाहिए। चलो, जाओ।"

रेविमय्या वहाँ से चला गया।

"साथ एक रक्षकदल नही चाहिए ?"

"हमे वेष बदलकर हो आना होगा। इसलिए रेविमय्या को साथ लेता जाऊँगा। वह भी वेष बदलकर ही साथ आयेगा।"

दोरसमुद्र पहुँचकर वहाँ महाराजा विनयादित्य के सामने सबकुछ निवेदन कर उनकी स्वीकृति और आशीर्वाद के साथ युवराज एरेयग प्रभु ने गुरु गोपनन्दी द्वारा निश्चित मुहूर्त पर प्रस्थान किया।

दोरसमुद्र के लिए रवाना होने के पहले ही विश्वासपात्र गुप्तचरो द्वारा

आवश्यक सूचना धारानगरी भेज दी गयी थी। दो प्रमुख गुप्तचरो को पत्र देकर बलिपुर और कल्याण भी भेज दिया था।

बलिपुर के हेग्गडे मारसिंगय्या ने बनवासी प्रान्त के ख्यात युद्धवीरो का एक जत्था प्रात काल के पूर्व ही तैयार कर रखा था। इस सैन्य-समूह की निगरानी के लिए अपने साले हेग्गडे सिंगिमय्या को नियुक्त कर रखा था।

युवराज एरेयग प्रभु की सेना ने बलिपुर मे एक दिन विश्राम करके हेग्गडे का आतिथ्य पाकर उन योद्धाओ को भी साथ लेकर, जिन्हे हेग्गडे ने तैयार रखा था, आगे कूच किया। वास्तव मे युवराज से हेग्गडे का अब तक सम्पर्क ही न हो सका था। इस अवसर पर पहली बार उनका भेंट-परिचय हुआ। युवराज को इसी अवसर पर यह भी मालूम हुआ कि हेग्गडती माचिकब्बे कुन्तल देश के ख्याति-प्राप्त नागवर्मा दण्डनाथ की पौत्री एव बहुत उदार दानी, धर्मशील बलदेव दण्डनायक की पुत्री है। बलिपुर मे युवराज खुद आये-गये, पर यह बात तब मालूम नही हुई थी।

इस सम्मिलित सेना के साथ एरेयग प्रभु आगे बढे। गुप्तचरो की कार्यदक्षता के फलस्वरूप नेरेगल के निवासी मगलवेडे के महामण्डलेश्वर जोगिमरस की पुत्री विक्रमादित्य की रानी सावलदेवी के द्वारा सगठित एक हजार से भी अधिक योद्धाओ का एक जत्था भी इस सेना मे आ मिला। फिर छोटे केरेयूर मे बसी विक्रमादित्य की एक दूसरी रानी मलयामती ने अपनी सेना की टुकडी को भी इसके साथ जोड दिया। वहाँ से आगे विक्रमादित्य के समधी करहाट के राजा मारसिह, चालुक्य महारानी चदलदेवी के पिता ने एक भारी सेना को ही साथ कर दिया। यो एरेयग प्रभु के नेतृत्व मे ज़मीन को ही कँपा देनेवाली एक भारी फौज दक्षिण दिशा से पूर्व-नियोजित स्थान की ओर बढ चली। उधर विक्रमादित्य की सेना के साथ कदम्बराज तिक्कम की पुत्री, विक्रमादित्य की रानी जक्कलदेवी ने, इगुणिगे से भी अपनी सेना भेज दी। इसी तरह उनकी अन्य रानियो—बेंबलगी की एगलदेवी और रगापुर की पद्मलदेवी ने भी अपनी-अपनी सेनाओ को भेज दिया था। ये दोनो सेनाएँ अपने-अपने निर्दिष्ट मार्ग से धारानगरी की ओर रवाना हो गयी।

बलिपुर से युवराज एरेयग प्रभु अपनी सेना के साथ आगे की यात्रा के लिए रवाना हुए। जिस दिन वे चले उस दिन दो-पहर के पाठ के समय शान्तला ने

गुरुवर्य बोकिमय्या से युद्ध के विषय मे चर्चा की। उसने अपने पिता से इस विषय मे पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर ली थी। वह इस सैन्य-संग्रह के पीछे छिपे रहस्य को जानने का प्रयत्न करती रही। परन्तु इसके सही या गलत होने के विषय मे पिताजी के समक्ष अपनी जिज्ञासा प्रकट नही कर पायी। सोसेऊरु से जब दूत आये तभी से उसके पिता ने जो परिश्रम किया यह उसने प्रत्यक्ष देखा था। उस परिश्रम का औचित्य वह समझ रही थी। उसमे कोई गलती नही है—इस बात की सही जानकारी जब तक न हो तब तक कोई इतनी निष्ठा से काम नही कर सकता, यह बात भी वह जानती थी। फिर भी, जिस जैन धर्म का मूलतत्त्व ही अहिसा हो और जो उसके अनुयायी हो, उन्हे इस मार-काट मे भला क्यो लगना चाहिए ?—यह बात उसकी समझ मे नही आ रही थी।

इसीलिए उसने गुरुजी से पूछा "गुरुजी, युद्ध का लक्ष्य हिसा ही है न ?"

"लक्ष्य हिसा है, यह नही कहा जा सकता अम्माजी। मगर इसकी क्रिया हिसायुक्त है—यह बात अक्षरश सत्य है।"

"तब जैन धर्म का मूल्य ही क्या रहा ?"

"राजा धर्मरक्षा ही के लिए है। प्रजा की रक्षा भी धर्मरक्षा का एक अग है। प्रजा को दूसरो से जब कष्ट उठाने पडते है या उसे हिसा का शिकार बनना पडता है, तब उसके निवारण के लिए यह अनिवार्य हो जाता है।"

"क्या अहिसक ढग से निवारण करना सम्भव नही ?"

"यदि इस तरह हिसा के बिना निवारण सम्भव हो जाता तो कभी युद्ध ही न होता, अम्माजी।"

"मतलब यह कि युद्ध अनिवार्य है—यही न ?"

"मनुष्य जब तक स्वार्थ एव लिप्सा से मुक्त नही होगा तब तक यह अनिवार्य ही लगता है।"

"भगवान् बुद्ध ने भी यही बात कही कि हमारे सभी दु ख-क्लेश का कारण ये ही स्वार्थ और लिप्सा है।"

"महापुरुष जो भी कहते है वह अनुकरणीय है, अम्माजी। परन्तु हमे यह नही भूलना चाहिए कि सभी व्यक्ति महान नही होते।"

"महापुरुषो के उपदेश का प्रयोजन क्या है ?"

"केवल उपदेश से कोई प्रयोजन नही सधता। उसके अनुष्ठान से प्रयोजन की सिद्धि होती है। और फिर, अनुकरण मानव-स्वभाव है। हाव-भाव, चाल-चलन, रीति-नीति, बोल-चाल, भाषा-बोली—सब कुछ अनुकरण से ही तो हम सीखते है। महापुरुष जो उपदेश देते है उसका वे स्वय अनुष्ठान भी करते है। तभी तो वे महात्मा कहलाते है। लोग बडी आस्था से उनके मार्ग का अनुसरण

करते है। परन्तु अनुसरण की यह प्रक्रिया पीढ़ी-दर-पीढ़ी शिथिल होकर दुर्बल होने लगती है। उसमे वह शक्ति या प्रभाव कम हो जाता है जो आरम्भ मे था। तब हम, जो इस शैथिल्य के स्वय कारण है, उस तथाकथित धर्म के विरुद्ध नारे लगाने लगते है। कुछ नयी चीज़ की खोज करने लगते हैं। जो इस नवीनता की ओर हमे आकर्षित कर लेते है उनका हम अनुसरण करने लगते हैं। उसे अपनी स्वीकृति देते हैं। उस नवीनता को दर्शानेवाले व्यक्ति को महापुरुष की उपाधि देते है। यह एक चक्र है जो सदा घूमता रहता है। रूढिगत होकर प्रचलित सात्विक भावनाओ को इस नयी रोशनी मे नया जामा पहनाकर, नया नाम देकर, इमे उस पुराने से भिन्न मानकर उसपर गर्व करते हैं। परन्तु गहरे पैठने पर दोनो मे अभिन्नता ही पाते हैं। तब समझते हैं दोनो एक हैं। उस तब से इस अब तक सब एक हैं। मानवातीत प्रेममय उस सात्विक शक्ति पर जो एकनिष्ठ और अचल विश्वास होता है, वही सारे धर्मों का मूल है।"

"सभी व्यक्तियो को यदि यह मालूम हो जाय तो ये झगडे-फसाद ही क्यो, होने, है न ?"

"सो तो ठीक है, अम्माजी। तथ्य को समझने का सभी लोग प्रयास ही कहाँ करते यही तो इस सारे कष्ट का कारण है!"

"सभी को प्रयास करना चाहिए।"

"इसी को तो साधने मे मनुष्य असफल रहा है! कोई छोटा-बडा या ऊँच-नीच नही—यह भावना उत्पन्न करना ही धर्म का प्रयोजन है। मगर हम ऊँच-नीच, उत्तम-अधम की मोहर लगाने के लिए धर्म की आड लेते हैं। यही सारे सघर्ष की जड है। किसी एक के बडप्पन को दुनिया मे घोषित करने, किसी की आशा-आकाक्षा को पूर्ण करने, किसी को श्रेष्ठ कहने, कोई महान् शक्तिशाली है—यह बताने और उसकी प्रशसा करने के ये सब साधन है। इस घोटाले मे पडकर असली बात को भूलकर, अहिसा को छोड हिसा मे लोगो की प्रवृत्ति हो जाती है। और तब, जब न्याय का कोई मूल्य नही रह जाता, बल प्रयोग के लिए अवकाश मिल ही जाता है।"

"सभी राजा प्रजापालक होते है न ?"

"हाँ अम्माजी। प्रजापालक को ही तो राजा कहते हैं। वे ही राजा कहलाने योग्य माने जाते है।"

"ऐसी हालत मे एक राजा दूसरे राजा के विरुद्ध अपनी-अपनी प्रजा को भडकाते क्यो है? यह प्रजापालन नही, प्रजाहनन है।"

"स्वार्थी राजा के लिए यह प्रजाहनन है। जब उसे वह अनुभव करता है कि यह स्वार्थ से प्रेरित हत्या है, तब वह युद्ध का त्याग भी कर बैठता है। सम्राट् अशोक ने इसी वजह से तो शस्त्र-परित्याग किया था। प्रजा का रक्तपात

क्षेमंकर नहीं होता—इस बात का ज्ञान उसे एक ऐसे सन्निवेश मे हुआ जब वह एक महायुद्ध मे विजयी हुआ था। तभी उसने शस्त्र-त्याग कर दिया था। क्या यह सचमुच अहिंसा की जीत नही, अम्माजी ?"

"तब तो हिंसा का प्रत्यक्ष ज्ञान ही अहिंसा के मार्ग को दर्शानेवाला प्रकाश है, यही हुआ न ?"

"हाँ अम्माजी, हिसा होती है, इसी से अहिमा का इतना बडा मूल्य है। अँधेरे का ज्ञान होने से ही प्रकाश का मूल्य मालूम होता है। अज्ञान की रुक्षता के कारण ही ज्ञान के प्रकाश से विकसित सुन्दर ओर कोमल सस्कृति का विशेष मूल्य है। दुर्जन के अस्तित्व मे ही सज्जन का मूल्य है। यह तो एक ही सिक्के के दो पहलू है। एक के अभाव मे दूसरा नही। रावण न होता तो सीता-राम का वह मूल्य न होता। पाण्डवो के मूल्य का कारण कौरवो का अन्याचार था। हिरण्यकशिपु का द्वेव-द्वेष ही प्रह्लाद की भक्ति को मूल्य दे मका।"

"जो अच्छा है, वही दुनिया मे सदा मानव को देवता बनाये रखेगा—यह सम्भव नही। यही कहना चाहते है न आप ?"

"हाँ अम्माजी, बुरे का मूलोच्छेदन करना सम्भव ही नही।"

"फिर तो जो अच्छा है, उमे भी बुरा निगल सकता है ?"

"वह भी सम्भव नही, अम्माजी। जब तक ससार है तब तक अच्छा-बुरा दोनो रहेगे। इसीलिए मनु ने एक बात कही है—'विषादपि अमृत ग्राह्य'। जो सचमुच मानव बनना चाहता है वह विष को छोडकर अमृत को ग्रहण करता है। विष मे से अमृत का जन्म हो तो उसे भी स्वीकार कर लेता है। परन्तु इस तारतम्य औचित्यपूर्ण ज्ञान को प्राप्त करने की शक्ति मनुष्य मे होनी चाहिए। उसकी शिक्षा-दीक्षा का लक्ष्य भी वही हो तब न !"

"यह सब कथन-लेखन मे है। जीवन मे इनका आचरण दुर्लभ है, है न ? यदि सभी लोग मनु के कथन के अनुसार चले तो 'बालादपि सुभाषित" चरितार्थ होता। है न गुरुजी ?"

बोकिमय्या ने तुरन्त जवाब नही दिया। वे शान्तला की ओर कुतूहल से देखने लगे। शान्तला भी एक क्षण मौन रही। फिर बोली, 'क्या गुरुजी मरा प्रश्न अनुचित तो नही ?"

"नही, अम्माजी। इस प्रश्न के पीछे किसी तरह की वैयक्तिक पृष्ठभूमि के होने की शका हुई। मेरी यह शका ठीक है या गलत—इस बात का निश्चय किये बिना कुछ कहना उचित मालूम नही पडा। इसलिए चुप रहा।"

"आपकी शका एक तरह से ठीक है, गुरुजी।"

"आपके कथन के पीछे आपकी मनोभूमि मे एकाएक क्या प्रसग आया !"

"कैसा प्रसग ?"

"हमारी अम्माजी की एक अच्छी भावना से कथित बात के बदले में बड़ों द्वारा खण्डन ।"

"ऐसी बात का अनुमान आपको कैसे हुआ गुरुजी ?"

"अम्माजी ! व्यक्ति जब अच्छी बात बोलता है तथा अच्छा व्यवहार करता है तब उसके कथन एव आचरण मे एक स्पष्ट भावना झलकती है । ऐसे व्यक्ति का आयु से कोई सरोकार नही होता । ऐसे प्रसगो मे अन्य जन भिन्न मत होकर भी औचित्य के चौखट की सीमा के अन्दर बँध जाता है । और जब मौका मिलता है, उसकी प्रतिक्रिया की भावना उठ खडी होती है । ऐसा प्रसग आने से अब तक इस सम्बन्ध मे दूसरो से कहने का अवकाश आपको शायद नही मिल सका होगा । इस वजह से वह प्रतिक्रिया दूसरा रूप धरकर आपके मुँह से व्यक्त हुई । यही न ?"

"शायद !"

"वह क्या है, बताइए तो ?"

उस दिन सोमेऊरु मे नृत्य-गान के बाद, जब युवरानी ने प्रसन्न होकर शान्तला को पुरस्कृत करना चाहा तब चामव्वे ने जो बातें कही उस सारे प्रसग को शान्तला ने बडे सकोच के साथ बता दिया ।

"चामव्वा जैसे लोगो के होने से ही मनु ने 'बालादपि सुभाषित' कहा है, अम्माजी । अच्छी बात जो है वह सदा अच्छी ही रहेगी । जिसके मुँह से यह बात निकलती है, उसकी हैसियत, उम्र आदि ऐसी बात का मूल्य अवश्य बढा देती है । यह दुनिया की रूढि है । परन्तु अच्छी बात किसी के भी मुँह से निकले, चाहे अप्रबुद्ध बालक के मुँह से ही, वह ग्रहण करने योग्य है । लोग ऐसे विषय को ग्रहण नही करते, इसीलिए मनु ने इसे ज़ोर देकर कहा है । अच्छा हमेशा अच्छा ही है चाहे वह कही से प्रसूत हो । चामव्वा जैसी अप्रबुद्ध अधिकारमत्त स्त्रियो के ही कारण बहुत-सी अनहोनी बातें हो जाती है ।"

"गुरुजी, बडे बुजुर्ग कहते हे कि मानव-जन्म बहुत ऊँचा है, बडा है । फिर यह सब क्यो हो रहा है ?"

इतना सब होते हुए भी मानव-जन्म महान् है, अम्माजी । हमारे ही जैसे हाथ-पैर, आँख-नाक-कानवाले सब बाह्य रूप की दृष्टि से मनुष्य ही है । मानव रूप-धारी होकर तारतम्य और औचित्य के ज्ञान के बिना व्यक्ति वास्तविक अर्थों मे मानव नही बन सकते । जन्म मात्र से नही, अपने अच्छे व्यवहार से मानव मानव बनता है । ऐसे लोगो के कारण ही मानवता का महत्त्व है ।"

"वास्तविक मानवता के माने क्या ?"

"यह एक बहुत पेचीदा सवाल है, अम्माजी । इसकी व्याख्या करना बहुत कठिन है । मानवता मनुष्य के व्यवहार एव कर्म से रूपित होती है । वह बहुरूपी

है। मनुष्य के किसी भी व्यवहार से, क्रिया से दूसरो को कष्ट न हो, कोई सकट पैदा न हो। मानवता की महत्ता तभी है जब व्यक्ति के व्यवहार और कर्म से दूसरो का उपकार हो।"

"बडी हैसियतवालो को ऐसी मानवता का अर्जन करना चाहिए, अपने जीवन मे उसे व्यवहार मे उतारना चाहिए, ऐसा करने से ससार का भी भला हो जाये। है न ?"

"हाँ अम्माजी। इसीलिए तो हम 'राजा को प्रत्यक्ष देवता' कहकर गौरव देते है।"

"उस गौरव के योग्य व्यवहार उनका हो तब न ?"

"हाँ, व्यवहार तो ऐसा होना ही चाहिए। परन्तु हम किस दम से कहे कि ऐसा है ही ?"

"पोय्सल राजकुमार बिट्टिदेव ऐमे ही बन सकेगे—ऐसा मान सकते है न ?"

वार्तालाप का विषय अचानक बदलकर व्यक्तिगत विशेष मे परिवर्तित हो गया। गुरु बोकिमय्या ने इसकी अपेक्षा नही की थी। शान्तला ने भी ऐमा नही सोचा था। यो अचानक ही उसके मुँह स निकल गया था।

बोकिमय्या एकटक उसे देखता रहा। तुरन्त उत्तर नही दिया। शान्तला को ऐसा नही लगा कि अपने उस प्रश्न मे उसने कुछ अनुचित कह दिया है। सहज भाव से ही उसने ऐसा पूछा था। इसलिए उत्तर की भी प्रतीक्षा की। कुछ देर चुप रहकर कहा, "गुरुजी, क्या मेरा विचार सही नही है ?"

"मैने ऐसा कब कहा, अम्माजी ?"

"आपने कुछ नही कहा। इसलिए "

"ऐसा अनुमान लगाया ? ऐसा नही है, परन्तु " बोकिमय्या आगे नही बोले।

"परन्तु क्या गुरुजी ?" शान्तला ने फिर पूछा।

"परन्तु वे युवराज के दूसरे पुत्र है, अम्माजी।"

"दूसरे पुत्र होने से क्या ? यदि उनमे मानवता का विकास होता है तो भी कोई लाभ नही—यही आपका विचार है ?"

"ऐसा नही अम्माजी। ऐसे व्यक्ति का राजा बनना बहुत जरूरी है। तभी मानवता इस जगत् का कितना उपकार कर सकती है—यह जाना जा सकता है।"

"तो आपका अभिमत है कि उनमे ऐसी शक्ति है, यही न ?"

"अम्माजी, मानवता को तराजू पर तौला नही जा सकता। वह मोल-तोल के पकड के बाहर की चीज है। परन्तु मानवता की शक्ति उसके व्यक्तित्व मे रूपित होकर अपने महत्त्व को व्यक्त करती है। उन्होने हमारे साथ जो थोडे दिन बिताये वे हमारे लिए सदा स्मरणीय रहेगे।"

"उनके बड़े भाई उनके जैसे प्रतिभाशाली क्यों नहीं हो पायेंगे ?"

"जिस विषय की जानकारी नहीं, उसके बारे में अपना मत कैसे प्रकट करूँ, अम्माजी। कसौटी पर रगड़कर देखने से ही तो सोने के खरे-खोटेपन का पता चलता है। जो पीला है वह सब सोना नहीं।"

"तो आपकी उस कसौटी पर बिट्टिदेव खरा सोना निकले हैं ?"

"हाँ अम्माजी।"

"तो वे कहीं भी रहें, सोना ही तो है न ?"

"यह सवाल क्यों अम्माजी ?"

"वे राजा नहीं बन सकेंगे, इसलिए आपको पछतावा हुआ। फिर भी लोक-हित और लोकोपकार करने के लिए उनका व्यक्तित्व पर्याप्त नहीं ?"

"पर्याप्त नहीं—यह तो मैंने नहीं कहा, अम्माजी। जिसके हाथ में अधिकार हो उसमें वह गुण रहने पर उसका फल कहीं अधिक होता है। अधिकार के प्रभाव की व्याप्ति भी अधिक होती है—यही मैंने कहा। मैं ब्रह्मा तो नहीं। वे युवराज के दूसरे पुत्र हैं। उनसे जितनी अपेक्षा की जा सकती है उतना उपकार उनसे शायद न हो—ऐसा लगा, इसलिए ऐसा कहा।"

"बड़े राजकुमार को परख लेने के बाद ही अपना निर्णय देना उचित होगा, गुरुजी।"

"विशाल दृष्टि से देखा जाय तो तुम्हारा कहना ठीक है, अम्माजी।"

"विशालता भी मानवता का एक अंग है न, गुरुजी ?"

"कौन नहीं मानता, अम्माजी ? विशाल हृदय के प्रति हमारा आकृष्ट होना स्वाभाविक है। हमारी भावनाओं की निकटता भी इसका एक कारण है। इसका यह अर्थ नहीं कि शेष सभी बातें गौण हैं। तुम्हारा यह बोल-चाल का ढंग, यह आचरण' यह सब भी तो मनुष्य की विशालता के चिह्न हैं।"

शान्तला झट उठ खड़ी हुई। बोली, "गुरुजी, संगीत-पाठ का समय हो आया, संगीत के गुरुजी आते ही होंगे।"

"ठीक है। हेग्गडेजी घर पर हों तो उनसे बिदा लेकर जाऊँगा।" बोकिमय्या ने कहा।

"अच्छा, अन्दर जाकर देखती हूँ।" कहती हुई शान्तला भीतर चली गयी।

बोकिमय्या भी उठे और अपनी पगड़ी और उपरना सँभालकर चलने को हुए कि इतने में हेग्गडतीजी वहाँ आयीं।

"मालिक घर पर नहीं हैं। क्या कुछ चाहिए था ?" हेग्गडती माचिकब्बे ने पूछा।

"कुछ नहीं। जाने की आज्ञा लेना चाहता था। अच्छा, मैं चलूँगा।" कहते

हुए नमस्कार कर बोकिमय्या वहाँ से चल पड़े ।

माचिकब्बे भी उनके पीछे दरवाजे तक दो-चार कदम चली ही थी कि इतने मे सगीत के अध्यापक ने प्रवेश किया । उन्होने शान्तला को पुकारा । "अम्माजी, सगीत के अध्यापक आये हैं ।"

शान्तला आयी और सगीत का अभ्यास करने चली गयी ।

धारानगर का युद्ध बडा व्यापक रहा । स्वय हमला करने के इरादे से भारी सेना को तैयार कर बडी योजना परमार ने तैयार की थी । परन्तु चालुक्य और पोय्सलो के गुप्तचरो की चतुरता से उनकी योजना, धरी-की-धरी रह गयी । धारानगर की रक्षा के लिए वहाँ पर्याप्त सेना रखकर, परमारो की वाहिनी हमला करने के लिए आगे बढ रही थी । इधर स्वय विक्रमादित्य के नेतृत्व मे सेना बढी चली आ रही थी । परमारो को उस सेना का मुकाबिला करना पडा । दो बराबरवालो मे जब युद्ध हो तब हार-जीत का निर्णय जल्दी कैसे हो सकता है । युद्ध होता रहा । दिन, हफ्ते, पखवारे और महीने गुजर चले । बीच-बीच मे चरो के द्वारा सोसेऊरु को खबर पहुँचती रही । इधर मे आहार-सामग्री और युद्ध-सामग्री के साथ नयी-नयी सेना भी युद्ध के लिए रवाना हो रही थी ।

एरेयग प्रभु के नेतृत्व मे निकली सेना ने, धारानगर और हमला करने को तैयार परमारो की सेना के बीच पडाव डाल दिया । इससे परमारो की सेना को रसद पहुँचना और नयी सेना का जमा होना दोनो रुक गये । परमार ने यह सोचा न था कि उनकी सेना को सामने से और पीछे से—दोनो ओर से शत्रुओ का सामना करना पडेगा । स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि परमार को यह समझना कठिन न था कि वह नि सहाय है और हार निश्चित है, धारानगर का पतन भी निश्चित है । इसलिए उन्होने रातो-रात एक विशाल व्यूह की रचना कर युद्ध जारी रखने का नाटक रचकर मुख्य सेना को दूसरे रास्ते से धारानगर की रक्षा के लिए भेजकर अपनी सारी शक्ति नगर-रक्षण मे केन्द्रित कर दी ।

युद्धभूमि मे व्यूहबद्ध सैनिक बडी चतुराई से लुक-छिपकर युद्ध करने मे लगे थे । हमला करने के बदले परमार की यह सेना आत्मरक्षा मे लगी है, इस बात का अन्दाज एरेयग और विक्रमादित्य दोनो को हो चुका था । रसद पहुँचाने का मार्ग नही था, पहले से ही वहाँ एरेयग-विक्रमादित्यो की सेना ने मुकाम किया था । आहार-सामग्री के अभाव मे समय आने पर परमार की सेना स्वय ही शरणागत

हो जायेगी—यह सोचकर चालुक्य और पोय्सल युद्ध-नायकों ने भी कुछ ढील दे दी थी। लुका-छिपी की यह लडाई दो-एक पखवारे तक चलती रही। परिणाम वही हुआ—परमार मुकाबिला न कर सकने के कारण पीछे हट गये और राजधानी धारानगर पहुँच गये—यह समाचार गुप्तचरो द्वारा धारानगर से चालुक्य-पोय्सल सेना-नायकों को मिला।

एरेयग और विक्रमादित्य—दोनो ने विचार-विनिमय किया। दोनों ने आगे के कार्यक्रम के विषय मे गुप्त मन्त्रणा की। विक्रमादित्य ने वापस लौटने की सलाह दी किन्तु एरेयग ने कुछ और ही मत प्रकट किया। उन्होने कहा, "अब हम लौटते हैं तो इसे उचित नहीं कहा जायेगा। लौटने से इस बात का भी झूठा प्रचार किया जा सकता है। हम डरकर भाग आये। अब पोय्सल-चालुक्यो का गौरव धारानगर को जीतने मे ही। हमे गुप्तचरो द्वारा जो समाचार मिला है उसके अनुसार सन्निधान के साथ महारानी चन्दलदेवी भी आयी हैं, उन्हे उठा ले जाने का षड्यन्त्र रचा गया था—यह भी मालूम हुआ है।"

"तो क्या हमारी महारानीजी हमारे साथ आयी है? यह खबर भी उन्हे लग गयी होगी?"

"लग ही गयी होगी। नही तो पहले अनुमान करके फिर गुप्तचरो द्वारा पता लगा लिया होगा। वह न आयी होती तो अच्छा होता।"

"मेरा भी यही मत है। परन्तु उन्होंने मेरी बात नही मानी। कहने लगी, 'यह युद्ध मेरे ही लिए तो हो रहा है। मै खुद उसे अपनी आँखो देखना चाहती हूँ।' यह कहकर हठ करने लगी। हमने तब यह सलाह दी कि हमारे साथ न आवे। चाहे तो बाद मे वृद्ध-व्यावहारिको के साथ भेष बदलकर आ जाये। वास्तव मे हमारे बहुत-से लोगो को भी यह बात मालूम नही। फिर उनको आये अभी बहुत दिन नही हुए है, इसलिए आपकी यह खबर हमारे लिए बडी ही आश्चर्यजनक है।"

"आश्चर्य की बात नही! अपने ही व्यक्तियो द्वारा यह खबर फैली है।"

"ऐसे लोग हममे हो तो यह तो हानिकर है न? तुरन्त उनका पता लगाना चाहिए।"

थोडी देर के लिए खामोशी छा गयी। एरेयग कुछ देर तक बैठे सोचते रहे। इस बात को जानते हुए भी कि वहाँ कोई दूसरा नही और केवल वे दो ही है, एरेयग प्रभु ने विक्रमादित्य के कान मे कहा, "आज ही रात को बडी रानीजी को वेष बदलकर एक विश्वस्त व्यक्ति के साथ कल्याण या करहाट भेज देना चाहिए और सुबह-सुबह यह खबर फैला देनी चाहिए कि बडी रानीजी नही हैं, पता नही रातो-रात क्या हुआ। तब उन द्रोहियो के पता लगाने मे हमे सुविधा हो जायेगी।"

"यह कैसे सम्भव होगा ?"

"आप हमपर विश्वास करे तो हम यह काम करेगे । द्रोहियो का पता लगाकर उन्हे सूली पर चढा देगे । आगे के कार्यक्रम पर बाद मे विचार करेगे ।" एरेयग ने कहा ।

"एरेयग प्रभु, चालुक्य-सिहासन को हमे प्राप्त कराने मे आपने जो सहायता की थी, उसे हम भूल नही सकते । इसीलिए हमने आपको अपना दायाँ हाथ मान लिया है । राष्ट्र का गौरव और हमारी जीत अब आप ही पर अवलम्बित है । आप जैसा चाहे, करे । इस युद्ध के महा-दण्डनायक आप ही हे । आज से हम और शेष सब, आप जो कहेगे उसी के अनुसार चलेगे । ठीक है न ?"

"आप यदि इतना विश्वास हमपर रखते है तो यह हमारा सौभाग्य है ।"

"एरेयग प्रभु, यदि यह हमारी जीत होगी तो हम अपनी विरुदावली मे से एक आपको दे देगे ।"

"विरुद प्राप्त करने की लालच मे जीत हमारी नही होगी । एक मात्र राष्ट्र-प्रेम और निष्ठा से जीत सम्भव है । हम इस लालच मे पडनेवाले नही ।"

"हम याने कौन-कौन ?"

"बाकी लोगो की तो बात हम नही कह सकते । हम याने उन्नत कन्नड-सस्कृति को अपनाकर उसी मे पले पोय्सलवशी ।"

"तो क्या चालुक्यवशीयो मे वह कन्नड सस्कृति नही है—यह आपका अभिमत है ?"

"न न, ऐसा कही हो सकता है ? इस उन्नत सस्कृति की स्थापना का स्वर्ण-युग चालुक्यो ने ही करुनाडु मे आरम्भ किया, उन्होने ही इसे सस्कृति की स्वर्ण-भूमि बनायी । इसी भूमि मे तो पोय्सल अकुरित हुआ है ।"

"ऐसी दशा मे हम आपको विरुद प्रदान करे तो हमारा खो क्या जायेगा ! विरुद पाकर आप पायेगे ही क्या ?"

"देना ही हमारी सस्कृति की रीति है । उसके लिए हाथ पसारकर कार्य मे प्रवृत्त होना उस सस्कृति के योग्य कभी नही हो सकता । इसलिए अब इस बात को छोड दे । पहले हमे जो कार्य करना है उसमे प्रवृत्त हो जाये ।"

"ठीक है, एरेयग प्रभु । वही कीजिए ।"

"आज्ञा हो तो मैं विदा लेता हूँ ।" कहते हुए एरेयग प्रभु उठ खडे हुए । विक्रमादित्य भी उठे और उनके कन्धे पर हाथ रखकर बोले, "अब हम निश्चिन्त हुए ।"

दोरसमुद्र से महाराजा की आज्ञा आयी। इस वजह से युवरानी एचलदेवी और दोनो बालक—बिट्टिदेव और उदयादित्य को दोरसमुद्र जाना पडा। गुप्तचरों द्वारा प्राप्त समाचार के अनुसार युद्ध जल्दी समाप्त न होनेवाला था। युद्ध समाप्त होने के लिए सम्भव है महीनो या वर्षों लग जायें। यह सोचकर महाराज ने युवरानी और बच्चो को मोसेऊरु मे रखना उचित न समझकर उन्हें दोरसमुद्र मे अपने साथ रहने के लिए बुलवाया था।

एचलदेवी को वहाँ जाने की जरा भी इच्छा नही थी।

यदि चामव्वे दोरसमुद्र मे न होती तो शायद खुशी से एचलदेवी वहाँ जाने को तैयार भी हो जाती। या उसके पतिदेव के युद्ध के लिए प्रस्थान करते ही स्वय महाराजा को सूचना देकर अपनी ही इच्छा से शायद जाने को तैयार हो जाती। जो भी हो, अब तो असन्तोष से ही दोरसमुद्र जाना पडा। युवरानी और दोनो राजकुमारो—बिट्टिदेव और उदयादित्य—के साथ दोरसमुद्र मे आने के समाचार की जानकारी चामव्व को हुए बिना कैसे रह जाती? जानकारी क्या, इन लोगो को दोरसमुद्र मे बुलाने की बात उसी के मन मे पहले पहल अकुरित हुई थी। प्रधानमन्त्री और दण्डनायक के जरिये महाराजा के कानो तक बात पहुँचाने की योजना उसी की थी, उसी कारण महाराजा ने यह आदेश दिया। जब युवरानी पुत्रो के साथ आयी है तो चामव्वा भला चुपचाप कैसे रह सकती थी?

जिसे देखने से असन्तोष होता हो, मन खिन्न होता हो, दोरसमुद्र मे आते ही सबसे पहले उसी से भेट हो गयी। युवरानी एचलदेवी ने अपनी खिन्नता प्रकट नही होने दी।

"महावीर स्वामी की दया से और देवी वासन्तिका की कृपा से, युवरानीजी ने दोरसमुद्र मे पदार्पण तो किया।" चामव्वा ने कहा।

"ऐसी साधारण और छोटी-छोटी बातो मे महावीर स्वामी या वासन्तिका देवी हस्तक्षेप नही करते, चामव्वाजी। भयग्रस्त व्यक्ति कुछ-की-कुछ कल्पना कर लेते है और भगवान् की कृपा का आश्रय लेकर युक्ति से काम बना लेते है।" कहती हुई एचलदेवी ने एक अन्दाज से चामव्वा की ओर देखा।

चामव्वा के दिल मे एक चुभन-सी हुई। फिर भी वह बोली, "इसमे युक्ति की क्या बात है? आप यहाँ आयी मानो अँधेरे घर मे रोशनी ही आ गयी। जहाँ अँधेरा हो वहाँ रोशनी के आने की आशा करना तो कोई गलत नही युवरानी जी?"

"जहाँ अँधेरा हो वहाँ प्रकाश लाने की इच्छा करना अच्छा है। परन्तु अँधेरे का परिचय जब तक न हो तब तक प्रकाश के लिए स्थान कहाँ? आप और प्रधानमन्त्रीजी की धर्मपत्नी लक्ष्मीदेवीजी जब यहाँ हैं तो अँधेरा कैसा?"

"हमारी आपकी क्या बराबरी? आज आप युवरानी हैं और कल महारानी

होगी। पोय्सल वश की बडी सुमगली।"

"तो पदवी की उन्नति होने के साथ-साथ प्रकाश भी बढता है—यही न ?"

"हाँ· बत्ती बढाने चलें तो प्रकाश बढ़ता ही है।"

"प्रकाश तेल से बढता है या बत्ती से ?"

"बत्ती से, जिसमे लौ होती है।"

"खाली बत्ती से प्रकाश मिलेगा ?"

"नही।"

"मतलब यह हुआ कि तेल के होने पर ही बत्ती की लौ को प्रकाश देने की शक्ति आती है। तेल खतम हुआ तो प्रकाश भी खतम। तात्पर्य यह कि बत्ती केवल साधन मात्र है। बत्ती को लम्बा बनावें तो वह प्रकाश देने के बदले खुद जलकर खाक हो जाती है। तेल, बत्ती और लौ—तीनो के मिलने मे ही प्रकाश मिलता है। तेल मिट्टी की ढिबरी मे हो या लोहे की, उसका गुण बदलता नही। हमारे लिए प्रकाश मुख्य है। तेल की ढिबरी नही। इसी तरह से हमारे घर को हमारा सुहाग प्रकाश देता है, हमारी पदवी नही, चामव्वाजी। है या नही, आप ही बताइये ?"

"युवरानीजी के सामने मैं क्या चीज़ हूँ ? जब कहती हैं तो ठीक ही होना चाहिए।"

"जो ठीक है वह चाहे कोई भी कहे, ठीक ही होगा। युवरानी ने कहा इस-लिए वह ठीक है ऐसी बात नही। खैर, छोडिए इस बात को। इस बात की जिज्ञासा हमे क्यो ? दण्डनायकजी कुशल है न ? आपकी बेटियाँ पद्मला, चामला और बोप्पदेवी—सब ठीक तो है न ? देकव्वे के बच्चे माचण, डाकरस आपके बडे भाई के घर पर—सब सानन्द है न ? और उनके पुत्र एचम और बोप्पदेव कैसे है सब ?"

"राजमहल के आश्रय मे सब स्वस्थ-सानन्द है। महाराजा ने हमारे लिए किस बात की कमी कर रखी है ? उनकी उदारता से आनन्दमगल है।"

"हमारा अप्पाजी कभी-कभी आप लोगो से मिलता रहता होगा। पहली बार है जब वह माँ-बाप से दूर रहा है। फिर भी वह छोटा बच्चा तो नही है, इस नये वातावरण के साथ घुलमिल गया होगा। उसकी अब ऐसी ही उम्र है।"

'आप बडी ही भाग्यवान् है, युवरानीजी। राजकुमार बडे ही अक्लमन्द हैं। बहुत तेज बुद्धि है उनकी। यह हमारे पूर्वजन्म के पुण्य का फल है। वे जितना प्रेम-आदर आपके प्रति रखते है, अपने भी प्रति वैसा ही पाया।"

"मतलब यह कि माँ-बाप से दूर रहने पर भी ऐसी भावना उसके मन मे बराबर बनी रहे—इस जतन से आप उसकी देखभाल कर रही है। माँ होकर मैं इस कृपा के लिए कृतज्ञ हूँ।'

"न न, इतनी बडी बात, न न। यह तो हमारा कर्त्तव्य है। अन्दर पधारियेगा।"

"आपके बच्चे दिखायी नही दे रहे है।' कहाँ है?"

"वे नाच-गाना सीख रही है। यह उनके अभ्यास का समय है।" चामव्वा ने कुछ गर्व से कहा।

चामव्वा ने सोचा था कि युवरानीजी इस बात को आगे बढाएँगी। परन्तु युवरानी 'ठीक है' कहकर अन्दर की ओर चल दी।

चामव्वा को बडी निराशा हुई। अपने बच्चो के बारे मे बढा-चढाकर बखान करने का एक अच्छा मौका उसे मिला था। अपनी भावना को प्रदर्शित किये बिना उसने भी युवरानी का अनुसरण किया।

अन्त पुर के द्वार पर युवरानीजी जाकर खडी हो गयी। बोली, "दण्डनायिका-जी, आपने बहुत परिश्रम किया। वास्तव मे हम अपने घर आये तो इतना स्वागत करने की भला जरूरत ही क्या थी? हम अपने घर आये और अपने ही घर मे स्वागत कराये तो इस स्वागत का कोई अर्थ ही नही रह जाता। परन्तु प्रेम से आपने जब स्वागत किया तो उसे हमे भी प्रेम से स्वीकारना चाहिए। अब आप हमारी चिन्ता छोड अपना काम देखियेगा।"

"मुझे भी ऐसा कोई काम नही है। युवरानीजी को यदि कोई आवश्यकता हुई तो '

"रेविमय्या और दूसरे लोग भी है, वे देख लेंगे। अच्छा चामव्वाजी"—कहकर एचलदेवी अन्दर चली गयी।

बिट्टिदेव का भाग्य ही अच्छा था। नही तो चामव्वा से धक्का खाकर उसके पैरो के नीचे गिर सकता था।

दो-तीन कदम आगे बढने के बाद ही चामव्वा खडी हो पायी। उसने पीछे की ओर मुडकर देखा तो वह छोटे अप्पाजी बिट्टिदेव थे।

कोई और होता तो पता नही क्या हुआ होता। राजकुमार था, इसलिए चामव्वा के क्रोध का शिकार नही बन सका। बिट्टिदेव चलने लगा।

उसने बडे प्रेम से पुकारा, "छोटे अप्पाजी, छोटे अप्पाजी!"

बिट्टिदेव रुका। मुडकर देखा।

चामव्वा उसके पास आयी। बोली, "बेलुगोल से सोसेऊरु जाते वक्त अप्पाजी को देखकर जायेगे—ऐसा मैंने निश्चय किया था।"

"यह मालूम था कि युवराज और माँ सोसेऊरु जायेगे। इसलिए सीधा वही चला गया।"

"बेलुगोल कैसा रहा?"

"अच्छा रहा।"

"अगले महीने हम सब जायेगे। तुम भी चलोगे?"

"मैंने पहले ही देख लिया है न ?"
"एक बार और देख सकते हो।"
"वह वहीं रहेगा। कभी भी देख सकते है।"
"बडे अप्पाजी भी चलने को राजी हैं। तुम भी चलो तो अच्छा !"
"हो सकता है। यहाँ माँ अकेली हो जाये।"
"उदय रहेगा न !"
"अभी कल-परसो ही तो मैने बेलुगोल देखा है।"
"तुम्हे खेलने के लिए साथ मिल जायेगा। हमारी चामला खेल मे बहुत होशियार है। और फिर, जब हम सब चले जायेगे तो यहाँ तुम्हारे साथ कोई न रहेगा।"
"सोसेऊरु मे कौन था ?"
"यह दोरसमुद्र है, छोटे अप्पाजी।"
"तो क्या हुआ ? मेरे लिए सब बराबर है।"
"अच्छा, जाने दो। हमारे साथ चलोगे न ?"
"माँ से पूछूँगा।"
"कहे तो मै ही पूछ लूंगी !"
"वही कीजिए।" कहकर वह वहाँ से चला गया।
वह जिधर से गया, चामव्वा उसी तरफ कुछ देर देखती रही। फिर भौह चढाकर, झटके से सिर हिलाकर वहाँ से चली गयी।

उस दिन रात को मरियाने दण्डनायक के कान गरम किये गये। चामव्वे की योजना का कुछ तो कारगर हो जाने का भरोसा था। बल्लाल कुमार के मन को उसने जीत लिया था। अपनी माँ से दूर रहने पर भी माँ से जितना वात्सल्य प्राप्त हो सकता था उससे अधिक वात्सल्य चामव्वा से उसे मिल रहा था। सोसेऊरु मे माँ का वह वात्सल्य तीन धाराओ मे बहता था। यहाँ सब तरह का वात्सल्य, प्रेम, आदर एक साथ सब उसी की ओर बह रहा है। उसके मन में यह बात बैठ गयी कि मरियाने दण्डनायक, उनकी पत्नी और उनकी बेटियाँ पद्मला, चामला—सब-के-सब कितना प्रेम करते है उसे ! कितना आदर देते है, कितना वात्सल्य दिखाते हैं ! परन्तु अभी यौवन की देहरी पर खडे बल्लाल कुमार को यह समझने का अवसर ही नही मिला था कि इस सबका कारण उनका स्वार्थ है। यह बात समझे

बिना ही महीनो गुजर गये। फलस्वरूप चामव्वे के मन मे यह भावना घर कर गयी थी कि यह बडा राजकुमार उसका दामाद बन जायेगा और बडी बेटी पद्मला रानी बनकर पोय्सलो के राजघराने को उजागर करेगी। लेकिन इतने से ही चामव्वा तृप्त नही थी। क्या करेगी ? उसकी योजना ही बहुत बडी थी। उसे कार्यान्वित करने की ओर उसकी दृष्टि थी। इसीलिए युवरानी, छोटे अप्पाजी और उदयादित्य को उसने दोरसमुद्र बुलवा लिया।

प्रथम भेंट मे ही उसे मालूम हो गया था कि युवरानी भीतर-ही-भीतर कुछ रुष्ट है। इस बात का उसे अनुभव हो चुका था कि पहले युवरानी के बच्चो को अपनी ओर आसानी से आकर्षित किया जा सकता है। यह पहला काम है। बच्चो को अपनी ओर कर लेने के बाद युवरानी को ठीक किया जा सकता है। बडा राजकुमार ही जब वश मे हो गया है तो ये छोटे तो क्या चीज हैं ? परन्तु राजकुमार बिट्टिदेव के साथ जो थोडी-सी बातचीत हुई थी उससे उसने समझ लिया था बडे राजकुमार बल्लाल और छोटे बिट्टिदेव के स्वभाव मे बडा अन्तर है। बिट्टिदेव को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए कोई नया तरीका ही निकालना होगा।

इसी वजह से उसे अपने पतिदेव के कान गरम करने पडे थे। उसी रात उसने नयी तरकीब सोची भी। फलस्वरूप दण्डनायक के परिवारवालो के साथ, प्रधानजी की पत्नियाँ—नागलदेवी, लक्ष्मीदेवी, उनके बच्चे बोप्पदेव और एचम—इन सबको लेकर बेलुगोल जाने का कार्यक्रम बना। इस कार्यक्रम मे युवराज एरेयग प्रभु के विजयी होकर लौटने के लिए विशेष पूजा-अर्चना कराने का आयोजन भी था। महाराज की सम्मति से युवरानीजी को भी साथ ले चलने मे इससे सुविधा रहेगी।

युवरानी की इन लोगो के साथ जाने की इच्छा सचमुच नही थी। फिर भी पतिदेव की विजय के लिए करायी जानेवाली इस पूजा-अर्चना मे सम्मिलित होने से इनकार भी वह कैसे कर सकती थी ? और महाराजा का आदेश मिलने पर तो एचलदेवी के लिए कोई दूसरा चारा ही नही रहा इसलिए वह बिट्टिदेव और उदयादित्य को भी साथ लेकर चल पडी। युवरानी के आने पर सारी व्यवस्था तो ठीक होनी ही थी।

इस यात्रा मे युवरानी ने अपना समय प्रधान की पत्नियो के साथ बिताया जिनके अभी तक कोई लडकी नही थी। इसलिए बिट्टिदेव, उदयादित्य, एचम और बोप्पदेव इनके साथ रहते थे। बल्लाल इनके साथ रहने पर भी जब समय मिलता तब चामव्वा की टोली मे शामिल हो जाता।

युवरानी के साथ प्रधानजी की पत्नियो के होने से चामव्वे का दर्जा कुछ कम हो गया। दण्डनायक के कारण उसका मूल्य था। परन्तु अब उसे अपनी मान-प्रतिष्ठा से भी आगे की योजना सूझी। वह अपने समस्त अभिमान को एक ओर

रखकर युवरानी को हर तरह से प्रसन्न करने के उपाय करने लगी। यह देखकर युवरानी एचलदेवी ने शुरू-शुरू मे कहा, "चामव्वाजी, आप क्यो इतना परिश्रम करती हैं जबकि हर काम के लिए नौकर-चाकर प्रस्तुत है।" उत्तर मे चामव्वा ने कहा, "हमारे युवराज के विजयी होकर लौटने की प्रार्थना के लिए की गयी पूजा-अर्चना की व्यवस्था और उसके लिए की जा रही इस यात्रा मे कही कोई कमी न रह जाय, इसकी ओर विशेष ध्यान देने का आदेश स्वय दण्डनायकजी ने दिया है मुझे। इस उत्तरदायित्व को मैं नौकरो पर न छोडकर सारी व्यवस्था स्वय करूँगी। दोरसमुद्र लौटने के बाद ही मैं चैन से बैठ पाऊँगी, इस समय तो कदापि नही।" चामव्वे के इस उत्तर पर युवरानी एचलदेवी कुछ नही बोली।

बाहुबली स्वामी की अर्चना और पदाभिषेक के बाद अर्चक ने युवरानी को प्रसाद दिया और कहा, "आपकी सेवा मे एक निवेदन है जो यदि गलत हो तो क्षमाप्रार्थी हूँ। पिछली बार राजकुमार के साथ उन हेग्गडेजी की जो पुत्री आयी थी उन्होने स्वामीजी के समक्ष ऐमा गान किया कि आज महीनो बीत गये फिर भी वह कानो मे गूँज रहा है। प्रतिदिन पूजा के समय उस गायिका कन्या का स्मरण हो आता है। स्वामीजी के आने के समाचार से मुझे आशा बँधी कि वह गायिका भी उनके साथ आयेगी।"

"वे अपने गाँव चले गये। यह तो हो नही सकता था कि व सदा दोरसमुद्र मे ही रहे आते।"

"वह गायिका लाखो मे एक है। बाहुबली स्वामी की क्या इच्छा है, कौन जाने! लेकिन ऐसी कन्या को तो राजघराने मे ही जन्म लेना चाहिए था।"

"अच्छी वस्तु को श्रेष्ठ स्थान पर ही रहना चाहिए, यही आपकी अभिलाषा है, ठीक है न?"

"आपके समक्ष हम और क्या कह सकते हैं?" कहकर पुजारी प्रसाद देता आगे बढ चला। पद्मला को प्रसाद देते हुए उसने पूछा, "आप गा मकती है, अम्माजी? गा सकती हो तो भगवान् के सामने प्रार्थना का एक गीत गाइए।" पद्मला ने अपनी माँ की ओर देखा जिसने आँखो ही से कुछ ऐसा इशारा किया कि युवरानी को सलाह के तौर पर कहना पडा, "चामव्वाजी, आपने बताया था कि पद्मला को सगीत का शिक्षण दिलाया जा रहा है।" लेकिन चामव्वे ने ही टाल दिया, "अभी तो वह सीख ही रही है, सबके सामने गाने मे अभी सकोच होता है उसे।" "पद्मला को हो लेकिन चामला को तो सकोच नही है, माँ?"

बीच मे कुमार बिट्टिदेव बोल उठा और युवरानी ने उसका समर्थन किया, "गाओ बेटी, भगवान की सेवा मे सकोच नही करना चाहिए।"

अब माँ की ओर दोनो बच्चियो ने देखा। माँ ने दण्डनायक की ओर देखा। उसने भौहे चढा ली। सगीत उसे पहले ही पसन्द न था। उतने पर भी इस तरह

का सार्वजनिक प्रदर्शन तो उसे तनिक भी अभीष्ट नहीं था। किन्तु यह कहने का साहस वह नही जुटा पाया क्योकि युवरानी को सब तरह से सन्तुष्ट कर अपना इष्टार्थ पूरा कर लेने के पति और पत्नी के बीच हुए समझौते का रहस्य बनाये रखना अनिवार्य था। इसलिए दण्डनायक को आखिर कहना पडा, "चामू, यदि गा सकती हो तो गाओ, बेटी।"

जबकि चामला ने बात सँभाली, "इस खुले मे गाना मुश्किल है, पिताजी।" इस मनचाहे उत्तर का लाभ उठाते हुए दण्डनायक ने, "अच्छा जाने दो, निवास-स्थान पर गाना," कहकर यह प्रसग समाप्त किया।

उस दिन शाम को सब लोग कटवप्र पर्वत पर चामुण्डराय बसदि मे बैठे थे। रेविमय्या ने बिट्टिदेव के कान मे कहा, "छोटे अप्पाजी, हम उस दिन जहाँ बैठे थे वहाँ हो आयें ?"

"माँ से अनुमति लेकर आता हूँ।" बिट्टिदेव ने कहा।

रेविमय्या के साथ चला तो कुमार बल्लाल ने पूछा, "कहाँ चले, छोटे अप्पाजी ?"

"यही बाहर, बाहुबली का दर्शन उधर से बडा ही भव्य होता है," कहकर चलते बिट्टिदेव के साथ चामव्वे आदि भी चल पडे।

उस रात को जिस स्थान से शान्तला के साथ बिट्टिदेव ने बाहुबली को साष्टाग प्रणाम किया था वह रेविमय्या के साथ वही से बाहुबली को अपलक देखता खडा हो गया जबकि और लोगो को वहाँ कोई विशेष आकर्षण नही दिखा।

"स्वामी का दर्शन यहाँ से सम्पूर्ण रूप से नही होता। और फिर पास जाकर दर्शन कर लेने के बाद यहाँ से देखना और न देखना दोनो बराबर हैं," बल्लाल ने कहा और बिट्टिदेव की ओर देखकर पूछा, "इसमे तुम्हे कौन-सी भव्यता दिखायी पडी छोटे अप्पाजी।" बिट्टिदेव को शायद यह सुनायी नही पडा, वह हाथ जोडे और आँख बन्द किये खडा रहा।

रेविमय्या कभी बिट्टिदेव की ओर कभी बाहुबली की ओर देखता रहा। उसे वह रात फिर याद हो आयी। "उस दिन जो आशीर्वाद दिया था उसे भूलना नही, भगवन्," कहते हुए उसने बाहुबली को दण्डवत् प्रणाम किया। उसे ध्यान ही न रहा कि उसके चारो ओर लोग भी हैं। उठा तो उसका मुख आनन्द से विभोर था, आँखो मे आनन्दाश्रु थे। वहाँ जो लोग थे वे इस रहस्य को समझने मे लगे रहे और वह आँसू पोछकर सिर झुकाये खडा हो गया।

चामला और पद्मला को इस दृश्य मे कोई दिलचस्पी नही थी। कही-कही पत्थर पर खुदे कइयो के नाम देखे तो दोनो एक शिला पर अपना-अपना नाम खोदने लगी।

एचलदेवी ने रेविमय्या को इशारे से पास बुलाकर कहा, "छोटे अप्पाजी को

इस दृश्य मे जो भी आकर्षण हो, हम तो निवास पर जाते है । तुम उसे साथ लेकर आ जाना ।" दूसरे लोगो ने भी उसका अनुसरण किया किन्तु अपना-अपना नाम खोदने मे लगी पद्मला और चामला की ओर किसी का ध्यान नही गया । पहाड से उतरने के बाद ध्यान आने पर दो नौकर पहाड पर भेजे गये ।

नाम खोदती-खोदती पद्मला और चामला ने यो ही मुडकर देखा तो कोई नही था । बसदि मे भी कोई नही दिखायी पडा । बाहर बिट्टिदेव और रेविमय्या को देखकर घबडाहट कम हुई, यद्यपि इतने मे ही वे पसीने से तर हो गयी थी । वहाँ आयी और पूछा, "रेविमय्या, वे सब कहाँ गये ?"

"चले गये । आप लोग नही गयी ?"

"हमे पता ही नही लगा ।"

"तब आप दोनो कहाँ थी ?"

"बसदि के पीछे पत्थर पर अपने नाम खोद रही थी ।"

"अब यही रहिए, एक साथ चलेगे ।"

बिट्टिदेव को बाहुबली को देखने मे ही दत्तचित्त पाकर वे थोडी देर तो बैठी किन्तु फिर चामला से न रहा गया, "कितनी देर से देख रहे हो, एक भी दिखायी दी ?"

बिट्टिदेव ने आँख खोलकर उस तरफ देखा और रेविमय्या म पूछा, "यहाँ ये दो ही है, बाकी लोग कहाँ गये ?"

"वे सब तभी नीचे चले गये ।"

"और ये ?"

"ये तुम्हारे साथ के लिए है ।" चामला चहकी ।

"क्यो तुम लोग न होती तो क्या मुझे चिडियाँ उडा ले जाती ?"

"क्या पता ?"

दोनो नौकर अब वहाँ आ चुके थे और सब निवास की आर चल पडे ।

शिविर के बरामदे मे दण्डनायक बैठे कुछ लोगो मे बातचीत कर रहे थे । रेविमय्या, बिट्टिदेव, चामला, पद्मला और दोनो नौकर, सब आये । पद्मला और चामला अन्दर आयी । मरियाने ने उन्हे देखकर तृप्ति की साँस ली ।

दण्डनायक मरियाने के साथ बैठे बात करनेवालो म से एक ने बिट्टिदेव को प्रणाम करके पूछा, "राजकुमार, मुझे भूले नही होगे न ?"

"आप शिवगगा के धर्मदर्शी है न ? सकुशल तो है ? आपके घर मे सब सकुशल है ? वहाँ वाले सब अच्छे है ?" बिट्टिदेव ने पूछा ।

"सब कुशल है । एक वैवाहिक सम्बन्ध पर विचार कर निर्णय लेने को मेरा यहाँ आना एक आकस्मिक घटना है । आप लोगो का दर्शनलाभ मिला, यह अलभ्य-लाभ है ।"

"दण्डनायकजी से बातचीत कर रहे थे। अच्छा। अभी आप यहीं हैं न ?"

"कल लौटूँगा।"

"अच्छा।" बिट्टिदेव उसे प्रणाम करके अन्दर चला गया।

धर्मदर्शी फिर दण्डनायक के पास आकर बैठ गया।

"कुमार बिट्टिदेव का परिचय आपसे कब हुआ, धर्मदर्शीजी ?"

"जब वे बलिपुर के हेग्गडेजी के साथ शिवगगा आये थे तब।"

"क्या कहा ?" दण्डनायक ने कुछ आश्चर्य से पूछा।

उसने फिर उसी बात को समझाया।

"यह बात मुझे मालूम नही थी," कहता हुआ वह मूँछ की नोक काटने लगा। कुछ समय तक सब मौन रहे।

खबर सुनने पर मौन क्यो ?—यह बात धर्मदर्शी की समझ मे नही आयी। ठीक ही तो है। दण्डनायक के अन्तरग को समझना उस सरल स्वभाव के धर्मदर्शी के लिए कैसे सम्भव था ?

चालुक्य चक्रवर्ती त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्य सारी जिम्मेदारी एरेयग प्रभु को सौंपकर स्वय निश्चिन्त हो गये। यह उत्तरदायित्व कितना बडा है, इस ओर उनका ध्यान नही भी गया हो परन्तु एरेयग प्रभु ने यह जिम्मेदारी लेने के बाद एक क्षणमात्र भी व्यर्थ न खोया। अपने खास तम्बू मे गुप्त मन्त्रणा की। उसमे भी अधिक लोगो के रहने से रहस्य खुल जायेगा, यह सोचकर उन्होने केवल तीन व्यक्ति रखे महामात्य मानवेग्गडे कुदमराय, अगरक्षक सेना के नायक हिरिय चलिकेनायक। वर्तमान प्रसग का सूक्ष्म परिचय देने के बाद एरेयग प्रभु ने इनसे सलाह माँगी।

महामात्य ने कहा, "प्रभो, बडी रानी चदलदेवी को अन्यत्र भेजने का बडा ही कठिन उत्तरदायित्व समुचित सुरक्षा व्यवस्था के साथ निभाना होगा, उन्हे, जैसा आपने पहले ही चालुक्य महाराज के समक्ष निवेदन किया था, कल्याण या करहाट भेज देना उचित है। सैन्य की एक दक्ष टुकडी भी उनके साथ कर देना अत्यन्त आवश्यक है। मेरा यही सुझाव है।"

यह सुनकर एरेयग ने कहा, "इस तरह की व्यवस्था करके गोपनीयता बनाये रखना कठिन होगा। इसलिए बडी रानी के साथ दो विश्वस्त व्यक्ति वेषातर मे रक्षक बनकर यहाँ से रातो-रात रवाना हो जाये तो ठीक होगा। कल्याण मे उतनी

सुरक्षा की व्यवस्था न हो सकेगी जितनी आवश्यक है क्योंकि वहाँ परमारो के गुप्तचरो का जाल फैला हुआ है। इसलिए करहाट मे भेज देना, मेरी राय मे, अधिक सुरक्षित है।"

कुदमराय ने कहा, "जैसा प्रभु ने कहा, बडी रानी को करहाट भेजना तो ठीक है, परन्तु वेषातर मे केवल दो अगरक्षको को ही भेजना पर्याप्त नही होगा, रक्षक दल मे कम-से-कम चार लोगो का होना उचित होगा। यह मेरी सलाह है।"

प्रभु एरेयग ने सुझाया, "बडी रानी के साथ एक और स्त्री का होना अच्छा होगा न ?"

कुदमराय ने कहा, "जी हाँ।"

अब तक के मौन श्रोता हिरिय चलिकेनायक ने पूछा, "सवा मे एक सलाह देना चाहता हूँ। आज्ञा हो तो कहूँ ?"

"कहो नायक। तुम हमारे अत्यन्त विश्वस्त व्यक्ति हो, इसीलिए हमने तुमको इस गुप्त मन्त्रणा सभा मे बुलाया है।"

"रक्षको का वेषांतर मे भेजा जाना तो ठीक है परन्तु परमार गुप्तचरो का जाल कल्याण से करहाट मे भी जाकर फैल सकता है। वास्तव मे अब दाना जगह निमित्तमात्र के लिए रक्षक सेना है। बडी रानीजी यदि यहाँ नही होगी तो उनके बारे मे जानने का प्रयत्न गुप्तचर पहले कल्याण मे करेगे। यह मालूम होने पर कि वे वहाँ नही है, इन गुप्तचरो का ध्यान सहज ही उनके मायके की ओर जायगा। इसलिए कल्याण और करहाट दोनो स्थान सुरक्षित नही। उन्हे किसी ऐसे स्थान मे भेजना उचित होगा जिसकी किसी को किसी तरह की शका या कल्पना तक न हो सके, यह अच्छा होगा।"

प्रभु एरेयग ने हिरिय चलिकेनायक की ओर प्रशसा की दृष्टि से देखा और अमात्य की ओर प्रश्नार्थक दृष्टि से, तदन्तर कुदमराय की ओर।

"सलाह उचित होने पर भी हमारी पोय्सल राजधानी को छोडकर ऐसा विश्वस्त एव सुरक्षा के लिए उपयुक्त स्थान अन्यत्र कौन-सा है, प्रभु ?"

"वहाँ भेजना हमे ठीक नही लगता। तुमको कुछ सूझता है, नायक ?"

कुछ देर मौन छाया रहा। फिर अमात्य ने कहा, "सोमेऊर मे भेज दे तो कैसा रहेगा प्रभु ? वहाँ तो इस वक्त युवरानीजी अकेली ही है।"

प्रभु एरेयग ने कहा, "नही, युवरानीजी अब दोरसमुद्र मे है।"

आश्चर्य से महामात्य की भौह चढ गयी। यह खबर उन्हे क्या न मिली यह सोच परेशान भी हुए। किन्तु अपनी भावना को छिपाते हुए बोले, "ऐसी बात है, मुझे मालूम ही नही था।"

एरेयग प्रभु ने महज ही कहा, "गुप्तचरो के द्वारा यह खबर अभी-अभी आयी है, ऐसी दशा मे आपको मालूम कब कराया जाता ?" इसके पूर्व महामात्य

ने समझा था कि खबर हमसे भी गुप्त रखी गयी है। महामात्य होने पर अन्तःपुर की हर छोटी बात की भी जानकारी होनी क्यो जरूरी है ? प्रभु की बात सुनने पर परेशानी कुछ कम तो अवश्य हुई थी।

"तब तो अब प्रभु की क्या आज्ञा है ?" कुदमराय ने पूछा।

"बलिपुर के हेग्गडेजी के यहाँ भेज दें तो कैसा रहे ?" हिरिय चलिकेनायक ने सुझाव दिया, लेकिन डरते-डरते क्योकि चालुक्यो की बडी रानी को एक साधारण हेगडे के यहाँ भेजने की सलाह देना उसके लिए असाधारण बात थी।

"बहुत ही अच्छी सलाह है। मुझे यह सूझा ही नही। वहाँ रहने पर बडी रानीजी के गौरव-सत्कार आदि मे कोई कमी भी नही होगी और किसी को पता भी नही लगेगा। ठीक, किन-किनको साथ भेजेगे, इस पर विचार करना होगा।" कहते हुए उन्होने अमात्य की ओर प्रश्नार्थक दृष्टि से देखा।

"प्रभु को मुझपर भरोसा हो तो अन्य किसी की जरूरत नही। मैं उन्हे बलिपुर मे सुरक्षित रूप से पहुँचा दूंगा। प्रभु की ओर से एक गुप्त पत्र भी मेरे साथ रहे तो अच्छा होगा।" हिरिय चलिकेनायक ने कहा।

"ठीक," कहकर प्रभु एरेयग उठ खडे हुए।

कुदमराय ने खडे होकर कहा, "एक बार प्रभु से या बडी रानीजी से बातें करके निर्णय करना अच्छा होगा।" यह एक सूचना थी।

"अच्छा, वही करेगे। नायक, तुम मेरे साथ चलो," कहकर प्रभु एरेयग विक्रमादित्य के शिविर की ओर चल पडे।

योजना के अनुसार सारा कार्य उसी रात सम्पन्न हो गया।

दूसरे दिन सुबह सारे फौजी शिविरो मे सनसनी फैल गयी कि बडी रानी चदलदेवीजी युद्ध के शिविर मे से अचानक अदृश्य हो गयी है, कहाँ गयी, किसी को मालूम नही। बोलनेवालो को रोकनेवाला कोई न था, सुननेवालो के कान खुले ही रहे और सारी खबर प्रभु एरेयग के पास पहुँचती रही।

प्रभु एरेयग ने चालुक्यो की अश्व सेना के सैनिको जोगम और तिक्कम को शिविर मे बुलवाया। वे क्यो बुलवाये गये, यह उन्हे न तो मालूम हुआ और न जानने की उनकी कोशिश सफल हुई। गोक जो इन दोनो को बुला लाया था।

प्रभु एरेयग ने इन दोनो को सिर से पैर तक देखा, भावपूर्ण दृष्टि से नही, यो ही। जरा मुसकराये और कहा, "आप लोगो की होशियारी की खबर हमे मिली है।"

वे दोनो सन्तोष व्यक्त करने की भावना से कुछ हँसे। इस तरह बुलाये जाने पर उनके मन मे जो कुतूहल पैदा हुआ था वह दूर हो गया। लम्बी साँस लेकर दोनो ने एक-दूसरे को देखा।

"क्या तुम लोग साधारण सैनिक हो ?"

"नही, मै घुडसवारो का नायक हूँ। मेरे मातहत एक सौ घुडसवार है।" जोगम ने कहा।

"मेरे मातहत भी एक सौ सिपाही है।" तिक्कम ने कहा।

"क्या वे सब जो तुम लोगो के मातहत है विश्वासपात्र है ? तुम लोगो के आदेशो का पालन निष्ठा से करते है ? क्या इनमे ऐसे भी लोग है जो अडगा लगाते है।"

"नही प्रभु, ऐसे लोग उनमे कोई नही।"

"वे लोग तुम्हारे आदेशो का भूल-चूक के बिना पालन करते है ?"

"इस विषय मे सदेह करने की कोई गुजायश ही नही।"

"बहुत अच्छा। तुम लोगो के उच्च अधिकारी कौन है ?"

"हम जैसे दस लोगो पर एक महानायक होता है। उनके मातहत मे एक हजार घुडसवारो की सेना होती है और दस अश्वनायक भी।"

"तुम लोगो ने यह समझा है कि यह बात हमे मालूम नही ? तुम्हारे ऐसे अधिकारी कौन है ? इसके बारे मे हमने पूछा था।"

"महानायक बल्लवेग्गडेजी," जोगम ने कहा।

"गोक ! उस महानायक को बुला लाओ।"

गोक झुककर प्रणाम कर चला गया।

"तुम लोगो के मातहत रहनेवाले जैसे तुम्हारे आज्ञाकारी है वैसे जिनके अधीन तुम लोग हो उनके प्रति तुम लोग भी निष्ठा के साथ उनकी आज्ञाओं का पालन करते हो न ?"

"यदि हम ऐसे न होते तो हमे यह अश्वनायक का पद ही कौन देता, प्रभु ? हम शपथ लेकर चालुक्य राजवशियो के सेवातत्पर निष्ठावान् सेवक बने है।"

"तुम जैसे निष्ठावान् सेवको को पानेवाले चालुक्य राजवशियो का भाग्य बहुत ही सराहनीय है।"

दोनो खुशी से फूले न समाये। पोय्सल वशीय राजा हम लोगो के बारे मे इतनी अच्छी जानकारी रखते है और ऐसी प्रशसा की बाते करते है, यह उनकी खुशी का कारण था। प्रशसा सुनकर उन लोगो ने सोचा कि उनकी सेना मे उन्हे और ज्यादा ऊँचे पद की प्राप्ति होगी। उस कल्पना से मन-ही-मन लड्डू फूटने लगे।

"तुम लोगो को बुलाया क्यो गया है, जानते हो ?"

"नही प्रभु ! आज्ञा हुई, आये।" उन्होने कहा।

"बडी रानी चदलदेवीजी लापता है, मालूम है ?" एरेयग ने प्रश्न किया।

"समूचे सैनिक शिविर मे यही शोरगुल है।" तिक्कम ने कहा।

"यह खाली शोरशराबा नही। यह समाचार सच है।" एरेयग ने स्पष्ट

किया।

"यह तो बडे आश्चर्य की बात है।" जोगम ने कहा।

"नही तो क्या ? आप जैसे विश्वस्त सेनानायको के रहते, उसी सेना के शिविर मे से बडी रानीजी गायब हो जाये तो इससे बढकर आश्चर्य की बात क्या होगी ?"

गोक के साथ आये बल्लवेग्गडे ने झुककर प्रणाम किया और कहा, "प्रभु ने कहला भेजा था, आया। अब तक प्रभु को प्रत्यक्ष देखने का मौका नही मिला था। आज्ञा हो, क्या आदेश है।" उसने खुले दिल से कहा।

"बैठिये, महानायकजी, तुम लोग भी बैठो।" एरेयग ने आदेश दिया।

महानायक बैठे। उन दोनो ने आगे-पीछे देखा।

"तुम लोग इस समय हमारे बराबर के हो क्योंकि हम यहाँ विचार-विनिमय करने बैठे है इसलिए आप बिना सकोच के बैठिए।" एरेयग ने आश्वासन दिया।

दोनो ने बल्लवेग्गडे की ओर देखा। उसने सम्मति दी। वे बैठ गये।

एरेयग ने गोक को आदेश दिया, "चालुक्य दण्डनायक राविनभट्ट से हमारी तरफ से कहो कि सुविधा हो तो यहाँ पधारने की कृपा करे।" प्रभु का आदेश पाकर गोक दण्डनायक राविनभट्ट को बुलाने चला गया।

"महानायक, बडी रानीजी के यो अदृश्य हो जाने का क्या कारण हो सकता है ?" प्रभु एरेयग ने पूछा।

बल्लवेग्गडे ने कहा, "मेरी अल्प मति समझ नही पा रही है यह कैसे हो सका। सुबह उठते-उठते यह बुरी खबर सुनकर बहुत परेशानी हो रही है, किसी काम मे मन नही लग रहा है।"

"ऐसा होना तो सहज है। परन्तु हम हाथ समेटे बैठे रहे तो आगे क्या होगा ?"

"सेना की उस टुकडी को चारो ओर भेज दिया जाय जिसे खोजबीन करने के लिए ही नियुक्त किया है ?"

"सो तो भेजा जा चुका है। अब तक आपको यह समाचार नही मिला, यह आश्चर्य की बात है। खबर मिलते ही, हमारे निकटवर्ती लोगो ने यह सलाह दी और सेना की एक टुकडी तुरन्त भेज दी गयी। परन्तु अब कुछ सावधानी के साथ विचार करने पर हमे ऐसा लग रहा है कि यो लोगो को बेहिसाब भेजने से लाभ के बदले हानि ही ज्यादा हो सकती है। मगर अब तो जिन्हे भेज दिया गया है उन्हे वापस बुलाया नही जा सकता। उसे रहने दें। अब क्या करें ?"

"किस प्रसग मे, प्रभु ?"

"उनके गायब होने का कारण जानने के लिए।"

"मैं अकेला कैसे क्या जान सकता हूँ ? अन्य सेनानायको, नायको, पटवारियो और अश्व सेना के नायको को बुलवाकर विचार-विनिमय करना उचित है ।"

"वह भी ठीक है । देखे, दण्डनायकजी को आने दीजिए । जैसा वे कहेगे वैसा करेंगे ।" एरेयग ने कहा ।

"सन्निधान क्या कहते हैं ?" बल्लवेग्गडे ने पूछा ।

"उन्हे दु ख और क्रोध दोनो हैं । अब वे किसी पर विश्वास करने की स्थिति मे नही हैं । अब हमे ही आपस मे मिलकर विचार-विनिमय करके पता लगाना होगा, और यदि कोई अनहोनी बात हुई हो तो वह किसके द्वारा हुई है इसकी जानकारी प्राप्त करनी होगी । इन्ही लोगो को उनके सामने खडा कर उन्ही के मुँह से निर्णय प्राप्त करना होगा कि इस सम्बन्ध मे क्या कार्रवाई की जाये । तब तक हम सन्निधान के सामने कुछ नही कह सकेगे । कर्नाटक महासाम्राज्य के इस अभेद्य सेना शिविर से रातो-रात बडी रानी अदृश्य हो गयी हो तो ऐसी सेना का रहना और न रहना दोनो बराबर है । महासन्निधान यही कहेगे । उनका दु ख और क्रोध से जलता हुआ मुँह देखा न जा सकेगा ।"

दण्डनायक राविनभट्ट के आते ही एरेयग ने बात बन्द कर दी और उठकर कहा, "आइये अमात्य, हम खुद ही आना चाहते थे, परन्तु यहाँ विचार-विनिमय करते रहने के कारण आपको कष्ट देना पडा ।"

"नही प्रभो, आना तो मुझे चाहिए आपको नही । यह खबर मिलते ही वास्तव मे किकर्तव्यविमूढ हो गया और खुद सन्निधान का दर्शन करने गया । यह मालूम होने पर कि दर्शन किसी को नही मिलेगा, तब आपके दर्शन के लिए निकला ही था कि इतने मे आदश मिला ।" राविनभट्ट ने कहा ।

"बैठिए," कहते हुए स्वय एरेयग भी बैठे । शेष लोग भी बैठे । फिर विचार-विनिमय आरम्भ हुआ ।

प्रभु एरेयग ने ही बात आरम्भ की । चालुक्य दण्डनायकजी, आपके सेना नायको मे, सुनते है, ये बल्लवेग्गडेजी बहुत होशियार है । माहणीयो मे भी, सुनते है, ये दोनो बडे बुद्धिमान् है । वे भी मौजूद है । आपके आने से पहले इसी विषय पर बात चल रही थी । तब बल्लवेग्गडे ने बताया था कि सभी सेनानायको, पटवारियो और अश्वनायको को बुलाकर विचार-विनिमय करना अच्छा होगा । अगर आप भी सहमत हो तो वैसा ही करेंगे ।" एरेयग ने कहा ।

दण्डनायक राविनभट्ट ने एकदम कुछ नही कहा । उनके मन मे आया कि मेरे आने से पहले, मुझसे विचार-विनिमय करने से पूर्व मेरी ही सेना के तीन लोगो को बुलवाने मे कोई खास उद्देश्य होना चाहिए, उद्देश्य कुछ भी हो, ऐसे प्रसग मे अधिक लोगो का न रहना ही ठीक है, इसीलिए एरेयग प्रभु ने ऐसा किया होगा । बोले, "अब हम पाँच लोग विचार-विनिमय कर लें, कोई हल न निकला तो तब

सोचेंगे कि और किस-किसको बुलवाना चाहिए।"

एरेयग प्रभु ने प्रशसा की दृष्टि से चालुक्य दण्डनायक की ओर देखा। "किस-किसके द्वारा बडी रानी का अदृश्य होना सम्भव हुआ है, इस सम्बन्ध मे आपको कुछ सूझ रहा है, दण्डनायकजी ?"

दण्डनायक राविनभट्ट ने कहा, "हो सकता है कि किसी कारण से बिना बताये वे खुद अदृश्य हो गयी हो।"

"यो अदृश्य हो जाने का कोई लक्ष्य, कोई उद्देश्य होना चाहिए न ?" एरेयग ने प्रश्न किया।

"हाँ, यो अदृश्य हो जाने मे उनका उद्देश्य कुछ नही होगा अत वे स्वय प्रेरणा से तो कही गयी न होगी।"

"किसी की आँखो मे पडे बिना यो चले जाना भी कैसे सम्भव हुआ ? यह तो सैन्य शिविर है। रात-दिन लगातार पहरा रहता है। सब ओर पहरेदारो की नजर रहती है।" बल्लवेग्गडे ने कहा।

"समझ ले कि जिन्होने देखा उनका मुँह बन्द करने के लिए हाथ गरम कर दिया गया हो, तब क्या हमारी सरक्षक सेना मे ऐसे भी लोग हैं ?" एरेयग ने सवाल किया।

राविनभट्ट ने धडल्ले से कहा, "चालुक्यो की सेना मे ऐसे लोग नही हैं।"

"आपकी सेना ने आपके मन मे ऐसा विश्वास पैदा कर दिया है तो यह आपकी दक्षता का ही प्रतीक है। यह तो सन्तोष का विषय है। लेकिन क्या आपका यह अनुमान है कि बनवासियो, पोय्सलो, करहाटो की सेना मे ऐसे लोग होगे ?"

"यह मैने अपने लोगो के बारे मे कहा है। इसका यह मतलब नही कि मुझे दूसरो की सेनाओ पर शका है।"

"करहाट की बात आयी, इसलिए मुझे कुछ कहने को जी चाहता है। कहूँ ? यद्यपि वह केवल अनुमान है।" बल्लवेग्गडे ने कहा।

"कहिए, महानायकजी।"

"हमारे सैनिको की आँखो मे धूल झोककर परमारो की सेना युद्धक्षेत्र से खिसक गयी थी, इसलिए यह सम्भव है कि बडी रानीजी ने अपने मायके की तरफ के कुछ सैनिको से सलाह-मशविरा करके यहाँ शिविर मे रहना क्षेमदायक न समझकर, मायके जाना सही मानकर, यह खबर लोगो मे फैलने के पहले ही बिलकुल गुप्तरूप मे जाकर रहना सुरक्षा के ख्याल से उत्तम समझा हो, बल्कि यह काम उन्होंने वहाँ के लोगो की प्रेरणा से ही किया हो।" बल्लवेग्गडे ने अपना अनुमान व्यक्त किया।

"हो सकता है। फिर भी, इतना तो है ही कि बडी रानीजी सन्निधान को

भी बताये बिना चली गयी है, इस स्थिति मे हम यह मानने के लिए तैयार नहीं कि इस तरह जाने मे उनकी सम्मति थी।" एरेयग ने कहा।

"मुझे कुछ और सूझता नही। आपका कथन भी ठीक है।" बल्लवेग्गडे ने कहा। थोडी देर तक कोई कुछ न बोला।

प्रभु एरेयग ने कहा, "गोक। चाविमय्या को बुला लाओ।" गोक चला गया। दण्डनायक राविनभट्ट ने पूछा, "यह चाविमय्या कौन है?"

एरेयग ने कहा, "वह हमारे गुप्तचर दल का नायक है। शायद उसे कोई नयी खबर मिली हो," फिर नायक की ओर मुखातिब होकर पूछा, "आप कुछ भी नही कह रहे है, क्या आपको कुछ सूझ नही रहा है?"

"प्रभो! आप जैसो को और चालुक्य दण्डनायक-जैसो को भी जब कुछ नही सूझ रहा है तो हम जैसे साधारण व्यक्तियो को क्या सूझेगा?" तिक्कम ने कहा।

"कभी-कभी अन्त प्रेरणा से किसी के मुंह से बडे पते की बात निकल जाती है। इसलिए यहाँ व्यक्ति मुख्य नही, किस मुँह से कैसा विचार निकलता है, यह मुख्य है। इससे यह बात मालूम होते ही आपके भी मन मे कुछ विचार, अनुमान, उत्पन्न हुआ होगा है न?" कुछ छेडने के अन्दाज से एरेयग ने चेतावनी दी।

"हाय, समूचे शिविर मे प्रत्येक मुँह से बाते निकलती है लेकिन ऐसी बातो से क्या पता लग सकता है।" जोगम ने कहा।

"ऐसी कौन-सी बाते आपके कानो मे पडी?" एरेयग ने पूछा।

इतने मे चाविमय्या आया। झुककर प्रणाम किया और दूर खडा हो गया।

"क्या कोई नयी बात है, चाविमय्या?"

"कुछ भी मालूम नही पडा, प्रभो।"

"इन लोगो को तुम जानते हो?" एरेयग ने तिक्कम और जोगम की ओर उँगली से इशारा किया।

"मालूम है।"

"तुम लोगो को चाविमय्या का परिचय है?"

"नही," दोनो ने कहा।

एरेयग हँस पडा। चूँकि हँसने लायक कोई बात नही थी इसलिए लोगो ने उनकी ओर देखा।

"अश्व सेना के नायको और सैन्य टुकडी के नायको को सदा सर्वदा चौकन्ना रहना चाहिए न?"

"हाँ, प्रभो।"

"जब आप लोग यह कहते है कि आप लोगो का परिचय चाविमय्या से नही है, तब यही समझना होगा कि आप लोग चौकन्ने नही रहे।"

"जब हमने इन्हे देखा ही नही तो हमे पता भी कैसे लगे?" तिक्कम ने

कहा।

"परन्तु वह तुम लोगो को जानता है न ? जब उसने तुम लोगो को देखा तब तुम लोगो को भी उसे देखना चाहिए था न ?"

"हो सकता है, देखा हो, परन्तु गौर नही किया होगा।"

"सैनिक लोगो को सब कुछ गौर से देखना चाहिए। तभी न हमारे उनपर रखे विश्वास का फल मिलेगा ?"

"हम सतर्क रहते हैं। पर इनके विषय मे ऐसा क्यो हुआ, पता नही, प्रभो।"

"खैर, छोडिए। आइन्दा हमेशा सतर्क और चौकन्ना रहना चाहिए, इसीलिए चाविमय्या को आप लोगो के समक्ष बुलवाया। अच्छा, चाविमय्या, तुमने इन लोगो को कहाँ देखा था ? कब देखा था ?"

"आज सुबह, इनके शिविर मे, इनके तम्बू के पास।"

"तुम उधर क्यो गये ?"

चाविमय्या ने इर्द-गिर्द देखा।

"अच्छा, रहने दो। कारण सबके सामने बता नही सकोगे न ? कोई चिन्ता नही, छोडो।"

"ऐसा कुछ नही प्रभो। आज्ञा हुई थी, उसका पालन करने जा रहा था। रास्ते मे ये लोग नजर आये। इनके शिविर के पास और तीन चार लोग थे। बडी रानीजी के गायब होने के बारे मे बातचीत कर रहे थे। सबमे कुतूहल पैदा हुआ उस समाचार से। मुझे भी कुतूहल हुआ तो मैं वही ठहर गया।"

"तो, खबर सुनते ही तुम लोगो मे भी कोई कारण की कल्पना हुई होगी न ?" साहणी लोगो से एरेयग ने पूछा।

"कुछ सूझा जरूर, बाद को लगा कि यह सब पागलपन है।"

"हमसे कह सकते हैं न ? कभी-कभी इस पागलपन से भी कुछ पता-अन्दाजा लग सकता है। कहिए, याद है न ?"

"तब क्या कहा सो तो स्मरण नही। पर जो विचार आया वह याद है।"

"कहिए।"

दोनो ने एक-दूसरे को देखा।

"उसके लिए आगा-पीछा क्यो ? धैर्य के साथ कहिए। कुछ भी हो, तुम लोगो मे भी इस बारे मे कोई प्रतिक्रिया सहज ही हुई होगी।" बल्लवेग्गडे ने उन्हे उकसाया।

"और कुछ नहीं। वह कल्पना भी एक पागलपन है। हमारी बडी रानीजी को परमारो की तरफ के लोग आकर चोरी से उडा ले गये होगे—ऐसा लगा।" तिक्कम ने कहा।

"मुझे भी ऐसा होना सम्भव-सा लगा। शेष और दो व्यक्तियो ने स्वीकार नही किया। इस बारे मे कुछ चर्चा हुई। बाद को हमे लगा कि हमारी यह कल्पना गलत है।" जोगम ने कहा।

"ठीक है। तुम लोगो ने अपने मन मे जो भाव उत्पन्न हुए वे बताये। अच्छा, चाविमय्या, ये जो कहते हैं, क्या वह ठीक है ?" एरेयग ने पूछा।

चाविमय्या ने कहा, "ठीक है।"

"बाकी लोगो मे किस-किसने क्या-क्या कहा ?"

"कुछ लोगो ने केवल आश्चर्य प्रकट किया। कुछ ने दु ख प्रकट किया। परन्तु अनेको को यह मालूम ही नही था कि युद्ध शिविर मे बडी रानीजी हैं भी। अनेको को बडी रानीजी के गायब होने की खबर मिलने के बाद ही मालूम हुआ कि वे आयी हुई थी।"

"अच्छा चाविमय्या, तुम जा सकते हो। तुम लोग भी जा सकते हो।" एरेयग ने साहणीयो से कहा।

वे लोग चले गये। वे लोग शिविर मे जब आये थे तब जिन भावनाओ का बोझा साथ लाये थे, वह थोडी देर के लिए जरूर भूल-से गये थे। मगर जाते वक्त उसम भी एक भारी बोझ-सा लगने लगा।

"गोक ! इन दोनो पर और इनके मातहत सैनिको पर कडी नजर रखने और सतर्क रहने के लिए हेग्गडे सिगमय्या से कहो।" एरेयग ने आज्ञा दी। गोक चला गया।

राविनभट्ट और बल्लवेग्गडे विचित्र ढग से देख रहे थे।

"दण्डनायकजी ! अब मालूम हुआ ? विद्रोह का बीज हमारे ही शिविर मे बोया गया है।" एरेयग ने कहा।

"मुझे स्पष्ट नही हुआ।" राविनभट्ट ने कहा।

"बडी रानीजी शिविर मे है, इसका पता ही बहुतो को नही। ऐसी हालत मे उनके गायब होने की खबर फैलने पर लोगो के मन मे यह बात उठी कि उन्हे शत्रु उडा ले गये होगे। जब यह बात उनके मन मे उठी तो सहज ही सोचना होगा कि बडी रानीजी शिविर मे है, इतना ही नही, उनके शिविर मे होने की बात शत्रुओ को भी मालूम हो गयी है। यह उसी हालत मे सम्भव है कि जब लोग ऐसी बातो की जानकारी रखते ही हो। इसलिए ये नायक विश्वास करने योग्य नही। इन्ही लोगो की तरफ से शत्रुओ को यह खबर मिली है कि बडी रानीजी युद्ध शिविर मे है। इसमे सन्देह ही नही। इन सब बातो को बाद मे उन्ही के मुँह से निकलवाएँगे। मेरे ये विचार ठीक लगे तो आपके महाराज उनको जो दण्ड देना चाहे, दे। बल्लवेग्गडेजी, आप जैसे लोगो को, जो उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान पर रहते हैं, केवल निष्ठा रखना काफी नही, आप लोगो को अपने मातहत वालो से भी सतर्क

रहना चाहिए। अब देखिये, आपकी एक हजार अश्व सेना मे दो सौ सैनिक इस तरह के फिजूल साबित हो सकते है। अब आइन्दा आपको बहुत होशियार एव सतर्क रहना चाहिए।"

"जो आज्ञा, प्रभो। जिस पत्तल मे खाये उसी मे छेद करनेवाले नमकहराम कहे जाते हैं।"

"मनुष्य लालची होता है। जहाँ ज्यादा लाभ मिले उधर झुक जाता है। ऐसी स्थिति मे निष्ठा पीछे रह जाती है। इसलिए जब हम उन लोगो से निष्ठा चाहते हैं, तब हमे भी यह देखना होगा कि वे तृप्त और सन्तुष्ट रहे। उन्हे अपना बनाने की कोशिश करना और उन्हे खुश और सन्तुष्ट रखने के लिए उपयुक्त रीति से बरतना भी ज़रूरी है। केवल अधिकार और दर्प व हाकिमाना ढग दिखाने पर उल्टा असर हो सकता है, इसलिए अपने अधीन रहनेवालो मे हैसियत के अनुसार बडे-छोटे का फरक रहने पर भी, उनसे व्यवहार करने समय इस तारतम्य भाव को प्रकट होने दे तो उसका उल्टा असर पड सकता है। यह सब हमने अनुभव से सीखा है। अच्छा अब आप जा सकते हैं। आइन्दा बहुत होशि-यारी से काम लेना चाहिए।"

"जो आज्ञा।" दोनो को प्रणाम करके बल्लवग्गडे चला गया।

"प्रभो! अब द्रोहियो का पता लगने पर भी बडी रानीजी का पता लगेगा कैसे?" राविनभट्ट ने पूछा।

"द्रोहियो का पता लगाने के ही लिए यह सब कुछ किया जा रहा है।"

"मतलब?"

"जो कुछ भी किया गया है, वह सब सन्निधान की स्वीकृति से ही किया गया है।"

"क्या-क्या हुआ है, यह पूछ सकते है?"

"हम सब सन्निधान के आज्ञाकारी हैं न?"

"मुझपर विश्वास नही?"

"इन सब बातो को उस दृष्टि से नही देखना चाहिए, दण्डनायकजी।"

"सन्निधान की आज्ञा का जितना अर्थ होता है, उससे अधिक कुछ करना गलत होता है।"

"मतलब?"

"जो कुछ भी जिस किसी को कहना हो उसे सन्निधान स्वय बतायेंगे। सब बाते जानने पर भी कहने का अधिकार मुझे या आपको नही। इसलिए सन्निधान स्वय उपयुक्त समय मे आपको बता देगे।"

"अब आगे का काम?"

"कल गुप्त मन्त्रणा की सभा होगी। उसमे फैसला करेंगे।"

हेग्गडती माचिकब्बे हाथ मे पूजा-सामग्री का थाल और फूलो की टोकरी लेकर शान्तला को साथ ले बाहर निकली, दरवाज़े के पास पहुँची ही थी कि नौकर लेंक बोला, "कोई इधर आ रहे है।"

माचिकब्बे ने अहाते की तरफ देखा। एक छोटी उम्र की स्त्री और अधेड उम्र का पुरुष अन्दर आ रहे है। बहुत दूर की यात्रा की थी, इससे वे थके मालूम पडते थे। उस स्त्री का सिर धूल भरा, बाल अस्तव्यस्त और चेहरा पसीने से तर था।

माचिकब्बे ने कहा, "लेंक, गालब्बे को बुला ला।" लेंक एकदम भागा अन्दर। माचिकब्बे वही खडी रही। नवागतो के पास पहुँचने मे पहले ही अन्दर से गालब्बे आ गयी। इतने मे शान्तला चार कदम आगे बढी। माचिकब्बे ने इन नवागन्तुको का स्वागत मुसकुराहट के साथ किया। इर्द-गिर्द नजर दौडाकर देखा। कहा, "आइये, आप कौन है, यह तो नही जानती, फिर भी इतना कह सकती हूँ कि आप लोग बहुत दूर से आये है। मैं बसदि मे पूजा के लिए निकली हूँ इसलिए, अतिथियो को छोडकर मालकिन चली गयी, ऐसा मत सोचिए। गालब्बे, इन्हे इनकी सहूलियत के अनुसार सब व्यवस्था करो। हम जल्दी ही लौटेगी। लौटते ही बात करेंगे। समझी।" गालब्बे को आदेश देकर उसने नवागतो से कहा, "आप निसकोच रहिए। मैं शीघ्र लौटूँगी। चलो अम्माजी।" और माचिकब्बे शान्तला के साथ चल पडी। लेंक ने उनका अनुगमन किया।

नवागतो को साथ लेकर गालब्बे अन्दर गयी। माचिकब्बे द्वारा उनके लिए निर्दिष्ट कमरो मे उन्हे ठहराया। उनकी आवश्यकताओ की सारी व्यवस्था की। दोनो यात्रा की थकावट दूर करने के लिए विश्राम करने लगे। थोडी ही देर मे गालब्बे नवागता के कमरे मे आयी और बोली, "पानी गरम है, तैलस्नान करना हो तो मैं आपकी सेवा मे हाजिर हूँ।"

"मैं स्वय नहा लूँगी।"

"तो मै पानी तैयार रखूँ? तैल-स्नान करती हो तो वह भी तैयार रखूँगी। आपको एरण्डी का तेल चाहिए या नारियल का?" गालब्बे ने पूछा।

"मुझे तेल-वेल नही चाहिए।" देवी ने कहा।

"यह पहाडी देश का स्नानागार है। यहाँ फिसलने का डर रहता है। यदि कुछ चाहिए तो बता दीजियेगा। मै यही दरवाज़े पर हू। मेरा नाम गालब्बे है।"

"तुम्हारा नाम तो जानती हूँ। तुम्हारी हेग्गडती ने पुकारा था न?"

"धुली रेशमी साडी तैयार है जो अतिथियो ही के लिए रखी है। ले आती हूँ।" गालब्बे ने कहा।

"मेरे पास अपने कपडे है। उस अलमारी के ऊपर के खाने मे रखे है।"

"अभी लायी," कहती हुई गालब्बे दौड पडी।

'अभ्यास के कारण खाली हाथ आयी थी। आवश्यक वस्तुओ को साथ ले जाने की आदत नही। परन्तु अब रहस्य तो खुलना नही चाहिए न ? आखिर यह तो नौकरानी है, इतनी दूर तक वह सोच नही पायेगी। कुछ भी हो, आगे से होशियार रहना होगा।' देवी ने मन मे सोचा। इतने मे गालब्बे वस्त्र लेकर आयी और वहाँ अरगनी पर टाँग दरवाजे के बाहर ठहर गयी।

मन्दिर से शीघ्र लौट आयी माचिकब्बे। अपने अतिथि को नहाने गयी जानकर अतिथि महाशय से बात करने लगी।

"आपके आने की बात तो मालूम थी। फिर भी हेग्गडेजी इस स्थिति मे नही थे कि वे यहाँ ठहरते।"

"हमारे आने की बात आपको मालूम थी ?"

"हाँ, श्रीमद्युवराज ने पहले ही खबर भेजी थी। परन्तु यह मालूम नही था कि आप लोग आज इस वक्त पधारेंगे। वैसे हम करीब एक सप्ताह से आप लोगो की प्रतीक्षा मे है।"

"रास्ता हमारी इच्छा के अनुसार तो तय नही हो सकता था, हेग्गडतीजी। इसके अलावा, देवीजी को तो इस तरह की यात्रा की आदत नही है। इसीलिए हम देर मे आ सके।"

"सो भी हमे मालूम है।"

"तो देवीजी कौन है यह भी आप जानती है ?"

"यह सब चर्चा का विषय नही। आप लोग जिस तरह मे अपना परिचय देगे उसी तरह का व्यवहार आप लोगो के साथ करने की आज्ञा दी है हेग्गडेजी ने।"

"मैं यहाँ नही रहूँगा, हेग्गडतीजी। देवीजी को सुरक्षित यहाँ पहुँचाकर लौटना ही मेरा काम है। उन्हे सही-सलामत आपके हाथो सौप दिया है। हेग्गडेजी के लौटते ही उनसे एक पत्र लेकर एक अच्छे घोडे से मुझे जाना होगा। मेरा शरीर यहाँ है और मन वहाँ प्रभुजी के पास।"

"ठीक ही तो है। इसीलिए प्रभु-द्रोहि-दण्डक अर्थात् प्रभु के प्रति विश्वासघात करनेवालो का घोर शिक्षक, प्रसिद्ध विशेषण आपके लिए अन्वर्थ है।" माचिकब्बे ने कहा।

वह चकित हो हेग्गडती की ओर देखने लगा।

"आप चकित न हो, हमे सबकुछ मालूम है।"

अतिथि देवी के स्नान की सूचना अतिथि महाशय को देने आयी गालब्बे ने वहाँ मालकिन को देखा तो उसने अपने चलने की गति धीमी कर दी, यद्यपि उसकी पैंजनियाँ चुप न रह सकी।

हेग्गडतीजी समझ गयी कि देवीजी का नहाना-धोना हो चुका है। "आप नहाने जाते हो तो गालब्बे आपके लिए पानी तैयार कर देगी।" कहती हुई

हेग्गडती चली गयी।

स्नान करते वक्त इस हिरिय चलिकेनायक का अचानक कुछ सूझा। इसलिए स्नान शीघ्र समाप्त करना पड़ा। मार्ग की थकावट की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। गुसलखाने से जल्दी निकला और गालब्बे से बोला, "कुछ क्षणों के लिए हेग्गडतीजी से अभी मिलना है।"

"आपका शुभनाम ?"

"नायक।"

"कौन-सा नायक ?"

" 'नायक' कहना काफी है।" उसने हेग्गडतीजी को खबर दी। वे आयीं। हिरिय चलिकेनायक ने इर्द-गिर्द देखा। माचिकब्बे ने गालब्बे को आवाज दी, वह आयी, तो कहा, "देखो, अम्माजी क्या कर रही है।"

इसके बाद नायक हेग्गडतीजी के नजदीक आया और कहा, "इन देवीजी का परिचय आपको और हेग्गडेजी को है, यह बात देवीजी को मालूम नहीं होनी चाहिए। इस विषय मे होशियार रहना होगा, यह प्रभु की आज्ञा है।"

"इसीलिए हमने यह बात अपनी बेटी से भी नहीं कही।" माचिकब्बे ने कहा।

"नहाते वक्त भी यह निवेदन उसी क्षण करना आवश्यक जान पड़ा। इसे आप अन्यथा न समझें।" नायक ने विनीत भाव से कहा।

"ऐसा कहीं हो सकता है ? ऐसी बातों मे भूल-चूक होना स्वाभाविक है। इसलिए होशियार करते रहना चाहिए। बार-बार कहकर होशियार कर देना अच्छा ही है। अच्छा, अब और कुछ कहना है ?"

"कुछ नहीं।"

"देवीजी को अकेलापन नहीं अखरे इसलिए मैं चलती हूँ। लेंक को भेज दूँगी। आपको कोई आवश्यकता हो तो उससे कहिएगा।" कहकर माचिकब्बे चली गयी।

अब हिरिय चलिकेनायक वास्तव मे निश्चिन्त हो गया और हेग्गडेजी के शीघ्र आगमन की प्रतीक्षा मे बैठा रहा।

हेग्गडेजी के घर का आतिथ्य राजमहल के आतिथ्य से कम नहीं रहा। इनके आने के दो-एक दिन बाद ही हेग्गडेजी आये।

महारानी चन्दलदेवीजी को अपने पास सुरक्षित रूप से पहुँचाने-सौंपने की पुष्टि मे एक साकेतिक पत्र देकर हेग्गडे मारसिगय्याजी ने हिरिय चलिके-नायक को बिदा किया। महारानी चन्दलदेवीजी ने भी यथोचित आदर-गौरव के साथ यहाँ तक ले आने और सुरक्षित रूप से पहुँचाने के लिए अपनी तृप्ति एव सन्तोष व्यक्त करके नायक को महाराज के लिए एक साकेतिक पत्र दे बिदा किया।

मरियाने दण्डनायक ने युद्ध-शिक्षण के उद्देश्य से कुमार बल्लाल को दोरसमुद्र मे ठहराया, यह तो विदित ही है। परन्तु बल्लाल कुमार की शारीरिक शक्ति इस शिक्षण के लिए उतनी योग्य नही थी। फिर भी उसने शिक्षा नही पायी, ऐसा तो नही कहा जा सकता। शारीरिक बल की ओर विशेष ध्यान रखने के कारण मरियाने दण्डनायक ने राजकुमार को ऐसी ही शिक्षा दी जिसमे बल-प्रयोग की उतनी आवश्यकता नही पड़ती थी। तलवार चलाना, धनुर्विद्या आदि सिखाने का प्रयत्न भी चला था। बहुत समय तक अभ्यास कर सकने की ताकत राजकुमार मे नही, यह जानने के बाद तो शिक्षण देने का दिखावा भर हो रहा था। परन्तु उसे और उससे बढ़कर चामव्वे को एक बात की बहुत तृप्ति थी। जिस उद्देश्य से राजकुमार को वहाँ ठहरा लिया गया था उसमे वह सफल हुई थी। राजकुमार बल्लाल का मन पद्मला पर अच्छी तरह जम गया था। कभी-कभी चामला पर भी उसका मन आकृष्ट होता था। परन्तु इस ओर उसके माँ-बाप का ध्यान नही गया था क्योकि यह निर्णय चामव्वे का ही था कि उसने चामला को जन्म बिट्टिदेव के ही लिए दिया है। इस दिशा मे प्रयत्न आगे बढ़ाने के लिए ही खुद उसने युवरानी एचलदेवी को दोरसमुद्र बुलवाया था। परन्तु ?

इन सब प्रयत्नो का कोई फल नही निकला। उनको आये काफी समय भी बीत चला था। आने के बाद एक महीने के अन्दर सबको बेलगोल भी ले जाया गया था। चामव्वे किसी-न-किसी बहाने युवरानी और बिट्टिदेव पर प्रेम और आदर के भाव बरसाती रही। परन्तु उसके प्रेम और आदर की कोई प्रतिक्रिया नही हुई जिसकी वह प्रतीक्षा कर रही थी। यह खबर मालूम होने पर कि बिट्टिदेव शिवगगा भी गया था, उसकी कल्पना का महल एक ओर से ढह गया-सा प्रतीत होने लगा था। उसके अन्तरग के किसी कोने मे एक सशय ने घर कर लिया था। ऐसी हालत मे वह चुप कैसे बैठी रह सकती थी? स्वभाव से ही वह चुप बैठनेवाली नही थी। सरस्वती की कृपा से उसे जितनी बुद्धिशक्ति प्राप्त थी उस सबका उसने उपयोग किया। किये गये सभी प्रयत्न निष्फल हुए थे, इसे वह जानती थी, फिर भी वह अपने प्रयत्नो से हाथ धोकर नही बैठी। वह निराश नही हुई। आशावादी और प्रयत्नशील व्यक्ति थी वह।

दण्डनायक के घर से निमन्त्रण मिलता तो वह चामला को ही आगे करके जाती। युवरानी और राजकुमारो के सामने एक दिन पद्मला और चामला का गाना और नृत्य हुआ था। माचव्वा सोच रही थी कि सगीत के बारे मे बेलुगोल मे बात उठी थी तो दोरसमुद्र मे पहुँचने के बाद युवरानीजी कभी-न-कभी कहेगी, 'चामव्वाजी अभी तक आपकी बच्चियो के सगीत एव नृत्य का हमे परिचय ही नही मिला।' तब कुछ नखरे दिखाकर उनके सामने नाच-गान कराने की बात सोच रही थी। मगर युवरानीजी ने इस सम्बन्ध मे कभी कोई बात उठायी ही

नही। चामव्वा के मन मे एक बार यह बात भी आ गयी कि शायद युवरानीजी यह बात उठायेगी ही नही। पूछने या न पूछने से होता-जाता क्या है—यह सोच-कर ऐंठने से तो उसका काम बनेगा नही। वह विचार-लहरी मे डोल ही रही थी कि महाराज के जन्मदिन के आ जाने मे उसे अपनी इच्छा पूर्ण करने का एक मौका मिला। इस मौके पर पद्मला और चामला का नृत्य-गान हुआ। महाराज ने उनकी प्रशसा भी की। बल्लाल कुमार का तो प्रशसा करना सहज ही था। वहाँ मौजूद अधिकारियो मे एक प्रधान गगराज को छोड़ अन्य सब दण्डनायक से निम्न स्तर के थे। वे तो प्रशसा करते ही। और गगराज के लिए तो ये बहन की बच्चियाँ ही थी। युवरानी ने जरूर "अच्छा था।" ही कहा।

तब चामव्वा ने कहा, "बेचारी बच्चियाँ है और अभी तो सीख ही रही है। वह भी आपने कहा इसलिए दण्डनायकजी ने इन्हे सीखने की अनुमति दी। फिर भी हमारी बच्चियाँ होशियार है। जल्दी-जल्दी सीख रही है। आपका प्रेम और प्रोत्साहन तो है ही।"

"इसमे मैंने क्या किया। लडकियो के वश मे तो यह विद्या स्वय आती है। हम तो इतना ही कह सकते है कि ये सीखे। मेहनत करनेवाली तो वे ही है।"

"सच है। बच्चियो को तो सीखने की बडी चाह है। सचमुच उन्होने उस हेग्गडती की लडकी से भी अच्छा सीखने का निश्चय किया है।"

"तो यह स्पर्धा है।"

चामव्वा यह सुन कुछ अप्रतिभ-सी हुई। उसे ऐसा लगा, उसके गाल पर चुटकी काट ली गयी हो। पूर्ववत् बात करने की स्थिति मे आने मे उसे कुछ वक्त लगा। हँसने की चेष्टा करते हुए कहा, "स्पर्धा नही 'अच्छी तरह सीखने की इच्छा से, दिलचस्पी से सीखने का निश्चय किया गया है।"

"बहुत अच्छा," युवरानी ने कहा। यह प्रसग उस दिन भी इसी ढग से समाप्त हुआ था। यह प्रसग आगे कही न उभरे तो अच्छा हो।

इस घटना के तीन-चार दिन बाद भोजन करते वक्त बल्लाल कुमार ने पूछा, "माँ पद्मला और चामला का नृत्य-गान अच्छा था न ?"

"अच्छा था, अप्पाजी।" युवरानी ने कहा।

"कौन सिखा रहे है ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"उत्कल से किसी को बुलवाया है।" बल्लाल ने कहा।

"तुम उन्हे जानते हो ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"हाँ, क्यो ? तुम उन्हे देखना चाहते हो ?"

"मुझे क्या काम है ?"

"तो फिर पूछा क्यो ?"

"उन लडकियो के चेहरे पर जो भाव थे वे निखरे हुए नही थे। शिक्षक अभी

ठीक कर दे तो अच्छा होता हो। इस ओर ध्यान देने के लिए उनसे कहो।" बिट्टिदेव ने कहा।

"तुम चाहते हो तो कह दूँगा। लेकिन भाव ? निखार ? ऐसी कौन-सी गलती देखी तुमने ?" कुछ गरम होकर बल्लाल ने पूछा। जिस पद्मला को मैंने चाहा है, उसके नाच के बारे मे गलत-सलत कहनेवाला यह कौन है ? यह, मुझसे चार साल छोटा। इस छोकरे की बात का क्या मूल्य ?

"अप्पाजी, मैंने तो यह बात एक अच्छे उद्देश्य से कही है। आप नही चाहते हो तो छोड दे।"

"तुम बहुत जानते हो। क्या गलती थी ? बताओ तो ? माँ भी थी। उनको ही कहने दो।"

"अच्छा, छोडो। तुम लोग आपस मे इसपर क्यो झगडते हो ?" युवरानी एचलदेवी ने कहा।

"शायद उस हेग्गडे की लडकी से ज्यादा बुद्धिमान इस दुनिया मे कोई दूसरी है ही नही, ऐसा इसने समझा होगा। इस वजह से अन्यत्र कही कुछ गलती ढूँढता है।" बल्लाल ने कुछ गरम ही होकर कहा।

"मैंने किसी का नाम नही लिया, अप्पाजी।" बिट्टिदेव बडे शान्तभाव से बोला।

"नाम ही बताना चाहिए क्या ? कहने के ढग से यह मालूम पडता है कि लक्ष्य किस ओर है। बडे मासूम बनकर उस लडकी के पीछे, बिना किसी को बताये, सुनते है कि शिवगगा गये।"

बात कही से कही पहुँची थी, यह युवरानीजी को ठीक नही लगा। इसलिए उन्होंने कहा, "इस बात को अब खतम करो। यह बात आगे बढायी तो मैं खाना छोडकर चली जाऊँगी।"

"मैंने कौन-सी गलत बात कही, माँ !" बिट्टिदेव रुआँसा हो आया।

बल्लाल की टीका उसी ढग से चली, "भाव ? बहुत जानता है, न यह।"

"आखरी बार कह रही हूँ। बात बन्द करो।" एचलदेवी कुछ और गरम हुई।

दोनो मुँह फुलाकर चुप हो गये। भोजन चुपचाप ही चला।

मासूम बनकर 'बिना किसी को बताये लडकी के पीछे गये—ये बातें बिट्टिदेव के मन मे चुभ रही थी।

बिट्टिदेव को उस दिन किसी बात मे उत्साह नही रहा। रेविमय्या को बुलाकर कहा, "चलो, घोडे पर कही दूर तक हो आयें।"

"छोटे अप्पाजी, आज कुछ अनमने लग रहे है ?"

उत्तर मे बिट्टिदेव ने पहली बात को ही दुहरा दिया। रेविमय्या वहाँ से सीधा

युवरानीजी के पास गया, और चुपचाप खडा हो गया।

"क्या है, रेविमय्या ?"

"छोटे अप्पाजी उदास लग रहे है।"

"हाँ, मालूम है।"

"कही कुछ दूर हो आने की बात कह रहे है।"

"हाँ, हो आओ, अब उसे इसकी जरूरत है।"

आज्ञा मिलने के बाद भी वह वही खडा रहा।

"और क्या चाहिए ?"

"वे क्यो ऐसे है, यह मालूम हो जाता तो अच्छा रहता। अगर मुझसे कुछ पूछे तो मुझे क्या कहना होगा ?"

"नादान बच्चो ने आपस मे कुछ बहस कर ली। अप्पाजी की कोई गलती नही। कुछ नही, सब ठीक हो जायेगा। हमे इस बहस को प्रोत्साहित नही करना है। भाई-भाई के बीच अभिप्रायो की भिन्नता मे द्वेष नही पैदा होना चाहिए। बहस एक-दूसरे को समझने मे सहायक होनी चाहिए। यह मै सभाल लूँगी। तुम लोग हो आओ।"

रेविमय्या चला गया।

युवरानी एचलदेवी ने चर्चा सम्बन्धी सभी बातो का मन-ही-मन पुनरावलन किया। चामव्वा की प्रत्येक बात आर हर एक चाल और गीन निर्विवाद रूप मे स्वार्थ से भरी हुई ही लगी। लेकिन उसकी इच्छा को गलत कहनवाले हम कौन होते है ? यदि यही भगवान की इच्छा हो तो उसे हम बदल ही नही सकते। खासकर बल्लाल को उस हालत मे रुकावट क्यो हो जबकि वह पद्मला पर आसक्त है ? हेग्गडती और उसकी बच्ची के बार मे चामव्वा की असूया और उनके बारे म बल्लाल के दिल मे बुरी भावना पैदा करने की चेष्टा के कारण युवरानी एचलदवी के मन मे उसके प्रति एक जुगुप्सा की भावना पैदा हो गयी थी। यो तो बल्लाल कुमार का मन निर्मल है। वह पद्मला की ओर आकृष्ट सहज ही है। इसपर हम कोई एतराज नही। वह उसके भाग्य से सम्बद्ध विषय है। छोटे अप्पाजी बिट्टिदेव के शिवगगा हो आने की बात जिस प्रसग मे और जिस ढग से उठायी गयी उससे ऐसा लगता हे कि कुमार बल्लाल के दिल मे उनके प्रति बहुत ही बुरी भावना पैदा की गयी है। यह सारी कार्रवाई चामव्वा ने ही की है, इसमे कोई सन्देह ही नही। अपनी लडकी की शादी के बाद वह इस काम से तटस्थ रह जाये तो कोई आपत्ति नही, लेकिन बाद मे और भी जोर से इस तरह की कार्रवाई करने लगी तो भाई-भाई एक दूसरे से दूर होते जायेगे। तब भविष्य क्या होगा ? हे अर्हन्, ऐसी स्थिति मत लाना। माँ के लिए सब बच्चे बराबर है। उसकी प्रार्थना तो यही होगी कि वे सब आपस मे प्रेम-भाव रखे ओर उनमे एकता हो। युवरानी वहाँ से

पूजागृह मे गयी और आँख मूँदकर मातृहृदय की पुकार को भगवान् के सामने निवेदन करने लगी।

उधर, भोजन के वक्त जो वाद-विवाद हुआ था वह चामव्वा तक पहुँच चुका था। यह खबर देनेवाला स्वय राजकुमार बल्लाल ही था, खबर देकर समझा कि उसने एक बहुत बडा काम साध लिया। ऐसा करने का क्या परिणाम होगा, उनपर ध्यान ही न गया। खुद चामव्वा ने यह जानना चाहा था कि उसकी बच्चियो के नाच-गान के बारे मे युवरानीजी की राय क्या है। बल्लाल ने, इसीलिए, समय पाकर यह प्रसग छेडा था। बीच मे इस छोटे अप्पाजी, बिलस्त भर के लडके को, क्यो बोलना चाहिए था? इसीलिए मै उसपर झपट पडा। वह कहने लगा था कि भावाभिव्यक्ति कम रही। जब खुद माँ ने कहा था कि अच्छा है तब इसकी टीका की जरूरत किसे थी? इससे मैंने तो राय नही माँगी थी। इसीलिए उसे मैने आडे हाथो लिया। और हेग्गडती की बेटी, वह तो बहुत बकझक करती है। दोनो एक से झक्की है। दोनो की जोडी ठीक है। इस छोटे अप्पाजी को कुछ तारतम्य ज्ञान नही। सबको छोडकर उनके साथ शिवगगा जाना ठीक है? क्या वे हमारी बराबरी के है? एक साधारण धर्मदर्शी किसी मन्दिर का, कहता है कि हेग्गडे के घरवालो के साथ राजकुमार गाँव घूमता है। ये छोटा अप्पाजी अभी भी छोटा ही है। यहाँ आकर राजमहल मे रहे तो उसे हम अपनी बराबरी का माने भी। पर माँ ने जाने की उसे अनुमति क्यो दी? युवराज ने ही कैसे सम्मति दी? सब अजीब-सा लगता है। जैसा कि चामव्वा कहती, इसमे भी कोई रहस्य है। यो चली थी बल्लाल कुमार की विचारधारा। इसी विचारधारा की पृष्ठभूमि मे उसने समझा था कि छोटे अप्पाजी जो भी करता है, वह गलत और जो खुद करता है वह सही है। अपने इन विचारो को बताने के लिए जहाँ प्रोत्साहन मिल सकता था वहाँ कहने मे यदि सकोच करे, यह हो कैसे सकता है? इस वजह से उसने चामव्वा के सामने सारी बातें उगल दी। वह दण्डनायक की पत्नी नही, वह तो उसकी भावी सास थी। पर उसे क्या मालूम था कि वह उसके भाई की भी सास बनने की आकाक्षा रखती है? यह सारा वृत्तान्त सुनने के बाद यह भावी सास कहे, "सब ठीक है," यह अपेक्षा थी बल्लाल की, तभी तो यह सारा वृत्तान्त कहते-कहते वह खुशी के मारे फूल उठा था।

सब सुनकर चामव्वे ने कहा, "आपको पसन्द आया, हमारे लिए इतना ही काफी है। कल सिहासन पर बैठनेवाले तो आप ही है। आपकी ही बात का मूल्य अधिक है। अन्य लोगो के विचारो से हमे क्या मतलब? आपका भाई तो अभी अनजान बच्चा है। छोटे बच्चे ने कुछ कहा भी तो उसपर हमे असमजस क्यो हो?"

बात यही रुक गयी। बातचीत के लिए कोई दूसरा विषय नही था। इसलिए

राजकुमार बल्लाल वहाँ से चल पडा। चामव्वा जानती थी कि वह कहाँ जायेगा। बल्लाल का मत था कि पद्मला बातचीत करने मे बहुत होशियार है। उसके साथ बात करते रहे तो उसे समय का ख्याल ही नही होता था। उसके बैठने का ढग, बात करते समय की नखरेबाजी, उन आँखो से दृष्टिपात करने की वह रीति, मन को आकर्षित करनेवाली उसकी चाल, आदि उसे उसकी बातो से भी अधिक आकर्षित करती थी। परन्तु उसे यह नही सूझता था कि वह उसका बन्दी बन गया है। बातचीत मे चामला भी इनके साथ कभी-कभी शामिल होती थी। चामव्वा को इसपर कोई एतराज भी नही था। युवरानी एचलदेवी और बिट्टिदेव के दोरसमुद्र पहुँचने पर उसके प्रयत्न इतने ही के लिए हो रहे थे कि चामला और बिट्टिदेव मे स्नेह बढे। उसके इन प्रयत्नो का कोई अभीष्ट फल अभी तक मिला न था। वर्तमान प्रसग का उपयोग अब उसने इस कार्य की सिद्धि के लिए करने की सोची। चामव्वा ने इस विषय को दृष्टि मे रखकर चामला को आवश्यक जानकारी दी। चामला सचमुच होशियार थी। वह कई बातो मे पद्मला से ज्यादा होशियार भी थी। उसने माँ की सब बाते सुनी और उसके अनुसार करने की अपनी सम्मति भी दी। परन्तु उसे ऐसा क्यो करना चाहिए, और उससे क्या फल मिलेगा, सो वह समझ नही सकी थी। इसलिए करना चाहिए कि माँ कहती है, इतना ही उसका मन्तव्य था। इस सबके पीछे माँ का कुछ लक्ष्य है, यह सूझ-बूझ उसे नही थी। माँ चामव्वे ने भी उसे नही बताया था। उसके मत मे यह न बताना ही ठीक था। उसका विचार था कि इन बच्चो मे आपसी परिचय-स्नेह आदि बढे तो और सारी बाते सुगम हो जायेंगी।

माँ की आज्ञा के अनुसार चामला बिट्टिदेव से मिलने गयी। वह पिछले दिन रेविमय्या के साथ दूर तक सैर कर आया था, और उनमे विचार-विनिमय भी हो चुका था। फिर भी उसका दिल भारी ही रहा। चामला बिट्टिदेव से ऐसी स्थिति मे मिली तो "राजकुमार किसी चिन्ता मे मग्न मालूम पडते है। अच्छा, फिर कभी आऊँगी।" कहकर जाने को हुई।

बिट्टिदेव ने जाती हुई चामला को बुलाते हुए कहा, "कुछ नही, आओ चामला।"

वापस लौटती हुई चामला ने कहा, "मेरे आने से आपको कोई बाधा तो नही हुई?"

"कोई बाधा नही। आओ बैठो।" कहकर पलग पर अपने पास ही बैठने को कहा। वह भी निस्सकोच भाव से पास जाकर बैठ गयी। उसने इस बात की प्रतीक्षा की कि उसके आने का कारण वे स्वय पूछे। वह थोडी देर हाथ मलती हुई सिर झुकाकर बैठी रही। बिट्टिदेव को लगा कि वह सकोचवश चुप बैठी है। उसके कन्धे पर हाथ रख बिट्टिदेव ने पूछा, "क्यो चामला, तुमने कहा कि मुझे देखने

आयी हो, अब पत्थर बनी बैठी हो।"

"देखना तो हो गया," कहती हुई मुँह उठाकर एक तरह का नटखटपन दिखाने लगी।

"मतलब यह कि जिस काम से आयी वह पूरा हो गया, यही न ?"

"मैंने तो ऐसा कहा नहीं।"

"तो किस मतलब से मुझे देखने आयी ? बता सकोगी ?"

"महाराज की वर्षगाँठ "

"वह तो हो गयी।"

"मुझे भी मालूम है। उस दिन मैंने और मेरी दीदी ने नृत्य और गान प्रस्तुत किया था न।"

"मैंने भी देखा न।"

"वह मैं भी जानती हूँ न।"

"इसे बताने के लिए आने की आवश्यकता नहीं थी न ?"

"यह बात मैं नहीं जानती हूँ, ऐसा तो नहीं न ?"

"फिर तब ?"

"कह तो रही हूँ, बीच में ही बोल पड़े तो ?"

"जो कहना है उसे सीधी तरह कह दें तो "

"जरा गम्भीर होकर बैठे तब न ?"

'क्या कहा ?" प्रश्न कुछ कठोर ध्वनि में था।

चामला ने तुरन्त होंठ काटे और सिर झुका लिया। बिट्टिदेव ने क्षणभर सोचा। फिर गम्भीर मुद्रा में बैठ गया ऐसे जैसे कि महाराज सिंहासन पर बैठते हैं वीरासन लगाकर, शरीर को सीधा तानकर। कहा, "हाँ, गम्भीर होकर बैठा हूँ। अब कहो।"

चामला ने धीरे से सिर उठाकर कनखियों से देखा। उसके बैठने के ढंग को देख इसे हँसी आ गयी। हँसी को रोकने की बहुत कोशिश की पर नहीं रोक सकी। जोर से हँस पड़ी, लाचार थी। बिट्टिदेव भी साथ हँसने लगा। दोनों ने मिलकर ठहाका मारकर हँसना शुरू किया तो सारा अन्तःपुर गूँज उठा। युवरानी एचलदेवी गुसलखाने की ओर जा रही थी कि यह आवाज उनके कान में भी पड़ी। उन्होंने झाँककर देखा भी।

"ठीक, आप भी अच्छी नकल करते हैं।" चामला ने कहा।

"क्यों, मेरा बैठना गम्भीर नहीं था ?"

"उस हँसी से पूछिएगा।"

"अच्छा, जाने दो। महाराज की वर्षगाँठ के दिन तुम और तुम्हारी दीदी ने नाच-गान का प्रदर्शन किया। यह मुझे भी मालूम है। कहो।"

"मैं यही पूछने आयी कि वह कैसा था।"

चकित हो बिट्टिदेव ने उसकी ओर देखा। तुरन्त उसे भोजन के समय की वह घटना याद हो आयी। वह मौन हो रहा पर उसका चेहरा गम्भीर हो गया।

"क्यो, क्या हुआ ?"

"तुमको मालूम है न।"

"क्या ?" चामला ने उत्तर मे प्रश्न ही किया।

"तुम्हे कुछ भी मालूम नही ?"

"न, न।"

"तुम बडी मासूम बनती हो। कहती हो 'मालूम नही'। अप्पाजी ने तुम्हारी दीदी से कहा है और तुमसे उसने कहा है। इसीलिए तुम आयी हो।"

"दीदी ने कुछ नही कहा।"

"सचमुच ?"

"मेरी माँ की कसम।"

"न न, ऐसी छोटी-छोटी बातो पर माँ की कसम नही खानी चाहिए। अगर दीदी ने कुछ नही कहा तो किसी और ने कहा ?"

"किस विषय मे ?"

"यहाँ मेरे और अप्पाजी के बीच जो चर्चा हुई उसके बारे मे।"

"ऐसा है क्या ? चर्चा हुई थी ? किस बारे मे ? हमारे नाच-गान के बारे मे ?"

बिट्टिदेव चुप रहा। "रहने दो, सबको छोड मुझसे पूछने क्यो आयी ? मै कौन-सा बडा आदमी हूँ।"

"माँ ने पूछ आने को कहा, मैं आयी।" उसने सच-सच कह दिया।

बिट्टिदेव को कुछ बुरा लगा। हमारी आपसी बातचीत को दूसरे लोगो से क्यो कहना चाहिए था अप्पाजी को ? उसे कुछ भी अक्ल नही। चामव्वाजी ने और क्या-क्या कहला भेजा है, यह जान लेना चाहिए, यो सोचते हुए बिट्टिदेव ने पूछा, "ऐसी बात है, तुम्हारी माँ ने पूछने को भेजा है तुम्हे ?"

"हाँ।"

"क्या कह भेजा है ?"

"किस-किसने क्या-क्या कहा, यह जानने को मैं और दीदी ज्यादा उत्सुक थी। डरते-डरते मच पर आयी थी। यह प्रदर्शन हमने लोगो के सामने प्रथम बार किया इसलिए मन मे बडी उत्सुकता हुई।"

"यह तो सहज है।"

"परन्तु फिर भी सबने प्रशसा ही की।"

"हमारे भाई ने क्या कहा ?"

"कहा, बहुत अच्छा था।"

"तुमसे कहा ?"

"नही, दीदी से कहा।"

"ठीक ही है।"

"ऐसा हुआ कि दीदी ने ही पूछा उनसे कि छोटे अप्पाजी का इस विषय मे क्या मन्तव्य है। तब उन्होने कहा कि उनके अभिप्राय के बारे मे उन्ही से पूछो। इसलिए माँ ने मुझसे कहा कि 'चामु, छोटे अप्पाजी हेग्गडेजी की लडकी के गुरु के साथ दो-तीन पखवारे तक रहे। हेग्गडेजी की लडकी शान्तला बहुत ही अच्छा नृत्य करती है और गाना भी बहुत अच्छा गाती है। उसके गुरु के सिखाने-पढाने के विधि-विधान को देख-सुनने के अलावा वे कुछ दिन साथ रहने के कारण कई बातें जानते हैं जिन्हे हम नही जानते। तुम लोगो को सिखानेवाले उत्कल के हैं। उस लडकी को पढानेवाले यही के हैं। तुम्हारे और उनके गुरुओ के सिखाने की पद्धति मे कुछ भेद होगा। इससे बेहतर सीखने के लिए क्या करना चाहिए, इस बारे मे पूछो। वे छोटे होने पर भी बडो की तरह बहुत बुद्धिमान हैं। इसलिए उनके पास हो आओ। विद्या सीखनेवाले छात्रो को सहृदय विमर्शको की राय सुननी चाहिए। सुनने पर वह राय तत्काल अच्छी न लगने पर भी पीछे चलकर उससे अच्छा ही होता है। माँ ने यह सब समझाकर कहा, हो आओ। इसलिए मै आयी। मैने सच्ची और सीधी बात कही है। अब बताइये हमारा नृत्य-गान कैसा रहा।"

"ठीक ही था।"

"मतलब ? कहने के ढग से लगता है कि उतना अच्छा न लगा।"

"ऐसा नही। आपके अल्पकालीन शिक्षण को दृष्टि मे रखकर तो यही कहना पडेगा कि अच्छा ही है। वास्तव मे लगता यह है जैसे आप लोग हठ पकडकर अभ्यास कर रही है।"

"हमारे गुरुजी भी यही कहते है कि अच्छे जानकार से भी अच्छा सीखने की होड लगाकर परिश्रम से अभ्यास करने पर शीघ्र सीख सकते है।"

"सबका मत एक-सा नही रहता। अलग-अलग लोगो का अलग-अलग मत होता है।"

"इसके माने ?"

"मेरे गुरु अलग ढग से कहते है।"

"क्या आप नाट्य सीख रहे हैं।"

"मैंने विद्या के सम्बन्ध मे एक सामान्य बात कही है, चाहे वह नृत्य, गायन या साहित्य, कुछ भी हो। हमारे गुरुजी का कहना है कि जिस विद्या को सीखना चाहे उसे सीखकर ही रहे। इस या उस विद्या मे सम्पूर्ण पाण्डित्य अर्जन करूँगा,

इसके लिए सतत अभ्यास करूँगा, यह निश्चित लक्ष्य प्रत्येक विद्यार्थी का होना चाहिए। विद्या स्पर्धा नहीं। अगर तुम अपनी दीदी से अच्छा सीखने का हठ करके सीखने लगोगी तो उससे विद्या में पूर्णता आ सकेगी? नहीं, उससे इतना ही हो सकेगा कि पद्मला से चामला अच्छी निकल जायेगी। विद्या में पारंगत होना तभी साध्य है जब स्पर्धा न हो।"

चामला ध्यानपूर्वक सुनती रही। मेरे समान या मुझसे केवल दो अंगुल ऊँचे इस लड़के ने इतनी सब बातें कब और कैसे सीखीं? माँ का मुझे यहाँ भेजना अच्छा ही हुआ। राजकुमार का अभ्यासक्रम जानना मेरे लिए उपयोगी होगा।

"मुझे विद्या में निष्णात होना है।"

"ऐसा है, तो सीखते वक्त दीखनेवाली कमियों को तब का तभी सुधार लेना चाहिए नहीं तो वे ज्यों-की-त्यों रह जायेंगी।"

"सच है। हमारे नृत्य में ऐसी कमियों के बारे में किसी ने कुछ कहा नहीं।"

"प्रशंसा चाहिए थी, इसलिए कहा नहीं।"

"ऐसा तो हमने ज़ाहिर नहीं किया था।"

"तुमको शायद इस विषय का ज्ञान नहीं है। माता-पिता के अत्यधिक प्रेम के कारण हम बच्चों को बलिपशु बनना पड़ता है। इसलिए प्रशंसा, बहुत आदर, बहुत लाड़-प्यार मुझे पसन्द नहीं।"

"आप ऐसे स्वभाव के हैं, यह मुझे मालूम ही नहीं था।"

"तो तुम्हारे विचार में मैं कैसा हूँ?"

"मैंने समझा था कि आप अपने भाई के जैसे ही होंगे।"

"तो क्या तुम अपनी दीदी जैसी ही हो?"

"सो कैसे होगा?"

"तो यह भी कैसे होगा?"

"सो तो ठीक है। अब मुझे क्या सलाह देते हैं?"

"किस सन्दर्भ में?"

"सुधार के बारे में।"

"नृत्य कला का जाननेवालों के सामने नृत्य करके उन्हीं से उसके बारे में समझना चाहिए। गायन कला के बारे में भी वही करना चाहिए।"

"तब तक?"

"ऐसे ही।"

"आपके कहने के योग्य कुछ नहीं?"

"मुझे कई-कई बातें सूझ सकती हैं, पर वे अगर गलत हों तो?"

"अगर सही हों तो?"

"यह निर्णय कौन देगा?"

"मै। इसलिए आपको जो सूझा सो कहिए।"

"न न। मुझे क्यो ? बाद को आप मुझे बातूनी का पद देंगी।"

"मुझसे, मेरे बारे मे कहिए।" उसके कहने के ढग मे एक सौहार्द और आत्मीय भावना थी।

"यदि तुम दूसरो से कहोगी तो ?"

"नही, माँ की कसम।"

"फिर वही। मैंने पहले ही मना कर दिया था। हमारे गुरुजी ने एक बार कहा था कि किसी की कसम नही खानी चाहिए। उसमे भी माँ की कसम कभी नही। माँ को भी बच्चो की कसम कभी नही खानी चाहिए।"

"क्यो ?"

"हम जिस बात पर माँ की कसम खाते हैं, वह पूरी तरह निभ न सके तो वह कसम शाप बन जाती है और वह शाप माँ को लगता है। जिस माँ ने हमे जन्म दिया उसी की बुराई करे ?"

"मुझे मालूम नही था। मेरी माँ कभी-कभी ऐसी ही कसम खाया करती है। वही अभ्यास मुझे और दीदी को हो गया है, मेरी छोटी बहन को भी।"

"छोड दो। आइदा माँ की कसम कभी न खाना।"

"नही, अब कभी नही खाऊँगी।"

"हाँ, अब कहो, और किसी से नही कहोगी न ?"

"नही। सचमुच किसी से नही कहूँगी।"

"नृत्य मे भगिमा, मुद्रा, गति, भाव, सबका एक स्पष्ट अर्थ है। इनमे किसी की भी कमी हो तो कमी-ही-कमी लगती है और सम्पूर्ण नृत्य का प्रभाव ही कम हो जाता है।"

"हमारे नृत्य मे कौन अग गलत हुआ था ?"

"भाव की कमी थी। भावाभिव्यक्ति रस निष्पत्ति का प्रमुख साधन है। यदि इसकी कमी हो तो नृत्य यात्रिक-सा बन जाता है। वह सजीव नही रहता। भाव से ही नृत्य सजीव बनता है।"

"समझ मे नही आया। एक उदाहरण देकर समझाइये।"

"तुम दोनो ने कृष्ण-यशोदा का नृत्य किया न ?"

"हाँ।"

"तुम कृष्ण बनी थी, तुम्हारी दीदी यशोदा बनी थी न ?"

"हाँ।"

"गोपिकाओ ने माखन चोरी की शिकायत की थी, तुम्हे मालूम था। उस चोरी की परीक्षा करने तुम्हारी माँ आनेवाली थी, यह तुम जानती थी। लेकिन जब वह आयी तब तुम्हारा चेहरा तना-सा क्यो था ? अपनी करतूत का आभास

तक माँ को नही मिलने देने के लिए तुम्हे अपने सहज रूप मे रहना चाहिए था। फिर कृष्ण के मुँह मे ब्रह्माण्ड देखकर यशोदा के रूप मे तुम्हारी दीदी को आश्चर्य-युक्त दिग्भ्रम के भाव की अभिव्यक्ति करनी चाहिए थी जबकि खम्भे की तरह खडी रही उसने चेहरे पर कोई भाव प्रकट नही किया।"

"आपके कहने के बाद ठीक लगता है कि ऐसा होना चाहिए था। परन्तु हमारे गुरुजी ने इसे क्यो ठीक नही किया ?"

"सो मैं क्या जानूँ ? क्या कह सकता हूँ ? अनेक बार हम ही को पूछकर जान लेना पडता है।"

"और हमारा गाना कैसा रहा था ?"

"तुम्हारी दीदी की काँसे की-सी ध्वनि मे तुम्हारी मृदुल कोमल कण्ठ-ध्वनि लीन हो गयी। क्या तुम दोनो हमेशा साथ ही गाया करती हो ?"

"हाँ।"

"दोनो अलग-अलग अभ्यास करो तो अधिक जँचेगा। तुम्हारी दीदी को लय पर ज्यादा गौर करना चाहिए। गाते-गाते उनकी गति अचानक तेज हो जाती है।"

"मेरा ?"

"क्या कहूँ ? मुझे लगा ही नही कि मैने तुम्हारा गाना सुना। जब तुम अकेली गाओगी तभी कुछ कह सकूँगा कि मुझे कैसा लगा।"

"अभी गाऊँ ?" उसने उत्साह से पूछा। बिट्टिदेव पसोपेश मे पड गया। न कहूँ तो उसके उत्साह पर पानी फिर जायेगा, हाँ कहूँ तो यह गाना माँ के कानो मे भी पडेगा। इसी उधेडबुन मे उसने कहा, "श्रुति के लिए क्या करोगी ?"

"अरे, यहाँ तम्बूरा भी नही है ?"

"नही, वह सोसेऊर मे है।"

"वहाँ कौन सीखते हैं ?"

"हमारी माताजी।"

"तो और किसी दिन गाऊँगी।" चामला ने कहा।

"न भी आओ तो हर्ज नही। तुम अच्छी तरह सीखकर उसमे प्रवीण हो जाओ इतना ही बहुत है।"

"प्रवीण हो जाओ, यह कहने के लिए भी तो एक बार सुन लेना चाहिए न ?"

"हाँ।" उसे हँसी आ गयी। ठीक इसी वक्त रेविमय्या आया, युवरानीजी दोनो को नाश्ते पर बुला रही हैं।

युद्ध-शिविर मे मन्त्रणा हुई। जोगम और तिक्कम ने अपराध स्वीकार कर लिया था। जवानी के जोश मे वे स्त्रियो के मोह मे पडकर बात को प्रकट कर बैठे थे। यह बात भी प्रकट हो गयी कि इसके लिए वैरी ने स्त्रियो का उपयोग किया था। उन स्त्रियो ने इन लोगो के मन मे यह भावना पैदा कर दी थी कि वे युद्ध-शिविर के बाजार मे रहनेवाली है और चालुक्यो की प्रजा है। दोनो को इस बात का पता नही लग सका था कि वे चालुक्य राज्य मे बसे परमारो के गुप्तचरो के घराने की स्त्रियाँ है। वे यही समझते रहे कि ये स्त्रियाँ कर्नाटक की ही है और अपनी मातृभाषा की अपेक्षा देशभाषा मे ही ज्यादा प्रवीण है। कुल मिलाकर कह सकते है कि उन लोगो ने वासना के वश होकर युद्धक्षेत्र का रहस्य खोल दिया था। इसलिए उन दोनो को युद्ध-शिविर से निकालकर युद्ध की समाप्ति तक, और उन दो स्त्रियो को भी कडी निगरानी मे कैद रखने का निश्चय हुआ। उन स्त्रियो के पता लगाने के लिए जरूरी तजवीज भी की जाने लगी। उन स्त्रियो के मिलने पर उन चारो को सन्निधान के सामने प्रस्तुत करने की आज्ञा दी गयी। उन दोनो अश्वनायको के मातहत सैनिको पर कडी नजर रखने तथा कही कोई जरा-सी भी भूल-चूक हो तो उसकी खबर तुरन्त पहुँचाने को भी हुक्म दिया गया। जोगम और तिक्कम सैन्य शिविर से दूर, कहाँ ले जाये गये, इसका किसी को भी पता नही चला।

इधर शिविर मे तहकीकात करने के बाद कुल स्त्रियो मे से बडी रानी को भी मिलाकर तीन स्त्रियाँ लापता हो गयी है—यह समाचार मिला। बडी रानीजी के चले जाने की खबर केवल सन्निधान, एरेयग प्रभु, कुदमराय, और हिरिय चलिके-नायक को थी। वे दोनो बडी रानीजी की खास सेविकाएँ रही होगी और कुछ षड्यन्त्र रचकर बडी रानीजी को उडा ले जाने मे सहायक बनी रही होगी—आदि-आदि बाते शिविर मे होने लगी। लोग इस अफवाह को तरह-तरह का रग देकर फैलाते रहे, आसमान की ऊँचाई, समुद्र की गहराई और स्त्रियो का मन, जानना दु साध्य है, यह उक्ति हर जबान पर थी। केवल एरेयग प्रभु और विक्रमादित्य का विचार था व स्त्रियाँ भेद खुल जाने के कारण खिसक गयी होगी और शत्रुओ तक यह खबर पहुँचा चुकी होगी। इस विचार से उन्होने उन स्त्रियो का पता लगाने का प्रयत्न जोरो से चलाने तथा करहाट और कल्याण मे अपने गुप्तचरो को और भी चौकन्ना होकर काम करने तथा जिस किसी पर सन्देह हो उसे पकडकर बन्दी बनाने का निर्णय किया। एरेयग प्रभु ने कहा, "वह तो हमारे विश्वासपात्र हिरिय चलिकेनायक की अनमोल सलाह थी। उसके लौट आने तक हमे आगे नही बढना चाहिए। इस बीच धारानगर की हालत का पूर्ण विवरण जानकर हमारा गुप्तचर दल खबर दे सकेगा।" बलिपुर से प्राप्त घोडा अच्छा होने के कारण हिरिय चलिकेनायक बहुत जल्दी पहुँचा। बडी रानी के सुरक्षित स्थान पर सही-सलामत

पहुँचने की खबर सुनकर दोनों सन्तुष्ट हुए। अब एरेयंग इस उधेड़बुन से मुक्त हुआ कि चलिकेनायक पर अविश्वास न होने पर भी उनके साथ किसी और का न भेजा जाना शायद अनुचित था, रास्ते में हुई तकलीफ के वक्त या छद्मवेष में होने पर भी किसी को पता चल जाने पर क्या होगा?

हिरिय चलिकेनायक ने यात्रा का विवरण दिया। पहले एल्लम्भ पहाड़ जानेवाले यात्रियों की टोली साथ में रही, वहाँ से बैलहोंगल बाजार जानेवाले व्यापारियों का दल मिला। वहाँ गोकर्ण बनवासी जानेवाले तीर्थयात्रियों का दल मिल गया। फिर आनवट्टी जानेवाले बारानियों का साथ हो गया। आनवट्टी से बलिपुर तक का रास्ता पैदल ही तय किया गया।

एरेयंग प्रभु ने पूछा, "तुम बलिपुर में कितने दिन रहे?"

"सिर्फ तीन दिन।"

"बड़ी रानीजी को वहाँ ठीक लगा?"

"मेरे वापस लौटते समय उन्होंने कहा तो यही था।"

"हेग्गड़े और हेग्गड़ती को सारी बातें समझायी जो मैंने कही थीं?"

"सब, अक्षरशः, यद्यपि प्रभु के पत्र ने सब पहले ही समझा दिया था।"

"हाँ, क्योंकि कोई अनिरीक्षित व्यक्ति आये तो पूरी तहकीकात करके ही उन्हें अन्दर प्रवेश करने देना भी एक शिष्टाचार है। फिर उस पत्र में अपने कार्य की पूरी जिम्मेदारी समझा देने के मतलब से सारा ब्यौरा भी दिया गया था।"

हम लोग वहाँ पहुँचे तब हेग्गड़तीजी अपनी बच्ची के साथ बसदि के लिए निकल रही थीं। परन्तु उनका उस समय का व्यवहार आश्चर्यजनक था। वे बहुत सूक्ष्मग्राही हैं। कोई दूसरा होता तो तुरन्त यह नहीं समझ पाती कि ये ही बड़ी रानी हैं, और समझ जाने पर तो सहज रीति से आदर-गौरव की भावना दिखाये बिना रह ही नहीं सकती थी।

"यदि वे उस समय हमारे स्वागत में अधिक समय लगातीं तो इर्द-गिर्द के लोगों का ध्यान उस ओर आकर्षित होता। नवागतुकों के प्रति गौरव प्रदर्शित किया जाये तो दूसरों को कुतूहल होना स्वाभाविक है जो खतरे से खाली नहीं। उन्हें हेग्गड़ेजी ने इन सब विषयों में अच्छा शिक्षण दिया है।"

"हेग्गड़ेजी की बेटी कैसी है?"

"ऐसे बच्चे बहुत कम होते हैं, प्रभुजी। वह अपने अध्ययन में सदा मग्न रहती है। अनावश्यक बात नहीं करती। आम तौर पर बच्चे आगतुकों की ओर आशा-भरी दृष्टि से देखा करते हैं न, अतिथि लोग बच्चेवालों के घर साधारणतया खाली हाथ नहीं जाया करते न? परन्तु उस बच्ची ने हमारी तरफ एक बार भी न कुतूहल-भरी दृष्टि से देखा न आशा की दृष्टि से। हेग्गड़तीजी ने जब हमें देखा और दो-चार क्षण खड़ी हो हमसे बातचीत की तब भी वह हमसे दूर, चार

कदम आगे खडी रही और माँ के साथ ही चली गयी।"

"तुम्हारी युवरानीजी को वह लडकी बहुत पसन्द है।"

"उस लडकी के गुण ही ऐसे है कि कोई भी उसे पसन्द करेगा।"

"तुम्हे भी उसने पागल बना दिया ?"

"मतलब, उसने किसी और को भी पागल बना दिया है ?"

"यह तो हम नही जानते । हमारा खास नौकर रेविमय्या है न, हेग्गडती की लडकी का नाम उसके कान मे पड जाये तो ऐसा उद्वेलित हो उठता है जैसा चन्द्रमा को देख समुद्र।"

"हर किसी को ऐसा ही लगेगा। उससे मिलने का मन हुआ यद्यपि छद्म-वेष मे व्यक्ति किसी के साथ उतनी आत्मीयता से व्यवहार नही कर पाता। मैं उससे इसलिए भी दूर ही रहा क्योकि हेग्गडतीजी बडी रानी के बारे मे वास्तविक बात अपनी बेटी को भी बतायेगी ही नही।"

"ठीक, बडी रानीजी ने और क्या कहा ?"

"इतना ही कि सन्निधान और प्रभु से मिलने के बाद आगे के कार्यक्रम के बारे मे, अगर सम्भव हो तो सूचित करने के लिए कह देना।"

"ठीक है। समय पर बतायेगे।" एरेयग प्रभु ने उठते हुए कहा, "हाँ, नायक, हम तुम्हारे आने की प्रतीक्षा मे रहे। कल ही हमारी सेना धारानगर की तरफ रवाना होगी। सन्निधान की आज्ञा है कि सेना और हाकिमो के साथ युद्ध-शिविर के बाजार की कोई स्त्री नही जाये सबको वापस भेज दिया जाये। सेना का विभाजन कैसा हो और कहाँ भेजा जाय इस पर कल विचार करने के लिए सभा बुलानी है। उसमे हमारे शिविर पर दण्डनायक, घुडसवार सेनानायक, पटवारी और नायक बुलाये जाएँ। सबको खबर दे दे। अब सन्निधान की आज्ञा हो तो हम चले।"

"अच्छा, एरेयग प्रभुजी, ऐसी व्यवस्था हो कि हम भी आपके साथ रहे।"

"सन्निधान की सुरक्षा-व्यवस्था की जिम्मेदारी हम पर है।" कहते हुए प्रभु एरेयग ने कदम बढाये। हिरिय चलिकेनायक ने दौडकर परदा हटाया और एरेयग प्रभु के बाहर निकलने के बाद खुद बाहर आया।

चामला ने अपने और बिट्टिदेव के बीच जो बातचीत हुई थी, वह अपनी माँ को ज्यो-की-त्यो सुना दी। उसने सारी बातें बडे ध्यान से सुनी और बेटी चामला को

अपने बाहुओ मे कस लिया।

"बेटी तुम बहुत होशियार हो, आखिर मेरी ही बेटी हो न ?" बेटी की प्रशसा के बहाने वह अपनी प्रशसा आप करने लगी। खासकर इसलिए कि युवरानी ने अपने बेटे के साथ बेटी चामला को भी उपाहार पर बुलवाया। इसका मतलब यह हुआ दॉव ढग से पडा है और आशा है, गोटी चलने लगेगी। अब इसे पूरी तरह सफल बनाना ही होगा। चाहे अब मुझे अपनी शक्ति का ही प्रयोग क्यो न करना पडे। उसने बच्ची का मुँह दोनो हाथो से अपनी ओर करके पूछा, "तुम उनसे शादी करोगी बेटी ?"

बेटी चामला ने दूर हटकर कहा, "जाओ माँ, तुम हर वक्त मेरी शादी-शादी कहती रहती हो जबकि अभी दीदी की भी शादी होनी है।"

"तुमने क्या समझा, शादी की बात कहने ही तुरन्त शादी हो ही जायेगी ? मैंने तो सिर्फ यह पूछा है कि तुम उसे चाहती हो या नही।"

चामला माँ की तरफ कनखियो से देखती हुई कुछ लजाकर रह गयी। वह बेटी को फिर आलिगन मे कस उसका चुम्बन लेने लगी कि पद्मला और बल्लाल के हँसते हुए उधर ही आने की आहट सुन पडी। इन लोगो को देख उनकी हँसी रुकी। बेटी को दूर हटाकर वह उठ खडी हुई और बोली, "आइए राजकुमार, बैठिए। चामू देकव्वा से कहो कि राजकुमार और पद्मला के लिए नाश्ता यही लाकर दे।"

कुमार बल्लाल ने कहा, "नही, मै चलूंगा। माँ मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। मत जाओ, चामला।"

"माँ ने जो कहा, सो ठीक है। युवरानीजी के साथ छोटे अप्पाजी और मैंने अभी-अभी नाश्ता किया है।" चामला ने कह दिया।

बल्लाल कुमार को विश्वास न हुआ, "झूठ बात नही कहनी चाहिए।"

"यदि सच हो तो ?"

"झूठ ?"

"सच हो तो शर्त क्या रही ?"

"शत ? तुम ही कहा क्या होगी ?"

"दीदी के साथ अपने हिस्से का नाश्ता तो लेना ही होगा, मेर हिस्से का भी लेना हागा क्योकि वहाँ आपके हिस्से का मैने खा लिया है।" उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही चामला चली गयी, चामव्वा भी।

"पद्मा, तुम्हारी बहन ने जो कहा क्या वह सच है ?"

"ऐसी छोटी बात पर कौन झूठ बोलेगा ?"

"तो क्या बडी पर झूठ बोला जा सकता है ?"

"मेरी माँ कभी-कभी कहा करती है कि झूठ बोलने पर काम बनता हो तो झूठ

बोला भी जा सकता है।"

"मेरी और तुम्हारी माँ मे बहुत अन्तर है।"

"आपकी दृष्टि मे कौन सही है ?"

"मेरी माँ की नीति आदर्श नीति है। तुम्हारी माँ की नीति समयानुकूल है। एक तरह से उसे भी सही कह सकते है।"

जब जिसकी माँ की नीति को युवरानीजी की नीति से भिन्न होने पर भी खुद राजकुमार सही मानते हों उस बेटी को खुशी ही होनी चाहिए, वह बल्लाल की तरफ देखने लगी। अचानक रुकी हँसी एकदम फिर फूट निकली। बल्लाल को सन्तुष्ट करने के लिए यह आवश्यक था। वह भी मुसकराया। उस मुसकराहट को दबाकर उसके मन मे अचानक एक सन्देह उठ खड़ा हुआ, उसकी भौहे चढ गयी।

"क्यो ? क्या हुआ ?" पद्मला से पूछे बिना न रहा गया।

"पता नही क्यो मेरे मन को तुम्हारी बहन की बात पर विश्वास नही हो रहा है। उसने मजाक मे कहा होगा, लगता है।"

"ऐसा लगने का कारण ?"

"कुछ विषयो का कारण बताया नही जा सकता। मनोभावो मे अन्तर रहता है। इस अन्तर के रोज के अनुभव से लगता है कि इस तरह होना सम्भव नही।"

"मनोभावो मे अन्तर ? किस तरह का ?"

"स्वभाव और विचारो मे अन्तर।"

"किस-किस मे देखा यह अन्तर आपने ?"

"किस-किसमे ? मेरे और मेरे भाई मे अन्तर है। इसीलिए माँ के साथ नाश्ता करते समय वह भी साथ रहा, इस बात पर मुझे यकीन नही होता।"

"क्यो ?"

"जिसे वह चाहता नही, उसके साथ वह घुलता-मिलता ही नही।"

"तो क्या चामला को वह नही चाहता ?"

"ऐसा तो मैं नही कह सकता क्योंकि अभी वह छोटा और नादान है, यद्यपि उसे उस हेग्गडती की बेटी को छोड़कर दुनिया मे और कोई नही चाहिए।"

"इतना क्यो ?"

"वह समझता है कि वह सरस्वती का ही अवतार है, बुद्धिमानो से भी अधिक बुद्धिमती है।"

"हाँ होगी, कौन मना करता है ? लेकिन इससे चामला को पसन्द न करने का क्या सम्बन्ध है ?"

"कहता है कि तुम लोग कुछ नहीं जानती हो।"

"ऐसा क्या ?" पद्मला के मन मे कुछ असन्तोष की भावना आयी।

"मेरे और उसके बीच इस पर बहुत चर्चा हुई है कि तुम लोगो के नृत्य में

भाव ही नही था।"

रसोइन देकव्वा के साथ उसी वक्त वहाँ पहुँची चामला ने बल्लाल की यह बात सुन ली। फिर भी नाश्ता करते समय इसकी चर्चा न करने के उद्देश्य से वह चुप रही। पद्मला और बल्लाल ने नाश्ता शुरू किया। बल्लाल का थाल खाली होते ही चामला ने दूसरा थाल उसके सामने पेश किया।

बल्लाल ने कहा, "मुझसे नही हो सकेगा।"

"आप ऐसे मना करेगे तो मानेगा कौन ? अब चुपचाप इसे खा लीजिए, नही तो इस भूल के लिए दुगुना खाना पडेगा।"

"मैंने क्या भूल की ?"

'पहले इसे खा लीजिए, बाद मे बताऊँगी। पहले बता देते तो और दो थाल लेती आती।"

"नही, अब इतना खा लूँ तो बस है।" बल्लाल ने किसी तरह खा लिया, बोला "हाँ, खा लिया, अब कहो।"

"आपके भाई ने जो बाते कही, उन्हे घुमा-फिराकर अपना ही अर्थ देकर, आप दीदी से कह रहे हैं।"

' घुमा-फिराकर क्यो कहेगे ?" पद्मला ने कहा।

"अपने को सही बतलाने के लिए। अपने को अच्छा कहलाने के लिए!" चामला की बात जरा कठोर थी।

"वे तो अच्छे हैं ही इसमे दिखाने की जरूरत क्या है ?"

"क्या उनसे ज्यादा उनके भाई के बारे मे मालूम है तुम्हे ?"

"हाँ।"

"कैसे ?"

"कैसे क्या ? उन्होने दिल खोलकर बात की और जो भी कहा सो हमारी ही भलाई के लिए कहा।"

"वह बडा बृहस्पति है।" बल्लाल के आत्माभिमान को कुछ धक्का-सा लगा।

"आपने कहा, बहुत अच्छा था। क्यो ऐसा कहा ? आपको अच्छा क्यो लगा ? बताइये तो।"

"जब तुम दोनो राधा-कृष्ण बनकर आयी तो लगा साक्षात् राधा और कृष्ण ही उतरे हैं।"

"अर्थात् सज-धज इतनी अच्छी थी। है न ?"

"हाँ।"

"आपने जो देखा वह वेषभूषा थी। नृत्य नही था।"

"उन्होंने वेषभूषा के साथ नृत्य भी देखा। उसमे कमियाँ भी देखीं जो बिना ठीक किये रह जायें तो बाद मे ठीक नही की जा सकती। और स्पष्टतया गलती

क्या और कहाँ थी यह भी उन्होंने बताया। यदि हम उनकी सूचना के अनुसार अभ्यास कर तो हम उस विद्या को अच्छी तरह सीख सकती हैं।

अच्छी बात है अनुसरण करो कौन मना करता है। पद्मला ने कहा।

उ हाने हम दोना के हित के ही लिए तो कहा।

अच्छा तुम वैसा ही करो। हमारे गुरुजी ने तो कुछ भी कमी नही बतायी बल्कि कहा कि एसे शिष्य उत्कल देश मे मिले होते तो क्या-क्या नही कर सकते थे। वहाँ तीन साल मे जितना सिखाया जा सकता है उतना यहाँ छह महीनो में सिखा दिया है। पद्मला ने गुरु की राय बतायी।

इसीलिए जितना वास्तव म सिखाना चाहिए उतना वे सिखा नही रहे हैं ऐसा लगता है। चामला ने कहा।

यही पर्याप्त है। हमे तो कही देवदासी बनकर हाव भाव विलास के साथ रथ के आगे या मन्दिर की नाटयशाला मे नाचना तो है नही। जितना हमने सीखा है उतना ही हमे काफी है।

यह ठीक बात है। बल्लाल ने हामी भरी।

ठीक है जाने दीजिए अपनी नाक सीधी रखने के लिए बात करते जाने से कोई फायदा नहा। कहती हुई चामला चली गयी।

दूसरे दिन से उस उत्कल के नाटयाचार्य को केवल चामला को सिखाना प[illegible] पद्मला ने जो भाव प्रकट किये थे उनपर चामव्वा की पूण सम्मति रही क्यो[illegible] वह मानती थी कि एक-न एक दिन महारानी बननेवाली उसकी बेटियो को [illegible]गो के सामने नाचने की जरूरत नही। फिर भी वह चामला की बात से [illegible] थी क्योकि उसकी कल्पना थी कि चामला यदि बिट्टिदेव की सलाह के अनुसार [illegible] तो उन दोनो मे भाव सामजस्य होकर दोनो के मन जुड जायेंगे। अच्छी तरह से विद्या का अध्ययन करने का मतलब यह तो नही कि उसे सार्वजनिको के सामने प्रदर्शन करना है। यह भी उसके लिए एक समाधान का विषय था।

इस प्रासंगिक घटना के कारण पद्मला और बल्लाल कुमार के बीच घनिष्ठता बढी। साथ ही चामला और बिट्टिदेव के बीच मे स्नेह भी विकसित हुआ। यह चामव्वा के लिए एक सन्तोषजनक बात थी जो मन ही-मन लड्डू खा रही थी।

परन्तु युवरानी एचलदेवी के मन मे कुछ असन्तोष होने लगा। बिट्टिदेव को अकेला पाकर उसने कहा देखो दोरसमुद्र मे आने के बाद तुमने अपने अभ्यास का समय कम कर दिया है।

नही तो माँ।

मैं देखती हूँ कि किसी न किसी बहाने चामव्वा की दूसरी बेटी रोज आ जाती है।

बेचारी! वह मेरा समय बहुत नष्ट नही करती।

"तुम्हे उसके साथ कदम मिलाकर नाचते और हाथ से मुद्रा दिखाते मैंने स्वय देखा है। क्या वह तेरी गुरु भी बन गयी ?"

"नही माँ। जब मैं हेग्गडेजी के साथ थोडे दिन रहा तब मैंने कुछ भावमुद्राएँ आदि सीखी थी। वही मैंने चामला को दिखायी क्योकि उसने अपनी नृत्य-कला मुझे दिखायी। वह होशियार है, सिखाने पर विषय को तुरन्त ग्रहण कर लेती है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उस गुरु की जानकारी ही अपर्याप्त है। यदि यह लडकी, शान्तला के गुरु के हाथ मे होती तो उसे वे उस विद्या मे पारगत बना देते।"

"तो तुम ही उसके गुरु हो। उसके माँ-बाप से कहकर उसे एक योग्य गुरु के पास शिक्षण के लिए भिजवाने की व्यवस्था भी करोगे न ?"

"विद्या सीखने की आकाक्षा जिसमे हो उसके लिए उचित व्यवस्था न करना सरस्वती के प्रति द्रोह है। गुरुवर्य ने यही कहा है। इसमे क्या गलती है, माँ ?"

"गुरु के कहने मे कोई गलती नही। मगर तुम्हारी इस अत्यन्त आसक्ति का कारण क्या है ?"

"वह लडकी निश्छल मन से आती है, जानने की इच्छा मे पूछती है, सीखने मे उसकी निष्ठा है, विषय को शीघ्र ग्रहण करती है। इसलिए मेरी भावना है कि वह विद्यावती बने।"

"क्या उसे जन्म देनेवाले माता-पिता यह नही जानते ?"

"यह मैं कैसे कहूँ, माँ ? जो वस्तु अपने पास हो, उसके लिए किसी को 'नाही' कहना पोय्सलवशियो के लिए अनुचित बात है। यही बात आप स्वय कई बार कहती है, माँ।"

'तो यह उदारता रही, प्रेम का प्रभाव नही। है न ?"

"इसे उदारता कहना बेहतर है, प्रेम कहने मे कुछ कमी हो सकती है। चामला आपकी कोख से जनमी होती और वह मेरे पास आकर इसी तरह प्रेम से अपनी अभिलाषा व्यक्त करती तो भी मैं उसे ऐसे ही प्रेम से समझाता, माँ !"

युवरानी एचलदेवी को इस उत्तर से सन्तोष हुआ। उनके मन का सन्देह पुत्र पुत्र पर प्रकट न हो इस दृष्टि से बात को आगे बढाती हुई उन्होने उसकी विद्या-शिक्षण के बारे मे कई सवाल किये। यह भी पूछा कि दण्डनायकजी जो सैनिक शिक्षा दे रहे थे उसकी प्रगति कैसी है किन्तु इस चर्चा मे उन्हे मालूम हुआ कि उनका बडा बेटा सैनिक-शिक्षण मे भी पिछडा ही रह गया है। उन्होने पूछा, "वह ऐसा क्यो हो गया ?"

"भैया का शरीर सैनिक-शिक्षण के परिश्रम को सह नही सकता, माँ। इससे जो थकावट होती है उससे वह डर जाता है और दूर भागता है। वह दुर्बल है तो क्या करे ?"

"परन्तु भविष्य मे वही तो पोय्सल राज्य का राजा होगा। ऐसे पिता का पुत्र होकर···"

"मै हूँ न, माँ।"

"उससे क्या ?"

"भैया की शारीरिक दुर्बलता स्वभाव से ही है। जैसे महाराज के राजधानी में रहने पर भी सब राजकार्य अपनी बुद्धि, शक्ति और बाहुबल से युवराज चला रहे हैं वैसे ही भैया महाराज बनकर आराम से रहेगे और मैं उसका दायाँ हाथ बनकर उसके सारे कार्य का निर्वहण करता रहूँगा।"

"दुर्बल राजा के कान भरनेवाले स्वार्थी अनेक रहते हैं, बेटा।"

"मेरे सहोदर भाई, मेरी परवाह किये बिना या मुझसे कहे बिना, दूसरो की बातो मे नही आयेंगे, माँ। आप और युवराज जैसे मेरे लिए हैं वैसे भैया के लिए भी, आप ही का रक्त हम दोनो मे है। इस राज्य की रक्षा के लिए मेरा समस्त जीवन समर्पित है, माँ।"

युवरानी एचलदेवी ने आनन्द से गद्गद हो बेटे को अपनी छाती से लगा लिया और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए आशीष दिया, "बेटा, तुम चिरजीवी होओ, तुम ही मेरे जीवन का सहारा हो, बेटा।"

माँ के इस आशीर्वाद ने बेटे को भाव-विह्वल कर दिया।

श्रीदेवी नामधारिणी बडी रानी चन्दलदेवी के पास स्वय चालुक्य-चक्रवर्ती शक-पुरुष विक्रमादित्य का लिखा एक पत्र पहुँचाया गया। लिखा गया था कि सेना धारापुर की ओर रवाना हुई है और वे अपना परिचय किसी को न देकर गुप्त रूप से रहे। युद्ध की गतिविधि का समयानुसार समाचार भेजा जाता रहेगा, समाचार न भेज सकने की हालत मे बिना घबडाये धीरज के साथ रहे। प्रभु एरेयग ने भी हेग्गडे को एक पत्र भेजा, "हिरिय चलिकेनायक द्वारा सब हाल मालूम हुआ, बडा सन्तोष हुआ, मन को शान्ति मिली। हेग्गडे के साले हेग्गड सिंगिमय्या के इस युद्ध मे प्रदर्शित शौर्य-साहस और युक्तियुक्त व्यवहार की सबने प्रशसा की है। उनकी सलाह लिये बिना दण्डनायक एक कदम भी आगे नही बढाते हैं। सेना की व्यूह-रचना मे तो यह सिंगिमय्या सिद्धहस्त है। उनके इस व्यूह-रचना क्रम ने शत्रुओ को बडे सकट मे डाल दिया और उनके लिए बडी पेचीदगी पैदा कर दी। अब आगे की सारी युद्ध-तैयारी, व्यूह-रचना, सैन्य-विभाजन आदि सब

कुछ उन्ही पर छोड दिया गया है। इसमे उन्हे केवल हमारी स्वीकृति लेनी होती है।" हेग्गडे सिगिमय्या की सराहना के साथ ही उन्होने हेग्गडती और शान्तला के बारे मे भी बडे आत्मीय भाव व्यक्त किये। अन्त मे, उन्होने शान्तला के अपनी अतिथि से स्नेह-सम्बन्ध के क्रमिक विकास के बारे मे जानकारी भी चाही। हेग्गडे मारसिगय्या को यह सूचना दी थी कि महाराजा और युवरानीजी को बता दिया जाये कि सब कुशल है और सब कार्यक्रम बडे ही सन्तोषजनक ढग से चल रहे हैं।

एरेयग प्रभु के आदेशानुसार हेग्गडे ने दो पत्र दोरसमुद्र भेजे। फिर वहाँ का समाचार उसी पत्रवाहक के हाथ भिजवा दिया।

तब वह बलिपुर मे बडी रानी चन्दलदेवी हेग्गडती माचिकब्बे की ननद श्रीदेवी के नाम के रूप मे परिचित हो चुकी थी। उसके लिए इस तरह का जीवन नया था। वहाँ हर वक्त नौकर-चाकर हाजिर रहते, यहाँ उसे कुछ-न-कुछ काम खुद करना पडता। बसदि के लिए माचिकब्बे के साथ थाल-फूल लेकर पैदल ही जाना होता था। सरल-जीवी माचिकब्बे से वह बहुत हिल-मिलकर रहने लगी। वहाँ उसे बहुत अच्छा लग रहा था। हेग्गडती के व्यवहार से बडी रानी को यह अच्छी तरह स्पष्ट हो चुका था कि उनके मायके और ससुराल के लोगो मे पोय्सल-राज्य-निष्ठा बहुत गहरी है। इस सबसे अधिक, उस इकलौती बेटी को अत्यधिक प्यार से बिगाडे बिना एक आदर्श-जीवी बनाने के लिए की गयी शिक्षण-व्यवस्था से उसे बहुत खुशी हुई। वह सोचा करती कि लोकोत्तर सुन्दरी के नाम मे ख्यात अगर उसके माता-पिता इस तरह से शिक्षित करते तो यो वेष बदलकर दूसरो के घर रहने की स्थिति शायद नही आती।

आरम्भ मे एक दिन शान्तला को घोडे पर सवारी करने के लिए सन्नद्ध देख हेग्गडती से उसने नव-निश्चित सम्बोधन 'भाभी' के साथ पूछा, "भाभी, बेटी को नाचना-गाना सिखाना तो सही है, पर यह अश्वारोहण क्यो ?"

"हाँ श्रीदेवी, मुझे भी ऐसा ही लगता है। उसे अश्वारोहण की क्या आवश्यकता शायद नही है। मगर उसके पिता उसकी किसी भी इच्छा को टालते नही है, कहते है, 'ईश्वर ने उसे प्रेरणा दी है, उस प्रेरणा से इनकार करनेवाले हम कौन होते है ?' राजधानी मे रहते वक्त वह इस विषय मे निष्णात घुडसवारो से प्रशस्ति पा चुकी है। जब हम वहाँ रहे तब हमारे युवराज के द्वितीय पुत्र और इसमे प्रतिदिन स्पर्धा हुआ करती थी। जबसे इस युद्ध की बात चली तब से वह तलवार चलाने और धनुर्विद्या सीखने की बात कर रही है। किन्तु यहाँ यह विद्या सिखाने योग्य गुरु नही है, और, इस दृष्टि से वह अभी छोटी भी है, इसलिए उसके पिता ने उसे एक दीवार के पास खडी करके उससे एक बालिश्त ऊँची एक रेखा खीचकर आश्वस्त किया है कि जब वह उतनी ऊँची हो जायेगी तब उसे तीर-तलवार चलाना सिखाने की व्यवस्था होगी। अब वह रोज उस लकीर के पास

खड़ी होकर अपने को नापती है।"

हेग्गडती उम्र मे चन्दलदेवी से कुछ बडी थी। महारानी को अब यहाँ एक-वचन का ही प्रयोग होता था। अब वह शान्तला की फूफी थी। नृत्य-सगीत के पाठ मे वह भी उसके साथ रहना चाहती थी, परन्तु स्थिति प्रनिकूल थी, इसलिए वह बाद मे फूफी को सीखे हुए पाठ का प्रदर्शन करके दिखाती। एक दिन उसका नया गाना सुनकर चन्दलदेवी बहुत ही खुश हुई, अपने आनन्द के प्रतीक के रूप मे हाथ से सोने का कगन उतारकर उसे देने लगी।

शान्तला तुरन्त पीछे हटी, और चन्दलदेवी को एकटक देखने लगी, "क्यो अम्माजी, ऐसे क्यो देखती हो ? आओ, लो न ? खुश होकर जो दिया जाये उससे इनकार नही करना चाहिए।"

"क्या कही घर के ही लोग घर के लोगो को यों पुरस्कार देते हैं ? खुश होकर ऐसा पुरस्कार तो राजघरानेवाले दिया करते है, आप राजघराने की नही है न ?"

अचानक आयी हेग्गडती ने पूछा, "यह राजघराने की बात कैसे चली ? अम्माजी ने ठीक ही कहा है, श्रीदेवी, घरवाले घरवालो को ही पुरस्कार नही देते। और फिर, युवरानी ने खुश होकर जो पुरस्कार दिया था, इसने वह भी नही लिया था।" उसने सोमेऊर मे हुई घटना विस्तार से समझायी।

वह कगन चन्दलदेवी के हाथ मे ही रह गया। उसके अन्तरग मे शान्तला की बात बार-बार आने लगी, 'खुश होकर ऐसा पुरस्कार तो राजघरानेवाले दिया करते हैं, आप राजघराने की नही हैं न ?' उसने सोचा कि यह लडकी बहुत अच्छी तरह समझती है कि कहाँ किससे कैसा व्यवहार करना चाहिए। उसे यह समझते देर नही लगेगी कि वह श्रीदेवी नही है, बल्कि चालुक्यो की बडी रानी चन्दलदेवी है। इसलिए उसने सोचा कि इसके साथ बहुत होशियारी से बरतना होगा। अपनी भावनाओ को छिपाकर उसने हेग्गडती से कहा, "हाँ भाभी, तुम दोनो का कहना ठीक है। मै तो घर की ही हूँ। पुरस्कार न सही, प्रेम से एक बार चूम लूँ, यह तो हो सकता है न ?"

"वह सब तो छोटे बच्चो के लिए है।" शान्तला ने कहा।

"छोटे बच्चे, तुम बहुत बडी स्त्री हो ?" कहती हुई चन्दलदेवी शान्तला को पकडने के लिए उठी तो वह वहाँ से भाग गयी।

"ऐसे तो वह मेरे ही हाथ नही लगती, तुम्हारे कैसे हाथ लगेगी, श्रीदेवी। तुम्हारी अभिलाषा ही है तो उसकी पूर्ति, जिन्होने तुम्हारा पाणिग्रहण किया है वे जब युद्धक्षेत्र से जयभेरी के नाद के साथ लौटेंगे तब सुगन्धित चमेली के हार इसे भी पहनाकर कर लेना।" हेग्गडती ने कहा। चन्दलदेवी माचिकब्बे को एक खास अन्दाज से देखती रही। इतने मे गालब्बे ने आकर खबर दी, "मालिक बुला रहे हैं।" और माचिकब्बे चली गयी।

चन्दलदेवी के मन मे तरह-तरह की चिन्ताएँ और विविध विचारो की तरगें उठ रही थी, माचिकब्बे समझती होगी कि मेरा पाणिग्रहण करनेवाला कोई साधारण सिपाही या सरदार अथवा कोई सेनानायक होगा। जब उनकी कीर्ति मेरे कानो मे गूँज रही थी, जब उनका रूप मेरी आँखो मे समा चुका था, जब वे मेरे सर्वांग मे व्याप चुके थे तभी मैं उनके गले मे स्वयवर माला डाल चुकी थी। परन्तु मेरे मन की अभिलाषा पूरी हुई उस स्वयवर मे जिसका फल है यह घोर युद्ध, यह हृदय-विदारक हत्याकाण्ड। मेरे सुन्दर रूप और राजवश मे जन्म के बावजूद मुझे वेष बदलकर दूसरो के घर रहना पड रहा है! परन्तु, हेग्गडती ने जो बात कही उसमे कितना बडा सत्य निहित है। स्त्री ही स्त्री का मन समझ सकती है। युद्ध के रक्त से ही अपनी प्यास बुझानेवाले इन पुरुषो मे कोई मधुर भावना आये भी तो कैसे? विरह का दुःख उनके पास फटके भी तो कैसे? ये तो हम हैं कि जब जयभेरी-निनाद के साथ वे लौटते हैं तब उन्हे जयमाला पहनाते ही सबकुछ भूल जाते है। हेग्गडती ने सम्भवत ठीक ही कहा कि विजयमाला पहनाने पर जो तृप्ति मिलेगी वह स्वयवर के समय वरमाला पहनाने पर हुए सन्तोष से भी अधिक आनन्ददायक हो सकती है। वह दिन शीघ्र आये, यही कामना है।

कुछ देर बाद शान्तला धीरे से चन्दलदेवी के कमरे मे आयी और उसे कुछ परेशान पाकर वहाँ से चुपचाप भाग गयी। सोचने लगी, फूफी मानसिक अशान्ति मिटाने के लिए हमारे यहाँ आकर रह रही है जिसका अर्थ है कि उन्हे सहज ही जो वात्सल्य मिलना चाहिए वह नही मिल पाया है। उसे रेविमय्या इसलिए यहाँ भेज गया होगा। वह कितना अच्छा है। वह मुझे अपनी बेटी के ही समान मानता और प्रेम करता है। प्रेम एकमुख होकर बहनेवाला प्रवाह नही, बल्कि सदा ही पारस्परिक सम्बन्ध का सापेक्ष होता है, गुरुजी ने ऐसा ही कहा था। रेविमय्या मेरा सगा-सम्बन्धी नही, फिर भी उसकी प्रीति ऐसी थी कि उसके प्रति मैंने भी अपनी प्रीति दिखायी। इससे उसे जितना आनन्द हुआ उतना ही आनन्द मेरी इस फूफी को भी मिले। इसी भाव से विभोर होकर उसने उसको चूम लिया।

इससे चन्दलदेवी एक दूसरी ही दुनिया मे जा पहुँची। शान्तला को अपनी गोद मे खीचकर बैठा लिया और उसे चूम-चूमकर आशीष देती हुई बोली, "चिरजीवी होओ, तुम्हारा भाग्य खूब-खूब चमके, बेटी।" उसकी आँखे अश्रुपूर्ण हो गयी।

यह देखकर शान्तला बोली, "उसे भी ऐसा ही हुआ था।" आँखें पोछती चन्दलदेवी ने पूछा, "किसे?"

"सोसेऊरु के रेविमय्या को।" शान्तला बोली।

"क्या हुआ था उसे?"

शान्तला ने रेविमय्या की रूप-रेखा का यथावत् वर्णन किया जो उसके दिल

मे उस समय तक स्थायी रूप से अंकित हो चुकी थी। फिर कहा, "फूफीजी, आपने भी वही किया न अब ?"

"हाँ बेटी, निश्छल प्रेम के लिए स्थान-मान की कोई शर्त नहीं होती।"

"हमारे गुरुजी ने कहा था कि कोई राजा हो या रक, वह सबसे पहले मानव है।"

"गुरु की यह बात पूर्णत: सत्य है, अम्मा। तुम्हारे गुरु इतने अच्छे हैं, इस बात का बोध मुझे आज हुआ। कोई राजा हो या रक, वह सबसे पहले मानव है, कितनी कीमती बात है, कितना अच्छा निदर्शन।"

"निदर्शन क्या है, फूफी, इसमे ?"

चन्दलदेवी तुरन्त कुछ उत्तर न दे सकी। कुछ देर बाद बोली, "वह रेविमय्या एक साधारण नौकर है तो भी उसकी मानवीयता कितनी ऊँची है। मानवीयता का इससे बढकर निदर्शन क्या हो सकता है। यह तो इस निदर्शन का एक पहलू है, आपने किसी राजा-महाराजा का निदर्शन नही दिया।"

"उसके लिए निदर्शन की क्या जरूरत है, वह भी तो मानव ही है।" चन्दलदेवी होठो पर जुबान फिराकर थूक सटकती हुई बोली।

"बात रेविमय्या और आपके बारे मे हो रही थी, रेविमय्या नौकर है, लेकिन आप राजरानी नही, फिर यह तुलना कैसी, मैं यही सोच रही हूँ।"

अम्माजी, इस प्रश्न का उत्तर चाहे जो हो, उससे इसमे सन्देह नही कि तुम बडी सूक्ष्म-बुद्धिवाली हो। अच्छा, तुमने राजाओ की बात उठायी है तो तुम्ही से एक बात पूछूँगी। तुम स्त्री हो, और तुम घुडसवारी सीख रही हो, फिर तीर-तलवार चलाना भी सीखने की अभिलाषा रखती हो। क्या यह सब सीखने को तुम्हारे गुरुजी ने कहा है ?" चन्दलदेवी ने कहा।

"न, न, वे क्यो कहेगे ?"

"फिर तुममे यह अभिलाषा कैसे पैदा हो गयी जबकि अभी तुम बच्ची ही हो ?"

"अभिलाषा बच्चो मे भी हो सकती है। लव-कुश बच्चे ही थे जिन्हे मुनिवर वाल्मीकि ने सब विद्याएँ सिखायी थी और जिन्होंने श्रीराम की सेना से युद्ध किया था।"

"यह कथा सुनकर तुम्हे प्रोत्साहन मिला हो सकता है। पर प्रश्न यह है कि वह सब सीखकर तुम क्या करोगी।"

"मैं युद्ध मे जाऊँगी। मैं लोगो की जान की और गौरव की रक्षा मे इस विद्या का उपयोग करूँगी।"

"स्त्रियो को युद्ध क्षेत्र मे, युद्ध करने के लिए ले ही कौन जायेगा ?"

"स्त्रियाँ युद्ध करने की इच्छा प्रकट करे और उन्हे युद्ध का शिक्षण दिया

जाये तो वे भी युद्ध मे ले जायी जाने लगेगी।"

"नही ले जायी जाने लगेगी क्योकि वे अबला है।"

"उनके अबला होने या न होने से क्या अन्तर पडता है ? क्या अकेली चामुडा ने हजार-हजार राक्षस नही मारे, महिषासुर की हत्या नही की ? अधर्म-अन्याय को रोकने के लिए देवी कामाक्षी राक्षसी नही बनी ?"

"अब्बा ! तुम्हे तो राजवश मे जन्म लेना चाहिए था, अम्माजी। तुम हेग्गडे के घर मे क्यो पैदा हो गयी ?"

"वह मैं क्या जानूँ ?"

"मैं फिर कहूँगी, तुम-जैसी को तो राजवश मे पैदा होना चाहिए था।"

"क्यो ?"

"तुम्हारी जैसी यदि रानी बने तो लोकोपकार के बहुत से कार्य अपने आप होने लगे।"

"क्या रानी हुए बिना लोकोपकार सम्भव नही ?"

"है। परन्तु एक रानी के माध्यम से वह उपकार बृहत्तर होगा।"

"सो कैसे ?"

"देखो, रानी का बडा प्रभाव होता है। राजा के ऊपर भी वह अपना प्रभाव डाल सकती है, उसके नेक रास्ते पर चलने मे सहायक हो सकती है।"

"फूफी, यह ज्ञान आपको प्राप्त कैसे हुआ ?"

उसके इस प्रश्न पर वह फिर असमजस मे पड गयी, परन्तु उससे उभरने का मार्ग इस बार उसने कुछ और चुना, "चालुक्यो के राजमहल मे रहने से, उनकी बडी रानी चन्दलदेवी की निजी सेवा मे रहने से मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है।"

"माँ ने या पिताजी ने तो कभी नही बताया कि हमारे अत्यन्त निकट बन्धु चालुक्य राजाओ के घर मे भी हैं, जबकि हमारे सभी बन्धुगण पोय्सल राजाओ की ही सेवा मे हैं।"

"बात यह है कि मेरे यहाँ आने के बाद ही भाई और भाभी को मेरा परिचय मिला। इससे पूर्व उन्हे इस बात का स्मरण ही नही रहा। तुम्हारे परदादा और मेरे दादा भाई-भाई थे। मेरे दादा कल्याण मे जाकर बस गये। शायद इसलिए इधर से रिश्ते-नाते टूट गये होगे।"

"तो आपकी महारानीजी अब कल्याण मे है ?"

"न, न, वे रणक्षेत्र मे गयी थी, मै तो थी ही। एक रात वे वहाँ से अचानक गायब हो गयी। तब तुम्हारे युवराज ने मुझे यहाँ भेज दिया।"

"तो क्या बडी रानीजी वैरियो के हाथ पड गयी ?"

"शायद नही।"

"तो वे गयी कहाँ, और गयी क्यो ?"

"वह तो एक अबूझ रहस्य है।"

"रानीजी युद्ध-विद्या में कुशल तो है न ?"

"न, न, उनके माता-पिता ने तो उन्हे फूल की तरह पाला-पोसा था। वे झुककर अपनी अंगिया तक नही उठा सकती, फिर युद्ध-विद्या कैसे सीख सकती थी ?"

"तो वे युद्ध-शिविर मे क्यो गयी ?"

"वह उनकी चपलता थी। मैं महारानी हूँ और चूँकि यह युद्ध मेरे कारण हो रहा है, इसलिए इसे मैं प्रत्यक्ष रहकर देखना चाहती हूँ, कहा और बैठ गयी हठ पकडकर। महाराज ने उन्हे बहुत समझाया, कहा उनके शिविर मे होने से अनेक अडचनें पैदा हो जायेंगी। जो अपनी रानी की ही रक्षा न कर सकेगा वह राज्य की रक्षा कैसे कर सकेंगे, उनके इस प्रश्न के उत्तर मे महाराज को उन्हे युद्ध-क्षेत्र मे ले ही जाना पडा। महारानी ने सोचा कुछ और हुआ कुछ और ही। इसीलिए तुम सबको कष्ट देने के लिए मुझे यहाँ आना पडा।"

"न, न, ऐसा न कहे। आप आयी, इससे हम सभी को बहुत खुशी हुई है। माँ कह रही थी कि कोई खोयी वस्तु पुन मिल गयी है, हमे इस बान्धव्य रूपी निधि की रक्षा करनी चाहिए और विशेषत तुम्हारे किसी व्यवहार से फूफी को कोई कष्ट नही होना चाहिए।"

"भाभी इतनी अच्छी है, यह बात मुझे पहले मालूम न थी वरना मेरे यहाँ ही आने का मुख्य कारण यह था कि तुम्हारे मामा, जो अब भी उस युद्ध-शिविर मे हैं, ने मुझे इस रिश्ते का ब्यौरा देकर यही आने को प्रेरित किया।"

"तो फूफीजी, मुझे कल्याण के राजा और रानी के बारे मे कुछ और बताइये।"

"बताऊँगी, अम्माजी, जरूर बताऊँगी।"

"मेरी फूफी बहुत अच्छी है" कहती हुई शान्तला उसके गाल का एक चुम्बन लेकर ऐसी भागी कि दहलीज से टकराकर गिर ही गयी होती अगर भोजन के लिए बुलाने आयी गालब्बे ने उसे पकड न लिया होता। भोजन के लिए जाती हुई चन्दलदेवी निश्चिन्त थी इस बात से कि शान्तला उसके वास्तविक परिचय से अनभिज्ञ है।

धारानगरी पर धावा बोलते समय एरेयग प्रभु के द्वारा रोके जाने पर भी विक्रमादित्य युद्धरग मे सबसे आगेवाली पंक्ति मे जाकर खडा हो गया। वास्तव

मे वह महावीर तो था ही, युद्ध-कला मे निष्णात भी था। उसके शौर्य-साहस की कथाएँ पास-पडोस के राज्यो मे भी प्रचलित हो गयी थी। इससे भी अधिक, उसने चालुक्य विक्रम नामक सवत् का आरम्भ भी किया था। इसकी इस सर्वतोमुखी ख्याति, और साहस से आकर्षित होकर ही शिलाहार राजकुमारी चन्दलदेवी ने उसके गले मे स्वयवर-माला डाली थी। इसी से अन्य राजाओ के मन मे ईर्ष्या के बीज अकुरित हुए थे। इस युद्ध मे प्रभु एरेयग ने स्वय सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली थी क्योकि उसका मत था कि विक्रमादित्य युद्धरग से सम्बन्धित किसी काम मे प्रत्यक्ष रूप से न लगे। लेकिन, युद्ध करने की चपलता भी मानव के अन्य चपल भावो-जैसी बुरी है, यह सिद्धान्त यहाँ सत्य सिद्ध हुआ।

उस दिन उसके अश्वराज पचकल्याणी को पता नही क्या हो गया कि वह एक जगह अडकर रह गया। विक्रमादित्य ने बहुत रगड लगायी पर वह टस-से-मस न हुआ। इस गडबडी मे शत्रु के दो तीर घोडे की आँख मे और पुट्ठे के पास लगे जिससे वह हिनहिनाकर गिर पडा, साथ ही विक्रमादित्य भी जिन्हे तत्काल शिविर मे पहुँचा दिया गया। उसकी बायी भुजा की हड्डी टूट गयी थी जिसकी शिविर के वैद्यो ने तुरन्त चिकित्सा की। उसे कम-से-कम दो माह के विश्राम की सलाह दी गयी।

उसी रात निर्णय किया गया कि महाराज को कल्याण भेजा जाये और उनकी रक्षा के लिए एक हजार सैनिको की एक टुकडी भी। महारानी को बलिपुर से कल्याण भेजने की विक्रमादित्य की सलाह पर एरेयग प्रभु ने कहा, "यह काम अब करना होता तो उन्हे बलिपुर भेजने की बात ही नही उठती थी। दूसरे, शत्रुओ मे यह बात फैली है कि जिनके कारण किया गया वे महारानी ही इस वक्त नही है। इसलिए शत्रु अब निराश हैं जिससे युद्ध मे वह जोश नही रह गया है। ऐसी हालत मे यदि शत्रु को यह मालूम हो जाये कि महारानीजी कल्याण मे है तो युद्ध की योजना ही बदल जायेगी। इसलिए, अब कल्याण मे रहनेवाले शत्रु-पक्ष के गुप्तचरो को जब तक निकाल न फेका जाये तब तक महारानीजी का वहाँ जाना ठीक नही।"

निर्णयानुसार विक्रमादित्य कल्याण पहुँच गया।

यहाँ युद्ध चला और एरेयग प्रभु विजयी हुए। उनकी सेना को धारानगर मे अपनी इच्छानुसार कार्य करने की अनुमति भी दी गयी किन्तु एक कडी आज्ञा थी कि बच्चो पर किसी तरह का अत्याचार या बलात्कार न हो। परन्तु कही से भी रसद और धन-सम्पत्ति बटोर लाने की मनाही नही थी क्योकि युद्ध की भरपाई और प्राणो पर खेलनेवाले योद्धाओ को तृप्त करने के लिए यह उनका कर्त्तव्य-जैसा था। सेना का काम-काज समाप्त होने पर वृद्धाओ, स्त्रियो, बच्चो तथा सभ्य नागरिको को बाहर भेजकर उस नगरी मे अग्निदेव की भूख मिटायी गयी।

परमार राजा, और काश्मीर के राजा हर्ष के सिवाय अन्य सभी प्रमुख शत्रु-योद्धा बन्दी हुए। निर्णय हुआ कि उन्हे कल्याण ले जाकर बडी रानीजी के सम्मुख प्रस्तुत किया जाये ताकि वे ही इन्हे जो दण्ड देना चाहे, दे। धारानगर से अपने बन्दियों को लेकर रवाना होने के पहले प्रभु एरेयग ने राजमहल की स्त्रियो और अन्य स्त्रियो को उनकी इच्छा के अनुसार सुरक्षित स्थान पर भेज देने की व्यवस्था कर दी।

चामव्वा की युक्ति से ही सही, एचलदेवी बेलुगोल गयी थी जहाँ उसने पति की विजय, रानी के गौरव की रक्षा और अपनी सुरक्षा के लिए प्रार्थना की। उस पर बाहुबली स्वामी ने ही अनुग्रह किया होगा।

युवरानी एचलदेवी की यह भावना दृढ हो चली कि कुमार बल्लाल और पद्मला के बढते हुए प्रेम को रोकना उनका अनिष्ट चाहनेवालो के लिए अब सम्भव नही। वे इस बात की जब तक परीक्षा लेती रहीं कि पोय्सल राज्य की भावी रानी, वह लडकी कैसी है। पूर्ण रूप से सन्तुष्ट न होने पर भी वह सन्तुष्ट रहने की चेष्टा करती रही। बिट्टि के पास आने-जाते रहने के कारण चामला के बारे मे अधिक समझने-जानने के अनेक अवसर प्राप्त होते रहे। बिट्टिदेव भी उसके विद्या के प्रति उत्साह और श्रद्धा के विषय मे जब-तब चर्चा करता था। एचलदेवी सोचा करती कि पद्मला के बदले चामला ही चामव्वा की पहली बेटी होती तो कितना अच्छा होता। किन्तु अब तो उसे इस स्थिति के साथ, लाचार होकर समझौता करना था।

चामव्वा का सन्तोष दिन-ब-दिन बढता जा रहा था। पद्मला की बात मानो पक्की हो गयी थी और चामला की बात भी करीब-करीब पक्की थी। वह सोचती कि चामला की बुद्धिमत्ता के कारण बिट्टि की ननु-नच नही चलेंगी। यद्यपि वह यह नही जानती थी कि बिट्टि चामला को किस भाव मे देखता है। वह तो बस, खुश हो रही थी। अलबत्ता उसे एक बात खल रही थी, वह यह कि उसने बल्लाल की-सी स्वतन्त्रता और मिलनसारिता प्रदर्शित नही की। यह दूसरी बात है कि चामला ने जो मिलनसारिता बिट्टिदेव के प्रति दिखायी थी, उसकी व्याख्या वह अपने ही दृष्टिकोण से कर लेती और उसी से फूलकर कुप्पा हो रही थी।

चामला का मन बिट्टिदेव के प्रति इतना निर्विकार था कि वह उसे विवाह करने तक की दृष्टि से न देखती। वह उसके प्रति आसक्त तो थी और वह भी उससे प्रेम करता था, परन्तु उस आसक्ति और उस प्रेम का लक्ष्य क्या है, यह उसकी समझ मे नही आया था और अब तो बिट्टिदेव चूँकि सैनिक शिक्षण पर विशेष ध्यान दे रहा था अत चामला को वह समय भी बहुत कम दे पाता था।

बल्लाल भी सैनिक-शिक्षण के लिए जाता, मगर न जाने के आक्षेप से बचने-

भर के लिए। इसलिए मारियाने दण्डनायक का वात्सल्य बिट्टि पर और भी अधिक बढने लगा। उसने महाराज और प्रधानजी के सामने बिट्टिदेव के बारे मे कहा, "वह तो सिंह का बच्चा है, उसकी धमनियो मे परिशुद्ध पोय्सलवशीय रक्त ज्यो-का-त्यो बह रहा है।" जब बल्लाल की बात भी आयी तो कहा, "वह भी तेज-बुद्धिवाला है, परन्तु शारीरिक दृष्टि मे जरा कमजोर है। वह भी क्या करे जब कमजोर है ही। युद्ध विद्या के लिए केवल श्रद्धा ही पर्याप्त नही, शारीरिक शक्ति भी आवश्यक है।" मरियाने उसे दामाद मान चुका था, इसलिए कुछ विशेष बखान उसके बारे मे नही किया। और प्रधान ने उनकी बातो को उतना ही महत्त्व दिया जितना वास्तव मे दिया जा सकता था।

यह सारा वृत्तान्त चामव्वा ने सुना तो उसने अपने पतिदेव के चातुर्य को सराहा। उसे वास्तव मे होनेवाले अपने दामाद की वीरता, लोकप्रियता और बुद्धि-कुशलता आदि बातो से अधिक प्रामुख्य इस बात का रहा कि वह भावी महाराज है। फिर भी वह चाहती थी कि उसका दामाद बलवान् और शक्तिशाली बने। इसलिए पद्मला द्वारा उसे च्यवनप्राश आदि पौष्टिक दवाइयाँ खिलवाती जो सपना देख रही थी कि बल्लाल कुमार के साथ विवाह हो जाये तो आगे के कार्यों को आसानी के साथ लेने की योजना अपने आप पूरी हो जायेगी। इन सब विचारो के कारण बलिपुर की हेग्गडती और उसकी बेटी उसके मन से दूर हो गयी थी। युवरानी एचलदेवी यह सबकुछ जानती थी अत वह हेग्गडती और शान्तला की बात स्वय तो नही ही उठाती, रेविमय्या से कहलवाकर उन्होंने बिट्टिदेव को भी होशियार कर दिया था। वह भी उधर की बात नही उठाता था। इसलिए चामव्वा निश्चिन्त हो गयी थी। इसी वजह से उसका भय और उनके प्रति असूया के भाव लुप्त हो गये थे। अब उसने किसी बात के लिए कोई युक्ति करने की कोशिश भी नही की।

बलिपुर मे शान्तला और श्रीदेवी के बीच आत्मीयता बढती गयी। शान्तला के आग्रह पर श्रीदेवी ने उसे चालुक्यो का सारा वृत्तान्त बताया। उसे बादामि के मूल चालुक्यो के विषय मे विशेष जानकारी न थी, परन्तु कल्याणी के चालुक्यो की बाद की पीढी के बारे मे उसे काफी अच्छा ज्ञान था। खासकर धारानगरी के इस हमले के मूल कारण का जिक्र करते हुए उसने बताया कि परमारो के राजा मुज के समय से अब तक चालुक्य चक्रवर्ती और परमार मुज के बीच एक-दो नही, सोलह-अठारह बार युद्ध हुए और उनमे चालुक्यो की विजय हुई। अन्त मे, पराजित परमार नरेश मुज के सभी विरुद छीनकर चालुक्य नरेश ने स्वय धारण कर लिये। मुज कारावास मे डाल दिया गया जहाँ उसे किसी से या किसी को उससे मिलने पर सख्त पाबन्दी थी। परन्तु कारावास के भीतर उसे सब सहूलियतें दी गयी थी।

"परन्तु यह भी सुनने मे आया कि परमार मुंज ने भी एक बार चालुक्य चक्रवर्ती को हराकर पिंजडे मे बन्द करके अपने शहर के बीच रखवाया था और उसे देखकर लोगों ने उसके सामने ही कहा कि "यह बडा अनागरिक राजा है, इसके राज्य मे न साहित्य है न संगीत, न कला है न संस्कृति" शान्तला ने टोका।

"यह सब तुम्हें कैसे मालूम हुआ, अम्माजी ?" श्रीदेवी ने पूछा।

"हमारे गुरुजी ने बताया था।"

तो फिर तुमने मुझसे ही क्यों पूछा उनसे क्यों नही ?"

"वे विषय संग्रह करते हैं और बताते है जबकि आप वही रहकर उन बातो को उनके मूल रूप मे जानती हैं इसलिए आपकी बाते स्वभावत अधिक विश्वसनीय होती है।"

"जितना मैंने प्रत्यक्ष देखा उतना तो निर्विवाद रूप से सही माना जा सकता है लेकिन कुछ तो मैंने भी दूसरो से ही जाना है जो संगृहीत विषय ही कहा जायेगा।"

"क्या वहाँ राजमहल मे इन सब बातों का संग्रह करके सुरक्षित नही रखा जाता है ?" शान्तला ने पूछा।

श्रीदेवी ने शान्तला को एकटक देखा, उसे कदाचित् ऐसे सवाल की उससे अपेक्षा नही थी, "पता नही, अम्माजी, यह बात मुझे विस्तार के साथ मालूम नही।"

"क्या, फूफीजी, आप बडी रानी चन्दलदेवीजी के साथ ही रही, फिर भी आपने पूछा नही।"

यो राजघराने की बातो को सीधे उन्हीं से पूछकर जानने की कोशिश कोई कर सकता है, अम्माजी ? गुप्त बातो को पूछने लगे तो हमपर से उनका विश्वास ही उठ जायेगा, हम बाहर निकाल दिये जायेंगे इसलिए इन बातो का तो जब-तब मौका देखकर संग्रह ही किया जा सकता है।"

"ऐसा है तो एक सरल व्यक्ति का तो राजमहल मे जीना ही मुश्किल है।"

"एक तरह से यह ठीक है।"

"फिर भी लोग राजघराने मे नौकरी करना क्यो चाहते हैं ?"

"इसके दो कारण हैं, राजघराने की नौकरी मे हैसियत बढ़ती है और जीविका की फिक्र नही रहती।"

"मतलब यह कि जीवन-भर निश्चिन्त रूप से खाने-पीने और धन-संग्रह के लिए लोग यह भी करते है, है न ?"

"हाँ, ऐसा न होतो वहाँ कौन रहना चाहेगा अम्माजी, वहाँ रहना तलवार की धार पर चलना है। किसी से कुछ कहो तो मुश्किल, न कहो तो मुश्किल। राजमहल की नौकरी सहज काम नहीं।"

"यह सत्य है। लेकिन आपकी बात और है, और, वह रेविमय्या भी आप ही के-जैसे है। युवरानीजी और युवराज को उसपर पूरा भरोसा है।"

"ऐसे लोग पोय्सल राज्य मे बहुत हैं, ऐसा लगता है। मुझे यहाँ छोड जाने के लिए जो नायक आया था उसने मार्ग मे मेरी इतनी अच्छी देखभाल की जितनी मेरे पिता भी नही कर सकते थे।"

"मैने यह भी सुना है कि हमारे युवराज भी अपने नौकरो-चाकरो को अपनी ही सन्तान के समान देखभाल करते हैं।"

"यह तुम्हे कैसे मालूम हुआ, अम्माजी ?"

"हम सब वहाँ गये थे और एक पखवारे से भी अधिक राजमहल मे ही रहे थे। तब वहाँ बहुत कुछ देखा था। अच्छा, यह बात रहने दीजिए। आगे क्या हुआ सो बताइये।"

"तुमने सच कहा, धारानगरी मे हमारे चक्रवर्ती का घोर अपमान किया गया, किन्तु बदले मे हम 'अनागारिक' लोगो ने अपने बन्दीगृह मे उमी राजा मुज के लिए भव्य व्यवस्था की थी। हमारे महाराज ने सोचा कि वे भी मेरे-जैसे मूर्धाभिषिक्त राजा हैं, उनका अपमान राजपद का ही अपमान होगा। कर्नाटक सस्कृति के अनुरूप उन्हे, बन्धन के चौखट मे भी राज-अतिथियो के-से गौरव के साथ महल मे रखा गया। इतना ही नही, चक्रवर्ती ने अपनी ही बहन को उस राजबन्दी के आतिथ्य के लिए नियुक्त किया। कन्नड साहित्य के उत्तम काव्यो को उसके सामने पढवाकर उसे साहित्य से परिचित कराया गया। राजकवि रन्न मे उसका परिचय कराया गया। उसे प्रत्यक्ष दिखाया गया कि हमारे कवि कलम ही नही, वक्त आने पर धीरता से तलवार भी पकड सकते है। चालुक्यो की शिल्प-कला का वैभव भी उसे दिखाया गया। इस तरह की व्यावहारिक नीति से ही कर्नाटकवासियो ने परमार नरेश मुज को सिखाया कि एक राजा का दूसरे राजा के प्रति व्यवहार कैसा होना चाहिए और दूसरो को समझे बिना उनकी अवहेलना करके उच्च सस्कृति से भ्रष्ट नही होना चाहिए। परन्तु मुज तो मुज था। इतने बडे सद्व्यवहार का भी उसने घोर दुरुपयोग किया। महाराज की बहन तो उसके आतिथ्य मे अन्नपूर्णा की भाँति सलग्न थी और वह अधम उसे कामुक दृष्टि से देखने लगा। इस जघन्य अपराध के लिए उसे वह दण्ड दिया गया जिससे उसे वही कल्याण मे ही, प्राण त्यागने पडे। तब से परमार-चालुक्य वैर बढता ही गया और आज की इस स्थिति तक पहुँच गया है।"

"सुना है, राजा मुज को राजधानी के बीच हाथी से कुचलवाया गया था, क्या यह सत्य है ?"

"यह मुझे ठीक-ठीक मालूम नही।"

"हमारे गुरुजी ने बताया था कि उनकी तरफ के लोगो मे भी कोई कहानी

प्रचलित है।"

"वह क्या है ?"

"शायद आपको भी मालूम होगी।"

"नही, तुम्हे मालूम हो तो कहो।"

"राजा मुंज की पुष्ट देह और सशक्त व्यक्तित्व पर मोहित होकर चालुक्य राजा की बहन ने ही स्वय उसे अपने मोहजाल मे फँसा लिया था। बात प्रकट हो गयी तो उसके गौरव की रक्षा के हेतु दोष बेचारे मुंज पर लादकर उसे हाथी के पैरो से रौंदवा दिया गया।"

"तुम्हारे गुरुजी तो समाचार सग्रह करने मे बहुत ही चतुर है। हर विषय की छानबीन कर उसकी तह तक पहुँच जाते है।"

"फूफीजी, जब वे इतिहास पढाते है तब ऐसे विषय अधिक बताया करते है, लेकिन तभी जोर देकर यह भी कहते है कि एक ही विषय के जो दो भिन्न-भिन्न रूप होते हैं उनमे कौन ठीक है और कौन गलत, इस बात का निर्णय स्वय करना चाहिए।"

"तुम बडी भाग्यशालिनी हो, अम्माजी। माँ अच्छी, बाप अच्छे और तुम्हे गुरु भी बहुत अच्छे मिले है।"

"अच्छी फूफी भी मिल गयी है।"

"वैसे ही, तुम पाणिग्रहण भी एक अच्छे राजा से करोगी।"

"फूफी, सब बडी स्त्रियाँ यही बात क्यो कहा करती हैं ? प्रसग कोई भी हो, आखिर मे अच्छा पति पाने का आशीष जरूर देंगी जैसे स्त्री का एक ही काम हो, पति पाना। मुझे तो शादी-शादी, पति-पति सुनते-सुनते जुगुप्सा होने लगी है।"

"इस उम्र मे ये बाते भले ही अच्छी न लगे परन्तु हम बडो का अनुभव है कि स्त्री का जीवन सुखमय सहधर्मिणी होकर रहने से ही होता है। इसी वजह से हम कहती है कि अच्छा पति पाओ। जिसका मतलब यह नही कि तुम कल ही शादी कर लो।"

"पति के अच्छे या बुरे होने का निर्णय कौन करेगा ?"

"शादी करनेवाले।"

"माँ-बाप किसी अनचाहे के हाथ मागल्य-सूत्र बँधवाने को कहे तो ?"

"वे सब सोच-समझकर ही तो निर्णय करते हैं।"

"तो क्या वे समझते हैं कि बेटी के मन मे किसकी कामना है ?"

"विवाह ब्रह्मा का निर्णय है, पति हम ही चुन लें या माँ-बाप, निर्णय तो वही है। अच्छा, जब तुम्हारी शादी की बात उठेगी तब तुम अपनी इस फूफी की बात मान जाओगी न !"

"बाद मे ?" एक दूसरा ही प्रश्न करके शान्तला ने उसके सीधे से प्रश्न का

उत्तर चतुराई मे टाला।

"किसके बाद ?" श्रीदेवी ने पूछा।

"वही, आपने कहा था न कि परमारो और चालुक्यो मे पीढी-दर-पीढी वैर बढता ही गया, उसके बाद ?"

"उसके बाद, अब धारानगर पर जो धावा किया गया, उसका मूल कारण यही है।"

"उसके पीछे कोई और कारण भी होगा ?"

"हाँ, थी, बडी रानी चन्दलदेवी का स्वयवर। भोजराज ने सोचा कि इस लडकी ने किसी दूसरे की ओर ध्यान दिये बिना ही हमारे वश के परम शत्रु चालुक्य विक्रमादित्य के गले मे माला डाल दी। उस राजा और लडकी को खतम किये बिना उन्हे तृप्ति नही मिल सकती थी इसलिए इस घटना मे निराश हुए कुछ लोगो को मिलाकर परमारो ने युद्ध की घोषणा कर दी। चाहे कुछ हो, मुझ-जैसी एक लडकी को युद्ध का कारण बनना पडा।"

"आप-जैसी लडकी के क्या माने, फूफी ?"

श्रीदेवी तुरन्त चेत गयी, "हमारी वह बडी रानी, परन्तु इस युद्ध का असल कारण वह कदापि नही रही।"

"आपकी बडी रानी कैसी है फूफी ?"

"ओफ, बहुत गर्वीली हैं, हालाँकि उनका मन साफ और कोमल है।"

"क्या वे आपसे भी अधिक सुन्दरी है, फूफी ?"

"अरे जाने दो। उनके सामने मेरा सौन्दर्य क्या है नही तो क्या उनका चित्र देखकर ही इतने सारे राजा स्वयवर के लिए आते ?"

"वे राजकुमारी थी, इसलिए उनके सौन्दर्य को हद से ज्यादा महत्त्व दिया गया, वरना सुन्दरता मे आप किससे कम है फूफी ? जब आप मन्दिर जाती है तो बलिपुर की सारी स्त्रियाँ आप ही को निहारा करती है। उस दिन माँ ही कह रही थी, हमारी श्रीदेवी साक्षात् लक्ष्मी है, उसके चेहरे पर साक्षात् महारानी-जैसी कान्ति झलकती है।"

"भाभी को क्या, उनका प्रेम उनसे ऐसा कहलवाता है।"

इसी समय हेग्गडतीजी हाथ मे नाश्ते का थाल लिये वही आयी।

"यह क्या भाभी। आप ही सब ढोकर ले आयी, हम खुद वही पहुँच जाती।"

"मै बुलाने को आयी थी, लेकिन आप लोगो की राजा-रानी की कथा का मजा किरकिरा न करके मै यही ले आयी। साथ ही बैठकर खायेंगे, ठीक है न ?"

"भाभी, यह कैसा सवाल कर रही है ?"

"मुझे राजमहल की बाते नही मालूम। मै गँवार हूँ, एक फूहड हेग्गडती।

तुमने राजमहल मे ही समय व्यतीत किया है इसलिए अपने को रानी ही मानकर हम-जैसी गँवारो के साथ नाश्ता करना अपने लिए अगौरव की बात मान लो तो ?"

"नही, मेरी प्यारी ननदरानी, तुम ऐसी नही हो। वैसे ही कुछ पुरानी याद आ गयी। एक कहावत है, नाक से नथ भारी। दोरसमुद्र मे एक बार ऐसी ही घटना घटी थी। लीजिए, नाश्ता ठण्डा हो रहा है।"

"भाभी आपत्ति न हो तो दोरसमुद्र की उस घटना के बारे मे कुछ कहिए।" चन्दलदेवी ने हेग्गडती को प्रसग बदलने से रोकना चाहा।

"अरे छोडो, जो हुआ सो हो गया। पाप की बात कहकर मैं क्यो पाप का लक्ष्य बनूं।"

"मैने सुना है कि हमारी युवारनीजी बहुत अच्छी और उदार हैं। ऐसी हालत मे ऐसी घटना घटी ही क्यो जिसके कारण आपके मन मे भी कडुआहट अब तक बनी है। इसलिए उसके बारे मे जानने का कुतूहल है।"

"युवरानीजी तो खरा सोना हैं। उन्हे कोई बुरा कहे तो उसकी जीभ जल जाए। परन्तु उन्ही मे अमृत खाकर उन्ही पर जहर उगलनेवाले लोग, दूध पीकर जहर के दाँत से डसनेवाले नागसर्प भी हैं न ?"

"पोय्सल राज्य मे ऐसे लोग भी हैं ?"

"गाँव होगा तो वहाँ कीचड का गड्ढा भी होगा और उसके पास से गुजरें तो उसकी दुर्गन्ध भी सहनी होगी।"

"भाभी, आपकी बात बहुत दूर तक जाती है।"

"दूर तक जाती है के क्या माने ?"

"अम्माजी ने बताया था कि वहाँ आप राजमहल मे ही टिकी थी। तो क्या वहाँ भी दुर्गन्ध लगी ? दुर्गन्ध छोडनेवाले लोगो का नाम न बता सकने के कारण आप शायद अन्योक्ति मे बात कर रही है।"

"जाने दो। कोई और अच्छा विषय लेकर बात करेंगे। अपनी बडी रानी के बारे मे कुछ कहो, वे कैसी है, उनके इर्द-गिर्द के लोग कैसे है, हम-जैसे सामान्य लोगो के साथ वे किस तरह का व्यवहार करती है ?"

"बडी रानी है तो बहुत अच्छी, परन्तु उनके पास साधारण लोग नही जा सकते क्योकि कल्याण के राजमहल की व्यवस्था ही ऐसी है। इसलिए वे लोगो के साथ कैसे बरतती हैं, यह मुझे नही मालूम। सामान्य नागरिको के साथ सम्पर्क होने पर शायद वे वैसा ही व्यवहार करेगी जैसे मनुष्य मनुष्य के साथ किया करता है।"

"यह कहाँ सम्भव है ? उनका सम्बन्ध-सम्पर्क आम लोगो के साथ हो ही नही सकता।"

"हो सकता है, जरूर हो सकता है, जरूर हो सकता है। युद्ध-काल मे वह न हो सके, यह दूसरी बात है। सामान्य लोगो के सम्पर्क से दूर, चारो ओर किला बाँधे रहनेवाले के व्यक्तित्व का विकास कैसे हो सकता है ?"

"तो क्या आपकी बडी रानी उस तरह के किले मे रहनेवाली है ?"

"अब वे उस किले मे नही हैं।"

"यह कैसे कह सकती है ?"

"वे तो युद्ध-शिविर से गायब हो गयी है। ऐसी हालत मे उस किले मे रह भी कैसे सकती है ?"

"जिनके हाथ मे नही पडना चाहिए, ऐसे ही लोगो के हाथ अगर पड गयी हो तो ?"

"आपको मालूम नही, भाभी, हमारी बडी रानीजी अपने को ऐसे समय मे बचा लेने की युक्ति अच्छी तरह जानती है।"

"तब तो यह समझ मे आया कि तुम इस बात को जानती हो कि वे कहाँ हैं।"

इतना मालूम है कि वे सुरक्षित है। इससे अधिक मै नही जानती।"

"उतना भी कैसे जानती हो ?"

"जो नायक मुझे यहाँ छोड गया, उसी ने यह बात कही थी कि बडी रानीजी अब सुरक्षित स्थान मे है, चिन्ता की कोई बात नही।"

"ऐसा है, तब तो ठीक है।"

उनकी थालियाँ खाली हो गयी और दुबारा भी भरी गयी परन्तु शान्तला की थाली भरी-की-भरी ही रही। गालब्ब ने कहा, "अम्माजी न तो अभी तक खाया ही नही।"

ननद-भाभी ने कहा, "अम्माजी जब तक तुम खा न चुकोगी तब तक हम बात नही करेंगे।"

नाश्ता समाप्त होते ही श्रीदेवी ने फिर वही बात उठायी, "अब कहिये भाभी, दोरसमुद्र की बात।"

"हम सब युवरानीजी के साथ दोरसमुद्र गये। वहाँ का सारा कारोबार बडे दण्डनायक मरियाने की छोटी पत्नी चामव्वे की देखरेख मे चल रहा था।"

बीच ही मे शान्तला बोली, "उन बातो को जाने दो माँ। उल्लू के बोलने से दिन रात नही हो जाता। वे मानते हैं कि वे बडे है तो मान ले। उससे हमारा क्या बनता-बिगडता है।"

माचिकब्बे ने बात बन्द कर दी। उसके मन की गहराई मे जो भावना थी उसे समझने मे रुकावट आयी तो श्रीदेवी ने शान्तला की ओर बुजुर्गाना निगाहो से देखा, "बेटी, तुम तो छोटी बच्ची हो, तुम्हारे कोमल हृदय मे भी ऐसा जहर

बैठ गया है तो, उस चामव्वा का व्यवहार कैसा होगा ? किसी के विषय मे कभी कोई बुरी बात अब तक मैंने तुम्हारे मुँह से नही सुनी। आज ऐसी बात तुम्हारे मुँह से निकली है तो कुछ तीव्र वेदना ही हुई होगी। फिर भी, बेटी, उस जहर को उगलना उचित नही, जहर को निगलकर अमृत बाँटना चाहिए। वही तो है नील-कण्ठ महादेव की रीति। वही शिवभक्त हेग्गडे लोगो के लिए अनुकरणीय है।"

"ओह। मैं भूल ही गयी थी। श्रीदेवी नाम विष्णु से सम्बन्धित है फिर भी वे नीलकण्ठ महादेव का उदाहरण रही हैं। मुँहबोली बहिन है हेग्गडेजी की, भाई के योग्य बहिन, है न ?" माचिकब्बे ने बात का रुख बदलकर इन कडवी बातो का निवारण कर दिया।

"मतलब यह कि मेरे भाई की रीति आपको ठीक नही लगती, भाभी।"

"श्रीदेवीजी उनकी रीति उनके लिए और मेरी मेरे लिए। इस सम्बन्ध मे एक-दूसरे पर टीका-टिप्पणी न करने का हमारा समझौता है। इसीलिए यह गृहस्थी सुखमय रूप मे चल रही है।"

"अर्धनारीश्वर की कल्पना करनेवाला शिव-भक्त प्रकृति से सदा ही प्रेम करता है भाभी। वही तो सामरस्य का रहस्य है।"

"हमारे गुरुजी ने भी यही बात कही थी।" शान्तला ने समर्थन दिया।

इसी समय गालब्बे ने सूचना दी कि गुरुजी आये है।

"देखा, तुम्हारे गुरुजी बडे महिमाशाली हैं। अभी याद किया, अभी उपस्थित पढ लो, जाओ।" श्रीदेवी गद्‌गद होकर बोली।

माचिकब्बे भी वहाँ मे शान्तला के साथ गयी और "तुम बाहर की बारादरी मे रहो, हेग्गडेजी के आने का समय है। उनके आते ही मुझे खबर देना।" गालब्बे को आदेश देकर वह फिर श्रीदेवी के ही कमरे मे पहुँची।

थोडी देर दोनो मौन बैठी रही। बात का आरम्भ करें भी तो कौन-सी कडी ले। असल मे बात माचिकब्बे को ही शुरू करनी थी। इसीलिए श्रीदेवी भी उसकी प्रतीक्षा मे बैठी रही। माचिकब्बे बैठे-बैठे सरककर दरवाजे को बन्द करके श्रीदेवी के पास बैठ गयी। उसके कान मे फुसफुसाती हुई बोली, "श्रीदेवी, तुम्हारे भैया सोच रहे हैं कि तुम्हे ले जाकर कही और ठहरा दे।"

"यह क्या भाभी, यह क्या कह रही हैं, सुनकर छाती फट रही है। क्या मैंने कोई ऐसा-वैसा व्यवहार किया है ?" श्रीदेवी की आँखो मे आँसू भर आये।

माचिकब्बे ने श्रीदेवी के हाथ अपने हाथो मे लेकर कहा, "ऐसा कुछ नही है, हमे अच्छी तरह मालूम है कि तुमसे ऐसा कभी नही हुआ, न हो ही सकेगा। फिर भी, दुनिया बुरी है, वह सह नही सकती। दुनिया हमे अपने मे सन्तुष्ट रहने नही देती। हमेशा बखेडा खडा करने को कमर कसे रहती है। यह बात मैं अम्माजी के सामने नही कह सकती थी। इसीलिए मुझे ठीक समय की प्रतीक्षा करनी

पड़ी।"

श्रीदेवी को इस बात का भरोसा हुआ कि उसने कोई ऐसा काम नहीं किया जिससे हेग्गडेजी को कष्ट हुआ हो। आसमान में स्वतन्त्र विचरण करनेवाले पंछी के पंखों की तरह उसकी पलकें फड़फड़ाने लगीं। आँखों की कोर में जमे अश्रुबिन्दु मोती की भाँति बिखरने लगे, माचिकब्बे ने कुछ परेशान होकर पूछा, "ये आँसू क्यों, श्रीदेवी ?"

"कुछ नहीं, भाभी। पहले यह अहसास जरूर हुआ था कि मुझसे शायद कोई अपराध हो गया है लेकिन अब वह साफ हो गया। अब, भाभी आपसे एक बात अलबत्ता कहना चाहती हूँ, इसी वक्त, क्योंकि इससे अच्छा मौका फिर न मिल सकेगा। मैं अपने जन्मदाता माँ-बाप को भूल सकती हूँ परन्तु आपको और भैया को आजन्म नहीं भूल सकती। आप लोगों ने मुझ पर उपकार ही ऐसा किया है कि उसे जन्मभर नहीं भूल सकती। वास्तव में न मेरे भाई है न भाभी। आप ही मेरे भाभी-भैया है। यह बात मैं बहुत खुशी से और गर्व के साथ कहती हूँ। आप जैसे भाई-भाभी पाना परम सौभाग्य की बात है, यह मेरा पूर्वजन्म के सुकृत से प्राप्त सौभाग्य है। कारण चाहे कुछ भी हो, उचित समय के आने तक यहाँ से अन्यत्र कहीं न भेजें। जब आपके आश्रय में आयी तब मान को धक्का पहुँचने का डर होता तो हो सकता था, लेकिन वह मान बना ही रहा है।"

"श्रीदेवी, तुम्हारी सद्भावना के लिए हम ऋणी है। उनको और मुझे भाई-भाभी समझकर सद्भाव से तुम हमारे साथ रही यह हमारा सौभाग्य है, तुम्हारा पुण्य नहीं, हमारा पुण्य-फल है। वास्तव में इनकी कोई बहिन नहीं है। इन्होंने इसे कई बार मुझसे कहा है, ईश्वर किस-किस तरह से नाते-रिश्ते जोड़ता है यह एक समझ में न आनेवाला रहस्य है। मुझ-जैसे को ऐसी बहिन मिलना मेरे सुकृत का ही फल है। तुमने भी नागपंचमी और उनके जन्म-दिन के अवसर पर उनकी पीठ दूध से अभिषिक्त करके उनकी बहिन होने की घोषणा की। ऐसी स्थिति में उनके मन में कोई बुरा भाव या उद्देश्य नहीं हो सकता, श्रीदेवी। हाँ, इतना अवश्य है कि वे दूर की बात सोचते है। इसलिए उनके कहे अनुसार चलने में सबका हित है। उनके अनुसार अब वर्तमान स्थिति में तुम्हारा यहाँ रहना खतरनाक है।"

"अब हुआ क्या है सो न बताकर ऐसी पहेली न बुझाये, भाभी। भैया का कहना मानकर चलना हितकर कहती है, साथ ही यह भी कहती है कि मेरा यहाँ रहना खतरनाक है। आश्चर्य है। अब तक खतरा नहीं था, अब आ गया, अजीब खतरा है।"

"उसे कैसे समझाऊँ, श्रीदेवी। कहते हुए मन हिचकिचाता है। तुम्हारे भैया कभी चिन्तित होकर नहीं बैठते। कितनी ही कठिन समस्या हो, उसका वे धीरज के साथ सामना करते है। परन्तु इस प्रसंग में वे कुछ उद्विग्न हो गये है। वे जो

भी कहना चाहते हैं वह खुद आकर सीधे तुमसे ही कहा करते है, लेकिन इस प्रसग मे सीधा कहने मे वे सकोच का अनुभव कर रहे थे। उनके उस सकोच के भी कुछ माने है, श्रीदेवी। उन्होने जो सोचा है उस सम्बन्ध मे सोच-विचार करने के बाद जब मुझे ठीक जँचा तब मैने स्वय तुमसे कहना स्वीकार किया। अब हाथ जोडकर कहती हूँ कि उनका कहना मानकर हमे इस वास्तविक सन्दिग्धावस्था से पार करो।" यह सुनकर श्रीदेवी की समझ मे नही आया कि ऐसी हालत मे वह क्या करे। हेग्गडेजी की बात से ऐसा लग रहा है कि उसकी परीक्षा हो रही है। थोडी देर सोचकर श्रीदेवी ने पूछा, "भाभी, एक बात मै स्पष्ट करना चाहती हूँ। मैं स्त्री हूँ अवश्य। फिर भी मेरा हृदय अपने भैया की ही तरह धीर है। मैं किसी से नही डरती, न किसी से हार मानकर झुकती हूँ। आपकी बातो से स्पष्ट मालूम पडता है, मेरे यहाँ रहने से आप लोगो को किसी सन्दिग्धावस्था मे पडना पड रहा है। परन्तु यह सन्दिग्धता सचमुच मेरे मन को भी सच्ची जान पडी तो आप लोगो के कहे अनुसार करूँगी। इसलिए बात कैसी भी हो, साफ-साफ मुझे भी कुछ सोचने-विचारने को मौका जरूर, दीजिए। कुछ भी सकोच न कीजिए।"

माचिकब्बे ने एक लम्बी साँस ली। एक बार श्रीदेवी को देखा। कुछ कहना चाहती थी। मगर कह न सकी। सिर झटककर रह गयी, आँसू भर आये। फिर कहने की कोशिश करती हुई बोली, "स्त्री होकर ऐसी बात कहूँ किस मुख से श्रीदेवी, मुझसे कहते नही बनता।" उसका दुख दूना हो गया।

"अच्छा भाभी, स्त्री होकर आप कह नही सकती तो छोड दीजिए। मै भैया से ही जान लूंगी।" कहती हुई उठ खडी हुई।

माचिकब्बे ने उसे हाथ पकडकर बैठाया। दूसरे हाथ से अपने आँचल का छोर लेकर आँसू पोछती हुई बोली, "अभी तुम्हारे भैया घर पर नही है। आते ही गालब्बे खबर देगी, बैठो।"

दोनो मौन ही बैठी रही। मन मे चल रहे भारी सघर्ष ने माचिकब्बे को बोलने पर विवश किया, "भगवान ने स्त्री को ऐसा सुन्दर रूप दिया ही क्यो, इतना आकर्षक बनाकर क्यो रख दिया ?"

श्रीदेवी ने हेग्गडती को परीक्षक की दृष्टि से देखा, "भाभी, अचानक ऐसा प्रश्न क्यो आया ? क्या यह प्रश्न मेरे रूप को देखकर उठा है ?"

"यह नित्य सत्य है कि तुम बहुत सुन्दर हो।" माचिकब्बे ने कहा।

"इस रूप पर गर्व करने की जरूरत नही। एक जमाने मे मैं भी शायद गर्व कर रही थी, अब नही।" श्रीदेवी बोली।

"क्यो ?"

"क्योंकि इस बात की जानकारी हुई कि रूप नही, गुण प्रधान है।"

"परन्तु रूप को ही देखनेवाली आँख गुण की परवाह नही करती, है न ?"

"दुर्बल मनवाले पुरुष जब तक दुनिया मे है तब तक आँखें गुण के बदले कुछ और ही खोजती रहेगी।"

"रूप होने पर ही न उस पर पुरुष की आँख जायेगी ?"

"ऐसे दुश्चरित्रो के होते हुए भी गुणग्राही पुरुषो की कमी नही।"

"मन दुर्बल हो और उसकी इच्छा पूरी न हो तो पुरुष अण्टसण्ट बातो को लेकर असह्य किस्से गढता है और उन्हे फैलाता फिरता है।"

"तो क्या मेरे विषय मे भी ऐसी कहानी फैल रही है, भाभी ?" श्रीदेवी ने तुरन्त पूछा।

"नही कह नही सकती और हाँ कहने मे हिचकिचाहट होती है।"

"भाभी, ऐसी बातो को लेकर कोई डरता है ? ऐसी बातो से डरने लगे हम तो लोग हमे भूनकर खा जायेगे। इससे आपको चिन्तित नही होना चाहिए। लोग कुछ भी कहे, मैं उससे न डरनेवाली हूँ न झुकनेवाली। यदि आपके मन मे कोई सन्देह पैदा हो गया हो तो छिपाइए नही। साफ-साफ कह दीजिए।"

"कैसी बात बोलती हो, श्रीदेवी ? हम तुम्हारे बारे मे सन्देह करे, यह सम्भव नही। परन्तु तुम्हारे भैया कुछ सुनकर बहुत चिन्तित हैं।"

"तो असली बात मालूम हुई न। उस मनगढन्त बात को खोलने मे सकोच क्यो भाभी ?"

"क्योकि कह नही पा रही हूँ, श्रीदेवी। हमारे लोग ऐसे हीन स्तर के होगे, इसकी कल्पना भी मै नही कर सकती थी।"

"भाभी, अब एक बात का मुझे स्मरण आ रहा है। आने के एक-दो माह बाद आपके साथ ओंकारेश्वर मन्दिर गयी थी। वहाँ, उस दिन भैया का जन्मदिन था। आप सब लोग अन्दर गर्भगृह के सामने मुखमण्डप मे थे। मैं मन्दिर की शिल्प-कला, खासकर उस कला का बारीक शिल्प जो प्रस्तरोत्कीर्ण जाल की कारीगरी थी, देखने मे मगन हो गयी थी। तब एक पुरुष की बिजली की कडक-सी खाँसने की आवाज़ सुनायी पडी। उस प्रस्तर जाल के बाहर की तरफ हसने की मुद्रा मे मैने अपनी ही ओर देखता हुआ एक पुरुष देखा। वह कुत्ते की तरह जीभ हिलाता हुआ मुझे इशारे से बुलाता-सा दिखायी पडा। मैं तेजी से अन्दर चली गयी। भैया और बगल मे आप, आप दोनो के सामने अम्माजी खडे थे। आपकी बगल मे गालब्बे थी, उसकी बगल मे रायण खडा था। मैं मुख-मण्डप से होकर भैया के पास घूमकर खडी हो गयी। तब भगवान् की आरती उतारी जा रही थी। वह आदमी भी बाद मे अन्दर आया। पुजारीजी आरती देने लाये तो भैया ने पहले मुझे दिलायी। तब एक विचित्र लच्च-लच्च सुनायी पडी। आपने छिपकली की आवाज समझकर बगलवाले खम्भे पर उँगली की मार से आवाज़ की जबकि वह आवाज़ उसी व्यक्ति के मुँह से निकली थी। अब जो अफवाह आप सुना रही हैं

"उसका स्रोत वही व्यक्ति है, मुझे यही लग रहा है। मैंने चार-छह बार देखा भी है उस व्यक्ति को मुझे ललचायी आँखो से घूरते हुए। वह एक कीडा है। उससे क्यो डरें ?"

"यह बात बहुत दूर तक गयी है, श्रीदेवी। इसीसे मालिक बहुत व्यथित हैं। अपना अपमान तो वे सह लेंगे। अपने पास धरोहर के रूप मे रहनेवाली तुम्हारा अपमान उनके लिए सह्य नही। इसलिए उनकी इच्छा है, ऐसे नीच लोगो से तुम्हे दूर रखे।"

"ऐस लोगो को पकडकर दण्ड देना चाहिए। भैया जैसे शूर-वीर को डरना क्यो चाहिए।"

"आप दोनो के बीच का सम्बन्ध कितना पवित्र है, इसे हम सब जानते है। लेकिन, इस पवित्र सम्बन्ध पर कालिख पोतकर, एक कान से दूसरे तक पहुँचकर बात महाराज तक पहुँच जाय तो ? तुमको दूर अन्यत्र रखा जाय तो यह अफवाह चलने-चलते ही मर जाएँगे, यही उनका अभिमत है। कीचड उछलवा, हास्यास्पद बनने मे बचने के लिए उनका विचारित मार्ग ही सही है, ऐसा मुझे लगता है।"

"भाभी, आप निश्चिन्त रहे। मैं भैया से बात करूँगी, बाद मे ही कोई निर्णय लेगे।"

"मैंने तुम्हे कुछ और ही समझा था। अब मालूम हुआ कि तुम्हारा दिल मर्दाना है।"

"ऐसा न हो तो स्त्री के लिए उसका रूप ही शत्रु बन जाये, भाभी। रूप के साथ केवल कोमलता और मार्दव को ही विकसित करे तो वह काफी नही होता। वक्त आने पर कोमलता और मार्दव को फौलाद भी बनना पडता है। अभ्यास से उसे भी अर्जित करना जरूरी है।"

"तुममे ऐसी भावनाओ के आने का कारण क्या है, श्रीदेवी ?"

"राजमहल का वास और अपनी जिम्मेदारी का भार।"

"तो क्या तुम बडी रानीजी की अगरक्षिका बनकर रही ?"

"आत्म-विश्वास भी अगरक्षक जैसा ही है, प्रत्येक स्त्री को आत्म-विश्वास साधना द्वारा प्राप्त करना चाहिए।"

"ठीक है, अपनी जिम्मेदारी अपने ही ऊपर लेकर मुझे तुमने मानसिक शान्ति दी। अब तुम हो, तुम्हारे भाई है।" कहती हुई माचिकब्बे दरवाजा बन्द कर बाहर निकल आयी।

श्रीदेवी ने आसन बदला। उसने दीवार से सटे आदमकद आइने के सामने खडी होकर अपने आपको देखा। दाँत कटकटाये। आँखे विस्फारित की। माथे पर सिकुडन लायी। अकड़कर खडी हो गयी। हाथ उठाकर मुट्ठी कसकर बाँधे रक्त बीजासुर-संहारिणी शक्तिदेवी का अवतार-सी लगी। उस समय वह आदमी उसके

हाथ लगता तो उसे चीर-फाडकर खत्म ही क र देती ।

स्त्री सहज प्रसन्न, सौम्य भाव दिखाये तो लोग दुष्टभाव से देखते हैं। भाभी का कहना ठीक था कि ईश्वर ने स्त्री को सुन्दरता न दी होती तो अच्छा होता। मेरे इस सौन्दर्य ने ही तो आज अनेक राज्यों को इस युद्ध मे ला खडा किया है। मेरे इस सौन्दर्य के कारण अनेक शुद्ध-हृदय जन मुझ-जैसी हजारो स्त्रियो को अनाथ बना रहे है। भातृ-प्रेम के अवतार, सौभाग्य से मिले मेरे भैया पवित्रात्मा हेग्गडे के सदाचार पर कालिख लगने का कारण बना है मेरा सौन्दर्य, धिक्कार है इस सौन्दर्य को। उसे वैसे ही रहने देना उचित नही। क्या करूँ, क्या करूँ इस सौन्दर्य को नष्ट करने के लिए ? समुद्र मे उठनेवाली तरगो के समान उसके मन मे भावनाएँ उमड रही थी। उसे इस बात का ज्ञान तक नही रहा कि उसी ने स्वय अपने बाल खोल-कर बिखेर दिये थे, जिनके कारण उसकी भीषण मुखमुद्रा और अधिक भीषण हो गयी थी।

पाठ की समाप्ति पर शान्तला फूफी के कमरे मे आयी थी कि ड्योढी से ही उसे फूफी का वह रूप आइने मे दिखा। वह भौचक्की रह गयी। आगे कदम न रख सकी। जानती है कि सारी तकलीफे खुद झेलकर भी उसके माता-पिता प्रसन्न-चित्त रहते है और प्रसन्नता से ही पेश आते है। और फूफी को भी उसने इस रूप मे कभी नही देखा। ऐसी हालत मे उसकी फूफी के इस भावोद्वेग की वजह ? इसी धुन मे वह खडी रह गयी।

"बहिन, श्रीदेवी, क्या कर रही हो ?" हेग्गडे मारसिगय्या ने अन्दर की बारहदरी मे प्रवेश किया पिता की आवाज सुनकर शान्तला ने फिर उस आइने की ओर देखा। फूफी के चेहरे पर भयकरता के स्थान पर भय छा गया था। वे बिखरे बालो को सँवार रही थी। शान्तला वहाँ से हटी, "अप्पाजी कब आये ?"

"अभी आया अम्माजी, तुम्हारा पाठ कब समाप्त हुआ ?"

"अभी थोडी देर हुई।"

"तुम्हारी फूफी क्या कर रही है ?"

"बाल सँवार रही है।"

"अच्छा, बाद मे मिलेंगे। तुम्हारा नाश्ता हुआ, अम्माजी ?"

"हाँ, हाँ, हम तीनो ने मिलकर किया था।"

"तुम्हारी माँ ने बताया ही नही।"

"आपने पूछा नही, उन्होंने बताया नही।"

"तो मेरे आने से पहले आप लोगो ने खतम कर दिया।" मारसिगय्या हँसने लगे।

"और क्या करते, आपने ही तो प्रतीक्षा न करने का आदेश दे रखा है। पुरुष लोग जब बाहर काम पर जाते हे तब उनके ठीक समय पर लौट आने का भरोसा

नही होता न ।"

"हाँ, हाँ, तुम बेटी आखिर उसी माँ की हो। खैर, हो चुका हो तो क्या, मेरे साथ एक बार और हो जाय, आओ।" कहते हुए मारसिंगय्या ने कदम आगे बढाया।

"आइये, भैयाजी।" श्रीदेवी की आवाज मारसिंगय्या की रोज-जैसी सहज मुसकान वापस नही ला सकी।

"कुछ बात करनी थी।" मारसिंगय्या ने धीरे से कहा।

"अप्पाजी, आप फूफीजी से बात कर लीजिए। तब तक मै आपके नाश्ते की तैयारी के लिए माँ से कहूँगी।" कहकर शान्तला वहाँ से चली गयी। मारसिंगय्या बात खुद शुरू नही कर सके तो श्रीदेवी ही बोली—

"भैयाजी, आपके मन का दुख मै समझ चुकी हूँ। डरकर पीछे हटेंगे तो ऐसे लफगो को मौका मिल जायेगा। यह समाज के लिए हानिकर होगा। इसलिए उन लफगो को पकडकर पचो के सामने खडा करना और उन्हे दण्ड देना चाहिए।"

"श्रीदेवी तुम्हारा कहना ठीक है। मै कभी पीछे हटनेवाला आदमी नही सत्य को कोई भी झूठ नही बना सकता। परन्तु कुछ ऐसे प्रसगो मे अपनी भलाई के लिए इन लुच्चे-लफगो से डरनेवालो-की-तरह ही बरतना पडता है। स्वय श्रीराम ने ऐसे लफगो से डरने-की-तरह बातकर सीता माता को दूर भेजा था। बुरो की सगति से भलो के साथ झगडा भी अच्छा। इन लुच्चो-लफगो के साथ झगडना, इस प्रसग मे मुझे हितकर नही मालूम होता। इसलिए "

"श्रीराम और अब के बीच युग बीत चुके है। तब तो श्रीराम ने सीताजी की अग्नि-परीक्षा ले ली थी, अब क्या मुझे भी वह देनी होगी? सत्य को सत्य और असत्य को असत्य कहने का आत्मबल होना ही काफी नही है क्या?"

"तुम जो कहती हो वह ठीक है। परन्तु हम जिस मुश्किल मे फँस गये हैं उसमे आत्म-बल का प्रदर्शन अनुकूल नही। हम सब एक राजकीय रहस्य मे फँसे है। यह बात पचो के सामने जायेगी तो पहले तुम्हारा सच्चा परिचय देना पडेगा जो मुझे ज्ञात नही है और उसे जानने का प्रयत्न भी न करने की प्रभु की कडी आज्ञा है। उनकी ऐसी कडी आज्ञा का कारण भी बहुत ही प्रबल होना चाहिए। ऐसी स्थिति मे, अपने आत्मबल के भरोसे अपना परिचय देने को तुम तैयार होओगी?"

मारसिंगय्या के इन प्रश्नो पर विचार के लिए वह विवश हो गयी। पचो के सामने जाएँ तो अपराधी को दण्ड मिलेगा, अवश्य, परन्तु यह बात भी खुल जायेगी कि मै चालुक्यो की बडी रानी हूँ। यही बात लेकर लुच्चे-लफगे अपना उल्लू सीधा कर लेने की कोशिश करेंगे। ये पति-पत्नी अभी अपने प्रभु की आज्ञा का बडी

निष्ठा से पालन कर रहे है। यदि उन्हे यह मालूम हो जाय कि मै कौन हूँ तो वे परम्परागत श्रद्धा-भाव से व्यवहार करेगे। इससे मेरा वास्तविक परिचय पाने का और लोगो को भी मौका मिलेगा जिससे राजनीतिक पेचीदगियाँ बढेगी। श्रीदेवी उसी निर्णय पर पहुँची जो स्वय हेग्गडे मारसिंगय्या का था, "भैयाजी, मैं इस बारे मे अधिक न कहूँगी। आपकी दूरदर्शिता पर मुझे भरोसा है।"

"अब मेरे मन को शान्ति मिली। अब इस बात को फिलहाल यही रहने दो। जिसके बारे मे तुमने भाभी से बताया था क्या तुम उस आदमी का पता लगा सकोगी?"

"हाँ, एक बार नही, मैंने उसे इतनी बार देखा है कि उसे भूल ही नही सकती। इतना ही नही, उसे यह भी मालूम है कि मै और भाभी कब कौन-से दिन मन्दिर जाते है। उसी दिन वह दुष्ट लफगा मन्दिर के सामनेवाले ध्वजस्तम्भ की जगत पर या वहाँ के अश्वत्थ वृक्षवाली जगत पर बैठा रहता है।"

"ये सब बातें मुझसे पहले क्यो नही कही, श्रीदेवी? पहले ही दिन जब तुम्हे शका हुई तभी कह देती तो बात इस हद तक नही पहुँचती। उसे उसी वक्त वही मसल देता।"

"एक-दो बार भाभी से कहने की इच्छा तो हुई। पर मन ने साथ न दिया। जब रास्ते मे चलते हैं तब लोग देखते ही है, उनसे कहे भी कैसे कि मत देखो। इस सबसे डरना नही चाहिए, ऐसा सोचकर भाभी से नही कहा।"

"अब जो होना था सो तो हो चुका। बीती बात पर चिन्ता नही करनी चाहिए। यहाँ से जाने के पहले उसे मुझे दिखा दें, इतना काफी है। बाद को मुझे जो करना होगा सो मै देख लूँगा।"

"अच्छा, भैयाजी, यह किस्सा अब तो खतम हो गया न। अब आप जाकर निश्चिन्त भाव से नाश्ता कर ले।"

"अच्छी बात है, नाश्ता तो मै किये लेता हूँ, लेकिन निश्चिन्तता का नाश्ता तभी कर सकूँगा जब तुम्हे उनके हाथो मे सुरक्षित रूप मे सौप दूँगा जिन्होने मुझे तुम्हे धरोहर के रूप मे सौपा है।"

"वह दिन भी आये बिना न रहेगा, भैयाजी। शीघ्र ही आनेवाला है।"

"श्रीदेवी, कहावत है कि पुस्तकें और वनिता पर-हस्त से कभी अगर लौटे तो भ्रष्ट या शिथिल होकर ही लौटेगी, इसलिए मुझे सदा ही भय लगा रहता है। जैसे परिशुद्ध और पवित्र रूप मे तुम मेरे पास पहुँचायी गयी हो उसी रूप मे तुम्हे उन तक पहुँचा देना मेरा उत्तरदायित्व है। मुझ जैसे साधारण व्यक्ति के लिए यह बहुत बडा उत्तरदायित्व है। श्रीदेवी, तुम्हारी सुरक्षा कहाँ रहने पर हो सकती है, इस पर मै सोच-विचार कर निर्णय करूँगा। परन्तु तुम अभी यह बात कृपा करके अम्माजी से न कह बैठना। वह तुमको बहुत चाहती है। तुम्हारे यहाँ से प्रस्थान

करने के पहले उसके मन को तैयार करूँगा, शायद इसके लिए उससे कुछ झूठ भी बोलना पड़ेगा। अच्छा बहिन ?" कहकर उठे और दो कदम जाकर मुड़े, "तुम्हे कुछ मानसिक कष्ट तो नही हुआ, परेशान तो नही हुई न ?"

"भैया, मैं वस्तुस्थिति स परिचित हो चुकी हूँ। आप भी परेशान न हो। हमारे प्रभु के आने पर यह बात उनके कानो तक पहुँच जाये कि यहाँ इस तरह की अफवाह उडी थी तो क्या होगा, इसके अलावा मुझे कुछ और चिन्ता नही।"

"अगर ऐसी स्थिति आयी तो सारी बाते उनसे मैं स्वय कहूँगी। आप किसी बात के लिए परेशान न हो, भैया।"

"ठीक है, बहिन।" कहकर वे चले गये।

श्रीदेवी भी बारहदरी मे जाकर शान्तला की प्रतीक्षा मे खडी हुई ही थी कि उधर से गालब्बे गुजरी, "अम्माजी कहाँ है, गालब्बे ?"

"वहाँ पीछे की फुलवारी मे है।" और श्रीदेवी शान्तला को खोजती हुई फुलवारी मे जा पहुँची।

मारसिंगय्या और श्रीदेवी की बातचीत के तीन दिन बाद का दिन सोमवारी अमावस्या थी। हेग्गडे मारसिंगय्या ने धर्मदर्शी और पुजारियो को पहले ही सन्देश भेज दिया था कि शाम को वे परिवार के साथ मन्दिर आएँगे। उन्होने अपने परिवार के सभी लोगो को, नौकरानियो तक को, सब तरह की सज-धज और शृगार करके तैयार होने का आदेश दिया। हेग्गडे मारसिंगय्या कभी इस तरह का आदेश नही दिया करते थे। माचिकब्बे को शृगार के मामले मे उन्होने ही सरलता का पाठ पढाया था। माचिकब्बे ने इस आदेश का विरोध किया। "यह तो विरोधाभास है। सुन्दर स्त्री को, वह निराभरण हो तो भी मर्द उसे घूरते है, अगर वह सज-धज कर निकले तब तो वे उसे खा ही जाएँगे। और आज की हालत मे तो अलकृत होकर जाना, खासकर हम लोगो के लिए, बहुत ही खतरनाक है। श्रीदेवी के इधर से निकलने तक हम लोगो का बाहर न जाना ही अच्छा है।"

"जो कहूँ, सो मानो" बडी कठोर थी हेग्गडे की आवाज। उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह वहाँ से चल दिया। माचिकब्बे ने कभी भी अपने पति के व्यवहार मे ऐसी कठोरता नही देखी थी। आगे क्या करे, यह उसे सूझा नही। श्रीदेवी से विचार-विनिमय करने लगी।

"भाभी, भैया कुछ कहते है तो उसका कोई-न-कोई कारण होता है। हमे उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए।"

'तो भाई-बहिन ने मिलकर कोई षड्यन्त्र रचा है क्या ?"

"इसमे षड्यन्त्र की क्या बात है, भाभी ? भैया की बात का महत्व जैसा आपके लिए है वैसा ही मेरे लिए भी है।"

"उसे स्वीकार करती हो ता तुम अब तक अपने को सजाने के लिए कहने पर इन्कार क्यो करती थी ? उस दिन अम्माजी का जन्म-दिन था, कम-से-कम उसे खुश करने के लिए ही जेवर और रेशम की जरीदार साडी पहनने को कहा तो भी मानी नही। आज क्या खास बात हुई ?"

"उस दिन भैया से बातचीत के बाद से मेरी नीति बदल गयी है, भाभी। उनका मन खुली किताब है। उनकी इच्छा के अनुसार चलना हमारा कर्तव्य है।"

मेरे पतिदेव के विषय मे इस कुलीन स्त्री के भी इतने ऊँचे विचार है, ऐसे पति का पाणिग्रहण करनेवाली मैं धन्य हूँ ! मैं कितनी बडी भाग्यशालिनी हूँ ! मन-ही-मन गद्गद होकर माचिकब्बे ने कहा, 'ठीक है, चलिए हम लोग तैयार हो। और हाँ जैसा हमारा शृगार होगा वैसा ही नौकरानी का होगा।" और वे प्रसाधन-कक्ष मे जा पहुँची।

"अब बस भी करो, मुझे गुडिया बनाकर ही रख दिया तुमने, भाभी। सुमगला हूँ, थोडे आभूषणो के बावजूद सुमगला ही रहूँगी। इससे अधिक प्रसाधन अब मुझे नही चाहिए।" माचिकब्बे ने जिद की श्रीदेवी से जो उसे अपने ही हाथो से सजाये जा रही थी।

"सौभाग्य मात्र के लिए ये सब चाहिए ही नही, मैं मानती हूँ। माथे पर रोरो, माँग मे सिन्दूर, पवित्र दाम्पत्य का सकेत मगलसूत्र, इतना ही काफी है। परन्तु जब सजावट ही करनी है तब ईश्वर से प्राप्त सौन्दर्य को ऐसा सजाएँगे कि ईश्वर भी इस कृत्रिम शृगार को देखकर चकित हो जाये।" श्रीदेवी ने कहा।

"यह सब सजावट इतनी ! ऐसी ! न भाभी ! न ! मैं तो यह सब पहली बार देख रही हूँ।"

"मुझे सब कुछ मालूम है। चालुक्यो की बडी रानीजी को इस तरह की सजावट बहुत प्रिय है। केश शृगार की विविधता देखनी हो तो वही देखनी चाहिए, भाभी। वहाँ अभ्यस्त हो गयी थी, अब सब भूल-सा गया है। फिर भी आज उसे प्रयोग मे लाऊँगी।"

हेग्गडती के घर की नौकरानी गालब्बे का भी शृगार किया खुद श्रीदेवी ने। बेचारी इस सजावट से सुन्दर तो बन गयी परन्तु इन सबसे अनभ्यस्त होने के कारण उसे कुछ असुविधा हो रही थी। शान्तला की सजावट भी खूब हुई।

श्रीदेवी ने भी खुद को सजा लिया। फिर वारी-बारी से सबने उस आदमकद आइने मे अपने को देखा।

गालब्बे को लगा कि वह आइने मे खुद को नही किसी और को देख रही है।

माचिकब्बे ने मन-ही-मन कहा, अगर चामव्व मुझे इस रूप मे देखेगी तो ईर्ष्या से जलकर एकदम मर जायेगी।

शान्तला ने सोचा, मैं कितनी ऊँची हो गयी हूँ। पिताजी ने दीवार पर जो लकीर बना दी थी उस तक पहुँच गयी हूँ। तीर-तलवार चलाना सिखाने की मेरी व्यवस्था पक्की।

श्रीदेवी तो महज सुन्दरी थी ही, ऊपर मे इस सजावट ने उसकी सुन्दरता मे चार चाँद लगा दिये। उसके चेहरे पर एक अलौकिक तेज चमक रहा था। माचिकब्बे ने कहा, "श्रीदेवी, अब कोई तुम्हे देखे तो यही समझेगा कि तुम महारानी या राजकुमारी हो।"

"ऐसा हो तो भाभी, मुझे इस सजावट की जरूरत नही।" श्रीदेवी ने कहा।

"क्यो अपने भैया की आज्ञा का पालन नही करोगी?"

"भाभी, मैं नही चाहती कि अब कोई नया बखेडा उठ खडा हो।" कहती हुई वह आभूषण उतारने लगी।

"ऐसा करोगी तो मै भी आभूषण उतार दूँगी। सोच लो, उन्हे जवाब देना होगा।"

"श्रीदेवी ने आभूषण उतारना छोड शान्तला को देखा जो कुतूहल भरी दृष्टि से आइने मे उसी के प्रतिबिम्ब को देख रही थी, "क्यो अम्माजी, ऐसे क्या देख रही हो?"

"फूफीजी, मैं देख रही थी कि आप कैसे कर लेती है यह सजावट, बालो को तरह-तरह से गूथकर कैसे सजाया जा सकता है, किस आकार मे उन्हे बाँधा जा सकता है, ये चित्र कैसे बनाये जाते है। अगर मै जानती होती कि आपको यह सब इतना उचित आता है तो मैं अब तक सब सीखकर ही रहती।"

"अच्छा, अम्माजी, मैं सब सिखा दूँगी।" श्रीदेवी के ये व्यक्त शब्द थे, उनके अव्यक्त शब्द थे, "नही, अम्माजी नही, अब हालत ऐसी हो गयी है कि तुमसे मुझे अलग किया जा रहा है।"

"कल से? नही, नही, कल मगलवार है, उस दिन अध्ययन का आरम्भ नही किया जाता है। परसो से आरम्भ कर दीजिए।" शान्तला ने आग्रह दुहराया।

"अच्छा, ऐसा ही सही।" श्रीदेवी ने उसे आश्वासन दिया, झूठा या सच्चा, यह दूसरी बात है।

रायण ने आकर कहा, "मालिक की आज्ञा हुई है, आप लोग अब वहाँ

बघारें।"

माचिकब्बे चली, बाकी सबने उसका अनुगमन किया।

अलकारों से सजी, घूँघट निकाले ये स्त्रियाँ सुसज्जित बैलगाडी मे जा बैठी।

माचिकब्बे ने पूछा, "रायण। मालिक कहाँ है ?"

"वे पहले ही चले गये, मन्दिर मे विशेष पूजा की तैयारियाँ ठीक से हुई है या नही, यह देखने। अब हम चले।" रायण ने पूछा।

हेग्गडती ने आज्ञा दी। गाडी आगे बढ़ी जब विवाह के बाद पहली बार पति के घर आयी थी तब वह इसी तरह गाडी मे सवार होकर मन्दिर गयी थी। इतने पास है कि फिर गाडी की जरूरत ही नही पडी। वह जानती थी कि भगवान के दर्शन को पैदल ही जाना उत्तम है।

गाडी को खीचनेवाले हृष्ट-पुष्ट सफेद बैल साफ-सुन्दर थे। उनके पैर घुँघरुओ से सजे और सीधे-तराशे सीग इन्द्रधनुष जैसे रँगे थे। गले मे ऊनी पट्टी और उसमे रग-बिरगे डोरो से बने फुदने लगे और उसके दोनो ओर घोघो की बनी माला, केसरिया रग की किनारीवाली पीले रेशम की झूल, कूबड पर सुनहरी कारीगरी-वाला टोप, माथे पर लटके मणिमय-पदक, गले से लटकती घण्टी। गाडी तरह-तरह के चित्रो से अलकृत वस्त्र से आच्छादित की गयी थी। गाडी के अन्दर गद्दा-तकिया और जगह-जगह आइने भी लगे थे। जुआ और चाक बडे आकर्षक रगो से रँगे और चित्रित थे।

यह सारा शोरगुल और धूमधाम माचिकब्बे को अनावश्यक प्रतीत हो रहा था। अपने इस भाव को वह अपने ही अन्दर सीमित नही रख सकी। उसकी टिप्पणियो के उत्तर मे श्रीदेवी ने कहा, "इससे हमे क्या मतलब ? भैया जैसा कहे वैसा करना हमारा काम है।"

"तुम तो छूट जाती हो। कल गाँव के लोग कहेगे, इस हेग्गडती को क्या हो गया है, मन्दिर तक जाने के लिए इतनी धूम-धाम, तब मुझे ही उनके सामने सर झुकाना पडेगा।" वह गाडी की तरफ एकटक देखनेवाले लोगो को देखने लगी। उसके मन मे एक अव्यक्त भय की भावना उत्पन्न हुई।

गाडी मन्दिर के द्वार पर रुकी ही थी कि शहनाई बज उठी। पुजारियो ने वेदमन्त्रो का घोष किया। श्वेत-छत्र के साथ पूर्णकुम्भ महाद्वार पर पहुँचा। महा-द्वार पर रेशम की धोती पहने रेशम का ही उत्तरीय ओढ़े शिवार्चन-रत पुजारी की तरह हेग्गडे मारसिगय्या खडा था। उसके साथ धर्मदर्शी पुजारी आदि थे। शहनाई-वाले महाद्वार के अन्दर खडे थे। मन्दिर के सामने ध्वजस्तम्भ की जगत पर बैठे रहनेवालो मे से एक युवक उसके सामने के अश्वत्थ वृक्ष की जगत के पास भेज दिया गया था।

गाडी से पहले शान्तला उतरी। बाद मे माचिकब्बे हेग्गडती। उनके बाद

श्रीदेवी उतरी। श्रीदेवी का उतरना था कि मारसिंगय्या ने दोनो हाथ जोड़ झुककर प्रणाम किया। कहा, "पधारिये।" माचिकब्बे ने भी तुरन्त झुककर प्रणाम किया।

"यह क्या, भैया ? यह कैसा नाटक रचा है, उस नाटक के अनुरूप वेष भी धारण किया है ? भैया-भाभी मुझसे बडे, बडो से प्रणाम स्वीकार करने जैसा क्या पाप किया है मैंने ?" मारसिंगय्या ने कोई उत्तर न देकर रायण की ओर मुडकर कहा, "रायण, यहाँ आओ। वहाँ देखो, उस अश्वत्थ वृक्ष की जगत पर धारीदार अँगरखा पहने, नारगी रगवाली जरी की पगडी बाँधे जो है उसे, हमारे मन्दिर के अन्दर जाने के बाद तुम उसे भी मन्दिर के अन्दर ले आना।" और श्रीदेवी की ओर मुडकर पूछा, "ठीक है न ?" श्रीदेवी ने इशारे से बताया, "ठीक है।"

सबने महाद्वार के अन्दर प्रवेश किया। मन्दिर के अन्दर किसी के भी प्रवेश की मनाही थी, हेग्गडेजी की कडी आज्ञा थी।

पहले ही से कवि बोकिमय्या, गगाचारी आदि आप्तजन अन्दर के द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे थे।

प्राकार मे श्वेत-छत्र युक्त कलश के साथ परिक्रमा करके सब लोग अन्दर के द्वार पर पहुँचे। बोकिमय्या, गगाचारी आदि ने श्रीदेवी को झुककर प्रणाम किया। श्रीदेवी को ऐसा लगा कि यह सब पूर्व-नियोजित व्यवस्था है। यह सब क्यो किया गया सो उसे मालूम नही हुआ। सभी बातो के लिए उसी को आगे कर दिया जाता था, यह उसके मन को कुछ खटकता रहा। परन्तु वह लोगो के बीच, कुछ कह नही सकती थी। परिक्रमा समाप्त करके सब लोगो ने मन्दिर के नवरग मण्डप मे प्रवेश किया। उसी समय रायण पहुँचा।

"अकेले क्यो चले आये ?" कुछ पीछे खडे मारसिंगय्या ने रायण से पूछा।

रायण ने कहा, "उसने कहा कि मैं नही आऊँगा।"

"क्यो ?"

"उसने यह नही बताया। मैंने बुलाया, उसने कहा, नही आऊँगा। वह बडा लफगा मालूम पडता है।"

"तुम्हे मालूम है कि वह कौन है ?"

"नही, पर उसके देखने के ढग से लगता है कि वह बहुत बडा लफगा है।"

"ऐसा है तो एक काम करो।" उसे थोडी दूर ले जाकर मारसिंगय्या ने उसके कान मे फुसफुसाकर कुछ कहा। वह स्वीकृतिसूचक ढग से सिर हिलाकर वहाँ से चलने को हुआ। "अभी नहीं, तुम यहाँ आओ। पूजा समाप्त कर बाहर जाने तक वह वहीं पडा रहेगा। पूजा समाप्त हो जाये तो तीर्थ-प्रसाद के बाद तुम कुछ पहले ही चले जाना।" कहकर मारसिंगय्या मन्दिर के अन्दर गया। रायण ने भी उसका

अनुसरण किया।

बड़े गम्भीर भाव से पूजा कार्य सम्पूर्ण हुआ। चरणोदक, प्रसाद की थाली लेकर पुजारी गर्भगृह से बाहर आया, श्रीदेवी के समक्ष पुजारी उसका रूप देखकर चकित हो गया और एक-दो क्षण खडा-का-खडा रह गया।

उस दिन का प्रसाद श्रीदेवी को सबसे पहले मिला, उसके बाद क्रमश हेग्गडे, हेग्गडती, उनकी बेटी, धर्मदर्शी आदि को। इसके पश्चात् धर्मदर्शी ने श्रीदेवी को झुककर प्रणाम किया और कहा, "वहाँ कल्याण मण्डप मे गलीचा बिछा दिया है, देवीजी कुछ विश्राम करे।"

श्रीदेवी ने मारसिगय्या की तरफ देखा तो उसने कहा, "बलिपुर मे हेग्गडे की बात का मान है, तो भी यहाँ मन्दिर मे, धर्मदर्शी के कहे अनुसार ही हमे चलना होगा।"

धर्मदर्शी ने सबको पूर्व-नियोजित क्रम से बैठाया और उपाहार की बहुत अच्छी व्यवस्था की।

उसे जो गौरव दिया जा रहा था उसकी धुन मे थोडी देर के लिए वह भूल गयी थी कि वह श्रीदेवी है, चन्दलदेवी नही।

बीच मे धर्मदर्शी ने चन्दलदेवी को लक्ष्य करके कहा, "पता नही कैसा बना है, राजगृह मे उपाहार का आस्वाद लेनेवाली जिह्वा के लिए यह उपाहार रुचता है या नही ?" श्रीदेवी ने फिर मारसिगय्या की ओर देखा।

"बहुत ही स्वादिष्ट है धर्मदर्शीजी, जिस घी का इसमे उपयोग किया गया है वह आपके घर की गाय का होगा, है न ?" मारसिगय्या ने पूछा। हाथ मलते और दाँत निपोरते हुए धर्मदर्शी ने स्वीकृतिसूचक ढग से सर झुकाया।

उपाहार के बाद मारसिगय्या ने गालब्बे को एकान्त मे ले जाकर कुछ कहा जिससे भयभीत होकर वह बोली, "मालिक, मुझे यह सब करने का अभ्यास नही, जो करना है वह न होकर कुछ और ही हो गया तो ! यही नही, मैंने अपने पति से भी नही पूछा, वह गुस्सा हो जाये तब ?"

"मैंने पहले ही उसे यह सब समझा दिया है, उसने स्वीकार भी कर लिया है। तुम निडर होकर काम करो, सब ठीक हो जायेगा। समझ गयी।"

'अच्छा मालिक।"

दोनो फिर कल्याण मण्डप मे आये। प्रसाद बँट चुका था। सब बाहर निकलने को हुए तो आगे-आगे शहनाईवाले चले। सब महाद्वार की ओर चले। गालब्बे पीछे रह गयी, किसी का ध्यान उसकी ओर नही गया।

गाडी मे चढते वक्त माचिकब्बे ने पूछा, "गालब्बे कहाँ है ?"

'अपना शृंगार पति को दिखाने गयी है, दिखा आयेगी। बेचारी, इस तरह कब सज-धज सकेगी ?" हेग्गडे मारसिगय्या ने कहा।

"वह नौकरानी होने पर भी देखने मे बडी सुन्दर है।" श्रीदेवी ने कहा।

गालब्बे ने सबको जाते देखा। डरती हुई-सी, घबराहट का अभिनय करती हुई-सी धीरे-से महाद्वार से बाहर निकली। कुछ इधर-उधर देखा और गाँव के बाहर की ओर कदम बढाये। तब तक सूर्यास्त हो चुका था। अँधेरा छा गया था। गाँव के बाहर एक उजडा हुआ मण्डप है। वहाँ इमली के पेड के नीचे खडी हुई ही थी कि उसे किसी के खाँसने की आवाज सुनायी पडी। "मुझे कोई अपने घर तक पहुँचाने की कृपा करेगा ?" उसकी आवाज़ पर ध्यान दिये बिना ही एक व्यक्ति वहाँ से निकला, रुका नही।

"आप कौन हैं, बोलते क्यो नही ? एक स्त्री भटककर भयभीत हो सहायता की पुकार कर रही है और आप मर्द होकर दिलासा तक नही दे सकते, घर पहुँचाने की बात तो दूर रही।"

वह व्यक्ति पास आया, "तुम कौन हो ?"

'आप कौन है इसी गाँव के है न ?"

'मैं किसी जगह का क्यो न होऊँ उससे तुम्हे क्या मतलब ? तुम्हारा काम बन जाय तो काफी है, है न ?"

"इतना उपकार करके मुझपर दया कीजिए। अँधेरे मे रास्ता भूल गयी हूँ। मन्दिर की सुन्दरता देखती रह गयी। साथवाले छूट गये। यह मुझे स्मरण है कि मन्दिर हेग्गडे के घर के ही पास है। चलते-चलते लग रहा है कि गाँव से बाहर आ गयी हूँ। अगर आप हेग्गडेजी का घर जानते हो तो मुझे वहाँ तक पहुँचा दीजिए, बडी कृपा होगी।"

"तुम कौन हो और यहाँ कब आयी ?"

"कल ही आयी, मै अपनी भाभी को ले जाने आयी थी।"

"ओह ! तो वह तुम्हारी भाभी है !"

"तो मेरी भाभी को आप जानते है ?"

"तुम्हारा भाई बडा भाग्यवान है, अच्छी सुन्दर स्त्री से उसने शादी की है।"

"ऐसा है क्या ?"

"तुम्हारी शादी हुई है क्या ?"

"हाँ।"

"तुम्हारा पति किस गाँव का है ?"

"कोणदूर गाँव का।"

"तुम अपने पति के घर नही गयीं ?"

"नही, उसके लिए हमारे यहाँ एक शास्त्र-विधि है, वह अभी नही हुई।"

"साथ कौन-कौन आये हैं ?"

"मेरा छोटा भाई और हमारे दो सम्बन्धी। अब यह बताइए हमे किस

रास्ते से जाना होगा ?"

"ऐसे, इस तरफ दस पन्द्रह हाथ की दूरी पर जाने पर वहाँ एक पगडण्डी इससे आकर मिल जाती है। वह रास्ता सीधा हेग्गडे के घर तक जाता है। चलो, चले।" कहते हुए उसने कदम आगे बढाया। गालब्बे भी साथ चली।

"ये फूल कौन-से है, तुम्हारे बालो मे बडी सुगन्ध है !"

"ये सुगन्धराज के फूल हैं।"

"मुझे इस बात का आश्चर्य है कि वे तुम्हे अकेली छोडकर कैसे चले गये। ये कैसे लोग है ?"

"मै साहसी हूँ, घर तो पास ही है, पूछताछ कर आ ही जायेगी, यह समझकर चले गये।" कहती हुई गालब्बे वही रुक गयी। पूछा, "यह क्या है, इतनी दूर चलने पर भी आपकी बतायी वह राह मिली नही ?"

"मेरी राह यही नजदीक है।" कहते हुए उसने गालब्बे का हाथ पकड लिया और अपने पास खीच लिया।

"छि छि ! यह क्या दिल्लगी है, हाथ छोडो।"

"वहाँ गड्ढा है। कही उसमे पैर न पड जाये इसलिए हाथ पकडा है।' फिर उसका हाथ छोडकर कहा, "डरो मत, आओ, जो जगह मैने बतायी है वह यही पास मे है।" और आगे बढा। गालब्बे वही रुक गयी।

"क्यो, वही खडी हो गयी ? यदि तुम्हे अपने रास्ते नही पहुँचना तो मै अपना रास्ता लेता हूँ। बुलाया, इसलिए पास आया। नही चाहती तो लौट जाऊँगा। बाद मे शाप न देना।" उसकी आवाज कडी थी और कहने का ढग ऐसा था मानो आखिरी चेतावनी दे रहा हो। गालब्बे जवाब देना चाहती थी, पर घबडाहट मे उसके मुँह से बोल ही न फूट सके। उस आदमी ने फिर से उसका हाथ पकड लिया। वह हाय-तौबा करने लगी।

"तुम कितनी ही जोर से चिल्लाओ, यहाँ सुननेवाला कोई नही। गाँव यहाँ से दूर है।" उस आदमी ने कहा।

"हाय, फिर मुझे यहाँ क्यो ले आये ?" घबडाकर गालब्बे ने पूछा।

"जैसा मैं कहू वैसा मान जाओ तो तुम्हे कोई तकलीफ न होगी। काम होते ही मैं तुम्हे उस जार लफगे के घर पहुँचा दूँगा।" कहकर उसने उसका हाथ छोड दिया।

हाथ को मलती-फूँकती गालब्बे बोली, "आप भले आदमी है। पहले मुझे घर पहुँचा दीजिए। फिर अपना काम कर लीजिए।"

"तुम अपने गाँव कब जाओगी ?" उसकी आवाज कुछ कोमल हुई।

"परसो।" गालब्बे ने कहा।

"एक काम करोगी ? कल शाम को अँधेरा होने पर गुप्त रूप से तुम अपनी.

भाभी को यहाँ बुला लाओगी ?"

"क्यो ?"

"यह सब मत पूछो। वह मुझे चाहिए, बस।"

"उसकी शादी हो गयी है। उसके बारे मे ऐसा कहना ठीक नही।"

"उसे इन सब बातो की परवाह नही।"

"क्यो उसके बारे मे ऐसी बातें कह रहे हैं ?"

"मैं सच कह रहा हूँ। उसे तुम्हारे भाई की चाह नही है।"

"मतलब ?"

"तुम्हारे साथ चलने का-सा नाटक करेगी, पति को जहर देकर मार डालेगी, फिर यही आयेगी।"

"छि छि ! यह क्या बात कर रहे है ? अपनी कसम, मेरी भाभी ऐसी कभी नही।"

"बेचारी, अभी तुम क्या जानो, कच्ची हो। वह बदमाश है, उसने उसे अपनी रखैल बना रखा है।"

"वह बदमाश कौन है ?"

"वही हेग्गडे, बडा शिवभक्त होने का नाटक रचा था आज भस्म धारण करके।"

"अजी, तुम्हारी सारी बाते झूठ हैं। हम सब परसो गाँव जानेवाले हैं आज सोमवती अमावस्या है। अच्छा पर्व है। इसलिए हमारी भाभी की भलाई के लिए हेग्गडेजी ने मन्दिर मे विशेष पूजा की व्यवस्था की थी। वे तो उन्हे अपनी बेटी मानते है।"

वह ठहाका मारकर हँसने लगा। "तुम एक अनजान स्त्री हो। यह सब तुम्हारी समझ मे नही आता। अपनी ही आँखो के सामने अपने पति की रखैल का आदर-सत्कार होता रहा, उसे देखती चुपचाप खडी रही वह हेग्गडती।"

"मुझे तो आपकी बातो पर विश्वास ही नही होता।"

"एक काम करो, तुम्हे विश्वास होगा। कल तुम उसे बुला ही लाओ। तुम्हारे सामने ही साबित कर दूँगा। उस औरत को दूर रखकर तुम अपने भाई की जान बचा सकोगी।"

"ऐसी बात है तो आपकी कसम, बुला लाऊँगी। मुझे घर पहुँचा दीजिए। आपका भला हो।"

"अपने अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। स्त्री मछली की तरह होती है, ढील देने पर फिसल जाती है। इसलिए मुझे तुम्हारा विश्वास ही नही हो रहा है।"

"मैं ऐसी नही, एक बार वचन दिया तो निबाहूँगी।"

"मैं विश्वास नही करता । तुम मेरी पकड मे रहोगी तो वह काम करोगी। तुम्हे पहले अपनी पकड मे रखकर फिर तुम्हे घर पहुँचाऊँगा । तभी कल तुम अपनी भाभी को लाओगी । ठीक, तो चलो अब ।" कहते हुए उसने कदम बढाया । हेग्गडेजी ने जिस मण्डप का जिक्र किया था वह अभी दिखा ही था कि कुछ आगे कुछ चलकर उसने उसे पुकारा, "अजी, सुनिए ।"

"कहिए ।"

"आपकी शादी हो गयी ?" गालब्बे ने पूछा ।

"लडकी देखने के लिए आया हूँ ।" उसने उत्तर दिया । दोनो साथ-साथ आगे बढ़े ।

"पक्की हो गयी ?"

"कोई पसन्द ही नही आयी ।"

"तो शादी लायक सभी लडकियाँ देख ली ।"

"कल किसी ने बताया था, अभी एक लडकी और है और वह बहुत सुन्दर है ।"

"तब तो उसे देख चुकने के बाद आप दूसरे गाँव जायेगे ।"

"क्यो ?"

"ऐसे ही रोज एक लडकी को देखना और उनके यहाँ खाते-पीते "

"ओह-हो, मैने तुमको कुछ और समझा था । तुम तो मेरा रहस्य ही समझ गयी ।"

"आपका रहस्य क्या है, मैं नही समझी ।"

'वही रोज एक लडकी ।" उसके कन्धे पर हाथ रखकर वह हँस पडा । हाय, कहकर वह दो कदम पीछे हट गयी ।

"क्यो, क्या हुआ ?"

"इस अँधेरे मे पता नही पैर मे क्या चुभ गया । तलुवे मे बडा दर्द हो रहा है । कहाँ है वह रास्ता जिसे आपने बताया था ? अभी तक नही मिला वह ?"

"इस मण्टप मे थोडी देर बैठेगे, जब तुम्हारे पैर का दर्द कम हो जायगा, तब चलेगे ।"

"ऐसा ही करे । मुझे सर्दी भी लग रही है ।"

"हाँ, आओ ।"

उसने अपनी पगडी उतारी और मण्डप की जमीन उसी से साफ करके वही बिछा दी ।

"हाय हाय, ऐसी अच्छी जरी की पगडी ही आपने बिछा दी !"

"तुम्हारी साडी बहुत भारी और कीमती है । बैठो, बैठो ।" कहते हुए उसका हाथ खीचा और खुद बैठ गया । वह भी धम्म से बैठ गयी । "जरा देखूँ, काँटा किस

पैर मे चुभा है।" कहता हुआ वह उसके और पास सरक आया।

"अजी, जरा ठहरो भी। खुद निकाले लेती हूँ।" उसने लम्बी साँस ले हाथ इस तरह ऊपर किया कि उसकी कोहनी उस आदमी की नाक पर जोर से लगी।

"हाय" उस व्यक्ति की चीख निकल गयी।

"क्या हुआ जी, अँधेरा है साफ नही दिखता।"

"कुछ नही, तुम्हारी कोहनी नाक पर लगी, कुछ दर्द हुआ। काँटा निकल गया न ?"

"आखिर निकल ही गया।"

"कहाँ है ?"

"फेक दिया।"

"अब भी दर्द हो रहा है।"

"अब उतना नही।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"यह सब क्यो जी, उठो, देरी हो रही है। कल अपनी भाभी को लेकर फिर भी आना है।"

"हाँ, ठीक है। जल्दी काम करे और चलें।"

"कर लिया है न काम ? काँटा निकल गया है, चलेंगे।"

"पर इतने से काम नही हुआ न ?"

"तुम क्या कहना चाहते हो ?"

"वही।" उसने गालब्बे की कमर मे हाथ डाला।

'हाय, हाय, मुझे छोड दीजिए। आपकी हथेली लोहे-जैसी कडी है।"

"हथेली का ऐसा कडा होना आदमी के अधिक पौरुष का लक्षण है।"

"आप तो सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञाता मालूम पडते है।" कहती हुई वह उसके हाथ को सूँघने का बहाना करके नाक तक लायी और उसके अँगूठे की जड मे सारी शक्ति से दाँत गडा दिये।

इतने मे मण्डप मे दोनो ओर जलती हुई मशाले थामे आठ लोग आ पहुँचे।

गालब्बे ने उसका अँगूठा छोडा और मुँह मे उसका जो खून था उसे उस पर थूककर दूर खडी हो गयी। उस आदमी ने भागने की कोशिश की, परन्तु इन लोगो ने पकडकर उसके दोनो हाथ बाँध दिये और उसे साथ ले गये।

"इतनी देरी क्यो की, रायण ?" गालब्बे ने आँसू भरकर पीछे रह गये रायण से पूछा।

"कुछ गलतफहमी हो गयी। भूल से मैं पश्चिम की ओरवाले मण्डप की तरफ चला गया था। अचानक याद आयी। इधर से उधर, इस उत्तर दिशा की ओरवाले मण्डप की ओर भागा-भागा आया। कोई तकलीफ तो नही हुई न ?"

"मैं तो सोच चुकी थी कि आज मेरा काम खतम हो गया, रायण। दिल इतने ज़ोर से धड़क रहा था, ऐसा लग रहा था दिल की धड़कन से ही मर जाऊँगी। मेरी सारी बुद्धि-शक्ति खतम हो गयी थी। चाहे, हाथ का ही हो, उस बदमाश का स्पर्श हुआ न? मुझे अपने से ही घृणा हो रही है।"

"उस गन्दगी को उसी पर थूक दिया न? जाने दो, यह बताओ कि क्या हुआ।"

"चलो, चलते-चलते सब बता दूँगी।" रास्ते मे उसने सारा विवरण ज्यों-का-त्यो सुना दिया। फिर दोनो मौन, घर पहुँचे।

इधर गालब्बे के आने मे देरी होने से हेग्गडे मारसिगय्या घबडा गये थे। वह क्षण-क्षण राह देखते बरामदे मे चहलकदमी करने लगे। रायण को गालब्बे के साथ देखते ही बरामदे की जगत से एकदम कूदकर तेज़ी मे उनके पास आये, "देर क्यो हो गयी। कुछ अनहोनी तो नही हुई?"

"घबडाने की कोई बात नही, मालिक। देर होने पर भी मब काम मफलता से हो गया।" गालब्बे ने कहा।

"अन्दर चलो, गालब्बे। तुम सुरक्षित लौटी, मैं बच गया, वरना तुम्हारी हेग्गडती को समझाना असम्भव हो जाता।" मारसिगय्या ने कहा।

गालब्बे अन्दर जाने लगी तो उसने फिर पूछा, "जो बताया था वह याद है न?"

"हाँ, याद है।" इशारे से गालब्बे ने बताया और अन्दर गयी।

"रायण, क्या-क्या हुआ, बताओ।" कहते हुए रायण के माथ मारसिगय्या बरामदे के कमरे मे आये।

बुधवार, दूज को प्रस्थान शुभ मानकर श्रीदेवी की विदा की तैयारियाँ हो रही थी। उन्हे मालूम हो चुका था कि जिसने उसे छेडा था उसे पकड लिया गया है। वास्तव मे, वहाँ क्या और कैसे हुआ, आदि बातो का ब्यौरा केवल चार ही व्यक्ति जानते थे, गालब्बे, रायण, मारसिगय्या और वह बदमाश। यह हेग्गडे की कडी आज्ञा थी कि यहाँ तक कि श्रीदेवी और हेग्गडती को भी इससे अनभिज्ञ रखा जाये। हेग्गडे का घर बन्दनवार और पताकाओ से सजाया गया था। घर के सामने का विशाल आँगन लीप-पोतकर स्वच्छ किया गया था। जगह-जगह रग-बिरगे चित्र और रगोलियाँ बनायी गयी थी। हेग्गडे का घर उत्साह से भर गया

यात्रा की तैयारियाँ बड़े पैमाने पर धूमधाम के साथ होने लगी। एक प्रीति-भोज की व्यवस्था की गयी थी। बहुत मना करने पर भी श्रीदेवी के शास्त्रोक्त रीति से तैल-स्नान का आयोजन माचिकब्बे कर रही थी।

तैल-मार्जन के परम्परागत क्रम मे उसने श्रीदेवी को मणिमय पीठ पर बैठाकर हल्दी-कुकुम लगाया, तेल लगाते समय गाया जानेवाला एक परम्परागत लोकगीत ब-तर्ज गाया गया। गाती हुई खुद माचिकब्बे ने चमेली के फूल से श्रीदेवी के तेल लगाया।

श्रीदेवी ने आश्चर्य से कहा, "भाभी, आपका कण्ठ कितना मधुर है।"

"मुझे मालूम ही नही था।" शान्तला की टिप्पणी थी।

"छोडो भी, मेरा गाना भी क्या? मेरी माँ गाया करती थी, वह तुम लोगो को सुनना चाहिए था। मेरे पिता बड़े क्रोधी स्वभाव के थे। यथा नाम तथा काम। मगर मेरी माताजी गाती तो पिताजी ऐसे सिर हिलाते हुए बैठ जाते जैसी पूँगी का नाद सुनकर नाग शान्त होकर फन हिलाता हुआ बैठ जाता है। उन्होने मुझे भी सिखाया था, हालाँकि मुझे सीखने की उतनी उत्सुकता नही थी। इतने मे मुझे दसवाँ वर्ष लगा तो मेरा विवाह हो गया। इस वजह से मै कुछ परम्परागत गीत ही सीख सकी जो विवाह के समय नव-दम्पती के आगे गाये जाते है। आज कुछ गाने का मन हुआ तो गा दिया। तुम्हे विदा करने मे मेरा मन हिचकता है।" माचिकब्बे ने कहा।

"अच्छा, अब जाऊँगी तो क्या फिर कभी नही आऊँगी क्या?" श्रीदेवी ने कहा।

"अब तक तुम यहाँ रही, यही हमारा सौभाग्य था। बार-बार ऐसा सौभाग्य मिलता है क्या?" गालब्बे आरती का थाल ले आयी। दोनो ने मिलकर श्रीदेवी की आरती उतारी। माचिकब्बे ने फिर एक पारम्परिक गीत गाया। कुनकुने सुगन्धित जल मे मगल-स्नान कराया और यज्ञेश्वर की रक्षा भी लगायी।

लोगो मे यह सब चर्चा का विषय बन गया। सुनते है हेग्गडे अपनी बहन को पति के घर भेज रहे है। ससुराल के लोग उन्हे लेने के लिए आये है। आज हेग्गडती मागलिक ढग से क्षेमतण्डुल देकर विदा करेगी। इष्टमित्र और आप्तजनो के लिए भोज देने की व्यवस्था भी है।

इन बातो के साथ कुछ लोग अण्टसण्ट बाते भी कर रहे थे। कोई कहता, यह हेग्गडे कोई साधारण आदमी नही, रहस्य के खुलने पर भी उसी को गर्व की बात मानकर उस कुलटा को सजा-धजाकर मन्दिर ले गया और सबके सामने उसे प्रदर्शित किया और गाँव के लोगो के सामने उसे मन्दिर मे हेग्गडती से नमस्कार भी करवा दिया। दूसरा बोला, हे भगवान! कैसा बुरा समय आ गया, यह सब

देखने के बाद कौन किसी पर विश्वास करेगा, कैसे करेगा ! गाँव का मालिक ही जब इस तरह का व्यवहार करे तो दूसरो को पूछनेवाला ही कौन है, तीसरे ने कहा। चुनाव करने मे तो वह सिद्धहस्त है, ऐसी सुन्दर चीज कहाँ से उडा लाया कुछ पता नही, एक और बोला। देखो कितने दिन वह उसे अपना बनाकर रखता है, बीच मे कोई बोल उठा।

इस गोष्ठी मे कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्हे जानकार लोग कहा जा सकता है।

"यह रहस्य खोलनेवाले का पता ही नही। वह गया कहाँ। कल उसने लैंक की साली को देखने का सब इन्तजाम किया था।"

"शायद उसकी आँख और किसी गाँव की लडकी पर लगी होगी। लेकिन कल वह आयेगा जरूर।"

"सो तो ठीक है, असल मे वह है कौन ?"

"कहा जाता है, वह कल्याण का हीरे-जवाहरात का व्यापारी है।"

"वह यहाँ क्यो आया, दोरसमुद्र गया होता तो उसका सौदा वहाँ बहुत अच्छा पटा होता।"

"सुनते है वह इसी उद्देश्य से निकला था। वहाँ दिखाने लायक जेवर-जवाहरात अभी उसके पास पहुँचे नही। उन्ही की प्रतीक्षा कर रहा है।"

"वह कहाँ ठहरा है ?"

"उस आखिरी घरवाले रगगौडा के यहाँ।"

"छोडो, अच्छा हुआ। उस पूरे घर मे वह आधी अन्धी बुढिया अकेली रहती है। उसका बेटा युद्ध मे गया है। सुनते है, बहू प्रसव के लिए मायके गयी है और कह गयी है कि पति के लौटने के बाद आऊँगी। अगर वह यहाँ होती तो यह कोई चमकदार पत्थर दिखाकर उसे अपने जाल मे फँसा लेता।"

"सच कहा जाये तो ऐसे व्यक्तियों को शादी करनी ही नही चाहिए।"

"अगर कोई लडकी किसी दिन न मिली तो वह क्या करे इसलिए उसने सोचा कि किसी लडकी से शादी कर ले तो वह घर मे पडी रहेगी।"

"लडकी खोजने के लिए क्या और कोई जगह उसे नही मिली ?"

"बडा गाँव है, शादी के योग्य अनेक लडकियाँ होगी, एक नही तो दूसरी मिल ही जायेगी, यही सोचकर यहाँ रह रहा है।"

यो बेकार लोगो मे मनमाने ढग की बाते चल ही रही थी कि झुण्ड-के-झुण्ड घोडे सरपट दौडते आ रहे दिखे जिससे गप्पियो की यह जमात घबडाकर धोती-फेंटा ठीक करती हुई उस तरफ देखने लगी, उनमे से किसी ने कहा, "सेना आ रही होगी।"

सब लोग इर्द-गिर्द की छोटी गलियो से होकर जान बचाकर भागने लगे। कुछ

लोग राजपथ की ओर झाँक-झाँककर देखने लगे। कुछ अपने घर पहुँच गये। उसी समय एक वृद्ध पुरुष मन्दिर से आ रहा था, भागनेवालो को देखा तो पूछा, "अरे घबडाकर क्यो जा रहे हो ?"

एक ने कहा, "सेना है।"

"सेना ! ऐसा है तो भागकर हेग्गडेजी को खबर दो।" बूढ़े ने कहा।

"यह ठीक है" कहता हुआ एक आदमी उधर दौड गया।

बेचारा वृद्ध न आगे जा सका, न पीछे हट सका। वही एक पत्थर पर बैठ गया।

गाँव के राजपथ के छोर पर पहुँचते ही घोडे रास्ते के दोनो ओर कतार बाँधकर धीमी चाल मे आगे बढे। बीच रास्ते मे चल रहे सफेद घोडे पर सवार व्यक्ति का गम्भीर भाव दर्शनीय था। उन सवारो के आने के ढग से लगता था कि डर की कोई बात नही, बल्कि वह दृश्य बडा ही मनोहर लग रहा था। वे उस रास्ते से इस तरह जा रहे थे मानो बलिपुर से खूब परिचित हो। वे सीधे हेग्गडे के घर के प्राचीर के मुख्य द्वार के पास दोनो ओर कतार बाँधे खडे हो गये। बीच के उस सवार ने दरवाज़े के पास घोडा रोका।

हेग्गडे, रायण और दो-चार लोग हडबडाकर बाहर भाग आये। सफेद घोडे के सवार पर दृष्टि पडते ही हेग्गडे ने उसे प्रणाम किया। सवार ने होठो पर उँगली रखकर कुछ न बोलने का सकेत किया और घोडे से उतरा। अपने आस-पास खडे लोगो के कान मे हेग्गडे मारसिंगय्या कुछ फुसफुसाया। उनमे से कुछ लोग अहाते से बाहर निकले और दो व्यक्ति अन्दर की ओर बढे।

हेग्गडे मारसिंगय्या फाटक पर आये। अतिथि-सत्कार की विधि के अनुसार फिर झुककर प्रणाम किया और दोनो हाथ अन्दर की ओर करके कहा, "पधारिए।"

इतने ही मे लोग अपने-अपने घरो की जगत पर कुतूहल-भरी दृष्टि से उन नवागन्तुको को देखने के लिए जमा हो गये।

कोई कहने लगा, बहन का पति होगा, पत्नी को ले जाने आया है। दूसरा बोला, अच्छा है, अच्छी जगह बहन का ब्याह किया है। और तीसरा कहने लगा, भारी भरकम आदमी है, पुरुष हो तो ऐसा। किसी ने चिन्ता व्यक्त की, इसकी उम्र कुछ ज्यादा हो गयी है। दूसरे ने अनुमान लगाया, शायद दूसरी शादी होगी। कोई दूर की कौडी लाया, हेग्गडे की बहन की एक सौत भी है। कोई उससे दो-चार हुआ, सौत होने पर भी यह छिनाल इन्हे नचाती है, यह क्या कोई साधारण औरत है ?

इतने मे अन्दर से मगवाद्य आया, मार्गदर्शक दीपधारी आये, चाँदी का कलश हाथ मे लिये शान्तला आयी। गालब्बे चौकी ले आयी, मारसिगय्या ने अतिथि से

उस पर खड़े होने का आग्रह किया। माचिकब्बे ने अतिथि के माथे पर रोरी का टीका लगाकर उन्हें फल-पान किया और गालब्बे को साथ लेकर उसकी आरती उतारी।

सब अतिथि अन्दर गये। घोड़े घुड़साल भेजे गये। सारा आँगन खाली हो गया। खाली आँगन देखने के लिए कौन खड़ा रहेगा? सब प्रेक्षक अपने-अपने घर गये, अपने घरों में जो बना था उसे खाया और आराम में सो गये। जूठे पत्तल चाटकर छाँह में कुत्ते जीभ फैलाकर, पाँव पसारे, कान उठाये, पूँछ दबाये आराम करने का ढोंग करते इधर-उधर नज़र फेंकते पड़े रहे।

दूसरे दिन भयंकर गर्मी की खामोश दुपहरी में ढोल की आवाज दो-चार स्थानों से एक ही साथ सुनायी पड़ी। पान की पीक थूकने के लिए जो लोग बाहर आये थे, वही खड़े सुनने लगे। कुछ लोग आधी नींद में ही उठकर बाहर आ गये। बरतन-बासन धोती घर की स्त्रियाँ वैसे कालिख लगे हाथों, गिरी-टूटी दीवारों के सहारे खड़ी बाहर देखने लगीं। बच्चे कोई तमाशा समझकर ताली बजाते हुए दौड़ पड़े।

ढोल की आवाज बन्द हुई, घोषकों की आवाज शुरू हुई, "सुनो, बलिपुर के महाजनो, सुनो! आज शाम को चौथे पहर में बड़े हेग्गड़े मारसिंगय्याजी के आँगन में बलिपुर के पंचों की सभा होगी। दण्डनीय अपराध करनेवाले एक व्यक्ति के अपराधों पर खुलेआम विचार होगा। हर कोई आ सकता है। सुनो, सुनो, बलिपुरवालो।"

लोगों में फिर टिप्पणियों का दौर चला। क्या, कहाँ, वह व्यक्ति कौन है? उसने क्या किया। अचानक ही पंचों की सभा बैठेगी तो कोई खास बात है। सभा बैठेगी हेग्गड़े के अहाते में, वहाँ सभा क्यों हो? गाँव में इस तरह के कामों के लिए आखिर स्थान किसलिए है?

हेग्गड़े का विशाल अहाता लोगों से खचाखच भर गया। बरामदे को अपर्याप्त समझकर उसके दक्षिण की ओर बरामदे की ऊँचाई के बराबर ऊँचा एक मंच बनाया गया और ऊपर शामियाना तानकर लगवाया। मंच पर सुन्दर दरी बिछा दी गयी जिसपर प्रमुख लोगों के बैठने की व्यवस्था की गयी।

पंच उत्तर की ओर मुँह करके बैठे। उनमें बड़ा हरिहर नायक बीच में बैठा, वह भारी-भरकम आदमी था और उसका विशाल चेहरा सफेद दाढ़ी-मूँछ से

सजकर बहुत गम्भीर लगता था। शेष लोग उससे उम्र मे कुछ कम थे, परन्तु उनमे कोई पचास से कम उम्र का न था। बरामदे मे दो खास आसन रखे गये थे, उनपर कोई बैठा न था। हेग्गडे मारसिंगय्या और उनके परिवार के लोग बरामदे मे एक तरफ बैठे थे। मच की बगल मे हथियारो से लैस कुछ सिपाही खडे थे, उनमे से एक को मारसिंगय्या ने बुलाकर उसके कान मे कुछ कहा।

"नियत समय आ गया है, अब पच अपना काम आरम्भ कर सकते हैं," सरपच हरिहर नायक ने कहा, "हेग्गडेजी, आपसे प्राप्त लिखित शिकायत के आधार पर यह पचायत बैठी है। आपकी शिकायत मे लिखित सभी बातो को प्रमाणित करने के लिए आवश्यक सब गवाहो को इस पचायत के सामने प्रस्तुत किया जाये।"

"चार-पाँच क्षण का अवकाश दें, मेरी विनती है, अभियुक्त और तीन मुख्य गवाहो का आना शेष है। उन्हे बुला लाने के लिए आदमी गये हैं।" मारसिंगय्या ने कहा।

अहाते के पास पहरे से घिरी एक गाडी आ पहुँची। हाथ बँधे हुए अभियुक्त को उतारकर उसके लिए निश्चित स्थान पर ले जाकर खडा किया गया। उसके पीछे दो हथियारबन्द सैनिक खडे हो गये।

उपस्थित लोगो की भीड मे से एक आवाज उठी, "अरे, यह तो कल्याण के हीरे-जवाहरात का व्यापारी है।"

पचो मे से एक ने ज़ोर से कहा, "खामोश।"

हेग्गडेजी के घर के अन्दर से सैनिक आने लगे। प्रत्येक सैनिक व्यवस्थित रीति से अपनी-अपनी जगह खडा हो गया। अन्त मे हेग्गड़ेजी के वह श्रीमान् अतिथि आये, उनके पीछे शान्तला के साथ श्रीदेवी ओर उनके पीछे गालब्बे और और दासब्बे आयी। सबके पीछे लेक आया। श्रीमान् अतिथि पचो की वन्दना कर हेग्गडे के दर्शाये आसन पर बैठे। पचो ने कुछ सर झुकाकर मुसकराते हुए उनका अभिवादन किया। श्रीदेवी ने भी आते ही पचो की वन्दना की और दिखाये गये आसन पर बैठी। शान्तला भी वन्दना करके अपनी माता के पास जा बैठी। गालब्बे, दासब्बे और लेक सबने वन्दना की और हेग्गडे के पास थोडी दूर पर बैठे।

तब हेग्गडे ने पूछा, "रायण, सब आ गये न ?"

"हाँ, मालिक, सब आ गये।"

"अब पच अपना कार्य आरम्भ कर सकते है।" हेग्गडे ने पचो से विनती की।

पचो ने आपस मे कुछ बातचीत की। तब तक लोग बलिपुर के लिए अपरिचित इस श्रीमन्त अतिथि की ओर कुतूहल-भरी दृष्टि से देखते हुए आपस मे ही

फुसफुसाने लगे। पचो की बातचीत खतम होने पर भी यह फुसफुसाहट चलती रही तो पचो ने गम्भीर घण्टानाद की तरह कहा, "खामोश।"

सरपच हरिहर नायक ने कहा, "इस मामले पर विचार-विनिमय कर एक निर्णय पर पहुँचे है। हेग्गडे से प्राप्त शिकायत-पत्र को हमने पूरा पढकर उस अभियुक्त को सुनवाया है। इसलिए हमने पहले उसका बयान सुनने का निर्णय किया है। पहले उसे शपथ दिलायी जाये।"

अभियुक्त के पास आकर धर्मदर्शी ने कहा, 'तुम अपने इष्टदेव के नाम पर शपथ लो कि मै इस न्यायपीठ के सामने सत्य कहूँगा।"

"शपथ लेकर भी अगर कोई झूठ बोले तो उसका क्या दण्डविधान है ?" अभियुक्त ने पूछा।

"वह न्यायपीठ से सम्बन्धित विषय है। न्यायपीठ के सामने सत्य ही की अपेक्षा की जाती है। शपथ लेने के बाद बयान देने पर, उसके सत्यासत्य के निर्णय का अधिकार भी इस न्यायपीठ का है।"

"ठीक है, न्यायपीठ की आज्ञा से मै अपने इष्टदेव की शपथ लेकर सत्य ही कहूँगा।"

"हेग्गडे ने जो शिकायत दी है सो तुम जानते हो। क्या तुम इसे स्वीकार करते हो ?" हरिहर नायक ने पूछा।

"आपके हेग्गडे सत्यवान् है, उन्होने जो शिकायत दी है, वह सत्य है इसलिए मुझे स्वीकार करना चाहिए, आपका क्या यही आशय है ?"

"इस तरह न्यायपीठ से सवाल करना अनुचित है। यह व्यवहार कन्नड सस्कृति के विरुद्ध है। तुम्हारे व्यवहार से लगता है कि तुम इस सस्कृति के नही हो।"

"मै कर्नाटक का ही हूँ। यदि मेरा प्रश्न करना गलत हो तो मै न्यायपीठ से क्षमा माँगता हूँ।"

"तो इन शिकायतो को मानते हो ?"

"सारी शिकायते झूठ हैं।"

"इसे झूठ साबित करने के लिए तुम्हारे पास कोई गवाह है ?"

"मैं यहाँ अकेला आया हूँ। मेरी ओर से गवाही कौन देगा ?"

"कोई हो तो कहो, उसे बुलवा हम लेगे।"

"एक है, वह बलिपुर मे ही पैदा होकर यही का पला हुआ है। वह कई बार मेरी मदद भी कर चुका है।"

"वह कौन है ?"

"बूतुग उसका नाम है। वह चिनिवारपेट मुहल्ले मे रहता है।"

"हेग्गडेजी, उसे बुलवाइये।" हरिहर नायक ने कहा और हेग्गडे ने लेंक को

उसे बुलाने के लिए भेज दिया।

"अच्छा, अभियुक्त तुम खुद को निरपराधी साबित करने के लिए कोई बयान देना चाहते हो इस न्यायपीठ के सामने ?"

"अभी देना होगा या बाद में भी दिया जा सकेगा ?"

"अगर बयान सत्य पर आधारित हो तो सदा एक-सा ही होगा। बाद का बयान सुनकर तौलकर उचित बयान देना चाहोगे तो इसकी स्वतन्त्रता तुम्हे होगी।"

"देरी मे कहूँ तब भी सत्य सत्य ही होगा न ?"

"ठीक, बाद मे ही अपना बयान देना। हेग्गडेजी, अब आप अपनी शिकायतो को साबित करने के लिए अपने गवाह बुलाइए।"

हेग्गडे मारसिगय्या ने रायण को ग्वालियन मल्लि को बुला लाने का आदेश दिया, इतने मे लेक बूतुग को ले आया, सरपच मे हेग्गडे मारसिंगय्या ने कहा, 'यही बूतुग है।"

'अच्छा, ग्वालियन मल्लि के आने से पहले बूतुग की गवाही ली जायेगी, वह शपथ ले।" और उसके विधिवत् शपथ ले चुकने पर उन्होने अभियुक्त की ओर सकेत करके पूछा, "तुम इसे जानते हो ?"

'हाँ, जानता हूँ।"

"तुम लोगो मे परस्पर परिचय कैसे हुआ, क्यो हुआ, यह सारा वृत्तान्त बताओ।"

"ऐसे ही एक दिन गाँव के सदर दरवाज़े के सामने पीपल की जगत पर मैं गूलर खाता बैठा था, तब यह आदमी पहले-पहल गाँव मे आ रहा था। यह मेरे पास आया और पूछा कि इस गाँव का क्या नाम है। मैंने कहा बलिपुर। आखिर जिस गाँव की खोज मै कर रहा था वह मिल ही गया, कहता हुआ यह मेरी बगल मे उसी जगत पर आ बैठा। गूलर खाते देखकर इसने मुझसे पूछा, क्या बलिपुर मे यही अजीर है ! मैने कहा कि यह गरीबो का अजीर है। इसने कहा मेरी मदद करो। मै तुम्हारी गरीबी को मिटा दूँगा। तुमको उस जगह ले जाऊँगा जहाँ सच-मुच अजीर मिलेगा। और इसने सोने का एक वराह-मुद्राकित सिक्का मेरे हाथ मे थमा दिया। उसे मैंने अण्टी मे खोस लिया। मुझे लगा कि यह कोई धर्मात्मा है। यह मुझे अच्छा लगा। मैंने पूछा, यहाँ क्यो और कहाँ से आये। इसने कहा कि मै कल्याण से आया हूँ। वहाँ मेरा बडा कारोबार है। मै जवाहरात का व्यापारी हूँ। चालुक्य चक्रवर्ती को और रानियो को मैं ही हीरे-जवाहरात के गहने बेचा करता हूँ। वैसे ही, अपने व्यापार को बढाने के ख्याल से इस प्रसिद्ध पोय्सल राजधानी के राजमहल मे जेवर बेचने के इरादे से आया हूँ। हालाँकि, अभी करहाट से आ रहा हूँ। राजमहल मे दिखाने लायक जेवर खतम हो जाने से लोगो को कल्याण भेजा

है। इसने यह भी कहा सुनते है कि यहाँ के हेग्गडे और पोय्सल राजवशियो मे गहरा स्नेह है इसलिए इनको अपना बनाकर इनसे परिचय-पत्र प्राप्त कर वहाँ जाना चाहता हूँ। इसीलिए जो लोग और जेवर लेने कल्याण गये है उनके आने तक, यहाँ ठहरने के लिए जगह की जरूरत है। एक जगह मेरे लिए बना दो। मैंने स्वीकार किया। आखिरी घरवाला रागौडा युद्ध मे गया है, उसकी पत्नी प्रसव के लिए मायके गयी है, इसलिए शायद वहाँ जगह मिल सकेगी, यह सोचकर इसको वहाँ ले गया। बुढिया मान गयी। इससे हम दोनो मे "आप" का प्रयोग छूटा, तू, तुम का ही प्रयोग होने लगा, स्नेह के बढते-बढते। बेचारा अच्छा आदमी है, बहुत उदार भी। हमारे गाँव मे ऐसा कोई आदमी नही। ऐसे ही दिन गुजरते गये, लेकिन आदमी कल्याण से नही आये। बेचारा घबडा गया। वहाँ जो युद्ध हो रहा है उसके कारण वे कही अटक गये होगे। इसलिए मैने उसे खुद ही एक बार कल्याण हो आने को कहा, उसने कहा अगर अचानक रास्ते मे मुझे भी कुछ हो जाए तो क्या हो, और मैं इधर मे जाऊँ और वे उधर से आ जाएँ तो भी मुश्किल। यहाँ एक अच्छा घर है, तुम-जैसे दोस्त भी है। लोगो के आने तक मैं यही रहूँगा। ऐसी हालत मे मैने सलाह दी कि तुम अकेले हो, घर भी है, कहते हो अभी शादी नही हुई हे। हमारे गाँव की ही किसी लडकी से शादी कर लो। बेचारा अच्छा है। कहने ही मेरी सलाह मान ली।"

पचो मे से एक ने कहा, "शादी हो गयी ?"

"ऐसे धनी पुरुष के लिए ठीक जोडी का मिलना यहाँ मुश्किल हुआ। इस बेचारे को जहाँ भी लडकी दिखाने ले गया वही गया लेकिन वहाँ खाना खाता, गाना सुनता और वहा से उठता हुआ कहता, बाद को बताऊँगा। वास्तव मे आज इसी वक्त एक और लडकी देखने जाना था। उसका भी मैंने ही निश्चय किया था। पता नही क्या हो गया। कोई चाल चलकर इसे परसो पकडा है चाण्डालो ने। मुझे शका है। मैने, पता नही किससे, कहा था कि शायद वह पास के गाँव हरिगे या गिरिगे गया होगा। वह इसी तरह दो-तीन दिन मे एक बार कही-न-कही जाया-आया करता है। ऐसे ही शायद गया होगा, समझकर चुप रह गया। अभी यो ही खा-पीकर बैठा था। किसी ने कहा कि मालिक के घर मे बडी विचार सभा होगी। इसी ओर आ रहा था। इतने मे लेक आया और बोला मालिक बुला रहे है। मुझे लगा कि मैं बडा आदमी हो गया, चला आया।"

"इसके बारे मे तुम्हे कोई और बात मालूम है ?" सरपच हरिहर नायक ने पूछा।

"सब कह दिया। अगर कोई और बात याद आयेगी तो फिर कहूँगा।" बूतुग बोला।

"उसे आज कौन-सी लडकी देखनी थी ?"

"वही, जो मुझे बुलाने आया था न, वह लेंक। उसकी औरत की बहन को देखनेवाला था।"

"तुमने कहा, वह कभी-कभी बाहर जाता था। कहाँ और क्यो जाता था तुमको मालूम है ?"

"मै उससे क्यो पूछता ? सच बात तो यह कि मैं उसके साथ रहता ही न था। वही मिलने को मेरे पास कभी आ जाता। हम तो खेतिहर हैं, सुबह से शाम तक मिट्टी मे रहनेवाले। यह चमकदार पत्थरो के बीच रहनेवाला। कुछ पूर्वजन्म के ऋण-बन्ध से स्नेह हुआ है। इतना ही।"

"शिष्टाचार के नाते तुमने पूछा नही, यह भलमानसी का लक्षण है। पर उसने खुद तुमसे कुछ नही कहा ?"

"नही, वह क्या-क्या कहता था, मुझे याद नही पडता। याद रखने लायक कोई बात तो नही। हाँ, वह बडी मजेदार कहानियाँ सुनाता है। उसे राजा-रानियो की बहुत-सी कहानियाँ मालूम हैं। वह बडा होशियार है। राजा-रानियो के रहस्य की कहानियाँ जब बताता है तब ऐसा लगता है मानो खुद राजा है। मगर उनका नाम न बताता।"

"तुमने कहा वह बहुत-से किस्से सुनाया करता था। उसमे एक-दो किस्से याद हो तो सुनाओ।"

"यहाँ, सबके सामने, उसमे भी जब यहाँ इतनी स्त्रियाँ मौजूद हैं। न, वे सब एकान्त मे कहने लायक किस्से है।"

"जाने दो, इतना तो सच है कि वह ऐसे रहस्यमय किस्से सुनाया करता जिन्हे दूसरो के सामने कहते हुए सकोच होता है। ठीक है न ?"

"हाँ, यह ठीक बात है।"

"तो तुम्हे और कुछ मालूम नही ?"

"नही।"

'यहाँ वह कभी बीमार तो नही पडा। हमारे गाँव के किसी वैद्य ने उसकी परीक्षा-चिकित्सा तो नही की ?"

"ऐसा कुछ नही। पाँच-छ महीने से है यहाँ। पत्थर-सा मजबूत है, हृष्ट-पुष्ट।"

"ठीक है, कही मत जाना। जरूरत होगी तो फिर बुलायेंगे।"

बूतुग लेंक के पास थोडी दूर पर बैठ गया।

हरिहर नायक ने अभियुक्त से पूछा, "तुम्हारे गवाह ने जो कुछ कहा वह सब तो सुना है न ? और भी कुछ शेष हो तो कहो। अगर कुछ बाते कहने की हो और छूट गयी हो या वह नही कह सका तो तुम उससे कहला सकते हो, चाहोगे तो उसे फिर से बुलायेंगे।"

"बूतुग ने उसे जो कुछ मालूम था सब कह दिया। उसके बयान से ही स्पष्ट है कि मैं कैसा आदमी हूँ। सचमुच इस गाँव मे उससे अधिक मेरा कोई परिचित नहीं है।"

"ठीक, तुम्हारी तरफ से गवाही देनेवाला कोई और है ?"

"और कोई नही। अन्त मे मैं खुद अपना बयान दूंगा।"

"ठीक।" हरिहरनायक ने हेग्गडे से कहा, "अब आपने जो शिकायतें दी हैं उन्हें साबित करने के लिए एक-एक करके अपने गवाहो को बुलाइए।"

मल्लि ग्वालिन बुलायी गयी। चढती जवानी, सुन्दर-सलोना चेहरा, साधारण साडी-कुर्ती, बिखरे बाल, गुरबत की शिकार। मच के पास आती हुई इर्द-गिर्द के लोगो को देख शर्मायी। शरम को ढँकने के लिए आँचल दाँतो से दबाये वह निर्दिष्ट जगह जाकर खडी हुई। पचो को देख, ज़रा सर झुकाया। धर्मदर्शी ने आकर शपथ दिलायी।

हरिहरनायक ने कहा, "कुछ सकोच मत करो, जो कुछ तुम जानती हो, वह ज्यो-का-त्यो कहो। निडर होकर कहो, समझी ?"

"समझी, मालिक" मल्लि उँगली काटती हुई कुछ याद आने मे मुस्कुरा गयी। मुस्कुराने से उसके गालो मे गढे पड गये इससे उसकी सुन्दरता और बढ़ गयी।

बहुतो की आँखे उसकी गवाही को कम, उसे अधिक देख रही थी।

हरिहरनायक ने पूछा, "मल्लि, तुम इसको जानती हो ? यह दूसरी जगह का है और तुम बलिपुर की, है न ?"

"हाँ, मालिक।"

"तो तुम्हे इसका परिचय कैसे हुआ ?"

"मेरे पति और ये दोस्त है।"

"दोस्ती हुई कैसे ?"

"यह मै नही जानती, मालिक। मेरे पति ने मिलाया था। तीन-चार बार यह मेरे घर भी आया था। मैंने इसे गरम-गरम दूध भी पिलाया था।"

"यह तुम्हारे पति के साथ आया था या अकेला ही ?"

"पहले दो बार पति के साथ आया था। बाद को एकाध बार अकेला भी आया था।"

"जब तुम्हारा पति घर नही था तो यह क्यो आया ?"

"वह काम के लिए आया। मेरा पति कही गया था, गाँव से बाहर। यह दर्याफ्त करने कि वह आया या नही। इसने उनको अपने काम पर भेजा था।"

"इतना ही, उससे अधिक तुम्हे इसके बारे मे जानकारी नही ?"

"आपका मतलब मै नही समझी, मालिक।"

"तुम्हारा पति इस व्यक्ति के किस काम के लिए गया था ?"

"वे सब बाते उन्होंने नही बतायी, मालिक ।"

"तुमने कभी पूछा नही ?"

"एक दिन पूछा था । उन्होंने कहा इससे तुम्हारा क्या मतलब ? मुझे धमकी देते हुए कहा कि औरत को कहा मानकर चुपचाप घर मे पडी रहना चाहिए ।"

"इससे चुप रह गयी । कुछ पूछा नही ?"

"नही, मालिक । पर मुझे इसका यह व्यवहार ठीक नही लगा । ऐसे गैर आदमियो के साथ, जिनका ठौर-ठिकाना न हो, ऐसा कौन-सा व्यवहार होगा जो अपनी पत्नी तक से न कहा जाये ?"

"तुम अपनी निजी बातो को किसी और से कहा करती हो ?"

"शादी-शुदा होकर यहाँ आने के बाद मेरी एक सहेली बनी है। वह मेरी अपनी बहन से भी ज्यादा मुझसे लगाव रखती है । उससे मैंने कहा है ।"

"क्या कहा है ?"

"यह व्यवहार मुझे पसन्द नही । इन लोगो के व्यवहार को समझें कैसे, यही सवाल है ।"

"फिर क्या हुआ ?"

"उसने मेरी शका ठीक बतायी, लेकिन इसका व्यवहार जानने का तरीका उस बेचारी को भी सूझा नही ।"

"बता सकती हो वह कौन है ?"

"उसमे क्या रखा है, इसमे लुकी-छिपी क्या है । यही दासब्बे जो हमारे लेंक की साली है ।"

"क्या कहा ?" आश्चर्य से हरिहरनायक ने पूछा ।

"दासब्बे है मालिक । वह यहाँ बैठी है ।"

बूतुग को भी आश्चर्य हुआ । उसने मन-ही-मन कहा, बदमाश, इस मल्लि के पति के साथ इसका सरोकार है यह बात हमे मालूम तक नही पडी ।

"ठीक है । अच्छा, यह बताओ कि तुम अपने सारे सुख-दुख उससे कहा करती थी ?" हरिहरनायक ने पूछा ।

"हाँ, मालिक । औरत को अपना दुखडा सुनाकर दिल का बोझ उतार लेने के लिए एक स्त्री की मित्रता बहुत आवश्यक है, नही तो अपने दुख का भार लिये-लिये वह कब तक जियेगी ।"

"ऐसी कोई बात याद हो तो कहो, कह सकोगी ?"

"यहाँ ? यहाँ क्यो, मालिक ? हर एक के जीवन मे कोई-न-कोई घटना होती ही है । उसे कोई सबके सामने क्यों बताये ?"

"सत्य को प्रकाश मे लाना हो तो हमे अपने दुख-दर्द को, मानापमान को प्रधानता नही देनी चाहिए, वह सत्य की दृष्टि से गौण है, मल्लि ।"

"फिर भी इस समय के विचारणीय विषय से जिसका सम्बन्ध नही, वह भी जानने का क्या प्रयोजन है, मालिक ?"

"इस विषय से सम्बन्ध है या नही, इस बात का निर्णय तुम्ही ने कर लिया। मल्लि ?"

"इसके क्या माने ? अगर है तो मुझे भी मालूम होना चाहिए कि क्या सम्बन्ध है।"

"अच्छा जाने दो, तुम्हारी इच्छा नही तो हम जबरदस्ती नही पूछते। अच्छा, यह बताओ कि इस गाँव मे आये तुम्हे कितने दिन हुए ?"

"दो साल।"

"इन दो सालो मे तुम्हारे जीवन मे ऐसी कोई अनिरीक्षित घटना इस बलिपुर मे घटी है कभी ?"

"घटी है, परन्तु··।"

"परन्तु क्या, जो हुआ, सो कहो।"

"ऐसा अच्छा नही। कैसे कहूँ, मालिक ?"

"उसके बारे मे तुमने दासब्बे को बताया है ?"

"हाँ।"

"अगर वह कहे तो चलेगा ?"

"अगर वह कह सकती है तो मैं भी कह सकती हूँ।"

"तो तुम कहो न।"

"घृणा आती है। फिर भी ।"

"घृणा किस बात की ? झूठी आन मे पडकर कहने मे हिचकिचाओ मत।"

"आन को कोई आँच नही लगती, मालिक। हम ग्वालिन है। गौमाता की सेवा करनेवाले। अच्छे लोगो के लिए हम गऊ जैसे सीधे-सादे है। कोई हमारे साथ मर्यादा की हद से बाहर व्यवहार करे तो हमारे भी सींग होते हैं। सींग घोपकर ग्वालिन लडकियाँ उसे अपने हाथ का मजा भी चखाती है।"

"तो यो कहो कि ऐसा भी कोई प्रसग आया था।"

"इसीलिए तो कहा कि ग्वालिनो के हाथ का मजा कैसा होता है।"

"क्यो, क्या हुआ ?"

"एक पखवारे पहले, नही-नही, उससे भी कुछ दिन ज्यादा गुजरे होगे, मुझे गाँव से बाहर रहना पडा था, मालिक। हर महीने तीन दिन, मासिक धर्म के समय, हम गाँव से बाहर रहा करती है, हम ग्वालो मे यही रिवाज है। इसे सब जानते है। उस समय मेरा पति भी गाँव मे नही था। यह बेचारी दासब्बे ही मुझे भोजन लाकर दिया करती थी।"

पचो का ध्यान दासब्बे की ओर गया किन्तु उसके कुछ पूछने से पूर्व वे मल्लि-

की बात पूरी सुन लेना चाहते थे।

वह कहती गयी, "तीसरे दिन रात को मैं अकेली रह गयी। मेरे साथ दो और भी थी। वे दोनो तालाब मे नहा-धोकर चौथा दिन होने के कारण अपने मुहल्ले मे चली गयी। तालाब के बाँध पर मण्डप के पास टाट बिछाकर कम्बल ओढे सोयी थी। आधी रात का समय था। चाँदनी छिटकी हुई थी। अचानक जाग पडी। देखती हूँ कि एक व्यक्ति नकली चेहरा लगाये मेरे पास धीरे-धीरे आ रहा है। उसने काले कपडे से अपने को ढँक रखा था। उसे देखकर पहले तो डर गयी। कोई भूत है। फिर भी रात-रात, तीन-तीन दिन गाँव से बाहर खुले मे रहने-वाली ग्वालिनो को आम तौर पर इतना डर नही रहता। वैसे मैंने उसके पैर देखे। हम आदमियो की तरह पैर की अँगुलियाँ सामने की ओर थी, पिण्डली पीछे की ओर। तब निश्चय हुआ कि यह भूत नही।"

पच मल्लि का बयान तो सुन ही रहे थे वे यह भी देख रहे थे कि मल्लि आदमी और भूत मे शारीरिक अन्तर किस प्रकार करती है।

उसने आगे कहा, "तब कुछ और ढग से डर लगने लगा। सारा शरीर पसीना-पसीना हो गया। मैं, धीरज धरकर कृष्ण परमात्मा का ध्यान करती हुई हिले-डुले बिना पडी रही। वह व्यक्ति मेरे पास, बिल्कुल पास आ गया। इधर-उधर देखा। पास बैठा, मेरे मुँह के पास अपना मुंह लाया। उसके मुंह से ऐसी दुर्गन्ध निकली कि बडी घृणा हुई, कै होने को हुई। नीद मे करवट लेने का-सा बहाना करके पैर जोर से ऐसा झटकारा कि वह ठीक उसके पेट पर लगा। पेट पर पैर का आघात लगते ही वह व्यक्ति लुढक गया। मेरा पति मुझसे बहुत मुहब्बत रखता है इसलिए उसने वक्त पर काम आये, इस ख्याल से हमारे गाँव के लुहार से कहकर लोहे के नख बनवा दिये थे। गाँव से बाहर जब रात बितानी पडती है तब वही हमारे लिए भगवान् है। हमेशा वह पहनकर ही सोती थी। मुझे भी तब बहुत गुस्सा आया। जब बहुत डर हो और गुस्सा भी आया हो तब धैर्य के साथ शक्ति भी शायद आ जाती है। वह पीठ के बल पडा था तो लगा कि उसका पेट चीरकर आँतडियाँ निकाल दूँ। जोर से हाथ मारकर एक बार खीचा। वह व्यक्ति तोबा करता हुआ, मर गया, मर गया, चिल्लाने लगा।"

पचो की नजर उसके चेहरे पर बरबस टिक गयी, उसके वे बिखरे बाल, माथे पर लगी कुकुम की बडी बिन्दी और वे खुली बडी-बडी आँखे, बडी भयकर लग रही थी। पचो ने उसके बयान की धारा तोडी नही।

"मैं दो कदम पीछे हटी। वह व्यक्ति तुरन्त उठकर भागने लगा। मुडकर देखा तक नही। मैंने सोचा था कि बलिपुरवाले सभी सज्जन हैं, इस घटना के बाद किसी पर विश्वास न करने का निश्चय मन मे कर लिया। ऐसे लोग मनुष्य है या कुत्ते? क्या इनकी कोई माँ-बहन नही। ये लोग समाज मे घडे-भर दूध मे बूंद-भर

खटाई-जैसे हैं। बडे चाण्डाल हैं।" पचो की अपेक्षा से भी अधिक लम्बा बयान देकर चुप हुई मल्लि।

"कुछ और कहना है, मल्लि, तो कहो।"

"कुछ और याद नही, मालिक।"

"तब बैठी रहो। जरूरत पडी तो फिर बुला लेंगे।"

मल्लि ओसारे मे एक खम्भे के पास बैठ गयी। सब स्त्रियाँ उसकी ओर देखने लगी। सब सुनकर अभियुक्त चुपचाप, निरासक्त भाव से ज्यो-का-त्यो खडा रहा।

इसके बाद दासब्बे की गवाही ली गयी। ग्वालिन मल्लि की बतलायी तालाब और मण्डपवाली घटना दासब्बे ने भी बतायी। दासब्बे के बयानो मे कोई फर्क नही था। इन दोनो के बयान लेने के बाद हरिहरनायक ने कहा, "दासब्बे, आज तुम्हे देखने कोई आनेवाला था और उसका निश्चय तुम्हारे बहनोई ने किया था है न ?"

"हाँ, मालिक।"

"उस आनेवाले के बारे मे तुम्हारी बहन या बहनोई ने तुमसे कुछ कहा था ?"

"हाँ, कहा था कि वह कोई भारी धनी है और कल्याण शहर का एक बहुत बडा हीरे-जवाहरात का सौदागर है। इस गाँव की कुछ ब्याहने लायक लडकियो को देख भी चुका है। उसे कोई पसन्द नही आयी। मेरे बहनोई ने कहा कि अगर तुझे वह पसन्द करेगा तो तुम महारानी की तरह आराम से रह सकोगी। अपनी बहन से भी ज्यादा शान से रह सकोगी।"

"तो तुम शादी करने के लिए तैयार हो ?"

"मैं कहूँ तो वे लोग छोडेंगे ? वर मान लेगा तो मामला खतम। लडकी को इस बात मे कौन-सी आजादी है। जब शादी करनेवाला हीरे-जवाहरात का व्यापारी हो तब पूछना ही क्या। सुनकर तो मेरे भी मुँह से लार टपकने लगी।"

"अपने घर पर देखने के बदले उसे यही देख रही हो, उसने भी तो तुमको देख लिया है। अगर वह मान लेगा तो तुम उससे शादी कर लोगी ?"

"तब मुझसे कहा गया था कि आदमी बहुत अच्छा है। परन्तु अब" दासब्बे ने बात बन्द कर दी।

"तो अब तुम्हारा ख्याल है कि यह आदमी अच्छा नही।"

"अच्छा होता तो सारा विचार करने का प्रसग ही क्यो आता ?"

"झूठ-मूठ शिकायतें आयी होगी। वे शिकायतें जबतक सही साबित न होगी तबतक तो वह निर्दोष है। हम तो ऐसा ही मानते है।"

"आग हो तभी न धुआँ निकलता है, मालिक ?"

"तो तुम्हे मालूम है कि आग है ?"

"मालिक, सुना तो यही है कि आग है।"

"आग तुमने खुद तो नही देखी न ?"

"नही, मालिक ।"

"जिसने कहा वही यहाँ कहे, फिर तुम भी कहो, तो उसका कुछ मूल्य है। परन्तु किसी की कही बात तुम भी कहो तो उससे क्या प्रयोजन होगा इसलिए यह बात छोड दो। अब यह बताओ कि तुम बहिन के घर क्यो रहती हो ?"

"मेरे माँ-बाप नही, इसलिए बहिन के पास आयी।"

"तो तुम इस बलिपुर की एक पुरानी निवासी हो, है न ?"

"हाँ, मालिक ।"

"इस आदमी को आज से पहले भी, अचानक ही सही, कही देखा था ?"

"हाँ, मालिक ।"

"तो तुम्हे यह मालूम था कि यही तुमको देखने आनेवाला है ?"

"नही, मालिक। मुझे इतना ही मालूम था कि मुझे देखने के लिए आनेवाला हीरे-जवाहरात का व्यापारी था। यह नही मालूम था कि यही आनेवाला है।"

"तुम तो कहती थी कि पहले ही देख चुकी हो।"

"देखा जरूर है। तब यह नही मालूम था कि यही वह व्यापारी है। इसके अलावा बूतुग के कहने पर ही मुझे पता लगा कि यही मुझे देखने के लिए आनेवाला है।"

"तुमने कहा कि पहले देखा था, कहाँ देखा था ? कितनी बार देखा था ?"

"एक ही बार। वही, गाँव के उत्तर की ओर जो मण्डप है, वहाँ।"

"वहाँ तुम क्यो गयी थी ?"

"मैं वहाँ गयी नही थी। अपनी बहिन के खेत को जा रही थी उसी रास्ते। मण्डप के पीछे की ओर से। उस मण्डप के अन्दर से एक औरत और मर्द की जोर से हँसने की आवाज सुन पडी। डरते-डरते धीरे-से झाँका। यह आदमी उस धोबिन चेन्नी के बदन-से-बदन सटाकर बैठा था। मुझे घृणा आ गयी। वैसी ही खिसककर ऐसे रास्ते से निकल आयी जिससे कोई न देख सके और सीधी घर पहुँच गयी।"

"ठीक, यह बात तुमने और किसी से कही है ?"

"अपनी बहिन से कही।"

"तब तुम्हे मालूम था कि वह कौन है ?"

"वही पहले-पहल देखा मैंने इसे।"

"और भी कभी देखा था इसे ?"

"नही, मालिक।"

"अच्छा, तुम बैठो, यही रहो।" हरिहरनायक ने कहा। दासब्बे अपनी जगह

जा बैठी।

धोबिन चेन्नी के साथ सटकर बैठे रहने की बात सुनने के बाद, सो भी गाँव के बाहर एक उस मण्डप मे, बूतुग अपने आप मे कहने लगा—अरे बदमाश, ऐसी चाण्डाल औरत के साथ यह आदमी, खुजली-खाज लगा कुत्ता भी उसके पास जाने से हिचकता है। ऐसी औरत से यह सटकर बैठा था! कैसा धूर्त बदमाश है! हमारे गाँव की लडकियो का सौभाग्य अच्छा था। भगवान ने ही बचा लिया।

उसके बाद लेक की गवाही हुई, "बूतुग के प्रयत्न से अपनी साली को दिखाने पर राजी हुआ, एक सप्ताह पहले। परन्तु परसो रात को हेग्गडेजी के पास जो रहस्यमय समाचार आया तो उसे पकडने के लिए नियोजित जत्थे मे मुझको भी शामिल होना पडा। परन्तु तब तक बूतुग के कहे अनुसार इसे अच्छा आदमी समझता रहा क्योकि तब तक मुझे यह मालूम नही था वह व्यक्ति यही है। उस धोबिन चेन्नी से इसके बारे मे और ज्यादा बाते मालूम पडी। चाहे तो उसी से दर्याफ्त कर सकते हैं, मुझसे बताने को कहे तो मैं भी तैयार हूँ।" लेक ने कहा।

"नही, उसीसे सुनेंगे। हेग्गडेजी, उसे बुलाया है?" हरिहरनायक ने पूछा।

"वह गाँव मे नही, सुना है कि ताडगुद गयी है।" हेग्गडे ने उत्तर दिया।

"रहने दें, हेग्गडेजी। लेंक, उसके कथन मे मुख्य विषय क्या है?"

"इसकी लम्पटता। इसकी लम्पटता के लिए उसने जो साथ दिया और इस साथ देने के लिए उसे जो धन दिया गया और उसे जो लालच दिखाया गया।"

"ऐसी हालत मे उसे बुलवाना ही पडेगा। उसीसे इस विषय को जानना चाहिए। हेग्गडेजी अभी किसी को भेज ताडगुद से उसे बुलाइए। कम-से-कम कल वह यहाँ रहे।" हेग्गडे ने रायण को उसे बुला लाने का आदेश दिया।

"ठीक है, लेक, तुम्हे इस आदमी के बारे मे और कोई बात मालूम है?"

"याद नही।"

"तुमने कहा न, उस धोबिन चेन्नी मे कई बाते मालूम हुई, लेक, तुमको कैसे मालूम हुआ कि उससे पूछना चाहिए। क्या हेग्गडेजी ने पूछने को कहा था?"

"नही, मालिक, मेरी पत्नी ने कहा था।"

"गालब्बे से दासब्बे ने कहा था न?"

"हाँ, उसने मुझसे यही कहा था। परन्तु मेरी पत्नी ने जो किस्सा सुनाया था उसकी ओर मेरा ध्यान इसे पकडने के बाद गया। इसलिए कल मैं खुद गया और उस धोबिन चेन्नी से दर्याफ्त कर आया। सब मालिक को कह सुनाया।"

"मालिक से मतलब हेग्गडेजी का ही है न?"

"जी, हाँ।"

"फिर ?"

"मालिक ने सारा वृत्तान्त सावधानी से सुना। अन्त मे कहा, ठीक है।"

"कुछ कहा नही ?"

"जी नही।"

"तुम्हारे और उस धोबिन के बीच जो बातें हुईं थी, उतनी ही न ?"

"जी हाँ, उतनी ही।"

"ठीक, उसके आने तक उस विषय का ब्यौरा जाना नही जा सकेगा। अब तुम जाकर बैठो।"

सरपच के कहे अनुसार लेक जाकर अपनी जगह बैठा।

लेक के बाद उसकी पत्नी गालब्बे बुलायी गयी। उसने परसो की घटना मोटे तौर पर इतनी ही बतायी, "परसो रात को मैं अकेली जा रही थी। इसने मेरा रास्ता रोका। उसने जो दो-चार बातें की उसीसे पता लग गया कि इसकी नीयत बुरी है। मुझे डर लगा। काँपने लगी। सोचा, हे भगवान्। क्या करूँ। हमारे मालिक अपने नौकर-चाकरो को काफी दिलासा और धीरज देते रहते है। मैंने धीरज से काम लिया। मेरी माँ कहा करती थी, जो पुरुष लम्पट होकर औरतों के पीछे फिरता है वह बडा डरपोक होता है। इससे मैं एकदम डरी नही। धीरे से खिसक जाने की सोचकर उसकी इच्छा के अनुसार चलनेवाली का-सा बहाना करके वह जैसा कहता वैसे उसीके पीछे चलने लगी। देरे होते-होते मैं अधीर होने लगी, कुछ डरी भी। भगवान् को शाप देने लगी। हे भगवान्। औरत बनाकर ऐसे लफगे के हाथ पडने की दशा क्यो बनायी। कही कुछ आवाज सुन पडी कि वही, चूहा निकले तो बाघ निकला कहकर जैसे डराते हैं वैसे कुछ डराकर खिसक जाने के लिए समय की प्रतीक्षा करती रही। मुझ बद-किस्मत को ऐसा मौका ही नही आया। यह मेरा शील-भग करने आगे बढा। पास आया। पता नही भगवान् ने मुझे कैसी प्रेरणा दी, मैंने अपने व्यवहार से उसके मन मे शका पैदा न करके उसके दाहिने हाथ के अँगूठे की जड मे अपने दाँत ज़ोर से गडा दिये। इसमे मैंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग किया। वह हाय-तौबा करता हुआ, मैं-मरा-मैं-मरा चिल्लाने लगा। यह शब्द सुनकर कही से सात-आठ लोग आये और इसे पकडा। वे लोग मशाले लिये थे। प्रकाश मे तो स्पष्ट हो गया कि यही वह आदमी है। लोगो के आते ही यह डरता-काँपता खडा हो गया। सिर तक उठा नही सका। ऐसा एक कीडा गाँव मे आ गया तो बस शीलवती स्त्रियाँ अकेली घूम-फिर भी न सकेंगी। भगवान् दयामय है, मेरा शील बच गया।"

"तो यह तुम्हारी सीधी शिकायत है ?"

"हाँ, मालिक।"

अपराधी की ओर मुडकर हरिहरनायक ने पूछा, "बोलो, अब क्या बोलते हो।"

"यह गढी हुई कहानी है, मैने इसका मुँह तक नही देखा है।"

"यह तुमपर द्वेष क्यो करेगी ?"

"मुझे क्या मालूम। इन सबने षड्यन्त्र रचकर यह मनगढन्त कहानी कही होगी।"

"तो तुम्हे कहाँ, किसने और कब बाँधकर रखा ?"

"पता नही कौन, कोई सात-आठ लोग मशाल लेकर आये, गाँव के उत्तर की ओर के मण्डप मे बाँध दिया। क्यो, पता नही। अब इन्साफ के खिलाफ मुझे बन्दी बनाकर पचायत बैठाने के लिए बनायी कहानी सुनाकर इस पापिन को यहाँ खडा कर दिया। इन लोगो ने ऐसी कहानी सुनाने का पाठ पढाया होगा।"

"किसी को इस तरह पापिन नही कहना चाहिए।"

"अगर वह भलीमानस होती तो ऐसी कोई घटना घटी भी होती तो भी कभी नही कहती। चोर का गवाह चोर। उस समय जो आयी थी वह दूसरी ही थी। अब वह छिपकर रह गयी है। उसका नाम प्रकट हो जाये तो किसी बहुत बडे आदमी को शरम से सर झुकाना पडेगा। इसलिए यह कहानी सच भी मान ले तो कहना पडेगा कि यह कोई भाडे की औरत कहानी सुनाने के लिए पकड लायी गयी है। वह कहाँ, यह कहाँ ? वह सर्वालकार-भूषिता कुलीन और सम्भ्रात परिवार की स्त्री थी। यह तो हेगडे के घर की नौकरानी है। यह कोई दूसरी है, इससे इसके बयान की धज्जी उडा सकता हूँ।"

"अब, गालब्बे ने जो कहा वह अगर साबित हो गया तो तुम्हारी क्या दशा होगी, जानते हो ?"

"मुझे मालूम है कि वे लोग झूठ को सच साबित नही कर सकते।"

"बहुत अच्छा। गालब्बे, यह तुम्हारी शिकायत को इन्कार करता है। कहता है कि तुम तब वहाँ नही थी। बताता है, तुम्हारा सारा बयान एक गढी हुई कहानी है। अब तुम क्या कहोगी ?"

"जिन्होने इसे बाँध रखा उन सबने वहाँ मुझको देखा है। उनसे पूछ सकते है।"

"ठीक, वह भी करेगे। फिलहाल तुम बैठी रहो।"

गालब्बे जाकर बैठ गयी। बूतुग सोचने लगा, यह क्या हो गया, इसके बारे मे कई रहस्य खुल रहे है। मैं इसके साथ बडी मिलनसारी से बरत रहा था। मुझे ऐसी सारी बाते, जो इसके बारे मे एक-एक प्रकट हो रही है, मालूम ही नही हुई। जो भी हो, ये बातें हैं मजेदार। शायद और बाते भी इस सिलसिले मे प्रकट हो जाये।

इसके बाद श्रीदेवी ने आकर गवाही दी प्रथम दिन मन्दिर की उस जाली के बाहर खडे होकर बुरी दृष्टि से देखने की घटना से लेकर कितनी बार उसने कुदृष्टि से देखा। इस सबका ब्योरेवार बयान दिया, "भाई के घर सुरक्षा के लिए आयी बहिन हूँ। जिन्दगी भर मुझे ऐसी कुदृष्टि का सामना नही करना पडा था। फिर भी इन सब बातो को भाई से कहकर मै उन्हे दुख नही देना चाहती थी। इसलिए चुप रही। स्त्री होकर जन्मने के बाद मर्द की आँखो से डरना नही चाहिए। पति भी मर्द है, बेटा भी मर्द है, पिता भी मर्द है, भाई भी मर्द है। देखने पर मनोविकार का शिकार मर्द ही बनते हैं, स्त्री नही। ऐसे पुरुषो की परवाह न कर उनके प्रति उदासीन रहना ही उनकी कुदृष्टि की दवा है। यही सोचकर मैं चुप रही। ऐसी बुरी खबर फैलाकर घृणाजनक बातें सुनाते फिरनेवाले इस आदमी की वृत्ति का समाचार भाई ने जब सुना तो वे अत्यन्त दुखी हुए। मैंने कभी सोचा न था कि मुझे इस तरह सार्वजनिको के सामने खडे होकर बयान भी देना पडेगा। फिर भी मैं स्त्री हूँ। इस आदमी से सीधा कोई कष्ट न होने पर इतना निश्चित है कि यह बडा अयोग्य दु शील व्यक्ति है। इससे सीधे सम्बन्धित व्यक्तियो की स्वानुभूति की यथार्थ कहानियाँ पचो के सामने सुनायी जा चुकी है। मेरा अनुभव है इन कहानियो और बयानो का पूरक हो सकता है। जो सही-सच्ची बात थी उसका खुले दिल से पचो के सामने स्पष्ट निवेदन किया है। ऐसे अयोग्य और कुमार्गी पुरुषो को सम्भ्रान्त समाज के बीच रखना ही नही चाहिए। ये समाज-घातक है।"

हरिहरनायक ने अभियुक्त से इस बयान पर अपना अभिप्राय बताने को कहा।

उसने कहा "सब झूठ है, मैने ऐसी बाते नही फैलायी।"

"तुम्हारे अकेले का कहना सत्य है। और सारे बलिपुर के लोगो का कहना झूठ है, यही तुम्हारा मन्तव्य है ?"

"हाँ।"

"वे ऐसा झूठ क्यो बोलेगे ?"

"मुझे क्या मालूम। कोई मर्द किसी औरत के साथ नाचता है तो वह उसका कर्म-फल है, उसमे मेरा क्या लाभ। उससे मुझे कुछ फायदा हो सकता हो तब मान भी सकते है कि मैने ऐसा प्रचार किया।"

"तुमने कभी हमारे हेग्गडेजी की बहिन को देखा ही नही ?"

"देखा है, मगर उस दृष्टि से नही, जैसा बयान किया गया।"

"तो फिर किस दृष्टि से देखा ?"

"प्रथम दिन जब मैंने देखा तो मुझे बडा आश्चर्य हुआ। मेरी आशा भडकी। मेरे आश्चर्य और आशा का निवारण हो, इस दृष्टि से देखा, सच है।"

"औरतो को देखने पर जैसी आशा-अभिलाषा जगती है उसी आशा की दृष्टि से देखा न ?"

"इन्हे इस आशा से नही देखा।"

"मतलब, दूसरी स्त्रियो को इस आशा से देखा है, है न ?"

"हो सकता है, देखा हो। मैं भी तो मनुष्य ही हूँ।"

"तो गालब्बे का कथन ."

"वह पहले ही कह चुका हूँ, झूठ है।"

"यह विषय रहने दो। इसका निर्णय करने के लिए उस धोबिन चेन्नी को उपस्थित होना चाहिए। अब यह बताओ कि हेग्गडेजी की बहिन को देखने मे तुम्हारा क्या मन्तव्य था और उसमे कौन-सी विशिष्टता तुमने देखी ? तुम्हे आश्चर्य क्यो हुआ ? तुममे जो आशा उत्पन्न हुई उसका स्वरूप क्या है ?"

"पहले तो यह लगा कि मैंने उन्हे कभी देखा है। वही मेरे आश्चर्य का कारण है। कहाँ, कब देखा, इसकी याद नही आयी। उसे जानने की इच्छा नही हुई। उस इच्छा को पूर्ण करने की आकाक्षा से मैंने कुछ प्रयत्न किया।"

"वह क्या है, बता सकते हो ?"

"कहूँगा, परन्तु कोई विश्वास नही करेगे। इसके लिए एक प्रबल साक्षी की जरूरत थी, मैं उसी की खोज मे था।"

"गवाह मिल गया ?"

"अभी पूर्ण रूप से नही।"

"अब जो गवाही मिली है उससे क्या जानकारी मिली है ?"

"ये हेग्गडे की बहिन नही है।"

सारी सभा मे आश्चर्य और कुछ बातचीत शुरू हो गयी।

धर्मदर्शी ने डाँटा तो खामोशी हुई।

बूतुग झटपट उठकर पचो के मच के पास आया। हरिहरनायक ने पूछा, "बूतुग, ऐसे जल्दी-जल्दी क्यो आये ?"

"मालिक, एक बात याद आ गयी। वह कहने को आया हूँ।"

"कहो।"

"अभी कुछ दिन पहले मैं यह और कोई तीन-चार लोग मन्दिर के सामने वाले अश्वत्थ वृक्ष के नीचे जगत पर बैठे थे। उस दिन हमारी हेग्गडतीजी और ये देवीजी मन्दिर आयी। तब इस आदमी ने कहा, देखो कैसी है यह बैल की जोडी। मैंने कहा, अरे मूरख, औरत को बैल नही, गाय कहो। तब सब हँस पडे। वह हँसी अनसुनी कर ये दोनो जल्दी-जल्दी मन्दिर के अन्दर चली गयी।

फिर इसने कहा, अरे वह औरत हेग्गडे की बहिन नही है। हमे तो आश्चर्य हुआ। बहिन न होती तो इनके घर मे सात-आठ महीने से क्यो रह रही होती। तब इसने कहा दुनिया बडी अजीब है, उसमे औरत-मर्द का सम्बन्ध कैसा-कैसा होता है, यह कहना मुश्किल है। हम लोगो मे एक भावना यह हुई थी कि इन देवीजी के साथ हेग्गडेजी का कोई ऐसा सम्बन्ध बना है जो पहेली-सा लगता है।"

"ठीक, और भी कुछ कहना है क्या ?"

"कुछ नही मालिक।"

"ठीक।"

बूतुग पीछे हटा और अपनी जगह जा बैठा। हरिहरनायक ने अभियुक्त की तरफ मुडकर पूछा, "तो तुम्हारे कहने से यह मालूम पडता है कि श्रीदेवीजी हेग्गडे की बहिन नही है ?"

"हाँ।"

"तो वे हेग्गडे की क्या लगती है ?"

"क्या लगती है सो तो हेग्गडेजी को ही कहना है। यहाँ मेरी बात से भी अधिक विश्वसनीय बात उनकी है न, वे बडे सत्यवान् हैं न ?" अभियुक्त ने कुछ गरम होकर कहा।

"तो इन दोनो के सम्बन्ध के बारे मे तुम्हारा क्या मन्तव्य है ?"

"उसे भी वे जानते हैं। मैं कहूँ तो वह केवल ऊहा-मात्र हो सकता है। अगर वही कहे तो उसे सत्य का मान प्राप्त होता है। इसीलिए वे ही कहे, हालाँकि मेरी बात सत्य ही है। ये हेग्गडे की बहिन नही है।" उसके धीरज को देखकर लोग चकित हुए। शान्तला ने कुतूहल-भरी दृष्टि से पिता को देखा। उसे आश्चर्य भी हुआ। उसे कभी विश्वास नही हुआ कि उसके पिता झूठ भी बोल सकते हैं। हरिहरनायक ने हेग्गडे से पूछा, "क्यो हेग्गडेजी, अभियुक्त के इस बयान का आप क्या जवाब देंगे ?" हेग्गडे मारसिंगय्या अपने स्थान से उठे और मच की ओर कदम बढाने लगे।

"वही से कहिए।" हरिहरनायक ने कहा।

"न्यायपीठ का अपमान किसी से भी नही होना चाहिए। इसलिए मच पर से ही उत्तर दूँगा।" मारसिंगय्या ने कहा। हेग्गडेजी का वक्तव्य सुनने के लिए सब लोग आतुर हो रहे थे। अपराधी का भी उत्साह बढ गया। उसने कान खडे किये सुनने के लिए। मारसिंगय्या मच पर चढे और युक्त स्थान पर खडे हो गये। धर्मदर्शी ने प्रमाण वचन कहलाया। हरिहरनायक ने पूछा, "हेग्गडेजी, आपकी कोई बहिन है ?"

"सहोदर बहिन नहीं है।" लोगो की दृष्टि श्रीदेवी की ओर लग गयी। अभि-

युक्त कहकहे न रोक सका और उसे धर्मदर्शी की डाँट खानी पडी।

बूतुग ने सोचा इसने हमसे जो कहा सो सच निकला। किस बाँबी मे कैसा साँप होता है, कौन जाने। शोर कम होने मे थोडा समय लगा, धर्मदर्शी को दो बार खामोश-खामोश कहना पडा। शान्तला वहाँ से उठकर बरामदे के खम्भे के सहारे बैठी मच की ओर अपलक निहार रही थी।

"हेग्गडेजी, क्या आप अभियुक्त का बयान स्वीकार करते है ?"

"श्रीदेवी मेरी सहोदर बहिन नही। इतनी बात स्वीकार करता हूँ।"

"तो आपका श्रीदेवी से क्या सम्बन्ध है ?"

"मै इस प्रश्न का उत्तर और अपना वक्तव्य बाद मे देना चाहूँगा। न्यायपीठ तब तक शेष गवाहियाँ ले ले तो मुझे भी सुविधा होगी।" उनके खडे होने का ढग, वह निर्भीक वचन, और सरलता से मन पर परिणाम पैदा कर सकने वाली उनकी वाणी, यह सब देखकर अभियुक्त के मन मे खटका पैदा हो गया। उसने बीच मे जो तीर छोडा उससे उसने समझा कि वह सुरक्षित है। यह उसकी भावना थी। इसलिए उसने कहकहा लगाया था। जैसा और हेग्गडे लोगो को उसने देखा-समझा था वैसा ही इनको भी समझा। कई प्रतिष्ठित लोगो के विषय मे तरह-तरह की अफवाहे फैलाने से वे अपनी गौरव-हानि के डर से अफवाह फैलानेवालो के कहे अनुसार चलने भी लगते है। इस बात से भी वह परिचित था। यहाँ भी वैसे ही काम बन जाने की आशा थी उसे। इसी धैर्य के बल पर उसने गालब्बे के वक्तव्य को स्वीकार करने से इकार किया था, यद्यपि उसकी सचाई की प्रत्यक्ष गवाही उसका दायाँ हाथ दे रहा था।

"आपको जवाब उसे देना है जिसपर आपने आरोप लगाया है। इसलिए उसका अभिप्राय जान ले। अभियुक्त, बताओ पहले हेग्गडेजी का बयान लें या गवाहो का ?" अभियुक्त का मन कुछ आतकित था। वह वास्तव मे हेग्गडे का बयान तुरन्त सुनना चाहता था। परन्तु अपने अगले कदम पर विचार के लिए कुछ समय भी चाहता था। "हेग्गडेजी, अपने गवाहो को बुलाइए।"

सबने प्रमाण वचन स्वीकार करके अपना-अपना वक्तव्य दिया। ये सारे वक्तव्य, गालब्बे ने जो वक्तव्य दिया था उसके पूरक थे। इसके बाद हरिहरनायक ने कहा, "हेग्गडेजी, अभियुक्त पहली गवाही सुनने के बाद से ही कह रहा था कि ये सारी गवाहियाँ रटी-रटाई हैं और चूँकि सब गवाह प्राय एक ही बात कह रहे है, इसलिए और अधिक विश्वसनीय तथा प्रामाणिक साक्ष्य की आवश्यकता होगी।"

"अभियुक्त के हाथ की परीक्षा की जा सकती है।" हेग्गडे ने कहा।

अभियुक्त ने अपना हाथ ऐसे आगे बढाया मानो कुछ हुआ ही नही हो। देखकर सभी पचो ने बताया, "दाँत के चिह्न स्पष्ट है।"

"गालब्बे ने बताया ही था, उसने दाँत गडा दिये थे जिसके चिह्न भी मौजूद हैं। इसमें भी प्रबल गवाही और क्या चाहिए।" हरिहरनायक ने कहा।

अभियुक्त हँस पडा, "यह भी कोई गवाही है। यह तो गालब्बे से सरासर झूठी कहानी कहलायी गयी है।"

"तो ये दाँत के चिह्न कब और कैसे बने ?"

"चार-पाँच दिन पहले मैं हिरिगे गाँव गया था। रास्ते में थकावट मिटाने को एक पेड के नीचे लेटा तो आँख लग गयी। तभी ऐसा लगा कि कुछ काट गया है। देखा, नाग-साँप जा रहा है। मैंने तुरन्त मुँह में उँगली डाली और दाँत गडाकर जहरीला खून चूसकर उगल दिया। मेरे ही दाँतों के चिह्न हैं ये।"

गालब्बे ने न आव देखा न ताव, जोर से बोल उठी, "झूठ।" अभियुक्त की इस कहानी को जो ध्यान से सुन रहे थे, वे सब एकदम चकित होकर गालब्बे की ओर देखने लगे।

हरिहरनायक ने कहा, "गालब्बे, तुम कैसे कहती हो कि उसका कहना झूठ है ?" अभियुक्त ने छाती ऐसे आगे की मानो वह जीत गया हो। साथ ही कह-कहा मारता हुआ वह जोर से हँस पडा। गालब्बे ने कहा, "उसके दाँत तो देखो, कितने बडे सूप-जैसे चौडे हैं।" उसने मुँह बन्द कर लिया। उसकी तनी हुई छाती कुछ पीछे धसक गयी। हरिहरनायक ने कहा, "एक बार और हाथ आगे करो।"

उसने हाथ तुरन्त आगे नहीं बढाया, लेकिन बढाये बिना रह भी नहीं सकता था। हरिहरनायक ने फिर गौर से देखा और कहा, "दाँत के चिह्न छोटे और सम हैं, तथा रेखा कमान की तरह अर्धचन्द्राकृति है।" उन्होंने गालब्बे को पास बुलाया। वह एकदम निडर होकर पास गयी। लोग बडे कुतूहल से देखने लगे। बूतुग ने बीच में ही कहा, "परसों सबेरे तक इसके हाथ में कुछ नहीं हुआ था। कितना बडा झूठ बोलता है, यह ?"

"गालब्बे, तुम्हारा कहना सच है। ये चिह्न इसके दाँत के कतई नहीं। तुमने कैसे कहा कि ये चिह्न इसके दाँतों के नहीं ?"

"वे मेरे ही दाँतों के हैं, इसलिए मैंने कहा, मालिक।"

तब भी अपराधी ने कहा, "झूठ।"

"अब क्या कहोगी, गालब्बे ?"

"तेल-वेल डलवाकर इसका हाथ धुलवा दीजिए, मालिक। परसों रात को अपने शील-संरक्षण के लिए इस घातक चाण्डाल के हाथ पर मुँह लगाना पडा था। आज अपनी सचाई साबित करने के लिए फिर वही करूँगी।" गालब्बे ने कहा।

"गालब्बे, तुम एक बार और सोच लो, तब कुछ कहो।" हरिहरनायक ने

कहा।

"मेरे मालिक ने मुझे सिखाया है कि सत्य बोलने से डरूँ नहीं।"

अपराधी का हाथ धोया गया। गालब्बे ने अपना आँचल कसकर कमर के फेंट मे खोस लिया और हजारो आँखो के सामने उसका हाथ पकडकर अपने खुले मुँह की ओर उठाया।

"तो उस रात को जो आयी थी वह तुम ही हो ?" अभियुक्त ने पूछा।

"हाँ।"

"वह सारी सजावट ?"

"किसी को सजावट नही करनी चाहिए क्या ?"

"मैंने समझा कि वह कोई और थी।"

"तो मान लो।" दूसरा चारा नही था। उसने मान लिया। बूतुग ने मन-ही-मन कहा, यह कैसा अधर्मी चाण्डाल है। ग्वालिन मल्लि आगे बढी, "मालिक उस दिन नकली चेहरा लगाकर आनेवाला धूर्त यही है।"

अभियुक्त को स्वीकार करना पडा।

लोगो ने थू-थू की। बूतुग ज़ोर से चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा, चाण्डाल, महाचाण्डाल। उसका बच्चो का-सा नादान मन जल उठा। उसने इसे कितना अच्छा आदमी माना था, सब उलट गया।

"ठीक, वह धोबिन चेन्नी आकर गवाही देगी तो वह भी यही कहेगी, कहेगी न ?" अभियुक्त ने सिर हिलाकर सहमति प्रकट की।

"इससे, तुम्हारा चाल-चलन कैसा है, यह बात सारे बलिपुर के लोगो के सामने स्पष्ट हो गयी। अब यह बताओ कि तुमने शादी का नाटक क्यो रचा ?"

"हेग्गडे ने जो शिकायत की है उससे इस प्रश्न का कोई सम्बन्ध नही।"

"अच्छा, हेग्गडेजी ने जो शिकायते दी है उनमे कुछ तो सत्य सिद्ध हो ही चुकी हैं। और दूसरी शिकायते भी सत्य है, ऐसा तो चुपचाप स्वीकार कर लो।"

"झूठ।" अभियुक्त ने जवाब दिया।

"तो क्या तू परमारो का गुप्तचर नही ?"

"मैं कन्नड हूँ, कर्नाटक का।"

"तुम कर्नाटक के हो, या कन्नड का अभ्यास करके कही बाहर से आये हो ?"

"बात जात को बता देती है, इसमे सन्देह क्यो किया जा रहा है ?"

"सवाल का जवाब सवाल नही।"

"मैं गुप्तचर हूँ, इसका क्या प्रमाण है ? यही न कि तुम लोगो ने मुझे गुप्तचर समझ लिया है ?"

"रायण, उस ग्वाले त्यारप्पा को बुला ला।" हेग्गडे ने आदेश दिया। अभियुक्त ने घबडाकर इधर-उधर देखा। सिपाही उसके हाथो को पीठ-पीछे बाँध रहे

थे। दो सिपाही ग्वाले त्यारप्पा को बाँध लाये। मल्लि ने अपने पति की यह हालत देखी तो घृणा से उसका सिर झुक गया। मन-ही-मन कहने लगी, इसने भी उसकी मदद की थी, शत्रु के गुप्तचर की मदद, मैंने कौन-सा पाप किया था कि ऐसे देशद्रोही की पत्नी बनना पडा। नियमानुसार त्यारप्पा से प्रमाणवचन लिया गया, तब पुलिस के एक सिपाही ने कागज़ निकालकर सरपच के हाथ मे दिया। हरिहर-नायक ने पढा और दूसरे पचो को पढाया, फिर पूछा, "यह पत्र किसका है ?"

"इसने दिया था मुझे।" अभियुक्त की ओर निर्देश करता हुआ त्यारप्पा बोला।

"किसलिए दिया था ?"

"पुलिगेरे मे मल्लिमय्या को देने के लिए। उसे देने को मैं गया था।"

"तुम्हे मालूम था कि इसमे क्या है ?"

"बन्दी बनने के बाद यहाँ आने पर पता लगा कि इसमे क्या है।"

"इसे दे आने के लिए कहते समय तुमसे और कुछ भी कहा गया था क्या ?"

"कल्याण से जेवर जो आने थे, वे अभी नही पहुँचे। दोरसमुद्र जाने का मौक़ा चूक जायेगा। इतने दिन की प्रतीक्षा फिजूल हो जायेगी। कभी काम समाप्त किये बिना मैं जानेवाला नही हूँ। मेरा स्वभाव ही ऐसा जिद्दी है। इसलिए यह पत्र मल्लिमय्या को दे दे तो वे आगे की व्यवस्था करेंगे। मैं ख़ुद ही जा सकता था। परन्तु कल्याण से कोई आ जाये तो उन्हे तकलीफ होगी। मै स्नेहवश चला गया। पुलिगेरे मे मल्लिमय्या से भेट हुई, उसकी अपनी सोने-चाँदी की दुकान मे ही। इसकी कही सब बाते कही। उसने कहा, 'यहाँ नही, गाँव के बाहर धात्री वन के मन्दिर मे बात करेंगे। हीरे-जवाहरात की बात है। किसी को मालूम होने पर रास्ते मे लूट-खसोट का डर रहता है।' हम दोनो धात्री वन गये। वहाँ का बहुत सुन्दर पोखर है। चिलचिलाती दोपहरी थी। वहाँ हाथ-मुँह धोकर सीढी पर इमली की छाया मे जा बैठे। मैंने पत्र उसके हाथ मे दिया। उसने उसे पढा, बहुत अच्छा, त्यारप्पाजी, आपसे बडा उपकार हुआ। और वह उठ खडा हुआ। उसे अचानक उठता देखकर मै भी उठने को हुआ तो उसने पीछे से मुझे ढकेल दिया। मै पोखरे मे मुँह के बल जा गिरा। फिर कुछ स्मरण नही कि क्या हुआ। बेहोशी दूर हुई तो मैंने अपने को एक गाडी मे पाया जिसके चारो ओर चार सिपाही पहरा दे रहे थे।" यह सब सुनकर मल्लि के मुख-मण्डल पर जो भाव उमड रहे थे उनकी ओर किसी का भी ध्यान गये बिना न रह सका। वह कहता गया।

"मैं मरा नहीं क्योकि मल्लि का सुहाग अमर था। मेरे साथ जो थे उनसे पूछा, 'हम जा कहाँ रहे है ?' उन्होने कहा, 'बोलो मत, चुप रहो।' उनकी तलवार-ढाले देखकर मैंने फिर कुछ नही पूछा। यहाँ आने पर मैंने उसे पढ लिया। तब मुझे सारी बात मालूम पड गयी। मुझे पहले ही यह बात मालूम हुई होती तो मैं यह

काम कभी स्वीकार नही करता। मुझसे देशद्रोह का काम कराने के अलावा मुझे ही खतम करने की सोची थी इस द्रोही ने।" कहता हुआ वह क्रोध से दाँत पीसने लगा।

"त्यारप्पा, इस पत्र मे क्या लिखा है, पढो।" हरिहरनायक ने आदेश दिया। उसने पढा, "मल्लिमय्या, जैसा मैंने तुमसे कहा था, इस पत्र के पहुँचते ही काम कर चुकोगे। ताकि हमारे व्यवहार का कोई चिह्न बाकी न रहे। मैं अब सफलता पाने की स्थिति तक पहुँच चुका हूँ। युद्ध के आरम्भ मे हमारा यह व्यापार, अब लग रहा है, सफल हो जायेगा। व्यापार की प्रारम्भिक दशा मे ही ग्राहक को सँभालकर रखने की व्यवस्था, एक गलती मे, हाथ मे फिसल गयी। परन्तु अबकी बार ऐसे फिसल जाने का डर नही। इसके लिए आवश्यक कार्रवाई मैंने अच्छी तरह से कर ली है। ग्राहक बडा भारी है इसलिए वह हाथ मे फिसल न जाये, इसके लिए कम-से-कम दो सौ तक की वस्तु हमारे हाथ मे होनी चाहिए। उसकी व्यवस्था के साथ, जितनी जल्दी हो सके, तुम आ जाओ। अन्यत्र से भी मँगवाने की व्यवस्था की है मैंने। हमारे व्यवहार की सूचना और को मालूम हो इसके पहले ही अपने ग्राहक को अपने वश मे कर लेना चाहिए। अब समय बहुत ही अमूल्य है। वस्तु को भेजते-भिजवाते समय बहुत होशियारी से बरतना पडेगा। सब एक साथ मत आना। थोडा-थोडा कर एकत्रित कर लेना और बाद मे सबका इकट्ठा होना बेहतर है। प्रतीक्षा मे, रत्नव्या।"

इसके तुरन्त बाद पुलिस के सिपाहियो ने मल्लिमय्या को वहाँ ला खडा किया तब हेग्गडे ने कहा, "यह मल्लिमय्या है, इसके पास से भी एक पत्र बरामद हुआ जिस पर उसका हस्ताक्षर है।" मल्लिमय्या ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। उस पत्र मे भी उपर्युक्त विषय लिखा था। उसे पढवाकर सुनने के बाद, अन्त मे हेग्गडे मारसिगय्या ने मच पर आकर पचो से अनुरोध किया, "अब मुझे अवसर मिले, मै सब बातो को स्पष्ट करूँगा।" हरिहरनायक ने स्वीकृति दी।

हेग्गडे ने कहना शुरू किया, "इस अभियुक्त का नाम रतन व्यास है। यह परमारो का गुप्तचर है। शिलाहार राजकुमारी चन्दलदेवीजी ने चालुक्य चक्रवर्ती विक्रमादित्यजी का स्वयवरण किया। इसी असूया के कारण यह युद्ध आरम्भ हुआ। बडी रानीजी को उडा ले जाने का मालव के राजा भोजराज ने षड्यन्त्र किया। युद्ध क्षेत्र मे उन्हे सुरक्षित रखे रहना असम्भव-सा हो गया। इससे उनको वहाँ से अन्यत्र सुरक्षित रखने की व्यवस्था करनी पडी। उन्हे पकडने के लिए किये गये प्रयत्नो का यह प्रतिफल है जो हम आज की इस विचारणा-सभा मे देख रहे है। अब इस समय मैं बलिपुर की सारी प्रजा को एक महान् सन्तोषजनक समाचार सुनाना चाहता हू कि इस युद्ध मे हमारी जीत हुई है। धारानगर जलकर भस्म हो गया। परमार राजा भोजराज अपने को बचाने के लिए भाग गये हैं। उनकी

सहायता करनेवाला काश्मीर का राजा हर्ष भी भाग गया है। शायद दोनो काश्मीर गये होगे। बहुत से प्रमुख शत्रु-योद्धा बन्दी किये जाकर कल्याण के रास्ते मे है। इस युद्ध मे विजय प्राप्त करनेवाले हमारे युवराज यहाँ हमारे सामने उपस्थित हैं।"

सब लोग एक साथ उठकर खडे हो गये। सबकी आँखे युवराज को देखने के लिए आतुर हो रही थी। पचो ने झट से उठकर कहा, "अब दण्ड-निर्णय प्रभु को ही देना चाहिए। हम तो उन्हे श्रीदेवीजी के पति का भाई ही समझ रहे थे। इस अज्ञता के कारण जो अपचार हमने किया उसके लिए हम क्षमा चाहते हैं।"

एरेयग प्रभु ने कहा, "आप अपने न्यायपीठ पर बिराजिए। हम युवराज अवश्य है, किन्तु यहाँ इस प्रसग मे साक्षी की हैसियत से उपस्थित है। न्यायपीठ के समक्ष हम केवल साक्षी हैं, युवराज नही। आज साक्ष्य का प्रसग नही आया। आया होता तो इस न्यायपीठ के सामने प्रमाण-वचन स्वीकार करते। धर्मपरि-पालन, शिष्टरक्षण और दुष्ट-निग्रह यही राजधर्म है। हमे न्यायपीठ के गौरव और प्रतिष्ठा की रक्षा करनी ही चाहिए। आप सब लोग बैठिए।" पच बैठे, लोग भी बैठ गये। हेग्गडेजी ने अपना वक्तव्य आगे बढाया, "आज से चार दिन पूर्व प्रभु से समाचार विदित हो चुका था इसलिए परसो मन्दिर मे श्वेतछत्र-युक्त पूर्णकुम्भ के साथ चालुक्य बडी रानीजी को आदरपूर्वक देव-दर्शन कराया और प्रजाहित की दृष्टि से इष्टदेव की अर्चना करायी गयी।"

लोगो मे फिर हलचल शुरू हो गयी। चालुक्य बडी रानी, साधारण वेश-भूषा मे निराडम्बर बैठी श्रीदेवी ! सबकी आँखें उन्ही पर लग गयी। गालब्बे ने दाँत से उँगली काटी। शान्तला ने प्रश्नार्थक दृष्टि से देखा। माचिकब्बे के चेहरे पर एक मुसकराहट दौड गयी। श्रीदेवी ने माचिकब्बे की ओर आश्चर्य से देखा।

हेग्गडे मारसिंगय्या एक के बाद एक रहस्य का उद्घाटन करने गये, "चालुक्य चक्रवर्ती हमारे प्रभु युवराज को अपनी दायी भुजा मानते हैं, और भाई के समान मानते हैं। भाई के समान क्यो, भाई ही मानते हैं। इसलिए हमारा यह कहना बिल्कुल ठीक है कि वे अपने भाई की धर्मपत्नी को ले जाने आये हैं। मैं प्रभु का दूतमात्र हूँ, फिर भी उन्होने बडी रानीजी को मेरे पास धरोहर के रूप मे भेजा। हेग्गडतीजी से, मेरी बेटी शान्तला से, और यहाँ के नौकर-चाकरो से जितनी सेवा हो सकी, उतनी इनके गौरव के अनुरूप नही मानी जा सकती। सन्तोष है कि बलिपुर के लोगों ने उन्हे मायके मे आयी बहिन माना। वे जन्म से ही बडे वैभव मे रही है फिर भी हमारे साथ अपने ही लोगो की तरह हिलमिलकर रही। यह हमारा भाग्य है। सयम के बिना इस तरह जीवन को परिवर्तित परिस्थितियो के साथ समन्वित कर लेना सम्भव नही। उन्हे बहिन की तरह प्राप्त करने मे, प्रभु का मुझ पर जो विश्वास है वही कारण है। प्रभु के इस विश्वास के लिए मै उनका सदा ऋणी हूँ। हमारी सेवा मे निरत यह गालब्बे अगर इस धीरता

और स्थैर्य से काम न लेती तो इस रतन व्यास को पकडना सम्भव नही था। उसने अपने शील की बाजी लगाकर इस राज्य की रक्षा के लिए अपने को अर्पण कर महान् उपकार किया है। इसी तरह उसके पति लेंक ने भी, रायण ने भी, एक-दो नही, सभी ने इस पुण्य कार्य मे सहायता दी है। बलिपुर की जनता के समक्ष मैं इस न्यायपीठ के सामने न्यासरूप बडी रानीजी को युवराज के हाथो मे सौंपता हूँ। प्रभु इस न्यास को स्वीकार करे।" कहकर उन्होने सिर झुकाकर प्रणाम किया।

प्रभु एरेयग ने मुसकराते हुए स्वीकृति-सूचक अभय-हस्त उठाकर स्वीकृति दी।

हरिहरनायक ने अपने सहयोगियो से विचार-विनिमय करने के बाद अभियुक्तो की ओर देखकर पूछा, "रतन व्यास, मल्लिमय्या, तुम लोगो को कुछ कहना है?"

मल्लिमय्या ने कहा, "कुछ नही।"

रतन व्यास ने कहा, "मैं अपने प्रभु का दूत हूँ। मै यहाँ अपने स्वार्थ से नही, अपने प्रभु की आज्ञा का पालन करने आया हूँ यद्यपि उसमे सफल होने के पूर्व ही सब उलट-पलट हो गया। मेरी आँखे गिद्ध की आँख-जैसी है। आपकी बडी रानी को मैंने एक बार देखा था सो यहाँ देखते ही पहचान लिया था। परन्तु गालब्बे को मैंने कभी देखा नही था, इसलिए धोखा खा गया। आपके युद्ध-शिविर मे बडी रानी की सेवा मे मेरी पत्नी भी रही, लेकिन आपकी यह गालब्बे उससे भी अधिक होशियार है और अधिक धीरज रखती है। उसी के कारण मै आप लोगो के हाथ मे पड गया। नही तो मै आप लोगो की पकड मे कभी न आता। इस गाँव के लोगो को एरेयग प्रभु का परिचय न हो पर मै उन्हे जानता हूँ। ग्वाले त्यारप्पा का बयान सत्य है, उसे मेरे रहस्य का पता नही था।"

हरिहरनायक ने फिर विचार-विनिमय करके कहा, "बडी रानीजी, प्रभुवर और बलिपुर के निवासियो, पचो से विचार-विनिमय कर मै एक-मत निर्णय देता हूँ कि यह रतन व्यास कुलीन महिलाओ का शील नष्ट करने मे लगा रहा, इस कारण यह कठोर कारावास का पात्र है। इसका इससे भी गुरुतर अपराध है चालुक्य बडी रानी को उडा ले जाने की कोशिश जिसके लिए उसने त्यारप्पा की हत्या का भी आदेश दिया। इन अपराधो के कारण, इस न्यायपीठ की आज्ञा है कि इसे कल सूर्यास्त से पूर्व सूली पर मरने तक चढा दिया जाय। मल्लिमय्या ने उसकी मदद करने के लिए त्यारप्पा को मार डालने का प्रयत्न किया, जिसमे इसे चौदह वर्ष का कारावास का दण्ड दिया जाता है। आगे ऐसा न करने की चेतावनी देकर त्यारप्पा को छोड दिया जाता है।" निर्णय देकर पचो ने न्यायपीठ छोडा और बडी रानीजी तथा युवराज एरेयग को झुककर प्रणाम किया। अपराधियो को

सिपाही ले गये।

लोग सयम से कतार बाँधकर एक-एक कर आये, अपनी तृप्ति भर बडी रानी और प्रभु को देखकर आनन्दित हो अपने-अपने घर लौटे। बूतुग उस अहाते से बाहर जाता-जाता कहता गया, चोर, लफगा, चाडाल।

पता नही कब बडी रानीजी ने शान्तला को अपने साथ ले अपने आसन की बगल मे बैठा लिया था।

रेविमय्या अगर यह सब देखता तो कितना आनन्दित होता।

मल्लि ने निश्चय किया था कि वह अपने पति का मुँह कभी न देखेगी, परन्तु वस्तु-स्थिति की जानकारी हो जाने के बाद उसे मानसिक शान्ति मिली। फिर भी उसने उसे झिडक ही दिया, "अकेली साधारण स्त्री, फिर भी मैंने बदमाशो को डराकर भगा दिया और तुम अक्लमन्द पुरुष होकर उसके जाल मे फँस गये। कैसी अचरज की बात है। उसी दिन मैंने कहा था कि उसकी नज़र बुरी है। मेरे ही ऊपर तुमने गुस्सा किया, कहा, तुम उसकी आँख देखने क्यो गयी। उसी दिन अगर मेरा कहा मान लिया होता तो आज ये दिन नही आये होते। हमारे हेग्गडेजी बडे भलेमानस है, उन्होंने सबका पता लगाया, इससे मेरा सिन्दूर बच गया। हम रोज़ सुबह से शाम तक मेहनत कर साग-सत्तू खानेवाले ठहरे, एकदम इतना धन कही से कोई दे तो समझ जाना चाहिए कि इसमे जरूर कुछ धोखा है। इसलिए बडे बुजुर्ग कहते हैं कि अक्ल को हमेशा ठिकाने पर रखना चाहिए।" इस प्रकार मल्लि ने अपने दिल का सारा गुबार उतार दिया।

"तुम्हारी कसम, अब आगे जो भी काम करूँगा तुमसे सलाह-मशविरा करके मालिक से कहकर ही करूँगा। ठीक है न" और त्यारप्पा मल्लि का कृष्ण और मल्लि त्यारप्पा की रुक्मिणी बनी, बलिपुर के ग्वालो का मुहल्ला उनके लिए बृन्दावन बना। दूसरे दिन सुबह उगते सूर्य का उन्हे दर्शन ही नही हुआ। जब बछडे भूख के मारे अम्बा-अम्बा रँभाने लगे तब उनकी सुबह हुई।

बूतुग के मन पर उस घटना का बडा असर पडा। वह बार-बार चोर, लफगा, चाण्डाल कहकर बडबडाता रहा। वह अपनी करनी पर पछताने लगा। कहता, 'इस बदजात की बात सुनकर ईश्वर-समान मालिक के पवित्र नाम और ख्याति पर कालिख लगाने के लिए मैंने अपनी जीभ का उपयोग किया, आग लगे इस जीभ पर।' रात-भर बडबडाता ही रहा इसी तरह। मुर्गे की बाँग सुनते ही वह हेग्गडेजी

के घर के बाहर जा बैठा।

दूसरी बार मुर्गे ने बाँग दी, रायण बाहर आया। बूतुग को देखा, तो उसे उसकी स्थिति समझने मे देर नही लगी। उसने हेग्गडेजी को स्थिति की गम्भीरता से परिचित कराया। उनके आदेश से तुरन्त वैद्यजी को बुलाया गया। उन्होने सब समझकर कहा, "हेग्गडेजी, उसकी अन्तरात्मा बहुत छटपटा रही है वह वास्तव मे बालकवत् सहज और अनजान है। उसके साथ विश्वासघात हुआ है। उसके दुख का कारण यह है कि उससे बडी रानीजी के पवित्र पातिव्रत्य पर और आपके पवित्र शुद्ध चरित्र पर कालिख लगाने का दुष्कर्म हो गया। उससे ऐसा अपराध नही हुआ, ऐसी भावना के उत्पन्न हुए बिना वह ठीक न होगा। यह मानसिक आघात है। इससे वह पागल भी हो सकता है। और अत्यन्त क्रोधाविष्ट भी हो सकता है। उसकी इस मानसिक बीमारी की दवा एक ही है, वह यह कि आप और बडी रानीजी उसे धीरज देकर आश्वस्त करे।"

मारसिंगय्या ने कहा, "अच्छा पण्डितजी, वही करेगे।"

उन्होने चालुक्य बडी रानी और युवराज एरेयग प्रभु को उसकी स्थिति से परिचित कराकर उसे उनके समक्ष प्रस्तुत किया। उनकी ओर ध्यान न देकर वह हेग्गडे के पैरो मे गिर पडा।

हेग्गडे मारसिंगय्या ने उसे हाथ पकडकर उठाया और कहा, "तुम्हे हुआ क्या है, ऐसे क्यो बडबडा रहे हो। प्रभु ने और बडी रानी ने तुम्हारी बडी प्रशसा की है। तुम्हारे कारण ही उस चोर-चाण्डाल को पकडना सम्भव हुआ। तुम्हे उसने जैसा नचाया वैसे नाचे इसी से देशद्रोह टल गया। इसलिए तुमको गौरव प्रदान करने के इरादे से जब उन्होने तुमको बुलवाया है तब तुम्हारा ऐसे व्यवहार करना या यो बडबडाना अच्छा लगता है?"

बूतुग हेग्गडेजी के चेहरे को एकटक देखता रहा। उनकी मुसकराहट को देखकर उसके अन्दर की आग कुछ कम हुई। फिर वह कठपुतली की तरह बडी रानीजी की ओर मुडा। उसे लगा कि प्रसन्न लक्ष्मी स्वय मूर्तरूप धारण कर मुसकराती हुई उसकी ओर करुणा की धारा बहा रही है। उसने वैसे ही प्रभु की ओर भी देखा।

"हेग्गडेजी, उसे इधर बुलाइये।" प्रभु ने कहा।

एरेयग प्रभु ने हँसते हुए पूछा, "बूतुग, जब मैंने एक विश्वासपात्र नौकर की माँग की तो हमारे हेग्गडेजी ने तुम्हारा ही नाम लिया। चलोगे हमारे साथ?"

बूतुग ने एकदम किंकर्त्तव्य-विमूढ होकर हेग्गडे की ओर देखा।

"मान लो, बूतुग, तुम्हारी सत्यनिष्ठा उन्हे बहुत पसन्द आयी है।"

"हमारी रक्षा का कारण यह बूतुग ही है, यह बात प्रमाणित हो गयी, इसलिए यह हमारे साथ कल्याण चले।" बडी रानी चन्दलदेवी ने कहा।

बूतुग बडी रानी की ओर और एरेयग प्रभु की ओर बारी-बारी से देखने

लगा। फिर बोला, "मालिक, यही आपकी चरण-सेवा करता रहूँगा, यही मेरे लिए काफी है। मुझे यही रहने देने की कृपा करने के लिए प्रभु से कहिए, मालिक।"

"यही रहो, इसके लिए भी हमारी स्वीकृति है। हेग्गडेजी जो काम करते है वह भी तो हमारा ही काम है। इसलिए उनकी सेवा हमारी ही सेवा है।" एरेयग प्रभु ने कहा।

"आज से तुम हेग्गडे के घर के आदमी हो। जाओ, रायण के साथ काम मे लगो।" मारसिगय्या ने कहा।

बडी रानी ने पूछा, "अब कल्याण के लिए प्रस्थान कब होगा ?"

एरेयग प्रभु ने कहा, "यात्रा अब कल्याण के लिए नही, दोरसमुद्र के लिए होगी। वही इस धरोहर को महाराज के हाथो मे सौपेगे।"

"परन्तु सन्निधान "

"अब कुशल है, तन्दुरुस्त है। वे दोरसमुद्र आयेगे। रास्ते मे ही हमे समाचार मिल चुका है।" एरेयग ने बताया।

प्रस्थान के लिए सोमवार ठीक था, फिर भी क्षेमतन्दुल चूँकि उस दिन नही दिया जाता अत दशमी, वृहस्पतिवार का दिन निश्चित किया गया। एरेयग प्रभु ने आदेश दिया कि हेग्गडेजी भी साथ चले। बडी रानीजी चन्दलदेवी ने इच्छा प्रकट की कि हेग्गडतीजी और शान्तला भी साथ चले। हेग्गडती को दोरसमुद्र का नाम सुनते ही सारे अगो मे काँटे-से चुभ गये। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कहा, "वहाँ मेरा क्या काम है? हमको पत्तो के पीछे छिपे फल-जैसे रहना ही अच्छा है।"

हेग्गडे ने कहा, "चन्दलदेवी की इच्छा और प्रभु का आदेश है, आपको चलना ही चाहिए।" तब हेग्गडती प्रतिवाद नही कर सकी।

गालब्बे और लेक को अपने साथ कल्याण ले जाने के लिए उन्हे यहाँ से मुक्त कर वहाँ सेवा मे नियुक्त करने की अपनी इच्छा चन्दलदेवी ने प्रकट की। चन्दल-देवी के लिए गालब्बे ने जो काम किया था उसे सुनकर बहुत प्रभावित हो गयी थी। पहले से भी वे गालब्बे पर बहुत रीझ गयी थी। उसकी निष्ठा ने उन्हे मोह लिया था। इस बारे मे दोरसमुद्र मे निश्चय करने का निर्णय किया गया।

हेग्गडेजी के घर की देखभाल की जिम्मेदारी रायण पर रखी गयी। लेंक और गालब्बे के जाने के कारण मल्लि और त्यारप्पा को हेग्गडे के घर नौकर नियुक्त किया गया। बूतुग तो पहले ही नियुक्त हो चुका था। वह हेग्गडे के परिवार का सदस्य ही बन गया।

प्रस्थान के दिन बलिपुर के सभी मन्दिरो मे रथोत्सव का आयोजन किया गया। युवराज और बडी रानीजी को यथोचित गौरव समर्पित किया गया।

माचिकब्बे ने बडी रानी का क्षेमतन्दुल से आँचल भरा। युवराज एरेयग प्रभु ने सबको साथ लेकर दोरसमुद्र की ओर प्रस्थान किया।

यह महान् सन्तोषजनक वार्ता केवल दोरसमुद्र मे ही नही, बल्कि सम्पूर्ण पोय्सल राज्य मे फैल गयी कि परमार राजा भोज को हराने के बाद धारानगर का किला धराशायी करके शहर को आतिश की भेट करके पोय्सल युवराज एरेयग प्रभु दोरसमुद्र लौट रहे है। सारी प्रजा के लिए यह बहुत ही आनन्द एव उत्साह का विषय था। बलिपुर से दोरसमुद्र तक मार्ग मे पडनेवाले प्रत्येक गाँव मे लोगो ने प्रभु-परिवार का स्वागत-सत्कार किया और भेटे समर्पित की। एरेयग प्रभु ने भेटे स्वीकार कर कहा, "इस धन का विनियोग इस विजय के लिए जिन सैनिको ने प्राणपण से युद्ध किया उनके परिवार के हित मे किया जायेगा।"

इधर दोरसमुद्र मे एरेयग प्रभु और चालुक्य बडी रानी चन्दलदेवी के स्वागत की भारी तैयारियाँ स्वय प्रधान गगराज और मरियाने दण्डनायक ने की थी। सार्वजनिक व्यवस्था किस तरह से हो, स्वागत के अवसर पर कहाँ, कैसी व्यवस्था हो, राजधानी के महाद्वार पर कौन-कौन रहेगा, राजप्रासाद के द्वार पर उपस्थित रहकर स्वागत कौन-कौन करे, चालुक्य बडी रानी चन्दलदेवीजी के लिए कैसी व्यवस्था हो और इस व्यवस्था और निगरानी का कार्य किसे सौपा जाये यह योजना पहले ही निश्चित कर ली गयी थी।

व्यवस्था का क्षण-क्षण का विवरण युवरानी एचलदेवी को प्राप्त हो रहा था। परन्तु उन्हे यह बात खटक रही थी कि इस व्यवस्था के विषय मे कभी किसी ने कोई सलाह उनसे नही ली। फिर भी, अपने पतिदेव को विजयोल्लास से हँसमुख देखने के आनन्द के सामने यह बाह्याडम्बर कोई चीज नही, यही सोचकर वे सन्तुष्ट थी। आने की बात तो उन्हे मालूम थी। कम-से-कम चालुक्य बडी रानी की व्यवस्था मे भी उनकी सलाह का न लिया जाना उन्हे बहुत अखरा, फिर भी वे शान्त रही क्योकि राजमहल की रीति-नीति से वे परिचित हो चुकी थी और उसके साथ हिलमिल गयी थी।

चामव्वे ने अपना बडप्पन दिखाने के लिए इस मौके का उपयोग किया। कार्यक्रम रूपित करने मे उसने अपने भाई गगराज प्रधान को और पति दण्डनायक को सलाह दी थी। व्यवस्था का क्रम उसने करीब-करीब ऐसा बनाया जिससे राज-महल के अहाते मे प्रवेश करते ही बडी रानीजी उसी की देखरेख मे रह सके। उसे

यह दिखाना था कि वह पोय्सल राज्य की समधिन बनेगी। उसने समझा था कि उसका स्वप्न साकार होने के दिन निकट आ रहे हैं। युवराज के आते ही मुहूर्त ठीक करने का निश्चय कर चुकी थी। चालुक्य चक्रवर्ती और बडी रानी के सान्निध्य मे महारानी का विवाह हो जाये और उसे चालुक्य महारानी का आशीर्वाद मिले, इससे बडा सौभाग्य और क्या हो सकता है। उसकी उत्साहजन्य विचारधारा बिना लगाम के घोडे की तरह दौड रही थी। इसके फलस्वरूप कभी-कभी वह युवरानी को इस व्यवस्था का विवरण दिया करती, तो भी उसके ध्यान मे यह बात नही आयी कि युवरानी से सलाह लिये बिना यह सब करना अच्छा नही।

एक दिन किमी समाचार पर युवरानीजी ने टिप्पणी की, "इस विषय मे मुझसे एक बार पूछ लेती तो मैं भी कुछ मलाह दे सकती थी।"

यह बात सुनते ही चामव्वा को कुछ खटका। अपने दिल के उम खटके को छिपाते हुए उमने कहा, "हमारे होते हुए छोटी-मोटी बातो के लिए युवरानीजी को कष्ट क्यो हो। हमे आपका आशीर्वाद-मात्र पर्याप्त है।" यो कहकर चामव्वे ने आक्षेप से बचने की कोशिश की।

"आपकी भावना ठीक है। उससे हम निश्चिन्त भी होगे। परन्तु एक बात मे हमे अपनी मलाह बनाना आवश्यक है। बडी रानीजी के ठहरने की व्यवस्था राजमहल के अन्त पुर मे हुई होती तो उनकी हस्ती-हैसियत की दृष्टि से उचित होता, इममे गाम्भीर्य भी रहता। मैं जो कह रही हूँ वह इस राजघराने के गौरव की दृष्टि से है। अब भी, चालुक्य चक्रवर्ती के आने तक यह व्यवस्था सुधारी जा सकती है। ऐसा न किया गया तो प्रभु आने पर इस व्यवस्था से मुझ पर आक्षेप करेंगे।" युवरानी एचलदेवी ने कहा। चामव्वा मौन ही रही तो उन्होने पूछ ही लिया, "क्यो, चामव्वाजी, मेरी सलाह आपको ठीक नही लगी ?"

"न, न, ऐसा नही, युवरानीजी, दण्डनायक को या मेरे भाई प्रधान गगराज को यह क्यो नही सूझा, यही सोच रही थी।"

"अन्त पुर के व्यवहार के सम्बन्ध मे अन्त पुरवालो से ही सलाह लेना हमेशा उचित होता है। मेरा यह सुझाव उन्हे दे दीजिए। बाद मे जो उचित होगा, वे स्वय करेंगे।"

"वही करूँगी।" कहकर चामव्वे वहाँ से विदा हो गयी। वह मन मे सोचने लगी कि व्यवस्था के बारे मे कहकर मैंने गलती की। युवरानी का सुझाव न माना, और युवराज के आने पर कुछ-का-कुछ हो गया तो क्या होगा ? इस ऊहापोह के साथ ही उसे कुछ समाधान भी हुआ। बडी रानी अगर अन्त पुर मे रहेगी भी तो तभी तक जब तक चालुक्य चक्रवर्ती न आ जाएँ, वे ही पहले आ जाएँ यह भी सम्भव है। इसलिए जो व्यवस्था की गयी है उसे भी रहने दें और अन्त पुर मे भी

व्यवस्था कर रखे ताकि जैसा मौका हो वैसा ही किया जा सके। साथ ही उसने महावीर स्वामी से प्रार्थना की कि हे स्वामिन् ऐसा करो कि पहले चालुक्य चक्रवर्ती ही राजधानी पहुँचे।

हमारी प्रार्थना के अनुसार वाछित कार्य न हो तो हमारा विश्वास डावाँडोल हो जाता है, हम कभी इस बात का विचार ही नही करते कि हमारी प्रार्थना उचित है या अनुचित। प्रस्तुत परिस्थिति मे चामव्वे की प्रार्थना भगवान् ने अन-सुनी कर दी थी। पहले दोरसमुद्र पहुँचनेवाले स्वय युवराज तथा उनके आप्त परिवारी थे। परन्तु उस समय भी चामव्वे यही सोच रही थी कि अपने अस्तित्व एव प्रतिष्ठा का प्रदर्शन कैसे किया जाए।

राजधानी का महाद्वार ध्वज-पताकाओ से सजाया गया। विजयी युवराज के स्वागत को प्रधान गगराज, मरियाने दण्डनायक, चिण्णम दण्डनायक, राजकुमार बल्लाल, राजकुमार बिट्टिदेव आदि के साथ नव-परिचित राजकृपापात्र आस्थान-कवि नागचन्द्र भी तैयार खडे थे जो वास्तव मे मरियाने के विशेष स्नेह के कारण दरबार मे अवसर पाकर अब राजकुमारो का गुरु भी बन गया था।

युवराज के परिवार समेत आने की सूचना देने के लिए सेना की छोटी टुकडी आयी। इसका नायक था हेग्गडे सिगिमय्या। उसने प्रधान गगराज को प्रणाम कर कहा, "प्रभु परिवार समेत थोडी देर मे पहुँच रहे हे। सूचना दने के लिए उन्होने मुझे इस सैन्य के साथ भेजा है।"

"तुम कौन हो?"

"मै एक प्रभु सेवक हूँ।"

"सो तो मालूम हे। मुझे स्मरण नही कि कभी मैने तुमको देखा है। ऐसी खबर पहुँचानी हो तो विश्वासपात्र व्यक्तियो को ही भेजा जाता है। मै महा दण्ड-नायक हूँ। मुझे तुम्हारा परिचय होना जरूरी है, इसलिए पूछा।"

"मेरा नाम हेग्गडे सिगिमय्या है। इस धारानगर के युद्ध के प्रसग मे मै प्रभु कृपा का पात्र बना। अत मुझे गुल्म नायक के काम पर नियोजित किया है।"

"किस घराने के हो?"

"मैं नागवर्मा दण्डनायक के घराने का हूँ।"

"तुम्हारे पिता?"

"बलदेव दण्डनायक।"

"ओह, तब तो मालूम हो गया। वही, वह बलिपुर का हेग्गडे तुम्हारा बहनोई है न?"

मरियाने के कहने का ढग ही सिगिमय्या को ठीक नही लगा, फिर भी उसने गम्भीरता से उत्तर दिया, "जी हाँ।"

कुछ समय तक मौन छाया रहा। मरियाने ने एक बार सिगिमय्या को ऐसे

देखा कि मानो उसे तौल रहा हो। फिर पूछा, "युवराज के साथ आनेवाले परिवार मे कौन-कौन है ?"

"हमारे युवराज, चालुक्य बडी रानीजी, और आप्त परिवार," सिगिमय्या ने कहा। उसे मरियाने और उसकी पत्नी के विषय मे अपनी बहिन से काफी परिचय मिल चुका था। अपने बहनोई का नाम तक अपने मुँह से कहने मे सिगिमय्या हिचकिचाया इसलिए उसने सोचा कि दण्डनायक से कोई ऐसी बात न कहे जिससे उसके दिल मे चुभन पैदा हो। इसलिए उसने अपने बहिन-बहनोई, भाजी आदि के साथ आने की बात तक नही कही। आप्त परिवार कहकर बात खतम कर दी थी।

बलिपुर के हेग्गडेजी की बात उठी तो राजकुमार बिट्टिदेव ने समझ लिया था कि अब जो खबर सुनाने आया है वह शान्तला का मामा है। इसलिए वह भी ध्यान से यह सुनना चाह रहा था कि दण्डनायक के सवाल का उत्तर क्या मिलेगा। यद्यपि खुद पास जाकर पूछना अनुचित समझकर वह चुप रह गया।

प्रधान गगराज ने जो अब तक चुपचाप थे, पूछा, "हेग्गडे मारसिगय्याजी कुशल है न ?"

"जी हाँ, प्रधानजी, वे भी प्रभुजी के साथ है।" लाचार होकर सिगिमय्या ने कहा।

बिट्टिदव अब अपने उत्साह को रोक नही सका। उसने पूछ ही लिया, "तो बडी रानीजी के साथ हेग्गडती भी आयी है क्या ?" राजकुमार बल्लाल ने उसके अँगरखे का छोर पकडकर धीरे से खीचा, परन्तु सवाल बिट्टिदेव के मुँह से निकल चुका था।

"बडी रानीजी को इस यात्रा मे योग्य साथ की आवश्यकता थी, इसलिए प्रभु ने जोर डाला तो हेग्गडती को भी आना पडा, अत वे भी साथ है।"

इतने मे घोडो की टापो की आवाज सुनायी पडी। पोय्सलो और चालुक्यो के व्याघ्र और वराह चिह्नो से अकित ध्वज पकडे दो सिपाही दीख पडे। आगे सैन्य और पीछे प्रभु अपने सफेद घोडे पर, उनके पार्श्व मे शान्तला अपने टट्टू पर, उसकी बगल मे थोडा पीछे घोडे पर हेग्गडे मारसिगय्या, इनके पीछे घोडे जुते रथ और रथो के पीछे सैनिक यूथ।

राजपथ पर बॉस-बॉस की दूरी पर लगे हरे-हरे पत्तो के तोरणो मे ठहर-ठहर कर भक्त प्रजा के द्वारा पहनायी मालाओ को स्वीकार करते, राजोचित वैभव से युक्त और वीरोचित साज के साथ आगे बढ रहे थे। किसी को यह पता न चला कि कब बिट्टिदेव शान्तला की बगल मे पहुँचकर चलने लगा था।

राजमहल के प्रागण मे फाटक पर सुमगलियो ने आरती उतारी। राजमहल के मुख-मण्डप मे युवरानी एचलदेवी और चामव्वे स्वर्ण-कलश और थाली हाथ मे

लिये खडी थी। युवराज के चरण खुद युवरानी ने धोये, बडी रानीजी के चरण चामव्वे ने धोये, परन्तु हेग्गडती और उसकी बेटी को देखते ही उसका सारा उत्साह धूल मे मिल गया था। आरती उतारी गयी, तब सबके राजमहल मे प्रवेश करते ही एरेयग प्रभु ने प्रमुख लोगो के साथ महाराज के दर्शन के लिए प्रस्थान किया। बडी रानीजी ने महाराज विक्रमादित्य को प्रणाम किया तो वे बोले, "न, न, ऐसा न करें, आप चालुक्य चक्रवर्तीजी की बडी रानी हैं। आखिर हम केवल मण्डलेश्वर है। हम ही आपको प्रणाम करते है।"

"यह औपचारिकता चक्रवर्ती की सन्निधि मे भले ही हो, अभी तो मै आपकी पुत्री हूँ। मायके आयी हूँ।" बडी रानी चन्दलदेवी ने शिष्टाचार निभाया।

महाराज ने शान्तला को देखा तो उसे पास बुला लिया। वह भी साष्टाग प्रणाम कर पास खडी हो गयी। उसके सिर पर हाथ फेरकर उन्होने आशीर्वाद देते हुए कहा, 'अम्माजी, कभी इगितज्ञता की बात उठती है तब हम तुम्हारी याद कर लेते है। बलिपुर मे रहते समय हमारी बडी रानीजी को किसी प्रकार का कष्ट तो नही दिया न?" उत्तर दिया महारानीजी ने, "नि सकोच कहती हूँ कि बलिपुर मे मैंने जो दिन बिताये उन्हे मैं कभी भी नहीं भूल सकती। वास्तव मे राजमहल मे जन्म लेकर चक्रवर्ती से विवाह करनेवाली मैं बलिपुर मे इस सरल और मिलनसार परिवार मे रहकर ही समझ सकी कि मानवता का मूल्य क्या है। दूसरो की भावनाओ को समझने की प्रवृत्ति से किस तरह लोगो को एक सूत्र मे पिरोया जा सकता है इसकी जानकारी मुझे वहाँ हुई। पद और प्रतिष्ठा के वश मे न होकर निष्ठा एव श्रद्धा को पुरस्कृत करनेवाले युवराज की नीति के फलस्वरूप पोय्सल राज्य किस ढग से बलवान् बनकर रूपित हो रहा है, इसका सम्पूर्ण ज्ञान भी मुझे वहाँ हुआ। चालिकेनायक, सिगिमय्या, बलिपुर के हेग्गडे दम्पती, यह अम्माजी, ये ही क्यो बलिपुर मे जिन साधारण-से-साधारण लोगो को मैंने देखा, उनमे यदि कुछ लोगो का नाम लूँ तो यह गालब्बे, लेक, रायण, बूतुग, ग्वालिन मल्लि आदि ऐसे है जिन्हे भुलाया ही नही जा सकता। इनमे कोई अधिक नही, कोई कम नही। योग्यता मे, निष्ठा मे, श्रद्धा मे सब एक से है, बराबर हैं। इन सबकी जड यहाँ है, महाराज के सान्निध्य मे, इसका मुझे स्पष्ट प्रमाण मिल चुका है।"

"बडी रानीजी की बात सत्य है। किन्तु उनके इस राज्य को छोडकर चली जाने के बाद मे यहाँ यह मनोवृत्ति कम होती जा रही है। ऊपरवालो के मनोवैशाल्य की बदौलत जो ऊँचे ओहदे पर चढे, वे ही अपने अधीन रहनेवालो को गौण समझने लगे है। बडी रानीजी, निर्णायको को इस तरह के भेदभाव से दूर रहना चाहिए।" महाराज विनयादित्य ने कुछ उद्वेग व्यक्त किया। मरियाने दण्डनायक ने प्रधानजी की ओर देखा। दोनो की दृष्टि मे ही प्रश्नोत्तर निहित था। महाराज के उद्वेग की पुष्टि की, बडी रानी चन्दलदेवी ने, "महाराज का कथन सत्य है। हम

इस भेदभाव से मुक्त हुए बिना निर्माण कार्य कर ही नही सकते। कल्याण मे रहते समय मै जिस आशा से हाथ धो बैठी थी, बलिपुर मे आने पर मैंने उसे फिर पाया। पोय्सलो का यह बल चालुक्यो को मिला तो कन्नड प्रजा का सुसस्कृत राज्य आचन्द्रार्क सुख-शान्ति से विराजमान रह सकता है।"

"यह परस्पर सहयोग आपसी विश्वास की नीव पर विकसित होना चाहिए, बडी रानीजी। एक-दूसरे पर शका से तो कोई फल नही मिलेगा। अच्छा, यात्रा की थकावट मिटाने को कुछ विश्राम कीजिए। प्रधानजी, बडी रानीजी की गरिमा के योग्य इन्तजाम किया है न? ऐसा उन्हे नही लगना चाहिए कि पोय्सल व्यवहार-कुशल नही है।"

"यथाबुद्धि व्यवस्था की गयी है।" प्रधान गगराज ने विनती की।

"महाराज को मेरे विषय मे अधिक चिन्ता की जरूरत नही है। स्त्रियो की व्यवस्था स्त्रियो पर ही छोड दीजिए। युवरानीजी और मैं आपस मे हिलमिल-कर कर लेगी।"

अब वहाँ से चले, मरियाने आगे, पीछे प्रधान, बाद मे बडी रानीजी, शान्तला और युवराज एरेयग प्रभु। युवरानी, चामव्वे और हेग्गडती पहले ही अन्त पुर चली गयी थीं। कुमार बल्लाल वही गया जहाँ पद्मला थी।

कुमार बिट्टिदेव, कवि नागचन्द्र, हेग्गडे मारसिगय्या और चिण्णम दण्डनायक अन्त पुर के बाहर प्रागण मे बैठे थे। अन्दर से युवराज आदि बाहर आये तो वे तुरन्त उठ खडे हुए।

"छोटे अप्पाजी तुम अम्माजी और बडी रानीजी को अन्त पुर मे ले जाओ। अरे, यह रेविमय्या यही है। अच्छे हो रेविमय्या?" एरेयग प्रभु ने पूछा। रेविमय्या ने झुककर प्रणाम किया। कुछ बोला नही। उसकी आँखे शान्तला की ओर थी।

रेविमय्या का नाम सुनते ही बडी रानी की दृष्टि उसकी ओर गयी। शान्तला के दिल मे बैठा हुआ रेविमय्या यही है न, युवराज और युवरानी का अत्यन्त विश्वासपात्र व्यक्ति यही है न, उस दिन जब शान्तला को मैंने मातृ-वात्सल्य से प्यार किया तो मेरी आँखो मे आनन्द के आँसू देखकर शान्तला ने कहा था, रेविमय्या ने भी ऐसा ही किया था, उसका भी यही हाल था। बडी रानी की दृष्टि उस रेविमय्या पर लगी देखकर एरेयग प्रभु ने कहा, "यह रेविमय्या अत्यन्त विश्वसनीय है।"

"मुझे सब मालूम है, चलो रेविमय्या।" चन्दलदेवी ने ऐसे कहा मानो वे चिर-परिचित हो। रेविमय्या ने झुककर प्रणाम किया और आगे बढ़ा, उसके पीछे बडी रानी चन्दलदेवी, शान्तला और बिट्टिदेव। "प्रधानजी और महादण्डनायकजी, अब आप लोग अपने काम पर ध्यान दे सकते हैं। चिण्णम दण्डनायक हमारे साथ

रहेंगे। ये कौन हैं, इनका हमसे यह नया परिचय है।" कहते हुए प्रभु ने कवि नागचन्द्र की ओर निर्देश दिया।

"ये कवि नागचन्द्र है, इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर मैंने महाराज से निवेदन किया था, अब ये आस्थान-कवि है आर राजकुमारो के अध्यापक भी। प्रभु के दर्शन की प्रतीक्षा मे है।"

कवि नागचन्द्र ने हाथ जोडकर प्रणाम किया। प्रभु एरेयग ने प्रति नमस्कार किया। और कहा, "बहुत खुशी की बात है। अभी कुछ दिन यही राजधानी मे रहेंगे। फिर यथासमय मिलेंगे।"

"जो आज्ञा।" कहा कवि नागचन्द्र ने। एरेयग प्रभु और चिण्णम दण्डनायक आग बढे। हेग्गडे मारसिगय्या वही खडे रहे।

मरियाने ने पूछा—हेग्गडेजी, आपका डेरा कहाँ है। यह सुनकर प्रभु एरेयग ने मुडकर कहा, "क्यो हेग्गडेजी, वही खडे रह गये? आइए।" मारसिगय्या दुविधा मे मुक्त होकर युवराज के साथ चला। प्रधानजी, मरियाने और नागचन्द्र अपने-अपने घर चले गये।

चामव्वे की स्थिति ऐसी हुई थी जैसी परिपक्व गर्भ का पात होने पर किसी स्त्री को होती है। अपनी बदकिस्मती और नि सहायता को याद कर अपने ही ऊपर उसे गुस्सा आ रहा था। अपनी बुद्धिमत्ता और फुर्तीलेपन से चालुक्य बडी रानी को सन्तुष्ट कर मैं उनकी समधिन बन ही जाऊँगी, उसकी कल्पना का यह महल मोम की तरह गल गया।

इस सारी निराशा का कारण उसने हेग्गडती और उसकी बेटी को ठहराया और उनको जी भरकर शाप दिया। यह हेग्गडती दोरसमुद्र पर हमला करने चली है। बेचारे युवराज के औदार्य का फायदा उठा रही है। अपनी लडकी को आगे करके अपनी प्रतिष्ठा बढाने की कोशिश कर रही है। देखने को बडी विनीत लगती है, पर है धूर्त। अबकी बार इसकी ठीक से दवा न करूँ तो मैं चामव्वा नही। चामव्वे ने यही पूर्वग्रह रात मे दण्डनायक के दिमाग मे भर दिया।

दण्डनायक का मन पहले ही दुखी था, क्योकि आज महाराज ने ऊपरी स्तर-वालो के मनोवैशाल्य के कारण जो ऊपर उठे थे वे अपने आधीन रहनेवालो को गौण मानते है, यह बात उसी को दृष्टि मे रखकर कही थी। चामव्वा की बातो ने उन्हे और भी चिन्तित कर दिया। बोले, "हाँ, यह निश्चित बात है, उस हेग्गडे

के परिवार ने युवराज के मन पर काफी प्रभाव डाला है । युवराज की सम्मति के बिना हमारा काम नहीं बनता । इसलिए हमे ऐसा कोई काम अब नही करना चाहिए जो युवरानी और युवराज को अप्रिय लगे । हमे उन्हे खुश रखकर ही अपना काम साधना चाहिए । पहले शादी हो जाय, बाद मे हम अपने हाथ जमा सकेंगे । उस हेग्गडे के परिवार को हमे आत्मीयो की तरह बरतना चाहिए । इतना ही नही, ऐसा लगता है कि चालुक्य बडी रानीजी का भी इस परिवार पर विशेष आदर है । इसलिए इस वक्त हमे मक्खन मे से बाल निकालना है, समझी । इसके अलावा, मुझे मालूम हुआ है कि कोई हमारे बारे मे चुगली कर रहा है महाराज से । आजकल महाराज पहले जैसे खुले दिल से बात नही करते, इन चुगलखोरो का पता लगाना चाहिए और ऐसे लोगो को पास नही फटकने देना चाहिए । चाहे हमारे मन मे कितना ही दर्द रहे, उसे अपने ही मन मे रखकर हमे सबके सामने हँसते नजर आना होगा, समझी ।"

कल्याण से कोई खबर नही मिली, इससे बडी रानी कुछ चिन्तित हुई । उन्होने एरेयग प्रभु मे इस सम्बन्ध मे पूछा तो वे बोले, "मुझे भी कुछ पता नही लग रहा है, बडी रानीजी । अब तक जो निश्चित रूप मे खबर मिलनी चाहिए थी, मुझ इस बात की सूचना मिली थी कि वे जरूर जल्दी ही आएँगे इमीलिए आपको यहाँ ले आया । परन्तु साथ ले आने के लिए मैंने चलिकेनायक को भेज दिया है, इससे कुछ धीरज है ।'

हिरियचलिकेनायक का नाम सुनकर बडी रानी को भी कुछ सान्त्वना मिली । फिर भी "बहुत समय तक प्रतीक्षा करने बैठ रहने मे बेहतर यह होगा कि किसी और को भी कल्याण भेज दिया जाए ।" चन्दलदेवी ने धीरे से सूचित किया ।

"हमने भी यही सोचा है । हेग्गडे मारसिगय्याजी भी बलिपुर लौटने के लिए उतावले हो रहे है । चक्रवर्तीजी के आने तक ठहरने के लिए उन्हे रोक रखा है । आज गुरुवार है, आगामी गुरुवार तक उधर से कोई खबर न मिली तो हम कल्याण के लिए दूत भेजेंगे । ठीक है न ?"

"वही कीजिए । हमेशा काम पर लगे रहने के कारण आपको मेरे मानसिक आतक की जानकारी शायद न हो पाती, इसलिए यह कहना पडा । वैसे भी युद्ध-भूमि मे निकलकर आये मुझे करीब-करीब एक साल हो गया है ।"

"कोई भी बात मेरे मन से ओझल नही हुई है, बडी रानीजी। सन्निधान का सान्निध्य जितना हो सके उतना शीघ्र आपका मिलना चाहिए, यह स्वानुभव की सीख है। हमारी युवरानीजी भी इस बात से चिन्तित है। आपके मन मे जो परेशानी सहज ही उत्पन्न हुई है वह और अधिक दिन न रहे, इसकी व्यवस्था पर ध्यान दे रहा हूँ।"

"मुझे किसी भी बात की परेशानी न हो, इसकी चिन्ता यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति करता है। फिर भी, मन मे ऐसी परेशानी ने घर कर लिया है जो केवल वैयक्तिक है, उसमे बाहर का कोई कारण नही। आपने मुझे जो आश्वासन दिया उसके लिए मै कृतज्ञ हूँ।"

"बहुत अच्छा।" कहकर एरेयग प्रभु जाने को उद्यत हुए।

बडी रानीजी ने घण्टी बजायी। गालब्बे परदा हटाकर अन्दर आयी तो बोली, "युवराज जा रहे है।" गालब्बे ने परदा हटाकर रास्ता बनाया। एरेयग प्रभु चले गये, फिर कहा, "शान्तला को बुला लाओ।"

"वे पाठशाला गयी हैं।"

"पाठशाला? यहाँ तो उनके गुरु आये नही।"

"राजकुमारो के गुरु जब उन्हे पढाते है तब अम्माजी वही रहती है।"

"कुमार बिट्टिदेव ने कहा था कि उसके गुरुजी बहुत अच्छा पढाते है। हम भी उनका पढना-पढाना देखे, तो कैसा रहेगा?"

"मुझे यहाँ की रीत नही मालूम।" गालब्बे ने उत्तर दिया।

"चलो, युवरानीजी से ही पूछ ले।"

अन्त पुर मे चामव्वे और हेग्गडती माचिकब्बे बडी रानी को आया देखकर युवरानी एचलदेवी उठ खडी हुई और बोली, "महारानी सूचना देती तो मै खुद हाजिर होती।"

"मै खुद आ गयी तो क्या मै घिस जाऊँगी। गालब्बे ने बताया कि राजकुमारो की पढाई चल रही है। मैं पाठशाला देखने जा सकती हूँ!"

"मैं स्वय तो इस तरह कभी वहाँ नही गयी, मैं नही जानती कि इसे कविजी क्या समझेगे।" एचलदेवी अपनी झिझक व्यक्त कर भी नही पायी थी कि चामव्वे हाकिमाना ढग से बोल पडी, "जाने मे क्या होगा, जा सकते हो। कविजी हमारे ही बल पर यहाँ आये है। इसमे समझने-जैसी क्या बात है?"

"एक काम कीजिए, चामव्वाजी, किसी नौकर के हाथ पत्र भेजिये कविजी के पास। हमारे वहाँ जाने से उनके काम मे कोई बाधा न होने की सूचना मिलने पर ही हमारा वहाँ जाना उचित होगा।" चन्दलदेवी ने सलाह दी।

"तो उन्हे यहाँ बुलवा ले?" चामव्वे ने सलाह का उत्तर सलाह मे दिया।

"न, वे अपना काम बीच मे छोडकर न आएँ। हम आज जाने की बात ही

छोड दे, कल पूछेगे।" बात यही खतम कर दी महारानी चन्दलदेवी ने। चामव्वे को बडी रानी के सामने अपने दर्प-पूर्ण अधिकार के प्रदर्शन का अवकाश जो मिला था वह भी हाथ से छूट गया। इससे खिन्न होकर हाथ मलने लगी बेचारी चामव्वे।

"अब अच्छा हुआ। मैं छोटे अप्पाजी के जरिये जान लूँगी। अगर कविजी स्वीकार कर ले तो कल बडी रानीजी वहाँ पढाते समय उपस्थित रह सकेंगी।" युवरानी एचलदेवी ने कहा। दूसरे दिन की व्यवस्था मे भी उमकी मदद अनपेक्षित है, चामव्वे के उतावले मन पर इस परिस्थिति ने भी चोट की पर उसने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नही की।

बडी रानी की सहज धारणा थी कि चामव्वा मे स्वप्रतिष्ठा-प्रदर्शन की आकांक्षा है, लेकिन दोरसमुद्र मे आने के बाद उसकी धारणा यह बनी कि उसमे स्वप्रतिष्ठा के प्रदर्शन की ही नही बल्कि एक स्वार्थ की भी भावना है, और उस स्वार्थ को साधने के लिए वह चाहे जो करने को तैयार हो जाती है। इस वजह से उन्होने उससे न ज्यादा मेल-मिलाप रखा न व्यक्त रूप से दूर रखने की ही कोशिश की। उनको यह अच्छी तरह मालूम था कि उसने कुमार बल्लाल को क्यो जकड रखा है, परन्तु इस बात से उन्होने दिलचस्पी नहीं ली। दूसरी ओर, उनकी प्रबल धारणा थी, वह सहज या असहज जो भी हो, कि शान्तला और कुमार बिट्टिदेव की जोडी बहुत ही उत्तम रहेगी। कल्याण रवाना होने से पहले वे इस सम्बन्ध मे युवरानीजी से सीधे विचार-विनिमय करने का भी निश्चय कर चुकी थी। मगर इस वक्त जो खामोशी छायी थी उसे तोडना जरूरी था। चामव्वा का उत्साह ठण्डा पड गया है, इसे भी वे समझ चुकी थी।

इसलिए उन्होने बात छेडी, "क्यो चामव्वाजी, हमारे कल्याण का प्रस्थान करने से पहले किसी दिन आपकी बेटियो के गायन और नृत्य का कार्यक्रम हो सकेगा कि नही, बडे राजकुमार इनकी बडी प्रशसा करते है?"

चामव्वे की बाँछे खिल उठी। उसका आत्म-विश्वास पुनर्जीवित हुआ, उसका भावी दामाद उसे निराश न करेगा। "बडी रानीजी, बडे राजकुमार का मन खरा सोना है। इसलिए उन्होंने इतनी प्रशसा की है। वास्तव मे हमारी बच्चियो की जानकारी बहुत कम है। कल्याण के राजभवन मे जो नृत्य-गान होता है उसके आगे इनकी बिसात ही क्या है? फिर भी आप चाहे तो कल ही उसकी व्यवस्था करूँगी।"

"कल ही हो, ऐसी कोई जल्दी नही। सबकी सहूलियत देखकर किसी दिन व्यवस्था कीजियेगा।"

युवरानी एचलदेवी ने कहा, "प्रभुजी बडी रानीजी से मिलने आये होंगे?"

"हाँ, आये थे। इसके लिए मै युवरानीजी की कृतज्ञ हूँ। आगामी बृहस्पति तक

कल्याण से कोई खबर न मिली तो युवराज यहाँ से दूत भेजने का विचार कर रहे हैं।"

"हाँ, प्रभु ने मुझसे भी यही कहा था। जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी बडी रानीजी सन्निधान से मिले, यही उनकी इच्छा है। उनके भी दिन युग-जैसे बीत रहे हैं। बडी रानीजी के ही लिए प्रभु इतने दिन ठहरे हैं। नही तो अपनी मानसिक शान्ति के लिए अब तक सोसेऊरु चले गये होते।" युवरानी ने कहा।

"तो मेरे कारण ?"

"ऐसा नही। यह कर्तव्य है। धरोहर की जिम्मेदारी है। सबसे प्रथम कार्य यही है।" तभी अन्दर आकर गालब्बे ने बताया, "मुझको बाहर खडी देखकर आप अन्दर होगी यह समझकर राजकुमार अन्दर आने के लिए आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा मे खडे है।"

"आने के लिए कहो।" चन्दलदेवी ने तुरन्त आज्ञा दी।

बिट्टिदेव शान्तला के साथ अन्दर आये तो युवरानी एचलदेवी ने पूछा, "पढाई समाप्त हुई ?"

"समाप्त हुई माँ, गुरुजी मिलना चाहते है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"किससे, मुझसे ?"

"हाँ, कब सहूलियत रहेगी ?"

"बडी रानीजी भी उनसे मिलना चाहती थी। उन्हे सुविधा हो तो अभी आ सकते है।"

'अच्छा, माँ।" कहकर बिट्टिदेव चला गया।

चन्दलदेवी ने पूछा, "मैने कब कहा कि उनसे मिलना है।"

"उनका पढाना सुनने की अभिलाषा व्यक्त की थी न आपने ? कोई गलती तो नही हुई न ?" बडी रानीजी कुछ बोलना ही चाहती थी कि बिट्टिदेव के साथ आये कवि नागचन्द्र ने प्रणाम किया। प्रति नमस्कार करके एचलदेवी ने कहा, "आइए, कविजी, बैठिए। आपने मिलने की इच्छा प्रकट की है ?"

"हाँ, परन्तु राजकुमार ने कहा कि बडी रानीजी ने मिलने की इच्छा प्रकट की है।" नागचन्द्र ने कहा।

"आपके पढाते वक्त यदि आपको कोई असुविधा न हो तो वहाँ उपस्थित रहना चाहती हैं बडी रानी। अत आपका अभिमत ।"

"पूछने की क्या बात है ? अवश्य उपस्थित रहे, यद्यपि मेरा ज्ञान बहुत सीमित है।"

"फिर भी अनुमति लेकर ही आना उचित है।"

"यह अमूल्य वचन है। जन्म-स्थान से बहुत दूर तो आना पडा, पर एक बहुत ही उत्तम स्थान पर रहने का सौभाग्य मिला। यहाँ की यह सुसंस्कृत रीति हम

सर्वत्र देखना चाहते हैं। बडी रानीजी का इस तरह आना तो सरस्वती का और ज्ञान का सम्मान करना है।"

"अच्छा, अब कहिये, आप मिलना क्यों चाह रहे थे?" एचलदेवी ने पूछा, किन्तु नागचन्द्र ने तुरन्त जवाब नही दिया तो वे फिर बोली, "बडी रानीजी और हेग्गडती के यहाँ होने से सकोच मे न पडिए, बोलिए।"

"यह ठीक है, फिर एक बार पुन दर्शन करूँगा, तब अपनी बात कहूँगा।" कहते हुए वे बिट्टिदेव की ओर देखने लगे।

"क्यो गुरुजी, क्या चाहिए?" बिट्टिदेव ने पूछा।

कुछ नही कहकर भी कवि नागचन्द्र उठकर चलते-चलते बोले, "मेरे लिए कल कुछ समय दें तो उपकार होगा, अभी मैं चलता हूँ।"

"वैसा ही कीजिए।" एचलदेवी ने कहा।

नागचन्द्र प्रणाम करके चले गये। उनके पीछे बिट्टिदेव फाटक तक गया, शान्तला भी साथ गयी।

बात उन्हे ही शुरू करनी पडी, "कल के मेरे व्यवहार से पता नही, कौन-कौन बुरा मान गये युवरानीजी! बडी रानीजी और हेग्गडतीजी यहाँ हैं, यह मुझे ज्ञात होता तो मैं कहलाकर ही नही भेजता।"

"उन लोगो के सामने सकोच की आवश्यकता नही थी। मैंने कहा भी था।"

"उसे मैं समझ चुका था, परन्तु जो बात मैं कहना चाहता था, वह बच्चो के सामने कहने की मेरी इच्छा नही थी। और उन लोगो के समक्ष बच्चो को बाहर भेजना उचित मालूम नही पडा। इसके अलावा कुछ सकोच भी हुआ क्योकि बडी रानीजी और हेग्गडतीजी मेरे लिए नयी परिचित हैं जिससे मैं उनके स्वभाव से अनभिज्ञ हूँ।"

"अच्छा, अब बताइये, क्या बात है?"

"मैं जो कहूँगा उससे आप, और सन्निधान भी, यह न समझें कि मैं राजकुमारो की आलोचना कर रहा हूँ, मै तो उनके भले के लिए ही कुछ निवेदन कर रहा हूँ।"

"इतनी पूर्व-पीठिका की आवश्यकता नही, कविजी। मुझे विषय से अवगत करा दें, इतना पर्याप्त है।"

"फिर भी···।"

"मतलब पहले किसी और से विचार-विनिमय कर चुके है, आप क्या ?"

"न, न, ऐसा कुछ नही । अपनी ही सकोच-प्रवृत्ति के कारण यह पूर्व-पीठिका आवश्यक समझता हूँ । मुख्य विषय दो है । दोनो विषयो पर मै दुविधा मे पड गया हूँ । पहला बडे राजकुमार से सम्बन्धित है । वे पढाई की तरफ जितना ध्यान देना चाहिए उतना नही देते । उनकी आयु ही ऐसी है, जब मन चचल होता है । वे अधिक समय दण्डनायकजी के यहाँ व्यतीत करते है । यह बात इसलिए नही कह रहा हूँ कि राजकुमार अमुक स्थान मे रह सकेगे, अमुक स्थान मे नही । वास्तव मे मै दण्डनायकजी का कृतज्ञ हूँ । उन्ही के प्रयत्न से मुझे राजघराने के साथ सम्पर्क का सौभाग्य मिला । राजकुमार बल्लाल आवश्यक शक्तियो से सम्पन्न न होकर यदि सिहासन पर बैठेगे तो अनुचित होगा, इसलिए यह निवेदन कर रहा हूँ, वह भी एक गुरु की हैसियत से । वास्तव मे बडे राजकुमार बहुत उदार है । उनकी ग्रहण-शक्ति भी अच्छी है, परन्तु उनमे श्रद्धा की कमी है । मुझे लगता है, वे किसी अन्य आकर्षण से जकडे हुए है जो अच्छी बात नही । शारीरिक शक्ति की दुर्बलता के कारण वे युद्ध-विद्या सीखने मे दत्तचित्त नही है । परन्तु ज्ञानार्जन की ओर भी ध्यान न दे यह चिन्ता का विषय है ।"

"आपने जो कुछ कहा वह मुझे पहले से ज्ञात है । अब प्रभुजी से भी इस विषय पर विचार-विनिमय करूँगी । राजकुमार वास्तव मे भाग्यवान् है जिन्होने आप जैसा गुरु पाया ।"

"सन्निधान भी इस विषय से परिचित है, यह जानकर मेरे मन का भार कुछ कम हुआ । दण्डनायक ने भी जोर देकर कहा है कि मै बडे राजकुमार की ओर विशेष ध्यान दूं और उन्हे योग्य और प्राज्ञ बनाऊँ । उन्हे इस बात की भी बडी चिन्ता है कि राजकुमार युद्ध-विद्या सीखने मे शारीरिक दृष्टि से दुबल है क्योकि इस विद्या के शिक्षण मे वे स्वय उनके गुरु बनकर प्रयत्न कर रहे है ।"

"छोटे अप्पाजी कैसे है ?"

"ये ही अगर पहले जन्मते तो पोय्सल राजघराने के लिए बहुत ही अच्छा होता । मुझे इस बात का पता है कि माँ बच्चो मे कोई भेदभाव नही रखती । परन्तु एक अच्छे गुरु के नाते मै जोर देकर कहूगा कि ग्रहण-शक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से छोटे राजकुमार छोटे होने पर भी बडे से भी बडे है ।"

माता होकर जब मेरे अपने ही मन मे ऐसी भावना उत्पन्न हो गयी है तो इन गुरुवर्य के मन मे ऐसी भावना के उत्पन्न होने मे आश्चर्य ही क्या है, यह सोचती हुई एचलदेवी ने पूछा, "अच्छा कविजी, और कुछ ?"

"एक विषय और है और वह तात्कालिक है । इस बात की ओर सन्निधान का भी ध्यान आकर्षित करना मेरा कर्त्तव्य है । सन्निधान की आज्ञा से कुमारी शान्तला भी कक्षा मे उपस्थित रहती है, लेकिन यह बात बडे राजकुमार को जँची

नही लगती। इस पर मैं क्या करूँ, कुछ समझ मे नही आ रहा है।"

"इस विषय मे बडे अप्पाजी ने सीधा कोई जिक्र किया आपसे ?"

"सीधा जिक्र तो नही किया। दो-तीन दिन पहले किसी सन्दर्भ मे जब वे अकेले थे तब मैंने कहा कि पढाई पर विशेष श्रद्धा रखनी चाहिए तो उन्होने कहा कि जिस-तिस के साथ बैठकर सीखने मे क्या कष्ट होता है सो आपको मालूम नही। कल उस लडकी के आने पर थोडी ही देर बाद कोई बहाना करके चले गये।"

"यह अच्छा गुण नही, कविजी। मैं खुद उसके इस बरताव के बारे मे उससे खुलकर बात करूँगी।" युवरानी ने कहा। उनके कहने की रीति निश्चित थी और उस कहने मे वेदना के भाव भी थे।

"अभिमान या ईर्ष्या की दृष्टि से नही बल्कि इस दृष्टि से कि वह लडकी थोडे ही दिन रहनेवाली है, इसलिए उसे या तो मना कर दिया जाए या उसके प्रति उपेक्षा कर दी जाए।"

"नही, ऐसा नही, कविजी। आपने कहा कि पढाई पर अप्पाजी की श्रद्धा कम है, वह उसकी भाग्य-रेखा है, फिर भी आप उसके सुधार की सलाह दे सकते हैं। किन्तु, यदि आपके मन मे ऐसी कोई भावना हो, तो स्पष्ट कह दीजिए कि वेतन राजमहल देता है तो मैं हेग्गडे की लडकी को क्यो पढाऊँ ?"

"शान्तला के प्रति मेरी वैसी भावना नही, एक आदर्शवादी गुरु होने के नाते कदापि नही हो सकती जैसी आपने समझ ली। बल्कि मेरा अनुभव तो यह है कि वह एक ऐसी सूक्ष्मग्राही शिष्या है जिसे पाकर कोई भी अपना सौभाग्य समझेगा।"

"तो तात्पर्य यह है कि आप भी उसके प्रशसक है ?"

"उसके गुण, शील, स्वभाव, व्यवहार, ऐसे निखरे हैं कि वह किसी को भी प्रभावित कर लेगी।"

"अगर वह आपकी कक्षा मे रहे तो आपको कोई परेशानी तो नही होगी ?"

"अगर परेशानी हो तो वही उसे दूर भी कर सकती है।"

"ऐसी हालत मे अप्पाजी के इस तरह के व्यवहार का कारण क्या है ?"

"यह बताने मे मै असमर्थ हूँ।"

"अच्छा, मै देख लूँगी।"

"फिर भी मेरी सलाह मान्य होगी ।"

"यह मुझपर छोड दीजिए।"

"ठीक।"

"आज बडी रानीजी पाठशाला मे आ रही है, यह बात मालूम है न ?"

"जी हाँ, मालूम है।" कहकर कवि नागचन्द्र चला गया और एचलदेवी सोचने लगी, अब तो यह स्पष्ट हो गया कि चामव्वा ने विद्वेष का बीज बोया है। उसे

जड से उखाड फेंकना ही चाहिए, मेरे बेटे के दिल मे यह बीज अकुरित हो पेड बन जाए, मैं ऐसा कभी न होने दूँगी।

कवि नागचन्द्र को लगा कि उसने दूसरे विषय का जिक्र नही किया होता तो अच्छा होता। युवरानीजी ने जो निश्चय प्रकट किया उससे वह दग रह गया था। उसने युवरानीजी को कडा निर्णय करते हुए स्वय देखा था। इस निर्णय का पर्यवसान क्या होगा, इसी ऊहापोह मे उसने पाठशाला मे प्रवेश किया। बल्लाल और बिट्टिदेव पहले ही उपस्थित हो गये थे। चालुक्य बडी रानी चन्दलदेवी और शान्तला अन्दर आयी तो सबने उठकर प्रणाम किया।

"बैठिये, बैठिये, हमारे आने से आपके काम मे बाधा नही होनी चाहिए। हम केवल श्रोता है।" कहती हुई बडी रानीजी एक दूरस्थ आसन पर बैठ गयी। शान्तला बिट्टिदेव से थोडी दूर पर बैठी। बल्लाल ने नाक-भौह सिकोडकर उसकी ओर एक टेडी नजर से देखा। बडी रानीजी पीछे बैठी थी, इसलिए वह उसका चेहरा नही देख सकी। नागचन्द्र ने देखकर भी अनदेखा कर दिया, पढाना शुरू किया, "कल हम किस प्रसग तक पहुँचे थे ?"

"आदि पुराण के अष्टम आश्वास मे उस प्रसग तक जहाँ यह चिन्ता की गयी है कि पुरुदेव अर्थात् प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ की दोनो पुत्रियाँ भरत की बहिन ब्राह्मी और बाहुबली की बहिन सौन्दरी विद्याभ्यास के योग्य आयु मे प्रवेश कर चुकी है।" बिट्टिदेव ने उत्तर दिया।

"वहाँ तक कहाँ पहुँचे थे ? यही तो था कि बाहुबली की माँ सुनन्दा ने सौन्दरी नामक पुत्री को जन्म दिया।" कुमार बल्लाल ने आक्षेप किया।

"तुम बीच में ही चले गये थे।" बिट्टिदेव ने उसका समाधान किया।

"तो मेरे जाने के बाद भी पढाई हुई थी क्या ?"

बिट्टिदेव ने कहा, "हाँ।" और नागचन्द्र ने स्पष्ट किया, "वहाँ से आगे का विषय केवल वर्णनात्मक है। उसका साराश यह है कि पुरुदेव ने अपने सब बच्चो को उनके योग्य सुख-सुविधाओ मे पाल-पोसकर इस योग्य बना दिया कि वे यथा-समय विद्याभ्यास के लिए भेजे जा सकें। चाहे तो उस अश को मैं फिर से पढा दूंगा।"

"इतना ही विषय हो तो आगे का पाठ शुरू कर दिया जाये।" बल्लाल ने कहा।

"बहुत ठीक।" कहकर कवि नागचन्द्र ने उस पुराण का कुछ अश, "ब्राह्मियुं सौन्दरियु मैयिविक दूरान्तरदोले पोडेवट्टु मधुर स्वर मे पढ़कर उसका अर्थ समझाया, यशस्वती देवी की पुत्री ब्राह्मी और सुनन्दा की पुत्री सौन्दरी ने पिता पुरुदेव को प्रणाम किया। कवि ने उनके प्रणाम की विशेषता बताते हुए कहा है कि उसमे सन्तान की अपने पिता के प्रति वात्सल्य की अभिव्यक्ति तो स्वभावत थी ही, एक गुरु के प्रति उसकी शिष्याओ के सम्मान की आदर्श भावना भी निहित थी, क्योकि पुरुदेव पितृत्व के साथ गुरुत्व का दायित्व भी निभा रहे थे।

रानी चन्दलदेवी वहाँ एक श्रोता के रूप मे बैठी थी, किन्तु कन्याओ की शिक्षा के प्रसग ने उनकी जिज्ञासा जगा दी और वे बीच मे ही पूछ बैठी, "तो क्या हम मान सकते है कि पुरुदेव के समय स्त्रियों मे भी विद्याभ्यास का प्रचलन पर्याप्त था ?"

"हाँ, महारानीजी, किन्तु स्त्रियो के लिए विद्याभ्यास की आवश्यकता पर इससे भी अधिक बल महाकवि ने अपने महाकाव्य पम्प-भारतम् मे आज से एक सौ पचास वर्ष पूर्व (941 ईस्वी) दिया था, यद्यपि यह दुख का विषय है कि हमने उस महाकवि के हित-वचन पर जितना ध्यान देना चाहिए उतना नही दिया। पुरुष भी मानव है, स्त्री भी मानव है। ज्ञान प्राप्त कर मानव को देवता अर्थात् देव-मानव बनना चाहिए। पुरुष और स्त्री मानव के भिन्न-भिन्न रूप हैं तो भी उनका लक्ष्य देवमानवता है जो अभिन्न है।"

चन्दलदेवी ने प्रश्न किया, "बुजुर्गों को मैंने यह कहते सुना है कि स्त्री को विद्याभ्यास की शायद आवश्यकता नही। वह सदा अनुगामिनी, और रक्षणीय है। आप इस सम्बन्ध मे क्या कहेंगे ?"

"स्त्री पुरुष की अनुगामिनी है, तो पुरुष भी स्त्री का अनुगामी है। इसका अर्थ यह हुआ कि विद्या पुरुष का ही स्वत्व नही है। वह मानवमात्र का स्वत्व है। स्त्री भी मानव है। जब तक वह भी पुरुष के बराबर विद्यार्जन-ज्ञानार्जन नही करेगी तब तक मानवता अपरिपूर्ण ही रहेगी। वास्तव मे हमारे आज के समाज के लिए हमारी उस अम्माजी-जैसी स्त्री की आवश्यकता है जो अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग की जीती-जागती मूर्ति है। यह मुख-स्तुति नही। कन्याओ को विद्याभ्यास कराने मे सभी माता-पिता बलिपुर के हेग्गडे दम्पती की तरह बने तभी राष्ट्र का कल्याण होगा। पोय्सल साम्राज्य की प्रगति का रहस्य वहाँ की रानी की ज्ञान-सम्पन्नता और विवेचनशक्ति मे निहित है। महाकवि पम्प ने यही कहा है कि पुरुदेव ने अपनी दोनो कन्याओ को स्वय भाषा, गणित, साहित्य, छन्दशास्त्र, अलकार आदि समस्त शास्त्रो एव सारी कलाओ मे पारगत बनाया। वास्तव मे मैं प्रभु से इस सम्बन्ध मे निवेदन करना चाहता हूँ कि पोय्सल राज्य मे विद्यादान की लिगभेद रहित व्यवस्था की जाये। हमारे भावी प्रभु भी यहाँ उपस्थित है, उनसे भी मैं यह

निवेदन कर रहा हूँ कि पट्टाभिषिक्त होने के पश्चात् वे भी मेरी इस विनती को पूर्ण करके महाकवि पम्प के सदाशय को कार्यान्वित करे। मुझसे विद्यादान पानेवाले भावी महाराज के मन मे यह सद्भाव यदि मैं उत्पन्न न करूँ तो मेरे गुरु बनने का क्या प्रयोजन ?" ज्ञानी मे, विद्वान मे किस तरह की भावना होनी चाहिए, धनवान् का कैसा स्वभाव होना चाहिए, ये बाते महाकवि रन्न ने बहुत ही सुन्दर ढग से अभिव्यक्त की हैं। जो श्रीयुत होता है, उसमे अनुदारता होती है। जो वाक्श्री-युत होता है, उसमे असूया रहती है। ये दोनो अच्छे नही। वाक्श्री-युत ज्ञानी को असूया-रहित होना चाहिए। श्री-युत जो होता है उसे उदार होना चाहिए जैसा कि उपनिषदो मे कहा गया है, हमे हाथ भर देना चाहिए, खुशी से देना चाहिए, दयापूर्ण होकर देना चाहिए। यह मेरा पुराकृत पुण्य का फल है कि मुझे इन जैसे राजकुमारो का गुरु बनने का अवसर प्राप्त हुआ। यहाँ श्री और वाक्श्री दोनो की सगति है। उदारता और द्वेष-हीनता की साधना मे ये राजकुमार सहायक बनेगे। इसी विश्वास और आशा को लेकर मै अध्यापन रहा हूँ। ये राजकुमार असूया की भावना से परे है। इसलिए उन्होने सामान्य हेग्गडे की पुत्री को भी सहाध्यायिनी के रूप मे स्वीकार किया। उनकी यही निर्मत्सरता स्थायी होकर भविष्य मे उनके सुखी जीवन का सम्बल बने, यह मेरी हार्दिक अभिलाषा है। इससे अधिक मै क्या कह सकता हूँ। महाकवि पम्प एक सत्कवि है, इसलिए उन्होने त्याग और ज्ञान के उत्तमोत्तम चित्र अपने काव्य के द्वारा प्रस्तुत किये है। उस महाकाव्य का सार ग्रहण करने वाले स्त्री-विद्याभ्यास के हिमायती होगे। सन्निधान को भी चाहिए कि चालुक्य साम्राज्य मे स्त्री-विद्याभ्यास की व्यवस्था की, चालुक्य चक्रवर्ती को उसकी आवश्यकता समझाकर इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए मार्ग प्रशस्त करे।"

कवि नागचन्द्र ने एक विचार से दूसरे विचार की कडी मिलाकर बेरोकटोक क्या-क्या कह दिया, बात कहाँ से आरम्भ हुई और कहाँ पहुँच गयी। महारानी जी अभी कुछ और भी सुनना चाहती थी जो उन्होने स्वय एक प्रस्ताव के रूप मे सुनाया, "जब चक्रवर्ती यहाँ आएँगे तब आप इन विचारो को उनसे सीधा निवेदन करने का आपको अवसर जुटा दूँगी। यदि वे आपके विचारो को स्वीकार कर इस कार्य का उत्तरदायित्व लेने को आपसे कहे तो आप स्वीकार कर लेगे न ?"

"महारानीजी, इससे मैं वचन-भ्रष्ट हो जाऊँगा।"

"आपने किसे क्या वचन दिया है ?"

"द्रोण ने भीष्म को जैसा वचन दिया था वैसा ही वचन मैने महाराज को दिया है, जब तक इन राजकुमारो की शिक्षा पूर्ण न होगी तब तक मैं अन्यत्र नही जाऊँगा।"

"अपने वचन की पूर्ति करके शीघ्रातिशीघ्र मुक्त होना भी तो आप ही के हाथ

मे है न ?"

"सिखाना मेरे हाथ मे है। सीखना शिष्यो के हाथ मे है। वे अन्यत्र ध्यान न देकर ज्ञानार्जन की ओर ही ध्यान दें तो यह भी सम्भव है। मेरा मतलब यह है कि उम्र के अनुसार जो आकर्षण होते है उनके वशीभूत न होकर इन्हे ज्ञानार्जन की ओर मन लगाना चाहिए। तभी उनकी प्रयत्नशीलता का पूर्ण परिचय मिलेगा।"

"तो क्या आप समझते है कि इनमे प्रयत्नशीलता अभी अपूर्ण है ?"

"उन्हे अपने ही अन्तरग से पूछना होगा कि उनकी प्रयत्नशीलता मे श्रद्धा और तादात्म्य है या नही।"

"अन्तरग क्या कहता है, इसे कैसे समझना चाहिए।" बल्लाल ने जिज्ञासा व्यक्त की।

अध्ययन मे मन एकाग्र न हो और अन्य विचार मन मे आये तो समझना चाहिए कि अन्तरग मे श्रद्धा कम है। समझ लीजिए, यहाँ अध्यापन चल रहा है लेकिन कही से आती मधुर सगीत की ध्वनि पर मन आकर्षित हो रहा है, तो अन्तरग प्रयत्नशीलता की कमी मानी जायेगी।

"सगीत का आकर्षण अध्ययन से अधिक लगे तब क्या किया जाये ?" शान्तला ने उस जिज्ञासा को आगे बढाया।

"अम्माजी यह तुलना का विषय नही है। जिस समय जिस विषय का अध्ययन चल रहा हो उस समय उसी विषय मे एकाग्रता और तादात्म्य हो तो दूसरी कोई अधिक प्रभावशाली शक्ति उसके सामने टिक नही सकती। परन्तु पहले मे तुलना की भावना उत्पन्न हो गयी हो कि अध्ययन से सगीत ज्यादा रुचिकर है तब तुमने जो प्रश्न उठाया वह उठ खडा होता है।"

"मतलब यह है कि अपनी अन्य आशा-आकाक्षाओ को ताक पर रख देना चाहिए और केवल अध्ययन की ओर ध्यान देना चाहिए। यही न ?" शान्तला गुरुदेव से कुछ और ही कहलाना चाह रही थी।

"हाँ, उस समय प्रेमियो को भी मन से दूर भगा रखना चाहिए।" शान्तला के सवाल का उत्तर देते समय कवि नागचन्द्र का लक्ष्य बल्लाल था।

"कोई मन मे हो, तभी तो उसे दूर भगाया जायेगा।" शान्तला ने कहा।

"ऐसी बाते एक उम्र मे मन मे उठा करती हैं, अम्माजी। वह गलत नही। परन्तु ऐसी बातो की एक सीमा होनी चाहिए। हमे इस सीमा की जानकारी भी होनी चाहिए। वह ज्ञानार्जन मे बाधक हो तो फिर मुश्किल है। मेरे एक सहपाठी का विवाह निश्चित हो गया, इसी कारण उसका अध्ययन वही समाप्त हो गया।" नागचन्द्र ने कहा।

"सभी आपके उस सहपाठी जैसे होंगे क्या ?" बल्लाल ने शका की।

"हो या न हो, पर ऐसा होना अच्छा नही, मै यही कह रहा हूँ।" नागचन्द्र ने समाधान किया।

"कविजी, आपकी योजना के अनुसार पति और पत्नी एक साथ बैठकर अध्ययन जारी रख सकते है ?" चन्दलदेवी ने कुछ आगे की बात सामने रखी।

"हाँ, ऐसा जरूर हो सकता है, इतना अवश्य है कि विद्याभ्यास करते समय पुरुष और स्त्री का वैयक्तिक प्रेम आडे न आने पाये।"

"आपने जो कुछ कहा यह सब महाकवि पम्प ने कहा है क्या ?"

"हाँ, बल्कि उन्होने स्त्री के विद्याभ्यास पर खास ज़ोर दिया है।"

"अच्छा, कविजी, बीच मे बोलकर काव्य-पाठ मे बाधक बनी, इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।" चन्दलदेवी ने कहा।

"काव्य या उसकी कथावस्तु गौण है उसके अन्तर्गत तत्त्व की जिज्ञासा ही प्रधान वस्तु है। इसलिए आपने बीच मे बोलकर जो विचार-मन्थन की प्रक्रिया चलायी वह अच्छा ही हुआ। अब फिर प्रस्तुत काव्य की ओर देखे," नागचन्द्र ने कहा, "अब तक यह कहा गया कि पुरुदेव ने ब्राह्मी और सौन्दरी को क्या-क्या और कैसे सिखाया, सो कवि पम्प के शब्दो मे पढिए, स्वर-व्यजन-भेद-भिन्न-शुद्धाक्षरगलुम अयोगवाह चतुष्कमुम, सयोगाक्षरगलुम, ब्रह्मिगे दक्षिण हस्तदोल् उपदेश गदु, सौन्दरिगे गणिनम एडद कैयोल् स्थान क्रमादिद तोरिदनागल्। अर्थात् स्वर और व्यजनो का भेद और भिन्न-शुद्धाक्षर तथा चारो अयोगवाह एव सयुक्ताक्षर दाये हाथ से ब्राह्मी को और गणित का स्थान-भेद बाये हाथ से सौन्दरी को सिखाया।"

"वे दोनो हाथो मे लिखते-लिखाते थे।" बिट्टिदेव ने आश्चर्य प्रकट किया।

"हाँ, दोनो हाथो से लिखने का सामर्थ्य और दोनो हाथो से समान भाव मे बाँट देना, एक श्रेष्ठ गुण है। महाकवि पम्प भी दोनो हाथो से लिख सकते थे, दोनो हाथ मे हथियार लेकर युद्ध करने का सामर्थ्य भी उनमे रहा होगा। बायाँ हाथ आमतौर पर गौण माना जाता है जैसे एक मानव की अपेक्षा दूसरा मानव। इसलिए बाएँ हाथ का उपयोग गणित-जैसा क्लिष्ट विषय सिखाने मे दिखाकर उसका गौरव बढाया होगा महाकवि पम्प ने। साम्राज्य की स्थापना के अभिलाषी राजवशी यह गौण-मुख्य या ऊँच-नीच का भेद सबसे पहले त्यागते है, और इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है ये राजकुमार जो हेग्गडेजी की पुत्री के साथ बैठकर अध्ययन कर रहे है। बाल्यकाल से सामान्य जनता से मिलजुलकर रहने की आदत डाली जाये, उसके लिए मौका पैदा किया जाये तो मन मे विशालता बढती जाती है। पोय्सल वशियो मे यह कार्यरूप मे परिणत हुई है यह शुभसूचक है।" नागचन्द्र ने कहा।

"कविजी का कथन अक्षरश सत्य है। मैंने भी आम जनता से मिलने-जुलने से बहुत कुछ सीखा है, बलिपुर के अज्ञातवास की अवधि मे।" चन्दलदेवी ने कहा।

"क्या बडी रानीजी को अज्ञातवास भी करना पडा है ?" आश्चर्य से बिट्टिदेव ने पूछा।

"हाँ, छोटे अप्पाजी, किस समय किसे किस ढग से कहाँ रहना पड जाये किसे मालूम ? वृत्तान्त सुनना चाहो तो शान्तला से सुनो, वह विस्तार से बता सकेगी।"

"कविजी, आपकी बातो से लगता है, महाकवि पम्प के काव्य का प्रभाव आप के मन पर बहुत गहरा पडा है। शायद आप उन-जैसा बनना चाहते है।"

"इच्छा तो है परन्तु वैसा बनना इतना आसान नही।"

"आप काव्य-रचना करते हैं ?"

"हाँ, महादेवीजी, किन्तु महाकवि पम्प, रण्ण आदि के स्तर तक पहुँचने मे समय लगेगा। महाकवि पम्प ने यह कृतिरत्न पूर्ण किया तब उनको इतना लोकानुभव प्राप्त था कि वे जनता को अपनी जानकारी से उपदेश दे सके और ज्ञानवान् बनने का मार्ग दरशा सके, उनकी उम्र भी इस योग्य थी। मुझे भी तो ऐसा लोकानुभव प्राप्त करना होगा। इसके लिए अभी समय है। इस कार्य के लिए उपयुक्त चित्त-शुद्धि भी चाहिए।"

"फिर सुहृदयो का प्रोत्साहन चाहिए। यह सब प्राप्त हो तभी सरस्वती अपनी तृप्ति के योग्य काव्य मुझसे लिखवा सकेगी।"

"ऐसा वक्त शीघ्र आये, यही हमारी इच्छा है। हाँ, फिर ?" चन्दलदेवी की पुराण सुनने की इच्छा अभी पूरी नही हुई थी।

"आगे चलकर पुरुदेव अपने पुत्र भरत, बाहुबली, वृषभसेन आदि के भी विद्यागुरु बने। उन्हे नाट्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, गाधर्वशास्त्र, चित्रकला, वास्तु-विद्या, कामशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, आयुर्वेद, हस्तितन्त्र, अश्वतन्त्र रत्न-परीक्षा आदि उन्होने स्वय पढाये। महाकवि पम्प विस्तार से बताते है कि पिता पुरुदेव से इस स्तर की विद्या सीखने ही के कारण भरत और बाहुबली अतिमानव आदर्श-जीवी होकर सिद्धक्षेत्र मे विराजमान है। महाभारत के युद्ध के पश्चात्, पम्प ने, अर्जुन को पट्टाभिषिक्त कराया है, धर्मराज को नही। यह बडे-छोटे का प्रश्न नही। श्रेष्ठता और औदार्य का सगम है। कही कडुआपन नही, कोई परेशानी नही, किसी तरह के गर्व-अहकार की भावना नही। इसका फल लोकोपकार है। इस कारण पम्प महाकवि के काव्यो का अध्ययन राजवशियो को अवश्य करना चाहिए।" इसके बाद कवि नागचन्द्र बोले, "अब छन्दोम्बुधि के एक-दो सूत्रो का मनन करेगे।"

चन्दलदेवी ने कहा, "अब आप जो विषय पढायेंगे उससे मै बहुत दूर हूँ। इसलिए अब मैं विदा लेती हूँ। बीच मे ही उठकर जा रही हूँ, अन्यथा नही समझे।"

"महादेवीजी को जैसा ठीक लगे, करें। मुझे इतना और कहना है कि कन्नड

के कवियो ने जो भी लिखा है वह इस ढग से लिखा है कि वह स्त्रियो के लिए भी आवश्यक है। छन्दोम्बुधि का कर्ता नागवर्म कवि पम्प महाकवि के थोडे समय बाद का है। यह शास्त्र कुछ क्लिष्ट है। यह उसने मनोरमा के लिए लिखा था और उसकी टीका भी मनोरमा को समझाते हुए ही लिखी लगती है। इसमे उसकी रसिकता स्पष्ट होती है। तो भी उसकी इच्छा है कि स्त्रियो को भी इस शास्त्र मे पारगत होना चाहिए।" नागचन्द्र ने महारानीजी को बैठा रखने का उपाय किया।

"इतनी सद्भावना कन्नड के कवियो मे है और इस सद्भावना के होते हुए भी कोई नाम लेने लायक कवयित्री हुई है ? मेरे सुनने मे तो नाम आया नही।" चन्दलदेवी ने बताया।

पढाई आगे जारी रही। शान्तला मे एक नयी स्फूर्ति आ गयी थी। बिट्टिदेव मे श्रद्धाभाव स्पष्ट रूप से चमक उठा था। बल्लाल भी ऐसा लग रहा था जैसे वह बदल गया है।

नागचन्द्र ने पूछा, "अम्माजी, बताओ तो, तुमने अपने गुरु से कभी छन्दोम्बुधि का नाम सुना है ?"

शान्तला ने उत्तर दिया, "गुरुजी ने छन्दोम्बुधि के चार अधिकार पढा दिये है, दो अधिकार शेष है।"

"ऐसा है ? इस छोटी उम्र मे इतना समझना आसान हुआ ?"

"मेरे गुरुजी भी जब तक पूर्ण रूप से समझ न लूँ तब तक बडी सावधानी से समझाकर बार-बार व्याख्या करते है।"

"प्रासो के बारे मे तुमने क्या समझा है ?"

"हर एक चरण का दूसरा अक्षर एक ही होना चाहिए। प्रासो के छह प्रकार है। नागवर्म का सूत्र है, 'हरि-करि-वृषभ-तुरग शरभ अजुगलु मेनिप्प पट्प्रासवक्कु तरुणि। निजदोष बिन्दुगण्टिरदोन्तु व्यजन विसर्ग बकु'।' अर्थात् छह प्रकार के प्रास है कन्नड मे, सिह प्रास, गज प्रास, वृषभ प्रास, अज प्रास, शरभ प्रास, हय प्रास। ये काव्य के लिए अलकार-प्राय हैं। इस सूत्र के प्रथमार्ध मे इन प्रासो के नाम और उत्तरार्द्ध मे उनके लक्षण बताये गये है। हर चरण का दूसरा अक्षर एक होना चाहिए जो प्रासाक्षर कहलाता है। प्रासाक्षर के पीछे ह्रस्व स्वर हो तो वह सिह प्रास है, दीर्घ स्वर हो तो गज प्रास, अनुस्वार हो तो वृषभ प्रास, विसग हो तो अज प्रास, व्यजन अर्थात् प्रासाक्षर अन्य अक्षर से सयुक्त हो तो शरभ प्रास और सजातीय अक्षर मे सयुक्त हो तो हय प्रास। इन प्रासो के न होने से काव्य शोभायमान नही होता, यह भी कहा है।" शान्तला ने कहा।

"तो क्या अधिकारो को कण्ठस्थ कर लिया है तुमने," नागचन्द्र ने पूछा।

"नही, न। कुछ को तो कण्ठस्थ करना ही चाहिए।" गुरुजी ने कहा है।

"ठीक, अभी जो तुमने सुनाया उसी का भाव मेरे पास के भोजपत्र ग्रन्थ मे इस प्रकार लिखा है, सुनो, पढ़ता हूँ, निर्जदि बदोडे सिग। गज दीर्व बिंदु वृषभ-वेंजन शरभ। अजनु विसर्ग हयन बुजमुखि दडदक्क रगष्ठिवु षट् प्रास।"

"एक ही कवि द्वारा वही विषय दो भिन्न-भिन्न रीतियो मे कैसे लिखा गया, यह कैसे सम्भव हुआ।" बल्लाल ने प्रश्न किया।

"इसमे कोई एक कवि का स्वय का लिखा है और दूसरा किसी नकल करने-वाले ने उसी को बदलकर लिख दिया है।"

"ऐसा करना गलत है न?" शान्तला ने पूछा।

"हाँ, अम्माजी, ऐसा करना गलत है। परन्तु यह सब वैयक्तिक वक्रता है, क्षम्य है। इस वक्रता से अर्थ बदला नही है, न। परन्तु कुछ जगह कविता मे इसकी वक्रता के कारण मूल के बदल जाने का प्रसग भी आ जाता है, वह काव्यद्रोह है।"

"ऐसा भी हुआ है?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"ऐसा भी हुआ है, राजकुमार, रन्न कवि के साहस-भीम-विजय काव्य मे एक पद्य है जिसमे युद्ध-भूमि मे अपने माता-पिता से दुर्योधन कहता है, फल्गुन और पवनसुत को समाप्त कर कर्ण और दु शासन की मत्यु का प्रतिकार करके निर्दोषी धर्म के साथ मिलकर चाहे तो राज्य करूँगा। इस पद्य का अन्तिम चरण कवियो के हाथ मे पडकर, 'निर्दोषिगलिक्के यमजनोलपुदुवालें' हो गया जिससे उसका अर्थ ही बदल गया, यजम यानी धर्म-निर्दोषी होने पर भी उससे मिलकर राज्य नही करूँगा। वास्तव मे यह पक्ति रण्ण ने मूल मे यो लिखी होगी, 'निर्दोषि बलिक्के यमजनोल् पुदुवालवे।' इसका अर्थ है, फल्गुन और पवनसुत को समाप्त करने के बाद धर्म के साथ मिलकर राज्य करूँगा। यह रन्न कवि से दुर्योधन की रीति है। इसलिए अन्य कवियो के हाथ मे पडकर बदले हुए रूप का परिशोधन करके ही काव्य का मूल रूप ग्रहण करना चाहिए।"

"जब यह मालूम पडे कि यह पाठान्तर है तभी परिशोधन साध्य है। नही तो कल्पना गलत होगी न?" बिट्टिदेव ने कहा।

"सच है, क्या करे? कवि के द्वारा समर्पित कृति की राजा के आस्थान मे जो नकल की जाती है उस नकल को मूल से मिलाकर ही सार्वजनिको के हाथ मे पहुँचाने का नियम हो तो इस तरह के दोषो का निवारण किया जा सकेगा। ऐसी व्यवस्था के अभाव मे ये गलतियाँ काव्य मे बनी रह जाती है। अच्छा, इन प्रासो के उदाहरण दे सकते हो तुम लोग?" बल्लाल ने कहा।

"आज जो पद्य पढ़ाया, 'सौन्दरिग गणितमु', उसमे वृषभ प्रास है।" बल्लाल ने कहा।

"वैसे ही 'ईवयसमन्' मे गज प्रास और 'मुत्ततिलोकगुरु' मे हय प्रास है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"तेगेदुत्सचदोल्' मे सिह प्रास है।" शान्तला ने कहा।

"तो मतलब यह कि तुम लोगो को प्रास के लक्षण और उदाहरणो की अच्छी जानकारी हो गयी है। शेष दो प्रासो के लिए उदाहरण पठित भाग से स्मरण कर बताओगे, क्यो बडे राजकुमारजी ?" कवि नागचन्द्र ने बल्लाल से ही सवाल किया।

बल्लाल ने कुछ सोचने का-सा प्रयत्न करके कहा, "कोई स्मृति मे नही आता।" बिट्टिदेव की ओर देखकर पूछा, "आपको ?"

"ग्रन्थारम्भ मे एक पद्य है, 'वत्सकुल तिलक' आदि। इसमे शरभ प्रास लगता है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"लगता क्यो, निश्चित रूप से कहिए कि यह शरभ प्रास है। अब शेष रह गया 'अज प्रास'। उसका लक्षण मालूम है न ?"

"प्रसाक्षर के पीछे विसर्ग होना चाहिए।" बल्लाल ने कहा।

"उदाहरण बताइये।"

थोडी देर मौन रहा। किसी ने कुछ कहा नही।

"अम्माजी, तुम्हे कुछ याद है ?" नागचन्द्र ने पूछा।

"नही गुरुजी, जब मुझे पढाया गया तब किसी पूर्व-रचित पद्य का उदाहरण न देकर मेरे गुरुजी ने स्वय पद्य रचकर उसके स्वरूप का परिचय दिया था। परन्तु वह मुझे याद नही।" शान्तला ने कहा।

"सच है। अज प्रासवाले पद्य बहुत विरले ही मिलते है। मुझे भी तुरन्त स्मृति मे नही आ रहा है। याद करके कल बताऊँगा। नही तो तुम्हारे गुरु की तरह मैं भी स्वय एक पद्य की रचना करके सुनाऊँगा। परन्तु काव्य-रचना मे इस प्रास का प्रयोग बहुत ही बिरला होता है, नही के बराबर," नागचन्द्र ने कहा।

"ऐसा क्यो ?" बल्लाल ने पूछा।

"विसर्ग-युक्त शब्द व्यवहार मे बहुत कम है, इसलिए ऐसा है। अच्छा, आज का पाठ पर्याप्त प्रमाण मे हुआ। अनेक उदात्त विचारो पर चर्चा भी हुई। कल से तीन दिन अनध्ययन है, इसलिए मैं नही आऊँगा।"

"तो हमे भी अध्ययन से छुट्टी मिली।" बल्लाल ने कुछ उत्साह से कहा।

"वैसा नही। अनध्ययन का अर्थ है नये पाठ नही पढाना, तब भी पठित पाठ का अध्ययन और मनन तो चलता ही रहना चाहिए। इसलिए अब तक पठित विषयो का श्रद्धा से अध्ययन करते रहे।"

शिष्यो ने साष्टाग प्रणाम किया। आज के प्रणाम की रीति वैसी थी जैसी ब्राह्मी और सौन्दरी की बतायी गयी थी।

नागचन्द्र चला गया। रेविमय्या आया, बोला, "अप्पाजी, युवरानीजी ने आप को अकेले आने को कहा है।"

"सो क्यो ?" बल्लाल ने पूछा।

"सो मुझे मालूम नही। आज्ञा हुई सो मैं आया।" रेविमय्या ने कहा।
बल्लाल माँ के दर्शन के लिए चला गया।
रेविमय्या, बिट्टिदेव और शान्तला की दुनिया अलग ही बन गयी।

बेटे के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई एचलदेवी सोच रही थी कि उससे बात शुरू कैसे करे। वास्तव मे कवि नागचन्द्र ने जो बात कही थी उसे सुनकर वह बहुत दु खी थी। उस लडकी की उपस्थिति से इसे परेशान होने का क्या कारण हो सकता है? बहुत गम्भीर स्वभाव की लडकी है वह, होशियार और इगितज्ञ। मुझे वह और उसके माता-पिता आत्मीय और प्रिय है, यह बात जानते हुए भी इस अप्पाजी की बुद्धि ऐसी क्यो, क्यो, क्यो? यह दूसरो के द्वारा जबरदस्ती सिखायी गयी बुद्धि है। इसे अभी जड से उखाड फेकना चाहिए। उसने निश्चय किया कि अब की बार से अपने सभी बच्चो को वह अपने ही साथ रखेगी। यह निर्णय वह अपने स्वामी को भी बता चुकी थी। इन नये गुरु को भी वही साथ ले जाने का निश्चय कर चुकी थी। यहाँ अब थोडे दिन ही तो रहना है। इससे इस चामव्वे के उपदेशो से बच्चो को दूर रखने का काम भी सध जायेगा। इसलिए अब किसी के मन को आघात न लगे, ऐसा व्यवहार करना चाहिए। वह बात शुरू करने के ढग पर सोच ही रही थी कि बल्लाल आ गया। बोला, "माँ, आपने मुझे बुलाया था?"

"हाँ, आओ, बैठो। पढाई समाप्त हुई?"

"हाँ, समाप्त हुई।"

"मैने तुम्हारे गुरु के बारे मे कभी नही पूछा। वे कैसे हैं?"

"बहुत अच्छे है?"

"पढाते कैसे है?"

"अच्छा पढाते है।"

"मै सुनती हूँ कि तुम कभी-कभी पढ़ाई के समाप्त होने तक नही रहते हो?"

"कौन, छोटे अप्पाजी ने शिकायत की?"

"वह तुम्हारे बारे मे कभी कोई बात नही करता।"

"तो उस हेग्गडेजी की बेटी ने कहा होगा?"

"वह क्यो कहने लगी, क्या तुम दोनो मे झगडा है?"

"नही, वास्तव मे उसने मुझसे कभी बात की हो, इसका स्मरण नही।"

"ऐसी हालत मे उस पर तुम्हे शका क्यो पैदा हो गयी?"

"छोटे अप्पाजी ने उसके द्वारा कहलाया होगा ?"

"नही, वह ऐसी लडकी नही। यदि मै कहूँ कि उसका स्वभाव ही इस तरह का नही, तुम विश्वास करोगे ?"

"क्यो माँ, ऐसे क्यो पूछती हैं ? क्या कभी मैने आपकी बातो पर अविश्वास किया है ?"

"अविश्वास का समय न आ जाये इसका डर है, अप्पाजी। अब तुम्हारी जैसी उम्र है उसमे माँ-बाप को तुम्हारे साथ मित्र का-सा व्यवहार करना चाहिए, किन्तु तुम्हारी कुछ रीति-नीतियाँ हमारे मन मे आतक का कारण बनी है। अगर मैं यह कहूँ तो तुम विश्वास करोगे ?"

"मैने कोई ऐसा काम नही किया, माँ।"

"तुम्हारा व्यवहार हमारे आतक का कारण है, इस बात का प्रमाण दूं ?"

"उसके निवारण के लिए पूर्ण मन से यत्न करूँगा। कहिए, माँ।"

"तुम कौन हो, यह तुम समझते हो, अप्पाजी ?"

"यह क्या, माँ, ऐसा सवाल करती है ? क्या मै आपका बेटा नही हूँ।"

"केवल इतना ही नही, अप्पाजी, तुम इस साम्राज्य के भावी महाराज हो।"

"वह मुझे मालूम है, माँ।"

"तुम कहते हो, मालूम है परन्तु इस गुरुतर भार की जानकारी अभी तक तुम्हे नही है अप्पाजी। इसके लिए तुमको किस स्तर का ज्ञान प्राप्त करना होगा, कितनी श्रद्धा के साथ अध्ययन करना पडेगा, कभी सोचा भी है तुमने ? मै माँ हूँ। माँ के दिल मे बेटे के प्रति प्रेम और वात्सल्य के सिवाय और कुछ नही होता, अप्पाजी। फिर भी यदि तुम गलती करो तो उन्हे आँचल मे बाँधकर मै चुपचाप बैठी नही रह सकती। तुम्हारी भलाई और प्रगति के लिए यह बात कह रही हूँ। उद्वेग-पूर्ण हृदय से। जब बात करती हूँ तो कुछ बाते तुम्हारे दिल को चुभ सकती है। यदि वैसी बात कही हो तो मुझे तुम क्षमा करना।"

"माँ, माँ, यह आप क्या कह रही है ? आपकी गालियाँ तो मेरे लिए आशीर्वाद है। धरित्री-सम क्षमाशील आप अपने बेटे के सामने ऐसी बात न कहे। मेरे कारण आप कभी दुखी न हो, माँ। मै आपका पुत्र हूँ, यह बात जितनी सत्य है उतनी ही सत्य यह भी है कि मै कभी आपके दुख का कारण नही बनूंगा।"

"ऐसा हो तो मुझसे सवाल के प्रति सवाल न करके साफ-सीधा और सत्य कहोगे ?"

"कहूँगा, माँ।"

"जिस-तिस के साथ बैठकर पढना नही हो सकता, यह बात तुमने कही, यह सत्य है ?"

"हाँ, सच है। किसने कहा ?"

"सवाल नही करना, पहले ही कहा है, न ? जब तुमने मान लिया तब दूसरो की बात क्यो ? तुमने ऐसा क्यो कहा ?"

"मुझे ऐसा लगा, इसलिए कहा।"

"ऐसा क्यो लगा ? किसके कारण ऐसा लगा ?"

"उस हेग्गडे की लडकी के आकर बैठने के कारण ऐसा लगा।"

"ऐसा क्यो लगा ?"

"यह तो नही कह सकता। उसके बारे मे मेरे विचार बहुत अच्छे नही।"

"यह कहने की जरूरत नही। जब तुमने यह शका प्रकट की कि उसने चुगली खायी होगी तभी मैने समझ लिया कि तुम्हारे दिल मे उसके प्रति सद्भावना नही है। उसने तुम्हारा क्या बिगाडा है ?"

"कुछ नही।"

"कुछ नही, तो ऐसी भावना आयी क्यो, तुम्हारे दिल मे इस भावना के उत्पन्न होने का कारण होना ही चाहिए। है न ?"

"मुझे ऐसा कोई कारण नही सूझता।"

"तब तो उसके बारे मे जिन लोगो मे अच्छी भावना नही होगी, ऐसे लोगो की भावना से प्रभावित होकर यह भावना तुम्हारे दिल मे अकुरित हुई होगी।"

"यह भी हो सकता है।"

"हममे ऐसा व्यक्ति कौन है ?"

"चामव्वे के घर मे हेग्गडती और उनकी लडकी के बारे मे अच्छी भावना नही।"

"तो क्या उनका अभिमत ही तुम्हारा भी मत है ?"

"शायद हो।"

"तो क्या ऐसा मान ले कि उन लोगो ने तुम्हारे दिल मे ऐसी भावना पदा करने का प्रयत्न किया है ?"

"इस तरह मेरे मन को परिवर्तित करने का प्रयत्न उन लोगो ने किया है, ऐसा तो नही कह सकता माँ, उस लडकी को उस दिन आपने जो पुरस्कार दिया उसे उसने स्वीकार नही किया, उसी दिन मैने समझ लिया कि वह गर्वीली है। एक साधारण हेग्गडे घराने की लडकी को अपनी प्रतिष्ठा का इतना ख्याल है तो हमे कितना होना चाहिए ?"

"तो तुम अपनी प्रतिष्ठा और बडप्पन दिखाने के लिए महाराज बनोगे ? या प्रजा का पालन करने के लिए ?"

"उनसे पूछकर तो मैं राजा नही बनूंगा, न।"

"अप्पाजी, तुम्हारा मन बहुत ही निम्न स्तर तक उतर गया है। उसे, सहानुभूति क्या चीज है सो मालूम नही है। उसे अनुकम्पा का भी पता नही। गुण-

ग्रहण करना उसे मालूम नहीं। औदार्य से वह परिचित नहीं। तुम्हारा मन इसी तरह अगर बढ़ेगा तो तुम वास्तव मे सिंहासन पाने के योग्य नहीं हो सकोगे। उस सिंहासन पर बैठने का अधिकार पाने के लिए कम-से-कम अब तो प्रयत्न करना चाहिए। तुम्हारे मन को पूर्वाग्रह की बीमारी लगी है। उसे पहले दूर करो। पीलिया के रोगी को सारी दुनिया पीली-पीली ही लगती है। पहले इस बीमारी मे मुक्त हो जाओ। मेरे मन को एक ओर इस बात का दुख है कि तुम शारीरिक दुर्बलता के कारण राज्योचित युद्ध नहीं सीख पाते हो, ऐसी हालत मे बौद्धिक शक्तियाँ भी मन्द पड जाएँ तो क्या होगा, अप्पाजी ? तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हे एक अच्छे गुरु मिले। ऐसी स्थिति में अक्लमदो का भी साथ मिले तो वह ज्ञानार्जन के मार्ग को प्रशस्त बनाएगा। अध्ययन मे तुम्हारा मन विशाल होगा। जिसका मनोभाव विशाल नहीं वह उत्तम राजा नहीं बन सकता। क्षमा, सहनशीलता, प्रेम, उदारता आदि गुणो को अपने मे आत्मसात् कर लेने की प्रवृत्ति अभी से तुममे होनी चाहिए। चूँकि तुम मेरे पहलौटी के पुत्र हो इसलिए कल तुम महाराज बनोगे। इसलिए मुझे तुम्हे इन सब बातो को समझाना पडा। यदि बिट्टिदेव या उदय ऐसा होता तो मैं इतनी चिन्ता नहीं करती। क्योंकि सिंहासन तुम्हे और तुम्हारे बच्चो को ही मिलेगा, इस कारण जितनी जिम्मेदारी तुम पर है उतनी दूसरो पर नहीं। इसलिए सोचकर देखो तुम योग्य महाराज बनोगे या केवल प्रतिष्ठित महाराज ही बनोगे।"

"माँ, मुझे इतना सब सोच-विचार करने का मौका ही नहीं मिला था। आज सचमुच आपके इन हित-वचनो को सुनने के योग्य मनोभूमि हमारे गुरु ने तैयार की है। विद्या से क्या साध्य है उसकी साधना किस तरह हो इन बातो पर विस्तार के साथ चर्चा का अवसर आज बड़ी रानी के कारण प्राप्त हुआ। गुरुवर्य ने श्रीयुत और वाक्-श्रीयुत शब्दो मे फरक बताकर उन्हे उदार और असूया-रहित कैसे होना चाहिए, यह सोदाहरण समझाया। आपने जो बाते कही वे प्रकारान्तर से उन्होने भी बतायी है। माँ, कल मे आपका यह बेटा आपके आशा-भरोसे को कार्यान्वित करने की ओर अधिक श्रद्धा से सक्रिय होगा। इस कार्य मे सफल बनूँ, यही आशीष दीजिए। मैं आपका पुत्र हूँ, मैं गलती करूँ तो उसे ठीक कर योग्य रीति से मुझे चलाने का आपको अधिकार है।" कहते हुए उसने माँ के चरणो मे अपना सिर रखा।

बडे आनन्द मे माँ ने उसके नत सिर पर आनन्दाश्रु गिराये, पुत्र को बाँहो मे भरकर आलिंगन किया।

बडी रानीजी को दिये गये आश्वासन के अनुसार एक सप्ताह तक प्रतीक्षा की गयी। इसके पश्चात् विश्वासपात्र रेविमय्या और गोक को एरेयग प्रभु ने कल्याण भेजा। बडी रानीजी को इसकी खबर देकर युवरानी को भी बताने के उद्देश्य से वह युवरानी के अन्त पुर गये। उनके आगमन की सूचना देने के लिए घण्टी बजी। युवरानी एचलदेवी अपने स्वामी के स्वागत के लिए द्वार पर पहुँची। उन्हे साथ ले जाकर पलग पर बैठाया, फिर बोली, "कल्याण से अभी तक समाचार न मिलने से आपने रेविमय्या और गोक को वहाँ भेजा है।"

"यह समाचार यहाँ तक इतनी जल्दी पहुँच गया ?"

"मुझसे कहे बिना रेविमय्या वैसे ही जाएगा क्या ?"

"हाँ, हमारा ध्यान इस बात पर नही गया था, यो यह समाचार सुनाने को ही हम इधर आये।"

"उनको क्या आदेश देकर भेजा है ?"

"रेविमय्या यह बताने वाला व्यक्ति नही। अवश्य जाने का आग्रह दुहराया है। बडी रानीजी ने स्वय एक पत्र लिख भेजा है, क्या लिखा है, पता नही।"

"जैसे कि स्वामी ने बताया था, चक्रवर्ती को अब तक आना चाहिए था। है न ?"

"शायद रास्ते मे चक्रवर्ती की सवारी मे रेविमय्या की भेट हो सकती है।"

"कल रात मुझे एक बात सूझी। चक्रवर्तीजी यहाँ पधारने ही वाले है। उनके यहाँ रहते छोटे अप्पाजी का उपनयन सस्कार करने का इन्तजाम कर दें तो अच्छा होगा।"

"ठीक ही है। हाँ, एक और बात है। अप्पाजी अब विवाह योग्य भी हो गया है। यह सवाल भी उठा है कि विवाह कब होगा।"

"स्वामी ने क्या जवाब दिया ?"

"इस विषय मे युवरानी की राय लिये बिना हम कोई बात नही करेगे।"

"चुप रहेगे तो प्रश्नकर्ता क्या समझेगे ?"

"उन सबके लिए एक ही उत्तर है, विद्याभ्यास के समाप्त होने के बाद इस पर विचार करेंगे।"

"इसमे मुझसे क्या पूछना। आपका निर्णय बिल्कुल ठीक है।"

"मतलब यह कि अभी अप्पाजी की शादी के विषय मे नही सोचना चाहिए, यही न ?"

"तो अब वह भी हो जाये, यही प्रभुजी का विचार है ?"

"हाँ। शादी अभी क्यो नही होनी चाहिए ?"

"क्यो नही होनी चाहिए, यह मैं बताऊँगी। सुनिए," कहके नागचन्द्र ने उससे जो कुछ कहा और उसने फिर बल्लाल को बुलाकर उससे जो बाते की, आदि सब

विस्तार के साथ कह सुनाया।

सुनकर एरेयग प्रभु आश्चर्यचकित हुए। "यह सारा विचार-विमर्श आप स्त्रियो मे हुआ है, यह मुझे सूझा ही नही। अच्छा हुआ।"

"प्रभु से मेरी एक विनती है।"

"विनती के अनुसार ही होगा।"

"विनती क्या है, यह जाने बिना ही वचन दे रहे हैं, बाद मे महाराज दशरथ से जैसा वरदान कैकेयी ने माँग लिया था वैसा कुछ कर लूं तो?"

"हमारी रानी कैकेयी नही है। उसकी विनती मे स्वार्थ नही होता, यह हमारा अनुभव है।"

"जिन-नाथ वैसी ही कृपा हम पर रखे।"

"विनती क्या है यह भी तो बताएँ।"

"छोटे अप्पाजी के उपनयन के तुरन्त बाद हम तीनो बच्चे और गुरु कवि नागचन्द्रजी सोसेऊरु जाकर रहे। यहाँ रहने पर बल्लाल की शिक्षा-दीक्षा मे वाछित प्रगति नही हो सकेगी।"

"वर्तमान राजकीय स्थिति मे हमारा बलिपुर मे रहना सोसेऊरु मे रहने से बेहतर है, इसीलिए बलिपुर मे रहने का हमने निर्णय भी कर लिया है। अब फिर इस निर्णय को बदलना ।"

"उसकी आवश्यकता भी नही। दोरसमुद्र को छोडकर अन्यत्र कही भी हो, ठीक है।" बीच ही मे एचलदेवी ने कहा।

"यह क्या, दोरसमुद्र पर हमारी रानी का इतना अप्रेम?"

"आपकी रानी कही भी रहे, कोई अन्तर नही पडता। उसके लिए कोई अच्छी, कोई बुरी जगह नही हो सकती। बच्चो के लिए, उनकी प्रगति के लिए, उनका यहाँ रहना अच्छा नही क्योकि यहाँ सूत्र पकडकर उन्हे चाह-जैसे नचानेवाले हाथ मौजूद है।"

"ठीक, समझ मे आ गया। परन्तु कुमार ठीक रहे तब न?"

"अब वह ठीक रास्ते पर है। मन का द्वार बन्द होने से उसमे अँधेरा भरा हुआ था। उस अँधेरे मे किसी के दिखाये टिमटिमाते दीपक के प्रकाश मे जितना दिखा उतने को ही दुनिया मानने लगा था वह। अब उसके मन का दरवाजा खुला है, प्रकाश फैला है। भाग्य से गुरु अच्छे मिले है उसे।"

"परन्तु, हमने सुना है कि वे गुरु वह सूत्र पकडनेवाले हाथो की ही तरफ से आये हैं।"

"आये उधर से जरूर है, परन्तु निर्मल-चित्त है। उनमे कर्तव्य के प्रति अपार श्रद्धा है। वे न्यास-निष्ठुर भी है, उनमे इसके लिए आवश्यक आत्म-विश्वास और धीरज भी है।"

"तो ठीक है, वही करेंगे। परन्तु ये सब बातें गुप्त ही रखें। कहीं किसी तरह के ऊहापोह को मौका न मिले। एकदम गुप्त रखें।"

"आपकी रानी जीत गयी। उपनयन के सन्दर्भ मे एक बार महाराज से मिल लें और उनसे आशीर्वाद ले लें फिर जितनी जल्दी हो, मुहूर्त निश्चित करके निमन्त्रण भिजवाने की व्यवस्था करनी होगी।"

"हाँ, ऐसा ही होगा। बलिपुर के हेग्गडे भी वापिस जाने की उतावली कर रहे है। सहूलियत होने पर जाने को कहा था। अब फिर से उन्हे रोक रखना पडेगा।"

'अच्छा गुरुबलयुक्त मुहूर्त शीघ्र मिल जाये तो ठीक है, यदि तीन-चार महीने तक मुहूर्त की प्रतीक्षा करनी पडे तो वे अब चले जायें और उस समय फिर आ जायें।" युवरानी ने सलाह दी।

"तब तक हम यही रहे?"

"न, मुहूर्त निश्चित करके हम बलिपुर चलें और उपनयन सस्कार के लिए यहाँ आ जाये। यहाँ से नजदीक ही, तीन कोस की दूरी ही तो है।"

कुमार बिट्टिदेव की जन्मपत्री से ग्रहगतियाँ समझकर ज्योतिषी ने कहा, "इस वर्ष ग्रहबल अनुकूल नही है, अत उपनयन के योग्य मुहूर्त की प्रतीक्षा करनी होगी। मातृकारक चन्द्र, पितृकारक सूर्य और प्राण-समान गुरु ग्रहो की अनुकूल और बलवान् स्थिति अगले वर्ष मे होगी। कालातीत होने पर भी यह कार्य उस समय करना उत्तम होगा, क्योंकि गुरु तब कर्कटक राशि मे होगा जो राजकुमार की जन्मराशि और लग्न के लिए अनुकूल स्थान है।"

"मै आपकी राय से सहमत हूँ। फिर भी, महाराज की और युवरानी की सलाह, शान्ति-कर्म करके भी अभी सम्पन्न करने की हुई तो आपको तदनुसार ही मुहूर्त निकालना होगा।" प्रभु एरेयग ने कहा।

विचार-विनिमय के बाद उपनयन आगामी वर्ष के लिए स्थगित हुआ। तय हुआ कि हेग्गडेजी सपरिवार बलिपुर जाएँ युवराज बडी रानीजी, युवरानी और राजकुमारो के साथ बलिपुर जाये। दोनो के प्रस्थान का निश्चित समय एक ही था, तो भी युवराज के प्रस्थान की सूचना युवराज के अतिरिक्त किसी को नही थी।

बलिपुरवालो के प्रस्थान का समाचार सुनकर चामव्वा बहुत ही आनन्दित हुई। करीब पन्द्रह दिन से राजकुमार उसके यहाँ नही आ रहे थे, तो उसने समझा कि

अन्तःपुर मे किसी षड्यन्त्र की योजना बन रही है। उसके सम्बन्ध मे कुछ जानकारी पाने की उसने बहुत कोशिश भी की, मगर वह सफल नही हुई। उसकी यह भावना थी कि उसकी लडकियाँ उस-जितनी बुद्धिमती नही। अगर कोई दूसरी लडकियाँ होती तो किसी-न-किसी बहाने अन्दरूनी बाते समझ लेती।

पद्मला भी चिन्ताक्रान्त हुई। दिन मे कम-से-कम एक बार दर्शन देने के लिए आनेवाले राजकुमार यो एकदम आना ही छोड दे। यह विरह उससे सहा नही गया। दो-तीन बार उनसे मिलने के ही उद्देश्य से किसी बहाने अन्त पुर मे गयी, फिर भी मौका नही मिला। इससे वह मन छोटा करके लौटी थी। परन्तु चामला से उसे एक बात मालूम हुई थी कि बडे राजकुमार आजकल अध्ययन पर विशेष ध्यान दे रहे है। थोडा-बहुत घोडे की सवारी का भी अभ्यास चल रहा है। उसे यह समाचार उस मासूम लडकी शान्तला से मालूम था। शान्तला और चामला समान-वयस्का थी और एक तरह से स्वभाव भी दोनो का एक-सा था, जिससे उनमे मैत्री अकुरित हो गयी थी। माचिकब्बे ने शान्तला को कुछ सचेत कर दिया था नही तो यह मैत्री-भाव और अधिक गाढा होता। बिट्टिदेव ने उसे बताया था कि चामला की विद्यार्जन मे बहुत श्रद्धा है। इसी मैत्री के फलस्वरूप उसे बल्लाल के बारे मे इतनी जानकारी हुई थी। कल महाराज बननेवाले को किस तरह विद्याओ मे परिपूर्णता आनी चाहिए, सब कलाओ मे निपुणता प्राप्त करना कितना जरूरी है, यह सब बताकर प्रसगवशात् शान्तला ने चामला से बल्लाल की काफी प्रशसा की थी।

'यह बात चामला से पद्मला को और पद्मला से उसकी माँ चामव्वा को मालूम हुई। इससे चामव्वा के मन मे कुतूहल के साथ यह शका भी उत्पन्न हो गयी कि अन्दर-ही-अन्दर कुछ पक रहा है। तरह-तरह की बाते उसके मन मे उठने लगी, महाराज बननेवाले को क्या चाहिए और क्या नही, यह बतायेगी यह छोटे कुल की बच्ची? राजकुमार उसके कहे अनुसार चलनेवाला है? स्पष्ट है कि इसमे हेग्गडती का बहुत बडा हाथ है। परन्तु अब तो वे सब चले ही जाएगे। मेरी बच्ची का यह भाग्य है। उन लोगो के फिर इधर आने से पहले अपनी लडकी के हाथ से राजकुमार के गले मे वरमाला न पहनवा दूँ तो मैं चामव्वा नही।'

हेग्गडती के विषय मे चामव्वे के विचार अच्छे नही थ, और इन विचारो को उसने छिपा भी नही रखा था। इस बात को हेग्गडती भी जानती थी। चामव्वा ने विचार किया कि अबकी बार उसके चले जाने से पहले ऐसा कुछ नाटक रचकर हेग्गडती के मन से इस भावना को जितना बन सके दूर करे।

चामव्वा के इन विचारो के फलस्वरूप उनके जाने के पहले दिन हेग्गडे, हेग्गडती और उनकी लडकी के लिए एक भारी भोज देने का इन्तज़ाम किया। खुद दण्डनायक जाकर हेग्गडे को निमन्त्रण दे आया। चामव्वे ने हेग्गडती को

निमन्त्रित करते समय एक बडा नाटक ही रच डाला।

हेग्गडती माचिकब्बे ने सहज भाव से कहा, "चामव्वाजी, इतना सब आदर-सत्कार हमारे लिए क्यो, हम तो पत्ते के पीछे छिपकर रहनेवाली कैरियाँ हैं ताकि हमे कोई देखे नही, और हम साधारण लोग ही बने रहे। आप-जैसो का प्रेम और उदारता हम पर बनी रहे, इतना ही पर्याप्त है। हमे आशीर्वाद दें कि हमारा भला हो, हमारे लिए यही बहुत है। कृपा करके यह आयोजन न करें।"

"आप अपने को सामान्य मान भी ले, किन्तु हम कैसे मानें? देखिए, बडी रानीजी और युवरानीजी आप लोगो पर कितना प्रेम और विश्वास रखती हैं।"

"वह उन लोगों की उदारता है, और हमारा भाग्य है।"

"इतना ही नही, आपकी योग्यता का भी महत्त्व है। जब आपको इतना ज्ञान है तब आप पत्ते के पीछे छिपी कैसे रह सकती है? मेरा निमन्त्रण नही मानेगी तो मैं युवरानीजी मे ही कहलाऊँगी।"

"ऐसी छोटी-छोटी बातो के लिए उन्हे कष्ट नही देना चाहिए। ठीक है, आएँगे। प्रेम से खिलाती है तो इनकार क्यो करे?"

"हमारे प्रेम के बदले हमे आपका प्रेम मिले तो हम कृतार्थ है।"

"प्रेम जितना भी बाँटो वह कम नही होता। तब पीछे कौन हटे? वास्तव मे आप-जैसे उच्च स्तर के लोगो की प्रीति हम जैसो के लिए रक्षा-कवच है।" माचिकब्बे ने कहा।

"एक और विनती है। दण्डनायकजी आपकी पुत्री का गाना सुनना और नाच देखना चाहते है। कृपा हो सकेगी?"

"उसके पास उसके लिए आवश्यक कोई साज नही है। इसके अलावा उसके गुरु भी साथ नही। इसलिए शायद यह नही हो सकेगा। इसके लिए क्षमा करनी पडेगी। खुद युवरानीजी ने भी चाहा तो उसने केवल तम्बूरे की श्रुति पर गाया था। नृत्य नही हो सका।"

"तो यहाँ भी उतना ही हो। मेरे बच्चो के गुरुजी हैं। चाहें तो नृत्य का निर्देशन वे कर देंगे।"

"शायद गाना हो सकता है, नृत्य तो हा ही नही सकेगा। फिर भी उससे पूछे बिना मै स्वीकार नही कर सकूँगी। अम्माजी कह रही थी कि आपकी भी बच्चियो ने बहुत अच्छा सीखा है। हममे इतनी हैसियत नही कि उनसे गायन और नृत्य दिखाने की प्रार्थना करे। बडी रानीजी जब यहाँ पधारी थी तब उन्होने भी आपकी बच्चियो का नृत्य देखना और गाना सुनना चाहा था। उन्हे यह अवसर मिलता तो हम भी देख लेते।"

"बडी रानीजी का जन्मदिन अब एक पखवारे मे आनेवाला है। उस समय उसकी व्यवस्था करने का निश्चय किया है। तब तक आप लोग भी रह जाती

तो अच्छा होता।"

"हम स्त्रियों के लिए क्या है, रह सकती थी। परन्तु हमारे स्वामी को अनेक कार्य है। हम केवल उनके अनुयायी ही तो है।"

"सो तो ठीक है। वास्तव मे हम आपके कृतज्ञ है। यदि आप लोग राजकुमार के उपनयन के सन्दर्भ मे नही आये होते तो मेरी बच्चियाँ मेरी तरह खा-पीकर मोटी-झोटी बनकर बैठी रहती। आपकी बेटी की होशियारी, बुद्धिमत्ता, शिक्षा-दीक्षा आदि देखकर वे भी ऐसी ही शिक्षा पान और बुद्धिमत्ती बनने की इच्छा करने लगी। उनके शिक्षण की व्यवस्था हुई। हमारी चामला को तो आपकी बेटी से बहुत लगाव हो गया है। दिन मे एक-दो बार उसके बारे मे बात करती ही रहती है।"

"शान्तला भी आपकी दूसरी बेटी की याद करती रहती है। उसको तो वह अपनी दीदी ही समझती है। आपकी बडी बेटी इतनी मिलनसार नही दीखती।"

"क्या करे, उसका स्वभाव ही ऐसा है। वह ज्यादा मिलनसार नही है।"

"हमारी लडकी भी कुछ-कुछ ऐसी ही है।"

"फिर भी वह होशियार है। वह परिस्थिति को अच्छी तरह समझ लेती है।"

"ये सब प्रशसा की बाते है। उसकी उम्र ही क्या है ?"

"हमारी पद्मला ही की तरह हृष्ट-पुष्ट है, वह भी।"

"शरीर के बढने मात्र से मन का विकास थोडे ही होता है वास्तव मे हमारी शान्तला आपकी दूसरी बेटी से एक साल छोटी है।"

"आप भी खूब है, हमारी बच्चियो की उम्र का भी आपने पता लगा लिया। ठीक ही तो है, कन्या के माता-पिता की पडौसी की बच्चियो पर भी आँख लगी रहती है।"

"पिछली बार जब मै यहाँ आयी थी तब आप ही ने तो बताया था। इसलिए मुझे मालूम हुआ। नही तो दूसरो की बाता मे हम दखल क्यो दे ?"

"ठीक है। मुझे स्मरण नही रहा। लडकी बडी होती जा रही है। कही इसके लिए योग्य वर को खोज भी कर रही है कि नही ?"

"फिलहाल हमने इस सम्बन्ध म कुछ नही सोचा।" चामव्वाजी।

"फिलहाल शादी न भी करे, फिर भी किसी योग्य वर की ताक मे तो होगी ही। वर खोज किये बिना बैठे रहना कैसे सम्भव है ? इकलौती बेटी है, अच्छी तरह पाल-पोसकर बडा किया है। साधारण लोगो के लिए जो जरूरी नही उन सब विद्याओ का भी शिक्षण दे रही है उसे आप। यह सब देखने मे ऐसा लगता है कि कही कोई भारी सम्बन्ध आपकी दृष्टि मे है।"

"जो वास्तविक बात है उसका मैंने निवेदन किया है। आप पता नही क्या क्या सोचकर कहती है, मै इस सबका उत्तर दे नही सकती, चामव्वाजी।"

"भारी सम्बन्ध की खोज करने मे गलती क्या है ? माता-पिता की यह इच्छा स्वाभाविक ही है कि उनकी बेटी अच्छी जगह सुखी होकर रहे।"

"फिर भी सबकी एक सीमा होती है, चामव्वाजी।"

"हाँ, वह तो है ही। अच्छा, मैं चलूँ। सब तैयार हो जाने पर मैं नौकर के द्वारा खबर भेज दूँगी।"

युवरानी और बडी रानी को इस न्यौते का समाचार मालूम हुआ। इसमे उन्हे कुछ आश्चर्य भी हुआ। फिर भी सद्भावना का स्वागत करना उनका स्वभाव था। इसलिए उन्हे एक तरह से असमजस ही लगा। परन्तु युवरानी की समझ मे यह नही आया कि दण्डनायक उसकी पत्नी ने राजकुमारो से न्यौता कैसे और क्यो स्वीकार करा लिया। युवरानी एचलदेवी ने सोचा, जो भी हो, अब तो इस राजधानी से ही छुटकारा मिल जायेगा।

चामव्वा ने बहुत अच्छा भोज दिया। चामव्वे ने हेग्गडती माचिकब्बे से पूछा, "स्त्रियो के लिए और पुरुषो के लिए व्यवस्था अलग-अलग रहे या एक साथ ?"

माचिकब्बे ने कहा, "दण्डनायकजी मान ले तो व्यवस्था अलग करने की शायद आवश्यकता नही। यह आप पर है, चामव्वाजी।"

चामव्वे भी यही चाहती थी। पाँच-पाँच की दो कतारे बनी थी, एक स्त्रियो की, दूसरी पुरुषो की, आमने-सामने। छोटे राजकुमार उदयादित्य ने शान्तला के पास बैठने की जिद् की। आखिरी वक्त पर, इसलिए चामला को बिट्टिदेव के पास बैठना पडा।

रगोली के रग-बिरगे चित्रो के बीच केले के पत्तो पर परोसा गया भोजन सबने मौनपूर्वक किया। बल्लाल कुछ परेशान दिख रहा था। सचमुच वह पद्मला की दृष्टि का सामना नही कर पा रहा था। उससे मिले एक पखवारा हो चुका था। वास्तव मे बात यह थी कि उसने उसके बारे मे सोचा तक नही था। परन्तु अब वह अपने को अपराधी मान रहा था। उसके मन मे कुछ कशमकश हो रही थी कि आज कुछ अनिरीक्षित घटना घटेगी। उसे यह बात मालूम थी कि पद्मला स्वभाव से कुछ हठीली है। उसका वह स्वभाव ठीक है या नही, इस पर विमर्श करने की ओर उसने ध्यान नही दिया था। जिद्दी होने पर भी वह उसे चाहता था, मन से दूर नही रख सकता था। उसके दिल पर पद्मला का इतना गहरा प्रभाव पडा था। पद्मला ने भी भोज करते समय बल्लाल को अपनी तरफ आकर्षित करने

का प्रयत्न किया था। परन्तु उस समय उसने अपनी दृष्टि को पत्तल पर से इधर-उधर नही हटाया।

दण्डनायक और चामव्वा ने बहुत आजिजी के साथ मेजबानी की। हेग्गडे दम्पत्ति इस तरह के सत्कार-भरे शब्दो के आदी नही थे। उनके इस सत्कार से इनका सकोच बढ गया था। सत्कार के इस आधिक्य के कारण भोजन भी गले से नही उतर रहा था।

हेग्गडेजी ने सोचा था कि मरियाने दण्डनायक की पहली पत्नी के पुत्र माचण दण्डनाथ और डाकरस दण्डनाथ भी यहाँ इस अवसर पर उपस्थित होगे। इनमे डाकरस दण्डनाथ से हेग्गडे मारसिगय्या का कुछ विशेष लगाव था। इसका कारण यह था कि उसके साले सिगिमय्या और डाकरस दण्डनाथ के विचारो मे साम्य था और दृष्टिकोण मे अन्तर नही था। माचण दण्डनाथ कुछ अहकारी था, उसने इसे पिता के गुणो का ही प्रभाव समझा था। यहाँ आने के बाद एक तरह से मारसिगय्या ने गुप्तचर का काम किया था, यह कहे तो गलत नही होगा। उनकी गुप्तचरी का लक्ष्य केवल इतना पता लगाना था कि राजघराने से सम्बद्ध रहने-वाले और राजभवन के अधिकारी वर्ग मे रहनेवाले लोगो मे कौन कितनी निष्ठा के साथ काम करता है और उनकी निष्ठा कितनी गहरी है। युवरानी एचलदेवी के साथ जो विचार-विनिमय हुआ था उसके परिणामस्वरूप यह गुप्त आदेश मारसिगय्या को प्रभु ने दिया था। प्रभु के इसी आदेश से चिण्णम दण्डनायक ने भी पता लगाने की कोशिश की थी, परन्तु वह सफल नही हुआ था। इस अवसर पर उपस्थित न पाकर मारसिगय्या ने पूछा, "छोटे दण्डनायक कहाँ है, दिखते नही ?"

"वे अलग रहते ह। हमारी घरवाली का अभिमत है कि परिवार मे सुखी रहना हो तो उन्हे स्वतन्त्र रखना चाहिए। इसलिए वे दोनो अपने-अपने परिवार सहित अलग-अगल रह रहे है। आज बुलाने का मेरा विचार था। परन्तु आज डाकरस के घर मे उनके सास-ससुर की बिदाई है। माचण और उसकी पत्नी वहाँ गये है। यह पूर्व-निश्चित कार्यक्रम था। यो तो हम सबको वहाँ उपस्थित रहना चाहिए था।"

"ठीक ही तो है, वे तो समधी-समधिन है। ऐसी हालत मे यहाँ यह सब करने की तकलीफ क्यो उठायी ?"

"समधी लोग आने-जाने ही रहने है। साल मे, दो साल मे यह होता ही रहता है। परन्तु आप लोगो का बार-बार आना-जाना नही हो सकता। हमारे युवराज और बडी रानीजी दोनो को आपके विषय मे विशेष आदर और प्रेम है। आप लोगो के आगमन से हमारा घर भी पवित्र हो जाए, इसीलिए यह इन्तज़ाम किया है। मेरे दिमाग मे इस आयोजन की बात नही आयी थी, आखिर हम योद्धा ही ठहरे।

यह सलाह और यह आयोजन हमारी घरवाली का है। वे ही इस सबकी सूत्र-धारिणी हैं।"

"योद्धाओ के दिल मे भी प्रीति रहती है। आप ही कहिये, हेग्गडेजी।" चामव्वे ने कहा।

"मारो-काटो, ये सब बाहर की बातें है, घर के अन्दर की बाते कुछ और ही होती हैं।

"हाँ, हाँ, ऐसी बाते कर रहे हैं मानो बहुत भुगत चुके हैं।" चामव्वा ने व्यग्य किया।

"हाँ, सत्य कहे तो स्त्रियो के लिए वह आश्चर्य ही लगता है।" ये बाते अनिरीक्षित ही चल निकली जिससे एक आत्मीयता का वातावरण पैदा हो गया था। बडो के इस वाग्युद्ध को छोटे सब कुतूहल से सुन रहे थे।

हेग्गडे मारसिगय्या ने हेग्गडती की ओर कनखियो से देखा। वह मुसकरायी। बात चल ही रही थी।

"हाँ, यह दण्डनायक का वश हरिश्चन्द्र की सन्तति है न ?" चामव्वे बोली।

"यह मेरी-तेरी बात है, वश की बात क्यो ?"

"मेरी-आपकी बात होती तो आप सारी स्त्रियो पर आक्षेप क्यो करते कि सत्य कहने पर स्त्रियो को आश्चर्य होता है। आप ही कहिए, हेग्गडतीजी।"

"ऐसी सब बाते आपसी विश्वास पर अवलम्बित है। एक तरफ अविश्वास उत्पन्न हो जाए तो सत्य भी आश्चर्यजनक हो सकता है।"

"तो आपकी राय किस तरफ है ?" फिर प्रश्न किया चामव्वा ने।

"मैं किसी की तरफदारी नही कर रही हूँ। मैने तो तत्त्व की बात कही है। यदि मै अपनी बात कहूँ तो मेरे स्वामी मुझसे कभी झूठ नही बोलते, यह मेरा विश्वास है। इसलिए आश्चर्य का प्रश्न ही नही उठता।"

"सुना, हेग्गडतीजी भी तो स्त्री ही है न। सत्य कहने पर उन्हे आश्चर्य नही होता। वे खुद कह रही है। इसलिए सब स्त्रियो को एक साथ मिलाकर मत बोलिए।"

"हाँ, वही हो। चामव्वा को हेग्गडतीजी की टोली मे शामिल नही करेगे। ठीक है न ?" दण्डनायक ने कहा।

"वह सिरजनहार ब्रह्मा खुद एक न बना सका तो यह दण्डनायकजी से कैसे सम्भव होगा।"

"अच्छा कहा, मानो उस ब्रह्मा को खुद देख आयी हो, बात करने मे क्या रखा है।" मरियाने दण्डनायक ने व्यग्य किया।

"मैंने यह तो नही कहा कि मैने ब्रह्मा को देखा है।" चामव्वे ने कहा।

"बात कुछ बिगडती देखकर हेग्गडेजी ने बात का रुख बदलते हुए कहा,

"दण्डनायिकाजी, आपने ये जो मण्डक बनवाये हैं वे इतने बड़े है जितना बड़ा आपका मन है। उन्हें देखते ही मुँह से लार टपकने लगती है। आपकी रुचि तो कल्पना से ही बाहर है। उसे इस ढंग से तैयार करना हो तो उसकी पूर्व-तैयारी कितनी होनी चाहिए! गूँथना, उसकी लोई बनाना, आग सिलगाना, कढाई चढाना, लोई को पाटी पर बेलना, उसे कढाई मे फेराकर देकर पकाना। इतने परिश्रम और साधना से जैसे मण्डक का स्वाद ले सकते हैं वैसे ही तप से तपकर साधना द्वारा मन को तैयार करे तो ब्रह्मा का दर्शन भी हो सकता है। इसे असाध्य क्यो समझती है? साधना करके दिखा दीजिए। तब देखे, दण्डनायकजी क्या कहते है।" मारसिंगय्या ने कहा।

"हाँ, हाँ, इन अकेले का मन तृप्त करने के लिए इतना सारा परिश्रम क्यो, ब्रह्मा से माँगने-जैसा वर ही क्या है। ब्रह्मा ने जब यहाँ भेज दिया तभी माथे पर लिख भेजा है। उसे साध्य बनाने के लिए जरूरी मन भी उसने ही दिया है। बस इतनी तृप्ति रहे तो काफी है। देकव्वे, हेग्गडेजी को एक मण्डक और परोस।"

"मैंने मण्डक माँगा नही, उसका उदाहरण दिया है।" पेट पर हाथ फेरते हुए हेग्गडे ने कहा।

इतने मे मण्डक की परात और दूध का लोटा लिये दकव्वा आयी। मारसिंगय्या ने पत्तल पर झुककर कहा, "मै खा ही नही सकता।"

दण्डनायक ने कहा, "देकव्वे एक काम करो। स्त्री-पुरुष के भेद बिना सब बडो को आधा-आधा और छोटो को उस आधे मे आधा-आधा मण्डक परोस दो। कोई इनकार न करे। यह हमारी अतिथियो के प्रति श्रेय कामना का प्रतीक होगा।"

"अतिथियो के श्रेय के साथ अतिथियो का भी श्रेय सम्मिलित है, इसलिए यह भारी होने पर भी खा लेगे।" मारसिंगय्या ने कहा।

भोजन के पश्चात् सबने थोडा विश्राम किया। यह तय था कि विश्राम के पश्चात् सब फिर मिलेगे। हेग्गडे दम्पत्ति के लिए एक कमरा सजाकर रखा गया था। बिट्टिदेव, चामला, शान्तला और उदयादित्य बाहर के प्रांगण मे ही रहे।

हाथ धोकर बल्लाल सीधा अपनी आदत के मुताबिक उस कमरे की ओर गया जहाँ वह बैठा करता था। यह कहने की जरूरत नही कि पद्मला वहाँ पहले ही पहुँच चुकी थी।

बल्लाल ने जिस परिस्थिति की प्रतीक्षा की थी वह अब उपस्थित हो गयी। वह चाहता तो उसका निवारण कर सकता था। परन्तु उसका मन निवारण करने से पीछे हटता रहा। इसलिए वह सामना करने के लिए तैयार हो रहा था। वह इस प्रतीक्षा मे चुप रहा कि पहले वही बोले।

वह अन्दर खुद आयी थी। बल्लाल ने उसे बुलाया नही था। बैठने को भी

नही कहा। उसे यह भी नही सूझा था कि क्या करना चाहिए। वह मौन रही, पत्थर की मूर्ति की तरह।

बल्लाल को आशका थी कि वह गुस्सा करेगी। उससे यह मौन सहा न गया। उसकी ओर देखा, वह ज्यो-की-त्यो अटल खडी रही। उसके मुँह मे बात निकली, "वही क्यो खडी हो ?" परन्तु इस प्रश्न की क्या भावना थी, उसे मालूम नही पडा।

पद्मला ने उत्तर तो दिया, "क्या करे ?" परन्तु अन्दर का दुख बढने लगा था, हिचकियाँ बँध गयी, आँसू बहने लगे।

बल्लाल उठा, उसके पास गया। पूछा, "क्या हुआ ?" उसकी आवाज मे कुछ घबडाहट थी।

आँचल से आँसू पोछकर बोली, "क्या हुआ, सो मुझे क्या मालूम ? अपने न आने का कारण आप ही जानें। अगर मुझसे कोई गलती हुई थी तो बताने पर अपने को सुधार लेती। परन्तु बहुत समय तक इस तरह न आये तो " उसका दुख दुगना हो गया। बात रुक गयी।

"आओ, बैठो।"

"आपको मुझ पर जब गुस्सा हो "

"क्या मैंने गुस्मे मे बात की है ?"

"तो फिर आये क्यो नही ?"

"फुरसत नही मिली, बहुत अधिक अध्ययन करना था।"

"वह सब बहाना है, मुझे मालूम है। आपका अन्यत्र आकर्षण है। उस हेग्गडती की लडकी का गाना, नाचना और पाठ, साथ-साथ। उसका सग चाहिए ।"

"पद्मला, बेवकूफो की तरह बाते मत करो। अण्ट-सण्ट बाते करोगी तो मुझे गुस्सा आयेगा। अभी खाते वक्त जो बात सुनी वह क्या इतनी जल्दी भूल गयी। विश्वास होना चाहिए परस्पर, दोनो मे। किसी एक मे अविश्वास हो जाए तो फल-प्राप्ति नही होगी। हेग्गडती ने बहुत अनुभव की बात कही। मैं सत्य कहूँ तो भी तुम न मानो तो मै तुम्हे समाधान नही दे सकता। लो मैं अब चला।" बल्लाल ने कहा।

"जिन पर विश्वास करते हैं उनसे खुले दिल से बाते नही करें इस प्रश्न का उत्तर हेग्गडतीजी क्या देंगी, यह उनसे पूछ आयेंगे ?"

"मेरे जवाब देने से पहले तुम्हे यह बात नही कहनी चाहिए थी, पद्मला। तुम सबको उस हेग्गडे के घरवालो से कुछ दुराव है, न जाने क्यो, यह बात जब कह रहा हूँ तो खुले दिल से ही कह रहा हूँ। उनसे तुम लोगो को क्या कष्ट हुआ है ?"

"मुझे तो कुछ नही हुआ ।"

"तो और किस-किस को तकलीफ हुई है ?"

"मैं नही जानती ।"

"फिर उनके बारे मे ही ऐसी बाते क्यो ?"

"मेरी माँ कहती थी कि वे हम-जैसी हैसियतवालो के साथ रहने लायक नही ।"

"इसी से तुमने ऐसा विचार किया ?"

"हाँ, मुझे क्या मालूम । सर्वप्रथम जब उनको देखा मेरी माँ ने तब से वे मुझसे यही कहती आयी है । इसलिए मुझमे भी यही भावना है ।"

"अगर यही बात हो तो आज का यह सारा न्यौता-ब्यौता क्यो किया ?"

"मुझे क्या मालूम बडे लोग क्या काम क्यो और कब करते है यह सब मुझे मालूम नही होता ।"

"हेग्गडे की लडकी तुम्हारी बगल मे खाने बैठी इसलिए तुम्हारे गले से खाना नही उतरा, है न ?"

"खाना गले से नही उतरा, यह सत्य है, परन्तु बगल मे हेग्गडे की लडकी बैठी थी, इसलिए नही उतरा, यह गलत है । न उतरने का कारण यह था कि सामने बैठे होकर भी मेरी ओर एक बार भी आपने नही देखा ।"

"मेरे न देखने का सम्बन्ध तुम्हारे गले से खाना न उतरने से कैसे हो सकता है ?"

"आप मेरी तरह लडकी होते और किसी लडके से प्रेम करते और वह इसी तरह कतराकर आपके सामने होने पर भी देखी-अनदेखी कर देता तो समझते ऐसा क्यो होता है ।"

"तुम्हारी ओर न देख पाना मुझे भी खटक रहा था, इसलिए ऐसा हुआ । अब तो सब ठीक हो गया न ?"

"क्या ठीक हो गया, आप आइन्दा दिन मे कम-से-कम एक बार दर्शन देंगे, तभी यह ठीक हो सकता है ।"

"तो मतलब यह कि रोज मिलते रहे, तभी प्रेम बना रह सकता है । नही तो नही । यही न ?"

"कैसे कहे, आप कल महाराज बननेवाले है । महारानी बनने की इच्छुक अनेको मे से किसी अन्य ने आपको अपनी तरफ आकर्षित करके फँसा लिया हो, तो हमे क्या पता लगे ?"

"तो तात्पर्य यह कि जो भी मुझसे प्रेम करती है वह केवल इसलिए कि मैं महाराज बननेवाला हूँ । यही न ?"

"इसमे गलती क्या है ?"

"इससे यह स्पष्ट है कि प्रेम से भी ज्यादा बलवान् महारानी बनने का स्वार्थ है। ऐसी लडकी पर विश्वास ही कैसे करें।"

"आप महाराज बनेंगे, यह सत्य है। सचमुच आपसे प्रेम करें तब भी पदवी से प्रेम हो जायेगा। स्त्री के मन को समझे बिना उसकी निन्दा करें तो कोई प्रयोजन सिद्ध होगा ?"

"तो मैं एक बात स्पष्ट पूछ लूं, पद्मला। अगर मैं महाराज नही बनूं तब भी तुम मुझसे ऐसे ही प्रेम करोगी ?"

"यह निश्चित है कि आप महाराज बनेंगे, आपका यह प्रश्न ही अर्थहीन है।"

"तुम्हारी भावना ऐसी हो सकती है, परन्तु परिस्थिति अगर बदल जाये और किसी और को सिंहासन पर बैठाने का प्रसग उत्पन्न हो जाये, ऐसी स्थिति· "

"तब भी मै आपकी ही बनी रहूँगी।"

"यह तुम्हारे अन्त करण की वाणी है ?"

"हाँ।"

"कल तुम्हारे माँ-बाप अगर उल्टा-सीधा कुछ कह दे, तब भी "

"वे कुछ भी कहे, मै आपकी ही रहूँगी।"

"यदि तुम्हारा यही निश्चय हो तो मैं भी आश्वासन दूंगा। कोई कुछ भी कहे, मैं महाराज बनूं या न बनूं, विवाह तुमसे ही करूँगा।"

"आपके मुंह से यह बात सुनकर मैं जी गयी।"

"अब तुम्हे एक वचन देना होगा, पद्मा।"

"कहिए, महाराज।"

"जैसा तुमने कहा, मैं महाराज बनूंगा और तुम महारानी। इसमे कुछ भी सन्देह नही। परन्तु हम दोनो को उस स्थान पर बैठना हो तो उसके लिए आवश्यक योग्यता पानी होगी। मेरे लिए योग्य गुरु मिले हैं। अपने लिए एक अच्छे गुरु नियुक्त करने के लिए तुम्हे दण्डनायक से कहना होगा। मेरी महारानी केवल सुन्दरी कहलाए, यही पर्याप्त नही, पद्मा। वह होशियार, उदार, सन्मार्गावलम्बी, महिला-शिरोमणि गुणैक-पक्षपातिनी है, ऐसा लोगो को कहना चाहिए, समझना चाहिए। ऐसा बनने की हमे प्रतिज्ञा लेनी होगी। जिसकी पूर्ति मे व्यस्त रहने से हम एक-दूसरे से न मिले तो हममे से किसी को अन्यथा नही समझना चाहिए। दोनो के एक होने का समय आने तक सहनशील होकर हमे प्रतीक्षा करनी पडेगी, अपनी सारी शक्तियो को केन्द्रित कर एकाग्र भाव से ज्ञानार्जन की ओर प्रवृत्त होना होगा। ठीक है न ?"

"जो आज्ञा।"

"अब तुमने जो आश्वासन दिया उस पर मुसकुराहट की मुहर भी तो लगनी चाहिए।" पद्मला की आँखे चमक उठी। एक आत्म-तृप्ति की भावना जागी। चेहरा

मुसकान से खिल उठा।

"आओ, बैठो।" बल्लाल ने कहा।

"बैठूं तो काम कैसे चलेगा। अभी काम है। माँ ने कुछ कार्यक्रम भी बना रखा है। आप ही ने दीक्षा दी है, मै प्रतिज्ञाबद्ध हूँ, अभी से, इसी क्षण से।" कहती हुई वहाँ से भाग चली। उसके पाजेब की आवाज बल्लाल के कानो मे गूँजती रही। उसका हृदयान्तराल स्पन्दित हुआ।

इधर चामव्वा ने भोजन के समय बिट्टिदेव की बगल मे बैठी चामला को देखा तो वह यह सोच रही थी कि चामला-बिट्टिदेव की जोडी कितनी सुन्दर है। इसी धुन मे वह पैर पसारकर लेटी तो आँख लग गयी। उसकी आशा स्वप्न के रूप मे उसी नीद मे परिणत हुई थी। उसने खुर्राटे लेकर निद्रामग्न दण्डनायक को पीठ पर थपथपाकर जगाया और कहा, "दिन के स्वप्न सत्य होते है, मैंने अभी-अभी स्वप्न मे चामला और बिट्टिदेव का विवाह होते देखा है।"

"विवाह, कौन-सा विवाह? मै तो स्वप्न मे युद्ध देख रहा था।" दण्डनायक ने कहा।

"अच्छा जाने दीजिए। आपको तो युद्ध के सिवा दूसरी कोई चिन्ता ही नही। मुझे स्वप्न दिखायी दिया। दिन के स्वप्न सच निकलते है। स्वप्न मे चामला-बिट्टिदेव का विवाह हुआ।" उसने फिर कहा। अब की बार स्वप्न की बात पर अधिक बल दिया, चामव्वा ने।

"ठीक, छोडो, अब इसके सिवाय तुम्हारे मन मे दूसरी कोई चिन्ता नही। चाहे जो हो, हम दोनों भाग्यवान् है। जो हम चाहते है वही हमारे स्वप्न भी होते है। चलो, चलो। जब अतिथि घर बैठे है तब अपने आप मे मगन रहे, यह ठीक नही।" कहता हुए दण्डनायक हडबडाकर मुँह धोने चला गया।

पूर्व निश्चय के अनुसार फिर सब लोग उनके घर के विशाल प्रागण मे इकट्ठे हुए।

पद्मला और चामला का गायन और नर्तन हुआ। उनके गुरु, उत्कल के नाट्याचार्य महापात्र ने उपस्थित रहकर मदद की। अपने गुरु की अनुपस्थिति मे नर्तन नही करूँगी, यह बात शान्तला ने पहले ही कह दी थी, इसलिए उसका केवल गायन हुआ।

नाट्याचार्य महापात्र ने शान्तला का गायन सुना। उसकी भूरि-भूरि प्रशसा की और कहा, "अम्माजी, तुम्हारी वाणी देवियो की-सी है। हमारी चामला कभी-कभी यही बात कहा करती थी, मैंने विश्वास नही किया था। ऐसी-इतनी उम्र मे इतनी विद्वत्ता पाना साधारण काम नही। इसके लिए महान् साधना चाहिए। तुमने साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त की है। इतना निखरा हुआ स्वर-विन्यास, राग-विस्तार, भाव-प्रचोदन, यह सब एक सम्पूर्ण जीवन्त साधना है, देवाश-सम्भूत ही

के लिए यह साध्य है। हेग्गडेजी, आप बड़े भाग्यवान् है। ऐसे कन्या-रत्न की भेंट आपने ससार को दी है। कर्णाटक के कला-जगत् के लिए आपकी यह पुत्री एक श्रेष्ठ भेंट है। ऐसी शिष्या पानेवाले गुरु भी भाग्यवान् हैं।"

शान्तला ने उन्हे दीर्घदण्ड-प्रणाम किया।

"बच्ची को आशीर्वाद दीजिए, गुरुजी।" माचिकब्बे ने कहा।

नाट्याचार्य ने अपने दोनो हाथ उसके सिर पर रखकर कहा, "बेटी, तुम्हारी कीर्ति आचन्द्रार्क स्थायी हो।"

शान्तला उठी। नाट्याचार्य ने कहा, "अम्माजी, मेरी एक विनती है। इस समय तुम्हारे गुरु यहाँ नही हैं, गति-निर्देश के बिना तुम नृत्य नही करोगी, ठीक है। परन्तु मुझे तुम्हारा नृत्य देखने की इच्छा है। तुम मान लो तो मैं गाऊँगा और तुम नृत्य करोगी। मैं बहुत आभारी हूँगा।"

"रीति भेद है न, गुरुजी, मेल कैसे बैठेगा ?"

"मै ही मृदग बजाऊँगा अम्माजी, मेरी विनती मानो।"

"गति-निर्देश सम्पर्क नही होगा तो गति का अनुसरण करना कठिन होगा। ऐसे गति-रहित नृत्य करने से तो चुप रहना ही अच्छा है। कला के प्रति उपचार कभी नही होना चाहिए, यह मेरे गुरुवर्य का आदेश है। इसलिए मैं आपसे क्षमा-याचना करती हूँ।"

"अच्छा जाने दो, एक गाना और सुना दो। तुम-जैसे स्वर विन्यास करनेवालो के गायन के लिए मृदग बजानेवाले को अपनी प्रतिभा दिखाने का एक बहुत ही अच्छा अवसर है।" नाट्याचार्य ने कहा।

"शान्तला ने विस्तार के साथ स्वर-विन्यास कर एक और गाना गाया। नाट्याचार्य के हाथ मृदग पर चलते, मधुर नाद उत्पन्न करते। मृदग-नाद की बैखरी और लालित्य को शान्तला ने पहचान लिया तो उसमे एक सी स्फूर्ति आ गयी। एक-दूसरे का पूरक बनकर स्पर्धा चली। इस स्पर्धा ने वातावरण मे एक नयी लहर पैदा कर दी। सब मन्त्रमुग्ध बैठे रहे।

शान्तला ने फिर प्रणाम किया और कहा, "गुरुजी, आपकी उँगलियो के स्पर्श मे एक विशेषता है। यह केवल गति-निर्देशन मात्र नही, भाव-प्रचोदन भी करता है। यह मेरा सौभाग्य है कि ऐसे मृदग-वादन के साथ गाने का एक योग मिला। आप फुरसत से एक बार हमारे यहाँ आइए। हमारे गुरुजी को आप जैसे विद्वान् का सग बहुत ही अच्छा लगता है।" शान्तला की विनती थी।

"तुम न भी बुलाओ, मैं एक बार आऊँगा ही। तुम्हारा नृत्य एक बार देखकर ही रहूँगा, अम्माजी।" महापात्र ने कहा।

"आप बड़े उदार हैं, गुरुजी। सूर्यदेव के मन्दिर को बालू पर समुद्र के सामने खड़ा करनेवाले शिल्पियो के देश से आये हैं न आप ? उस प्रस्तर-शिल्प की भव्यता

को देखनेवालों ने बताया है कि यह उत्कल की उदारता का प्रतीक है।" शान्तला ने कहा।

"तो तुम्हे कोणार्क का इतिहास भी मालूम है, अम्माजी ?"

"हमारे गुरुजी जो जानते है वह सब मुझे भी विस्तार से समझा देते है।"

"अम्माजी, तुम बडी भाग्यशालिनी हो। तुम्हारे दर्शन से मैं भी भाग्यवान् हो गया।" महापात्र ने कहा। उपाहार-पनीय आ गये, नही तो उनकी बातचीत और चलती।

हेग्गडेजी के लिए रेशम का एक उपरना, हेग्गडती और उनकी लडकी के लिए रेशमी साडियाँ और चोली के लिए कपडे विदाई मे दिये गये। वास्तव मे हेग्गडती माचिकब्बे को अपनी आँखो पर विश्वास नही हुआ। दण्डनायक की पत्नी इतनी उदार भी हो सकती है, इसकी कल्पना ही वह नही कर सकी थी। उन्होने कहा, "दण्डनायिकाजी, यह सब क्यो ? अभी आपके यहाँ बहुत मागलिक कार्य सम्पन्न होने है, यह सब देना तभी अच्छा होगा। इसे अभी लेते हुए सकोच होता है।" माचिकब्बे ने अपनी झिझक व्यक्त की।

"मगल द्रव्य के साथ जो दिया जाता है उसमे किसी सुमगली को इन्कार नही करना चाहिए, हेग्गडतीजी। मैंने कुछ पहले से सोचा न था। आखिरी वक्त जो लगा सो दे रही हूँ। यह दण्डनायक और हेग्गडे के घरानो के स्नेह के प्रतीक के रूप मे स्वीकार करें।" चामब्बे ने कहा। कोई दूसरा चारा नही था, हेग्गडती ने इस भावना से स्वीकार किया कि यह एक अच्छी भावना के अकुरित होने का प्रथम प्रतीक बने। माँ ने जब लिया तो बेटी क्या करती, उसने भी लिया।

हेग्गडे-दम्पती ने दण्डनायक को सपरिवार एक बार अपने यहाँ आने का निमन्त्रण दिया। "इन नाट्याचार्य को भी साथ लाइये। यदि कोई आक्षेप न हो तो वहाँ के मन्दिर मे आपकी बच्चियो के गायन और नर्तन की व्यवस्था करूँगा। बहुत अच्छा गाती है और नृत्य भी करती है। वास्तव मे पिछली बार जब हम आये थे तो सुना था कि उनका शिक्षण चल रहा था। इतने थोडे समय मे इतनी अच्छी तरह सीख गयी है।" हेग्गडे मारसिगय्या ने कहा।

हँसी-खुशी से सबने विदा ली। चामला रास्ते तक आयी। पद्मला ने प्रधान द्वार तक आकर शान्तला का हाथ अपने हाथ मे लेकर कहा, "भूलना नही।"

"हम छोटे गाँव मे रहनेवाले है। हम आपको भूलेगे ही नही। आप भी हमे न भूले।" शान्तला ने कहा।

"भूलेगी कैसे, रोज चामला आप लोगो के बारे मे बात करती रहती है।" पद्मला बोली।

"आप तो उसकी दीदी ही है न, मै भी कैसे भूलूँगी ?"

इस छोटे से सम्भाषण से उनमे मैत्री का द्वार तो खुल गया, अब यह देखना

है कि उसके अन्दर से कितनी रोशनी बिखरती है।

ये सब बातें सुनकर एचलदेवी भी आश्चर्यचकित हुई।

प्रस्थान के पहले राजमहल मे भी उनका योग्य सत्कार किया गया। मारसिंगय्या अपने गुप्तचर कार्य का सारा वृत्तान्त युवराज एरेयग प्रभु को सुना चुका था।

बडी रानी चन्दलदेवी का तो भाभी और अम्माजी को विदा देते हुए गला भर आया, आँखे भर आयी। वह गद्गद हो गयी, मुँह से बात तक न निकल सकी। चलते समय शान्तला ने महाराज युवराज और युवरानी को प्रणाम किया। कवि नागचन्द्र को साष्टांग प्रणाम किया। कवि नागचन्द्र की आँखें भर आयी।

हेग्गडे परिवार की यात्रा सिंगिमय्या के नेतृत्व मे आगे बढी। बाद मे हेग्गडेजी को मालूम हुआ कि सिंगिमय्या डाकरस दण्डनायक के घर भी आतिथ्य लेने गया था। वास्तव मे वह अन्यत्र एक वसति-गृह मे रह रहा था, इसलिए सम्पर्क का अवसर बहुत कम मिल पाया।

मारसिंगय्या और सिंगिमय्या दोनो की एक राय थी कि डाकरस होशियार, निष्ठावान् और उदार है, उसका बडा भाई माचण अपने पद पर इतरानेवाला अहंभावी है। असल मे दण्डनायक ने अपने घर मे उसके बहिन-बहनोई और भानजी को जो सत्कार दिया था उसपर सिंगिमय्या को आश्चर्य भी हो रहा था, क्योकि दोरसमुद्र आने पर चामव्वे के प्रभाव के बारे मे काफी सुन चुका था।

इधर युवराज-युवरानी, बडी रानी और राजकुमारो के अचानक प्रस्थान का समाचार दोरसमुद्र के निवासियो के लिए एक आश्चर्यजनक बात बन गयी थी। उसमे भी खासकर दण्डनायक परिवार के लिए यह वज्रपात-सा था। बिना अते-पते के एकदम बडी रानी और कुमारो के साथ युवराज और युवरानीजी का प्रस्थान! यह कैसे हो सकता है? यह सब पूर्व-निश्चित है। हमे मालूम न होने देने का अन्दर-ही-अन्दर कुछ षड्यन्त्र रचा गया है। यह कवि भी ऐसा निकला कि उसने जिस पत्तल मे खाया उसी मे छेद किया। जानती हुई भी एक बात भी कहे बिना, खाकर जानेवाली हेग्गडती ने भी कुछ नही बताया, वह बडी धोखेबाज है। चामव्वा का मन उद्विग्न था, क्रोध मे वह आग-बबूला हो बडबडाने लगी, 'युवरानी को तो उस हेग्गडती की लडकी को ही महारानी बनाने की इच्छा है। मुझे सब मालूम है।'

बेचारी पद्मला यह सब सुनकर किंकर्तव्यविमूढ हो गयी।

चिण्णम दण्डनायक और कुन्दमराय पूर्व-निर्दिष्ट रीति से वेलापुर मे युवराज और उनके परिवार के रहने की व्यवस्था कर चुके थे। वह पोय्सल राजधानी से केवल तीन कोस की दूरी पर था इसीलिए आवश्यक प्रतीत होने पर राजधानी आने-जाने की सहूलियत एरेयग प्रभु को थी।

कवि नागचन्द्र को वेलापुर दोरसमुद्र से अच्छा लगा। नदी-तीर पर बसी यह जगह वेलापुरी पोय्सल राज्य-सीमा के वक्षस्थल-सी और यगची नदी उस सीमा के कटिबन्ध-सी लग रही थी। नागचन्द्र तो थे कवि ही, उनकी कल्पना चक्षु मे पोय्सल राज्य-पुरुष का यह रूप बस गया था।

वेलापुरी पोय्सल राज्य के प्रधान नगरो मे केन्द्र-स्थान था। पूर्व की ओर दोरसमुद्र, पश्चिमोत्तर मे सोसेऊरु, दक्षिण मे यादव पुरी, इन तीनो का केन्द्र वही माना जाता था। वह राज्य-विस्तरण का समय था। राज्य-सीमा का जैसे-जैसे विस्तार हुआ, राज्य मे विलीन नये-नये प्रदेशो की प्रजा मे निष्ठा और दक्षता रूपित करने के लिए नये-नये मुख्य नगरो को चुनकर पोय्सल राजा उनमे रहा करते। इसी क्रम मे उन्होने सोसेऊरु के बाद वेलापुरी को चुना था। इसी तरह, दक्षिण के चोल राजाओ के सीमा-विस्तार को रोकने और अपने सुखी राज्य को विस्तृत करने के उद्देश्य से यादवपुरी को भी उन्होने प्रधान नगर बनाया था। प्रत्येक प्रधान नगर मे एक दण्डनायक और उनके मातहत काफी सशक्त सेना रहा करती थी। वेलापुर की प्रधानता के कारण अमात्य कुन्दमराय का निवास वही था। सोसेऊरु का नेतृत्व चिण्णम दण्डनायक कर रहे थे।

फिलहाल राज्य की जिम्मेदारी अपने ऊपर अधिक पडने के कारण प्रभु ने राजधानी की देखरेख का उत्तरदायित्व प्रधान गगराज और महादण्डनायक मरियाने पर छोड रखा था। महाराज की और राजधानी की व्यवस्था भी उन्ही पर छोड रखी थी। मरियाने के लडको को दण्डनायक के पद पर नियुक्त कर उनकी हैसियत बढायी गयी थी। उन्हे आवश्यक शिक्षण देने की जरूरत थी, इसलिए उन्हे तब तक दोरसमुद्र मे ही रखा गया जब तक उनका शिक्षण पूरा न हो।

अब की बार एरेयग प्रभु ने दोरसमुद्र से प्रस्थान करते समय माचण दण्डनायक को यादवपुरी की निगरानी करने को रखा डाकरस दण्दनायक को वेलापुरी मे नियुक्त कर वहाँ जाने का आदेश दिया।

मरियाने को यह परिवर्तन जँचा नही, फिर भी वह कुछ कर नही सकता था। इस पर उसने महाराज को भी अपनी राय बता दी थी। परन्तु महाराज ने एक ही बात कही, "युवराज ने मेरी सम्मति लेकर ही यह परिवर्तन किया है।"

अपनी इस यात्रा की खबर तक न देकर युवराज के एकदम चल देने से दण्डनायक के घर मे काफी तहलका मच गया था। अब इस परिवर्तन ने सुलगती आग पर हवा का काम किया।

महादण्डनायक का मन रात-दिन इसी चिन्ता मे घुलने लगा कि मेरे बेटों को मुझसे दूर रखने का यह काम मेरी शक्ति को कम करने के लिए किया गया है, युवराज ने इसीलिए यह काम किया है, मैंने कौन-सा अपराध किया था ? मैं खा-पीकर बडा हुआ इसी राजघराने के आश्रय मे, मेरी धमनियो मे जो रक्त बह रहा है वह पोय्सल रक्त है। मुझसे अधिक निष्ठावान् इस राष्ट्र मे कोई दूसरा नही। ऐसी हालत मे युवराज के मन मे मेरे बारे मे ये कैसे विचार हैं ?

चामव्वा ने जवाब दिया, "यह सब उस हेग्गडे का जाल है। इन भस्मधारियो का कभी विश्वास नही करना चाहिए।"

"तो यह सब उसी का प्रभाव हो सकता है। इसीलिए उल्लू बनाना मुहावरा चल पडा होगा। अब तो स्थिति हाथ से निकलती लगती है।"

"मैंने पहले ही कहा था कि उस हेग्गडे का काम छुडा दो, नही तो उसका किसी खटपटवाली जगह तबादला कर दो। आपने माना नही। अब देखिए, वही हमारे लिए शूल बना है।"

"वह काम इतना आसान नही। उसके सम्बन्ध मे कुछ करने पर उसकी प्रतिक्रिया हम ही पर होगी। इस सबका कारण तुम ही हो। तुमने अपनी हस्ती-हैसियत दिखाने के नैश मे आकर उस हेग्गडती को पहले से जो अपमानित किया उसी का यह परिणाम है। हममे ऊपर जो रहते हैं उनसे लगे रहनेवालो और उनके विश्वास-पात्र जो बने उनसे कभी हमे द्वेष नही करना चाहिए। इस बात को कई बार समझाने पर भी तुम मानी नही। तुमको यह अहकार है कि तुम्हारा भाई प्रधान है, तुम्हारा पति दण्डनायक है। तुम अपनी हैसियत पर घमण्ड करती हो। तुम्हारी इस भावना ने तुमको ही क्यो, बच्चो समेत हम सबको इस हालत मे ला रखा है।"

'हाँ, सारी गलती मेरी ही है। आपने कुछ भी नही किया।"

"मैंने भी किया है, तुम्हारी बात सुनकर मुझे जो नही करना चाहिए था वह किया। उस दिन युवराज से महाराज बनने के लिए जोर देकर कहना चाहिए था। मुझसे गलती हुई। तुम्हारा कहना ठीक समझकर वैसा कहा, तभी से युवराज मुझे सन्देह की दृष्टि से देखने लगे है। अब स्थिति ऐसी है कि महाराज भी मेरी सलाह आमतौर पर स्वीकार नही करते।"

"मेरे भाई ने भी सम्मति दी तब, आपने ऐसा किया। अब मेरे ऊपर दोष लगाएँ तो मै क्या करूँ ? मैंने जब यह सलाह दी थी तभी वह नही मानते और आपको जो सही लगता वही करते। मैं मना थोडे करती। मुझे जो सूझा, सो कहा। क्या मैं आप लोगो की तरह पढी-लिखी हूँ ? अनुभव से जो सूझा सो कहा था। आप उन लोगो मे से है जो स्त्री-शिक्षा के विरोध मे विचार रखते हैं। आपको अपनी बुद्धि अपने ही वश मे रखनी चाहिए थी।" यो उसने एक बवण्डर ही खडा

कर दिया।

"देखो, अब उन सब बातो का कोई प्रयोजन नही। हम पर युवराज शका करे तो भी कोई चिन्ता नही। हमे बुरा माने तब भी कोई चिन्ता नही। हमे तो उनके प्रति निष्ठा से ही रहना होगा। हमने जो भी किया, उसका लक्ष्य कभी बुराई करने का न था। इतना अवश्य है कि अपनी लडकियो को हम उनके कुमारो के हाथो सौप देना चाहते है।"

"अब वे यदि न माने, उनके मन मे इस तरह की शका उत्पन्न हो गयी है तो हमारी कैसी हालत होगी, यह कहना मुश्किल है। है न?"

"लडका क्या कहता है, पद्मला ने कुछ बताया क्या ?"

"उसे क्या समझ है, लडके ने कहा मालूम पडता है कि वह उसीसे विवाह करेगा। वह खुशी मे खिली बैठी थी, अब आँसू बहा रही है।"

"युवराज की यात्रा की बात मालूम नही होने पर जो तुम आग-बबूला होकर गरजने लगी उसमे वह धीरज खो बैठी।"

"आप तो उसे धीरज बँधाइये।

"क्या कहकर धीरज बँधाऊँ? मै एक बार वेलापुरी हो आने की सोच रहा हूँ। यो तो हमारे कवि भी वहाँ है।"

"ठीक। जो मन मे आया उसे लिख कवि कहलानेवाले का क्या ठिकाना और क्या नीति? ऐसे लोग गिरगिट की तरह रग बदलनेवाले और जिस पत्तल मे खाया उसी मे छेद करनेवाले होते है। जहाँ मानदेय मिले वही उनकी नजर लगी रहती है। क्या उसने युवराज के इस तरह जाने की बात पहले कही थी?"

"उसमे बात नही हो सकती थी। बेचारा, उसकी कैसी स्थिति रही होगी, कौन जाने? इसलिए जब तक वेलापुरी हो न आऊँ तब तक मन को शान्ति नही मिलेगी।"

"किसी बात का निर्णय भाई से विचार-विनिमय करके ही करे।"

"सलाह दी, भाग्य की बात है। वही करूँगा।"

"पद्मला की बात उठी तो एक बात और इसके बारे मे कहनी है।"

"क्या?"

"हमे उसे महारानी बनने के योग्य शिक्षित करना चाहिए, यह आपके होने-वाले दामाद की इच्छा है। इसलिए किसी को "

"पहले सगाई तो हो, फिर देखेगे।"

"आप ही ने कहा था कि यदि मै शिक्षित होती तो अच्छी सलाह मिल सकती थी। जो शिक्षण मुझे नही मिल सका वह कम-से-कम आपकी बच्चियो को मिल जाये। इतनी व्यवस्था तो हो! पता नही उनकी शादी किससे हो, वह तो जिननाथ के हाथ मे है। एक बात की दूसरी के साथ गाँठ न बाँधे।"

"इस बारे मे भी तुम्हारे भाई से सलाह लूँगा। ठीक है न ?"

पति-पत्नी मे जो चर्चा हुई उसके अनुसार प्रधान गगराज से विचार-विनिमय हुआ। बच्चों के शिक्षण की उन्होने भी स्वीकृति दी। उनकी स्वीकृति मे यह आभास भी नही मिला कि वे राजकुमार की बात को कितना मूल्य दे सके है। अभी मे इस सम्बन्ध मे वे कुछ कहना नही चाहते थे, अभी हालात कुछ गँदले है, कुछ छन जाएँ। अभी कुछ कहे तो उसका अर्थ बुरा भी हो सकता है। इसलिए वेलापुरी जाना आवश्यक प्रतीत नही होता। समय की प्रतीक्षा कर योग्य अवसर मिलने पर इस विवाह के सम्बन्ध मे ठीक-ठीक स्थिति जानने का काम करेगे। बच्चो के स्थानान्तर मे इसका कोई सम्बन्ध नही, किस-किसको कहाँ-कहाँ रखना अच्छा होगा, इस दृष्टि से ही इन बातो पर विचार करना होगा, यह मैने स्वय युवराज को बताया था। परन्तु मैन यह नही सोचा था कि वे इस पर अभी अमल कर डालेगे। माचण के स्थानान्तर की जल्दी नही थी। परन्तु डाकरस को अपने पास बुला लेने का उद्देश्य राजकुमारो के शिक्षण की व्यवस्था और देख-रेख है, इसलिए उसके स्थान-परिवर्तन की जल्दी भी थी। अपने बच्चो के शिक्षण का भार विश्वास के साथ आपके बेटे पर छोड रखा है, तो आपको युवराज के किसी काम पर सन्देह करने की जरूरत भी नही। आपको इस उम्र मे, बुढापे के कारण बहुत जल्दी प्रतिक्रिया का भाव उठता है। जल्दबाजी के कारण जो कोई प्रतिक्रिया हो जाती है उसके माने कुछ-के-कुछ हो जाते है। इसलिए ये सब विचार छोडकर चुप रहने की सलाह प्रधान गगराज ने महादण्डनायक को दी। इस विचार-विनिमय के फलस्वरूप दण्डनायक की बच्चियो को शिक्षण का लाभ हुआ।

राजकुमारो का अध्ययन जोर-शोर से चल पडा। बल्लाल मे अध्ययन के प्रति जो आसक्ति पैदा हो गयी थी उसे देखकर कवि नागचन्द्र बहुत चकित हुए, उन्हे बडा सन्तोष हुआ था। इस सम्बन्ध मे एक दिन उन्होंने युवरानी से कहा था, "बल्लाल कुमार की इस श्रद्धा का कारण सन्निधान है।"

"आप यदि खुले दिल से मुझसे बात न करते तो यह काम नही हो सकता था। इसका एक कारण यह भी है कि उस दिन अभ्यास के समय ही वह अधिक प्रभावित हुआ होगा। उसके दिल मे आपकी उपदेश-वाणी झकृत हो रही थी कि तभी मैने भी खुलकर उससे बाते की। बल्कि कहूँ, इस भावना से आप बाते न करते तो पता नही राजकुमार के भविष्य का क्या हुआ होता।"

"जब कभी अच्छा होना होता है तो बुद्धि भी ऐसी हो जाती हैं। यहाँ के प्रशान्त वातावरण मे शिक्षण कार्य निर्बाध गति से चल रहा है।"

"आप तृप्त हो जायें तो पर्याप्त है।"

"मुझे तो तृप्ति है। छोटे राजकुमार की जितनी सूक्ष्म ग्रहण-शक्ति न होने पर भी बडे राजकुमार की ग्रहण-शक्ति उच्चस्तरीय है। अब तो अध्ययन मे उनकी एकाग्रता भी स्पष्ट दीखती है, कई बार वे छोटे राजकुमार से भी जल्दी पाठ कण्ठस्थ कर लेते हैं।"

"पोय्सल राज-सिहासन पर बैठने योग्य उसीको बनाइये, माँ होकर मैं यही माँगती हूँ। उसे प्रजा का प्रेमपात्र बनना चाहिए और प्रजा का विश्वासपात्र बनना चाहिए। इतनी योग्यता उसमे आनी ही चाहिए।"

"इस विषय मे आपको अविश्वास करने का कोई कारण नही। मैं इसी ध्येय को लक्ष्य मे रखकर उन्हे शिक्षण दे रहा हूँ।"

"अच्छा कविजी, यहाँ आपको सब सुविधाएँ प्राप्त है न ? अगर कोई दिक्कत हो तो बताइये। प्रभुजी से कहकर ठीक करा दूँगी।"

"चिण्णम दण्डनायकजी ने स्वय इस ओर ध्यान देकर सारी व्यवस्था कर सब बातो की सुविधाएँ जुटा दी है।"

"बहुत अच्छा।"

इतना कहकर चुप हो जाने पर कवि ने समझ लिया कि अब जाना है। वह भी उठ खडा हुआ परन्तु गया नही।

'और कुछ कहना है कविजी ?" युवरानी एचलदेवी ने पूछा।

"हाँ, एक निजी बात है।"

"कहिए।"

"एक पखवारे से सोच रहा था कि कहूँ या नही। आज इस निर्णय पर पहुँचा कि कह दूँ। मेरे निवेदन मे कोई गलती हो तो क्षमा करे।"

"इतनी पूर्व-पीठिका है तो बात कुछ गम्भीर ही होगी।" एचलदेवी ने कहा।

वह फिर बैठा। बोला, "डाकरस दण्डनायकजी ने यहाँ आने के बाद एक बार मुझे बुला भेजा था। जाकर दर्शन कर आया। उस समय उन्होने जो बात कही उसे सुनकर मेरा दिल बहुत दुख रहा है। जो बात मुझे सही नही लगती उसे बिना छिपाये स्पष्ट कह देना मेरा स्वभाव है, उसमे चाहे जो हो जाये। जिस पत्तल मे खाये उसी मे छेद करना मेरा स्वभाव नही। यह बात दण्डनायकजी के यहाँ से उठी है। यह मैंने बात करने के ढग से समझ लिया, यद्यपि उन्होने बात इस ढग से की कि उसमे मेरा दिल न दुखे। उनके कहने के ढग मे लगा कि मुझे प्रभु का आश्रय और उनका प्रेम मिला, इसलिए मै उनकी परवाह नही करता, यह भावना उनके मन मे उत्पन्न हो गयी है। यह सुनने के बाद मैं इस बात की जड की खोज मे लगा

हूँ। वेलापुरी की यात्रा का समाचार पहले से जानते हुए भी वहाँ से निकलते समय उनसे कहकर नही आया, मैं सोचता हूँ यही कारण रहा होगा। सन्निधान जानती है राज-परिवार के यहाँ पधारते समय पिछले दिन अचानक रात को ही चिण्णम दण्डनायक के साथ यहाँ सकुटुम्ब आना पड़ा। फिर भी चिण्णम दण्डनायकजी से इस बारे मे मैंने निवेदन किया था। उन्होंने कहा, यह स्वामीजी की आज्ञा है, तुरन्त तैयार हो जाओ प्रस्थान के लिए। जिन-जिनको बताना होगा उन सबको राजमहल से खबर भेज दी जायेगी। इसके लिए आपको चिन्तित होने की ज़रूरत नही। मैं इधर चला आया। मेरे मन पर जो भार लद गया था, उसे मैंने सन्निधान से निवेदन किया है। आज्ञा हो तो एक बार दोरसमुद्र जाकर दण्डनायकजी से सीधा मिलकर क्षमा-याचना कर आऊँगा।" कवि नागचन्द्र ने कहा। उसका मन वास्तव मे उद्वेग से भरा था।

"इस समाचार पर रंग सम्भवत स्त्रियो की ओर से चढ़ा है। आपको आतंकित होने की ज़रूरत नही। सिर्फ इसीलिए आपको वहाँ तक जाने की ज़रूरत नही। मैं स्वामी से बात करूँगी। आप निश्चिन्त रहे।"

"स्त्रियाँ कहे या पुरुष, ऐसी बात से तो मन दुखेगा ही।"

"आप काव्य-रचना करने बैठें और किसी नायिका के दु ख का चित्रण करना पड़े तो आप ख ुद रोने बैठेंगे? ऐसे बैठने से काव्य-रचना हो सकेगी? यहाँ भी वही बात है। किसी के बारे मे कोई बात आपसे सम्बद्ध कोई कहता है तो उसपर आपको चिन्ता क्यो हो? आपके मन मे ऐसी भावना क्यो हो? आपके मन मे बुराई न हो तभी निर्लिप्त रहना साध्य होता।"

"मुझमे कोई ऐसी बात ही नही है। परन्तु उनसे बिदा लेकर आना कर्त्तव्य था, उसका पालन न हो सका, यही चिन्ता मन को सालती रही।"

"किन्तु जिस परिस्थिति मे आपको आना पड़ा, उससे आप परिचित है, तो इसके लिए चिन्तित नही होना चाहिए। महादण्डनायक यहाँ आनेवाले ही हैं, तब चाहे आप सीधी बात कर ले। जब तक वे स्वय यह बात नही उठाये तब तक आप ख ुद यह बात न उठाये, यह सही ही नही है, यह मेरी सलाह भी है।"

"ठीक है। अब तत्काल मन का भार कम हुआ, बोझ उतरा। उनके आने पर क्या होगा, यह अभी से क्यो सोचूँ? आज्ञा हो तो चलूँगा। मैंने आपके साथ बात करने की जो स्वतन्त्रता ली उसके लिए क्षमा माँगता हूँ।"

"नही, ऐसा कुछ नही। आप सब राज-परिवार के हैं। आप लोगो को अपनी इच्छा खुले दिल से स्पष्ट कहना चाहिए, यही अच्छा है।"

कवि नागचन्द्र नमस्कार करके चला गया।

युवरानी एचलदेवी अपने पलग की तरफ चली। और पैर पसारकर लेट गयी।

चामव्वा की इस दुर्बुद्धि पर युवरानी एचलदेवी के मन मे घृणा की भावना उत्पन्न हो गयी। मरियाने दण्डनायक के आने का समाचार तो मालूम था परन्तु उसका कारण वह नही जानती थी। चामव्वा ने कौन-सा पासा खेलने के लिए उनके हाथ मे देकर भेजा है, यह विदित नही। प्रतीक्षा करके देखना होगा।

हाँ, हाँ, प्रतीक्षा करके देखने का विचार किया, यह तो ठीक ही है। इस विचार के पीछे एक-एक करके सभी बातें याद आयी। इस सबका मूल कारण राज-परिवार की समधिन बनने की उसकी महत्त्वाकाक्षा है। हेग्गडती और उसकी लडकी ये शनि के चले जाने की खबर सुनते ही उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। यही उसके आनन्द का कारण था। कैसी नीचता! न्यौते का नाटक रचा, कुछ वस्त्र आदि देकर खूब खेल दिखाया। फिर विदाई का नाटकीय आयोजन किया। शायद इनके प्रस्थान के तुरन्त बाद वह विवाह की बात उठाना चाह रही थी। उसे पता दिये बिना, हम लोगो का प्रस्थान होने से वह मौका चूक गया। इसपर उसे गुस्सा भी आया होगा। और वह गुस्सा किसी-न-किसी पर उतारना चाहती है। ऐसी हालत मे, दण्डनायक शायद इसी सम्बन्ध मे बात करने आ रहे होगे। इस-लिए पहले ही से अपने प्रभु से विचार-विनिमय कर लेना अच्छा है।

ठीक उसी वक्त बडी रानी चन्दलदवीजी के आने मे यह विचार-शृखला टूटी। वह तुरन्त उठ खडी हुई।

"बुला भेजती तो मै स्वय सेवा मे पहुँच जाती।" युवरानी ने विनीत होकर कहा। बैठने के लिए आसन दिया।

बडी रानी बैठती हुई बोली, "आप बहुत विचार-मग्न लग रही है, मेरे आने से बाधा तो नही हुई?"

"विचार और चिन्ता ने किसे मुक्त किया है बडी रानीजी? एक छोटी चीटी से लेकर चक्रवर्ती तक का एक-न-एक विचार करते ही रहना पडता है। अब, क्या आपको चिन्ता नही? आपका चेहरा ही बताता है। क्या करे, बडी रानी, रेविमय्या के आने तक आपको इसी तरह चिन्तित रहना पडेगा।"

"मुझे कोई परेशानी नही। मेरे कारण आपकी जिम्मेदारी बढ गयी है यदि बलिपुर से सीधा चली जाती"

"वही से चली जाती तो हमे आपकी आत्मीयता कहाँ मिलती? प्रत्येक क्रिया के पीछे ईश्वर का कोई-न-कोई निर्देश रहता ही है।"

इतने मे घण्टी बज उठी। युवरानी और एचलदेवी की बात अभी खतम नही हुई कि इतने मे एरेयग प्रभु की आवाज सुन पडी, "बडी रानीजी भी हैं। अच्छा हुआ। गालब्बे अन्दर जाकर सूचना दे आओ।"

एचलदेवी स्वागत करने के लिए उठकर दरवाजे तक आयी।

एरेयग प्रभु अन्दर आये, "बडी रानीजी, चलिकेनायक अभी कल्याण से लौटा

है। सन्निधान ने पत्र भेजा है कि स्वास्थ्य ठीक न होने से वे स्वय आ नही सकते। इसका अर्थ यह हुआ कि बडी रानी को विदा करने का समय आ गया। हँसी-खुशी से विदा करने के बदले एक आतक की भावना मे जल्दी विदा करने का प्रसग आया है। जिस वक्त आप चाहे, योग्य सरक्षक दल के साथ भिजवा देगे। खुद साथ चलने की आज्ञा दे तो भी तैयार हूँ। कल हमारे महादण्डनायक अचानक ही यहाँ आनेवाले है। वे यदि मान लेगे तो उन्ही को साथ भेज दूंगा।" बिना रुके एक ही साँस मे यह सब कहकर उन्होने अपने ऊपर का बोझ तो उतार दिया, परन्तु यह समाचार सुनने को बडी रानीजी और एचलदेवी दोनो तैयार नही थी।

बडी रानीजी तो किंकर्तव्य-विमूढ होकर ही बैठ गयी। एकदम ऐसी खबर सुनने पर एचलदेवी कुछ परेशान भी हुई। परन्तु यह सोचकर कि उसके मन पर दूसरी तरह का कोई आघात लगा होगा और इसी वजह बिना दम लिये एक ही साँस मे कह गये हो, यह समझकर, खुद परेशान होने पर भी वह बडे सयम मे बोली, 'चिन्ता न करे, बडी रानीजी, जितनी जल्दी हो सकेगा, आपको कल्याण पहुँचाने की व्यवस्था करेगे। अस्वस्थता की खबर आपके पास पहुँचने तक ईश्वर की कृपा से चक्रवर्ती का स्वास्थ्य सुधर चुका होगा, ऐसा विश्वास करे। हमे बिना कारण घबडाने की जरूरत नही। मै खुद आपके साथ चलकर आपको चक्रवर्ती के हाथ सौंपकर आऊँगी, आप चिन्ता न करे।" युवरानी एचलदेवी ने कहा।

"नायक कहाँ है ?" चन्दलदेवी ने पूछा।

"मिलना चाहे तो बुलाऊँगा।" प्रभु एरेयग ने कहा।

"यदि वहाँ से रवाना होने से पहले वे सन्निधान से प्रत्यक्ष मिले हो तो बुलाइये।"

"गालब्बे, बाहर लेक खडा है। किसी को भेजकर चलिकेनायक को बुला लाने को कहो।" एरेयग प्रभु ने कहा।

चन्दलदेवी ने पूछा, "जब नायक ने खबर सुनाई तब वह कुछ घबडाहट महसूस करने लगा क्या ?"

"हमने इतने विस्तार से नही देखा-पूछा। इसलिए इतना ही कहकर कि 'ठीक है' हम उस पत्र को लेकर इधर चले आये। अभी पत्र पढा नही है। बडी रानीजी के समक्ष ही पढना उचित समझकर हमने अविलम्ब नही पढा।" कहकर फरमान की मुहर खोली। बडी रानी और एचलदेवी देखने के लिए जरा आगे झुकी। एरेयग प्रभु ने स्वस्तिश्री आदि लम्बी विरुदावली पर नजर दौडायी और फरमान पढना शुरू किया—

"धारानगरी पर विजय प्राप्त कर बडी रानी को सुरक्षित रखकर आपने जो कार्य दक्षता से किया है, इससे बहुत सन्तोष हुआ। इस खुशी के समय अपनी इच्छा से, आगे से, पोय्सल-वश-त्रिभुवन-मल्ल यह चालुक्य-विरुद भी आपकी विरुदावली

के साथ सुशोभित हो, यह हम इसी फरमान के द्वारा सूचित करना चाहते है। यहाँ का राजनीतिक वातावरण भाई जयसिंह के कारण कलुषित हो गया है। इसे प्रकट करना ठीक नही, फिर भी आप पर हमारा पूर्ण विश्वास है अत आपको बताया है। इस वजह से फिलहाल हम दोरसमुद्र की ओर आने की स्थिति मे नही हैं। नुकसान तो हमारा ही होगा। बडी रानीजी को जितनी जल्दी हो सके कल्याण भिजवाने की व्यवस्था करें। यहाँ की राजनीतिक हलचल को वहाँ के आम लोगो के लिए साधारण बातचीत का विषय नही बनना चाहिए। इसलिए नायक को बताया है, स्वास्थ्य अच्छा नही।"

बडी रानी का हाथ अनायास ही गले पर के मागल्य-सूत्र की ओर गया। एक दीर्घ श्वास लेकर कह उठी, "एक ही क्षण मन मे क्या सब हो गया!" चन्दलदेवी का मन स्वस्थ हो गया था।

"अब बडी रानी के मन मे इस एक ही क्षण मे जो सब हो गया वही इस देश के दाम्पत्य जीवन का सकेत है।" युवरानी एचलदेवी ने कहा।

"बिना कारण बेचारे नायक के विश्राम मे बाधा डाली।" बडी रानी ने कहा।

"वह भी बडी रानीजी से मिलने के लिए उतावला था। उन्होने जो खबर सुनायी थी उनके सन्दर्भ मे इस वक्त उससे मिलना ठीक न समझकर मैने ही मना किया था। सचमुच हमे भी इससे कुछ चिन्ता हो गयी थी।"

"किसी सम्भावित भारी दु ख का निवारण हो गया।" कहती हुई एचलदेवी उठ खडी हुई।

"क्यो ?" चन्दलदेवी ने पूछा।

"एक दिया घी का जला भगवान को प्रणाम करके आऊँगी।" कहकर एचलदेवी निकली।

चन्दलदेवी ने "मै भी चलती हूँ।" कहकर उसका अनुगमन किया।

इधर क्षण मे ही चलिकेनायक आ गया। इस बुलावे के कारण वह घबडा गया और पसीना-पसीना हो गया। यात्रा की थकावट, असन्तोषजनक वार्ता, तुरन्त आने का यह बुलावा, इन सब बातो ने मिलकर उसमे कम्पन पैदा कर दिया था।

नायक ने युवराज को प्रणाम किया।

"बैठो नायक।"

"रहने दीजिए," कहकर पूछा, "इतनी जल्दी मे बुलाया ?"

"हाँ, तब जल्दी थी, अब नही। इसीलिए बैठने को कहा है।"

नायक की समझ मे नही आया कि वह क्या करे। वह टकटकी लगाकर देखता रह गया। परन्तु बैठा नही।

"क्यो नायक, बहरे हो गये हो क्या ?"

"नही, ठीक हूँ, प्रभु।"

"तो बैठे क्यो नही, बैठो।"

वह सिमटकर एक आसन पर बैठ गया।

प्रभु एरेयग कुछ बोले नही, नायक प्रतीक्षा करता बैठा रहा। जिसपर बैठा था वह आसन काँटो का-सा लग रहा था। कब तक यो बैठा रहेगा? "हुकुम हुआ, आया, क्या विषय है" उसने पूछना चाहा, बात रुकी।

"जिन्होने बुलाया है उन्हे आने दो। तब तक ठहरो, जल्दी क्यो?" उसे कुछ बोलने का अवसर ही नही रहा। मौन छाया रहा। कुछ ही क्षण बाद बडी रानी और युवरानी घी का दिया जलाकर प्रणाम करके लौटी। नायक ने उठकर उन्हे प्रणाम किया।

"क्यो, नायक, अच्छे हो?" चन्दलदेवी ने पूछा।

बडी रानी चन्दलदेवी को देखने से उसे लगा कि उन्हे अभी चक्रवर्ती की अस्वस्थता की खबर नही मिली होगी। उसने सोचा, यह अप्रिय समाचार सुनाने की जिम्मेदारी मुझी पर डालने के इरादे से इस तरह बुलाया है, इससे वह और भी अधिक चिन्ता-भार से दब गया, बोला, "हाँ, अच्छा हूँ।"

बडी रानी बैठी। नायक से भी बैठने को कहा। युवरानी भी बैठ चुकी थी, पर नायक खडा ही रहा।

"इसे दो-दो बार कहना पडता है, पहले भी इसने यही किया।" प्रभु एरेयग ने किया।

नायक कुछ कहे बिना बैठ गया। जो पत्र वह स्वय लाया था उसे दिखाते हुए प्रभु एरेयग ने पूछा, "यही है न वह पत्र जो तुम लाये हो?"

"हाँ।"

"बडी रानीजी की इच्छा है, इस पत्र को तुम ही पढकर सुना दो, इसीलिए तुमको बुलाया है।" कहते हुए प्रभु एरेयग ने पत्र उसकी ओर बढाया। चलिके-नायक ने आकर पत्र हाथ मे लेकर बडी रानी की ओर देखा।

"क्यो नायक, पढोगे नही?" एरेयग ने पूछा।

"यह तो प्रभु के लिए प्रेषित पत्र है। मेरा पढ़ना · ?" इससे उसका मतलब था कि अप्रिय वार्ता उसके अपने मुँह से न निकले।

"हम ही कह रहे हैं न, पढ़ने के लिए, पढो।" प्रभु ने कहा।

पत्र खोलकर आरम्भिक औपचारिक सम्बोधन के भाग पर नजर दौडायी। इसके बाद उसकी नजर पत्र की अन्तिम पंक्ति पर लगी। पत्र छोटा था। उसकी सारी चिन्ता क्षण-भर मे गायब हो गयी।

"मुझे भी फिर से पढ़ना होगा?" नायक ने पूछा।

"तुमको समाचार मालूम हो गया न, बस। इधर लाओ।" प्रभु ने हाथ

बढाया। नायक ने पत्र लौटा दिया।

"यह पत्र तुमने पढा नही, नायक। अब मालूम हुआ ?"

"मालूम हो गया, मालिक।"

"तुमको फिर बडी रानीजी का रक्षक बनकर जाना होगा।"

"जो आज्ञा।"

"नायक। लौटते समय तुमने सन्निधान का दर्शन किया था या नही ?" चन्दलदेवी ने पूछा।

"पहली बार जब दर्शन किया तो कहा कि चलेगे पर कुछ देरी होगी। तब तक रहो। फिर दो दिन बाद मिलने गया तब भी सन्निधान ने यही कहा। परन्तु रेविमय्या के आकर पूछने पर 'अब दर्शन नही हो सकता, स्वास्थ्य अच्छा नही।' कह दिया, और बताया कि आज्ञा हुई है कि 'अब दर्शन नही द सकते, यह एक पत्र तैयार रखा है, इसे ले जाकर अपने युवराज को दे देना।' अमात्य रविनभट्ट दण्डनायकजी ने बताया कि बडी रानीजी को शीघ्र इधर ले आने की व्यवस्था कराएँ। हम इधर चले आये।"

"तो रेविमय्या कहाँ है, वह तो दिखा नही ?" प्रभु एरेयग ने पूछा।

"रास्ते मे बलिपुर मे रुक गया है, कल आयेगा।"

"हेग्गडेजी बलिपुर मे थे ?"

"नही।"

"होते तो अच्छा होता।"

"रेविमय्या आयेगा तो मालूम हो जायेगा। मैं कह आया हूँ। लौटते समय बडी रानीजी को वहाँ एक रात ठहरना पडेगा। हेग्गडेजी आ जायें तो यह सूचित करें कि वे अन्यत्र न जाये, बलिपुर मे ही रहे।"

"ऐसा किया, अच्छा हुआ। परन्तु चक्रवर्ती के अस्वस्थ रहने की बात सुनकर हेग्गडेजी बहुत चिन्तित होगे। आप लोगो के वहाँ पहुँचने तक उनकी चिन्ता दूर नही हो सकती। क्या करे, दूसरा चारा नही। ठीक है, नायक, अब तुम जा सकते हो। तुम्हे वस्तुस्थिति मालूम हो गयी है न ? कहाँ कब क्या कहना, क्या नही कहना, यह याद रखना।" प्रभु एरेयग ने कहा।

"जो आज्ञा।" कहकर प्रणाम कर चलिकेनायक चला गया। अब का नायक और था, पहले का और था। सुख-दुःख मानव के स्वरूप को ही बदल देता है, एरेयग ने यह बात नायक के चेहरे पर स्पष्ट देखी।

"अब तक बडी रानीजी की उपस्थिति के कारण अन्तःपुर भरा हुआ लग रहा था। अब उनके जाने के बाद मुझे तो सूना ही लगेगा।" युवरानी एचलदेवी बोली।

"सूना क्यो लगना चाहिए ? घर भर लीजिये। आपके बडे राजकुमार विवाह-

योग्य तो हो ही चुके हैं।" चन्दलदेवी न कहा।

"वह तो किसी दिन होगा ही, होना ही चाहिए। परन्तु कैसी लडकी आयेगी यह नही मालूम मुझे।" युवरानी एचलदेवी ने कहा।

"यह बात मै नही मानती। बडे दण्डनायकजी को बडी लडकी ने, सुना है, बडे राजकुमार का मन हर लिया है।"

"वह जोडी ठीक बन मकेगी, बडी रानीजी ?" युवरानी एचलदेवी बोली। उनकी ध्वनि मे कुछ आतक की भावना थी।

"आपके पास आने पर सब ठीक हो जायेगा। आप शत्रु को भी जीत सकती है।" चन्दलदेवी बोली।

"मुझे बल्लाल के ही बारे मे अधिक चिन्ता है। हमारा सौभाग्य है कि अब वह ठीक बनता जा रहा है।"

"तो क्या बाकी बच्चो के बारे मे चिन्ता नही ह ?"

"बिट्टि के बारे मे मुझे चिन्ता नही। उदय अभी छोटा है, उसके बारे मे चिन्तित होने का अभी समय नही आया है।"

"तो क्या आप किसी निर्णय पर पहुँच गयी है ?"

"मुझे मालम है कि कुछ बाते मै न रोक सकती हूँ न टाल ही सकती हूँ। इसी-लिए उनसे समझौता ही कर लेना चाहिए।"

"तात्पर्य यह कि अनहित से भी हित की साधना करना आपका लक्ष्य है।"

"हमसे किसी का अनहित नही होना चाहिए। इतना ही अभीष्ट है।"

"हमसे यह साधना नही हो सकती।"

"ऐसा क्यो कहती है ? अच्छाई का काम कोई भी कर सकता है।"

"सच है। लेकिन जिसे देखकर दूसरे लोग आपस मे झगडा करे ऐसे मेरे सौन्दर्य ने कौन-सा हित साधा।"

"इसका उत्तरदायित्व आप पर नही है, वह तो मनुष्य की एक नीचता है, सबकुछ अपना ही समझने का स्वार्थ। परन्तु इसी झगडे ने हम लोगो मे आत्मीयता पैदा कर दी है। आपका रूप-सौन्दर्य ही इस आत्मीयता का कारण है।"

"यही मैं भी कह रही हूँ, यही है अनहित म भी हित देखना।"

अब तक युवराज एरेयग प्रभु चुपचाप बैठे सुन रहे थे, अब बाले, "ऐसे ही छोड दे तो आप लोगो की बाते कभी समाप्त नही होगी। बडी रानीजी की यात्रा को अब और अधिक दिन तक स्थगित नही किया जा सकता। हम उसके लिए उप-युक्त समय निश्चित करेंगे, कल रेविमय्या और दण्डनायक के आने पर। आप अब विदाई की रस्म की तैयारी करें।"

"मरियाने दण्डनायकजी विवाह सम्बन्धी बात करने आनेवाले है ?" चन्दल-देवी ने सीधा सवाल किया।

"न न, वह बात अब अभी सोचने की नही है। उसकी अभी क्या जल्दी है?" कहकर ज्यादा बात करने का मौका न देकर प्रभु एरेयग चले गये।

"तो यह सम्बन्ध युवराज को पसन्द नही है?" चन्दलदेवी ने एचलदेवी से पूछा।

"बातो से तो ऐसा ही लग रहा है। इससे मुझे दोनो तरफ की चिन्ता करनी पड रही है। उधर अप्पाजी के विचार भिन्न है, प्रभुजी के विचार बिल्कुल अलग, यह सब स्पष्ट हो गया है। समय ही इस स्थिति का बदल सकता है। इन दोनो मे से किसी एक के मन को तो बदलना ही होगा।"

"जब मैंने यह बात छेडी तब युवराज कुछ नही बोले। इससे मै समझ बैठी थी कि इस सम्बन्ध मे उनके विचार अनुकूल है। यह जानती होती कि उनके विचार प्रतिकूल है तो मै यह सवाल नही उठाती, शायद न उठाना ही अच्छा होता।" चन्दलदेवी ने परेशान होकर कहा।

"पूछ लिया तो क्या हो गया? यह मामला ही कुछ पेचीदा है। यह उलझन सुलझाने का भार भी मुझी को ढोना होगा। यह सर्वथा निश्चित है। आपको परेशान होने की जरूरत नही। अन्दर का विरोध एक बार फूटकर बाहर व्यक्त हो जाये तो मन पर उसका दवाब कुछ कम हो जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि मेरा काम कुछ हद तक आसान हो गया है। अरे, मैं तो बातो मे भूल ही गयी थी, आज सोमवार है। शाम हो रही है, जल्दी तैयार हो जाये तो मन्दिर हो आयेगे। वाहन तैयार रखने को कहला भेजती हूँ।" युवरानी ने कहा।

चन्दलदेवी उठकर अपने निवास चन्द्रशाला गयी।

मरियाने दण्डनायक आया। मन्त्रणागृह मे युवराज से गुप्त मन्त्रणा हुई। उस समय उसने दो मुख्य बातो का जिक्र किया। पहली बात यह थी कि महाराज इस बात पर अधिक जोर दे रहे है कि युवराज सिंहासनारोहण के लिए स्वीकृति दे। अबकी बार यह बात दण्डनायक के हृदयान्तराल से निकली थी, फिर भी युवराज ने अपना पूर्व-सूचित निर्णय न बदला, उसी पर डटे रहे और कहा, "अब क्या कष्ट हो रहा है, दण्डनायकजी, कामकाज तो चल ही रहे है। पिताजी हमारे सभी कार्यों को स्वीकार कर आशीर्वाद दे रहे हैं, हम छोटो के लिए इससे बढकर सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है। वे जोर दे रहे हैं, इससे हमें झुकना नही चाहिए। कल दुनिया कह सकती है कि पिता बूढे हो गये, इससे उन्हे हटाकर खुद सिंहासन पर

बैठ गये । अन्दरूनी बातो को दुनियावाले कैसे जानेंगे। मेरी यह इच्छा है कि हमारे इस राज्य की प्रजा सुखी और सम्पन्न होकर शान्तिमय जीवन व्यतीत करे। यह मेरे सिंहासनारूढ होने से भी अधिक मुख्य विषय है। इसीलिए दुबारा कभी ऐसी सलाह देने का कष्ट न करें। यह हमारा अन्तिम निर्णय है।" प्रभु एरेयग ने इस निर्णय से दण्डनायक की बात पर पूर्णविराम लगा दिया।

अब अपना बान्धव्य जोडने का विषय मरियाने दण्डनायक ने बहुत ही नरमी के साथ धीरे से उठाया। कहा, "हमारा पूर्व-पुण्य था कि महामातृश्री केलेयब्बरसीजी ने मुझपर सहोदर-वात्सल्य रखकर किसी कोने मे पडे रहनेवाले मुझको ऊपर उठाया और एक गण्य-मान्य व्यक्ति बनाया। एक पद देकर प्रतिष्ठित किया। इस ऋण मे मैं जन्म-जन्मान्तर मे भी मुक्त नही हो सकता। सम्पूर्ण जीवन पोय्सल साम्राज्य की उन्नति के ही लिए समर्पित है, मेरा सारा घराना इसके लिए सर्वस्व का भी त्याग करने को तैयार है। राजकुमारो की सैनिक शिक्षा का भार मेरे पुत्र पर छोडकर आपने जो अनुग्रह किया है इससे यह स्पष्ट है कि राज-परिवार का हमारे परिवार पर अत्यधिक विश्वास है। यह विश्वास हमारे लिए एक वरदान की तरह है। इस विश्वास की रक्षा का उत्तरदायित्व हमारे घराने का आद्य-कर्त्तव्य है। यह सम्बन्ध और निकट हो जाये, कन्या का पिता होने के कारण, एक भविष्य की आशा लिये बैठा हूँ। कई बार इस विषय का निवेदन करने की बात सोची, समय की प्रतीक्षा करता रहा। यदि सन्निधान अन्यथा न समझें तो एक निवेदन करना चाहता हूँ। अपनी बडी लडकी का बडे राजकुमार बल्लालदेव के साथ विवाह कर देने की अभिलाषा करता हूँ। सन्निधान मेरी इस प्रार्थना को उदारता से स्वीकार कर अनुग्रह करे।"

"दण्डनायकजी, यह अच्छा हुआ कि आपने अपनी इच्छा बता दी। साथ ही समय-असमय की भी बात कही। वह भी ठीक है। इस विषय पर विचार का समय अभी नही आया। यह हमारी राय है। राजकुमार के लिए अब विवाह से अधिक आवश्यक बात यह है कि वे भावी जिम्मेदारी को सँभालने लायक योग्यता प्राप्त करे। आप ही ने कई बार कहा भी था कि उनका स्वास्थ्य सन्तोषजनक नही है। इधर कुछ दिन से स्वास्थ्य सुधर रहा है, पण्डित चारुकीर्तिजी की चिकित्सा के कारण। वास्तव मे हमे आपसे कुछ छिपाने की जरूरत नही है। हमे कुछ समय पूर्व इस बात की चिन्ता हो गयी थी कि कम-से-कम बौद्धिक दृष्टि से तो सिंहासन पर बैठने योग्य भी कुमार बनेंगे या नही। इस बात का दुःख रहा हमे। अब आपके द्वारा प्रेषित कवि के समर्थ दिशादर्शन और शिक्षण के कारण उनमे उत्साह और आसक्ति के भाव जगे हैं। इससे हमारे मन मे यह भावना आयी है और हम आशा करते है कि वे सिंहासन पर बैठने योग्य बनेंगे। इससे हमारा मन कुछ निश्चिन्त हुआ है। ऐसे समय विवाह की बात उठाकर उनके मन को आलोडित करना अच्छा

नही है। कम-से-कम और तीन साल तक शिक्षण की ओर ध्यान देना उनके लिए ह म आवश्यक मानते है। आप महादण्डनायक की हैसियत से हमसे सहमत होंगे, यह हमारा विश्वास है। अभी इस प्रसग मे बात नही उठाना ही उचित है। बाद मे यह बात सोचेगे।"

"सन्निधान की आज्ञा है तो तब तक प्रतीक्षा करूँगा।"

"इस सम्बन्ध मे हम कुछ नही कह सकेंगे। निर्णय आपका। विवाह कभी-कभी हमारी इच्छा के अनुसार नही होते। इसीलिए योग्य द[illegible] मिले, उचित अवसर भी आ जाये तभी विवाह करना उचित है। किसी भी बात पर [illegible]क विचार न करके हमारी बेटी केलेयल देवी का हेम्माडी अरस के साथ एक विशेष मुहूर्त मे विवाह कर दिया गया था, विवाह के अब आठ वर्ष बीत गये। आपको मालूम है न?"

मरियाने को आगे बात करने के लिए कोई मौका ही नही रह गया। एक तरह से वह निराश हुआ। परन्तु उसने प्रकट नही होने दिया, ठीक है कहकर चुप हो गया।

इसके बाद प्रभु एरेयग ने कहा, "दण्डनायकजी। बडी रानीजी को कल्याण भेजना है। चालुक्य चक्रवर्तीजी अस्वस्थता के कारण आ नही सकते। यो तो मेरा आना ही उचित है और सगत भी। परन्तु, इधर उत्तर की ओर रहने के कारण दो वर्ष मे यहाँ की स्थिति बदल गयी है। यही रहकर परिस्थिति पर निगरानी रखकर कुछ देखभाल करना आवश्यक हो गया है। इसलिए आप जा सकेंगे?" प्रभु ने पूछा।

"आज्ञा हो तो हो आऊँगा।" दण्डनायक ने कहा।

"आज्ञा ही देनी होती तो आपसे ऐसा पूछने की जरूरत ही क्या थी? जब हमे जाने के लिए परिस्थिति प्रतिकूल हो तब आप जैसे ही उत्तरदायित्व रखनेवालो को भेजना उचित मानकर हमने आपसे पूछा। यदि आपको कोई महत्तर कार्य हो तो हम सोचेगे, किसे भेज सकते है।" प्रभु एरेयग ने कहा।

"प्रभुजी का ऐसा विचार करना बहुत ही ठीक है। हमारा अहोभाग्य है कि हमपर इस स्तर का विश्वास आप रखते है। फिर भी श्रीमान् महाराज से एक बार पूछ लेना अच्छा होगा। मैं अपनी तरफ से तैयार हूँ।" मरियाने ने कहा।

"हाँ, दण्डनायकजी, आपका कहना भी एक दृष्टि से ठीक है। मेरा ध्यान उस तरफ नही गया। सचमुच अब आप महाराज के रक्षक बनकर रह रहे है। ऐसी हालत मे उनकी अनुमति के बिना आपका स्वीकार करना उचित नही होगा। यह आपकी दृष्टि से सही है। हम इसके लिए दूसरी ही व्यवस्था करेगे। इस सम्बन्ध मे आपको तकलीफ उठाने की जरूरत नही।"

"जैसी आज्ञा।"

"एक बात और। आपके पुत्र डाकरमजी ने हमे एक सलाह दी है। राज-

परिवार के दामाद हेम्माडी अरसजी ने बहुत खुश होकर उत्तम धनुर्धारी होने के कारण बैजरस को बुलाकर उसे 'दृष्टिभेदी धनुर्धारी' की उपाधि से भूषित किया और राजकुमारो को धनुर्विद्या सिखाने का आग्रह किया है। क्या करें ?"

"इसमे मुझसे क्या पूछना। डाकरस की सलाह अत्यन्त योग्य और श्लाघनीय है। खुद ही हेम्माडी अरसजी ने बैजरस के हस्त-कौशल की चर्चा उदाहरण के साथ बहुत मनोरजक ढग से की थी जितनी जल्दी हो, उन्हे बुलाना चाहिए।" मरियाने ने कहा।

"अच्छा, अब एक-दो वैयक्तिक विषय हैं जिन्हे कहना-न-कहना हमारी इच्छा पर है और जो केवल हमारे और आपके बीच के है, केवल अभिप्राय से सम्बन्धित। किसी भी तरह मे मन मे गलत धारणा बैठ गयी हो तो उसका निवारण मात्र इसका उद्देश्य है। आपके बेटो को स्थानान्तरित करने मे केवल राज्य के हित की दृष्टि है। हमने इस सम्बन्ध मे प्रधान गगराजजी से एक बार विचार-विनिमय किया था। उन्होने भी सलाह दी थी। इस सिलसिले मे एक बात सुनने मे आयी कि महादण्ड-नायक के बल को कम करने के लिए यह काम किया गया है। यह प्रतिक्रिया राज-धानी मे हुई। इस तरह की भावना कहाँ से उठी यह मुख्य विषय नही है। ऐसी गलत धारणा क्यो आयी, यह विचारणीय है। कोई राजघराने का विरोधी है, इस बात के प्रमाण मिलने तक उसकी शक्ति कम करने का कोई मन्तव्य नही। हमारी धारणा है कि राज-परिवार जिन-जिन पर विश्वास करता है, उन सभी को बलवान् होना चाहिए, जिससे राज्य का हित बराबर सध सके। वे जितने ही बलवान् होंगे उतना ही अधिक वह हित सधेगा। आपके मन मे यदि ऐसी कोई शका आयी हो तो आपके दोनो पुत्र दोरसमुद्र वापस भेज दिये जायेंगे।" प्रभु एरेयग ने कहा।

"सन्निधान के पास यह खबर आयी है कि मैंने ऐसा कहा है ?"

"किसी के नाम का जिक्र हमारे सुनने मे नही आया। खबर मात्र हमारे सुनने मे आयी है। आप महादण्डनायक हैं। ऐसी बातो का इस तरह निकलना अच्छा नही, यह आप जानते ही हैं। आइदा इस बात का ख्याल रखें कि ऐसी बातें कही से न निकले। इस ओर ध्यान देने मे आप सजग रह सकें, इस दृष्टि से मैं कह रहा हूँ।"

"हाँ, आइन्दा ऐसी बातें न हो, इसका ध्यान रखना ही होगा।"

"अच्छा, हमने सुना है कि राजधानी मे कुछ लोगो को इस बात का दुख है कि हमने अपने प्रस्थान की खबर नही दी। हम कब, कहाँ और क्यो जाते है, इन बातो के प्रचार की आवश्यकता नही। इस प्रचार से अच्छा-बुरा दोनो हो सकते हैं। बडी रानीजी के युद्धभूमि मे आने की खबर फैली तो आपने देखा कि वहाँ क्या काण्ड हो गया। इसीलिए आइदा हमारे जाने-आने की पूर्व-सूचना आवश्यक नही, और न इस पर किसी को परेशान होने की जरूरत। ये सब व्यक्तिगत बातें हैं,

सार्वजनिक वेदी या राजपथ की बाते नही। राजा और महादण्डनायक की गति-विधियो का पता, यह आप जानते ही है कि सीमित होना चाहिए। आपने यहाँ आने की खबर भडारी को दी थी ?"

"नही, उन्हे क्यो मालूम कराता।"

"इसी तरह, जाने-आने की गतिविधियो का पता जिन्हे लगना चाहिए उन्हे समय आने पर ही मालूम कराया जाये। अन्य लोगो को कभी इसकी खबर नही देना चाहिए। ठीक है न ?"

"ठीक है, प्रभुजी।"

"एक बात और रह गयी। वह कवि नागचन्द्रजी से सम्बद्ध विषय है। अगर उन्हे पहले सूचित करते तो उसकी जानकारी दूसरो को भी हो जाती, इसलिए हमने उन्हे किसी पूर्व-सूचना के बिना अचानक ही पहले यहाँ भेज दिया। वे आपके बहुत कृतज्ञ है, इसीलिए उन्होने, मालूम पडा, आपसे कहकर विदा लेने की बात कही थी। इसके लिए उन्हे समय ही नही मिला, उन्हे तुरन्त चलने की तैयारी करनी पडी। यही नही, वे हमारी आज्ञा पर यहाँ आये, उनके वहाँ से चले जाने के बाद ही राजमहल के आवश्यक लोगो को इसकी सूचना दी गयी थी। फिर भी महादण्डनायकजी के घर मे उनपर दोष लगाया गया, यह खबर हमे मिली है। उन्हे जानते हुए भी खबर न देने का दोष दिया गया यह सुनकर बेचारे बहुत चिन्तित और दु खी हो गये है। राजकुमारो के शिक्षण के लिए ही वे नियुक्त हुए थे, अत हमारा यह विचार रहा कि उन्हे अपने साथ रखने के लिए आपकी अनुमति की आवश्यकता नही। यद्यपि वे राजकुमारो के अध्यापन के लिए नियुक्त है तो भी उन्हे बुला लानेवाले आप है इस कारण आपने उन पर कोई ऐसी शर्त लगायी हो कि आपके आदेशानुसार ही उन्हे चलना चाहिए तो हम आप और उनके बीच मे पडना नही चाहते। उन्हे आप ले जा सकते है। परन्तु वे किसी भी बात के लिए दोषी नही। उन्होने उसी पत्तल मे छेद करने का-सा कोई काम नही किया जिसमे उन्होने खाया है। यह बात समझाने की जिम्मेदारी हमने अपने ऊपर लेकर उन्हे दिलासा दी है। वे भी सीधे आपसे आकर मिले शायद। उन्हे हमारी आपकी बातो के शिकजे मे फँसाना ही नही चाहिए। है न ?"

मरियाने चुपचाप बैठा सुनता रहा। युवराज की प्रत्येक बात उसी को लक्ष्य मे रखकर कही गयी है वह स्पष्ट समझ गया। पत्नी की लम्बी जबान का प्रभाव इतनी दूर तक पहुँच गया है, इस बात की कल्पना भी वह नही कर सका था। परन्तु गलती कहाँ है, इस बात मे वह परिचित ही था। इसीलिए उसके समर्थन के कोई माने नही, यह भी वह जानता था। इसलिए उसने कहा, "प्रभुजी जो कह रहे हैं वह सब ठीक है। देखनेवाली आँख और सुननेवाले कानो ने गलत राह पकडी है, इसीलिए प्रभुजी की बातो को स्मरण रखेंगे और बडी

सावधानी से बरतेंगे। प्रभु की एक-एक बात विषाददायक होने के साथ उदारता से युक्त भी है, यह स्पष्ट समझ में आ गया। यदि हमने जाने-अनजाने कोई गलती की तो उसे सुधारकर हमें सही रास्ते पर चलायें, पोय्सल राजवंश पर जो निष्ठा हममें है वह बराबर अक्षुण्ण रहे, इसके लिए समय-समय पर मार्गदर्शन कराते रहें, यही मेरी विनीत प्रार्थना है। यही मेरा कर्त्तव्य है। ज्यादा बातें करना अप्रकृत है। कवि नागचन्द्र को बुलाया ही केवल राजकुमारों के शिक्षण के लिए था। उनपर हमारा अधिकार कुछ नहीं। दण्डनायिका ने गुस्से में आकर बातें की है। मैंने उससे कहा भी था कि कवि नागचन्द्र के बारे में हमें कुछ नहीं कहना चाहिए, परिस्थिति के कारण उनको कुछ जल्दी में जाना पड़ा होगा। मैं उसे और भी समझा दूंगा। अब आज्ञा हो तो· "

"क्या दोरसमुद्र की यात्रा·· ?"

"जी हाँ।"

"यह कैसे सम्भव है! कल हमारे छोटे अप्पाजी का जन्म-दिन है। साथ ही बड़ी रानीजी की विदाई भी होगी। इसके लिए भोज का प्रबन्ध है। आप परसों जायेंगे बड़ी रानीजी के साथ। वे वहाँ महाराज से मिलेंगी और फिर आगे की यात्रा करेंगी। आप वहीं ठहर सकते हैं।"

"जो आज्ञा।"

"आज एक बार अपने अवकाश के समय हमारे बच्चों की सैनिक शिक्षा की व्यवस्था देखें और कैसी व्यवस्था की गयी है, सो भी पूछताछ कर लें। कुछ सलाह देनी हो वह भी दें, तो अच्छा होगा।"

"जब प्रभु स्वयं यहाँ उपस्थित हैं तब "

"हम भी तो आप ही से शिक्षित हैं, हैं न ? इतना सब करने का हमें अवकाश ही कहाँ।"

"जी, वही करूँगा।"

"अच्छा।"

मरियाने चला गया।

युवरानी एचलदेवी को इस सारी बातचीत का सारांश जल्दी ही मालूम हो गया। नागचन्द्रजी को पहले ही सूचित किया जा चुका था कि मरियाने से बात करने वक्त उस बात का वे खुद अपनी तरफ़ से जिक्र न करें।

कुमार बिट्टिदेव अब पन्द्रह की आयु पूर्ण कर सोलहवी की डयोढी पर हैं। जन्म-दिन का उत्सव मगल-वाद्य के साथ बडे सम्भ्रम के साथ पारम्परिक ढग से आरम्भ हुआ। यह उत्सव शाम के दीपोत्सव के साथ हँसी-खुशी मे समाप्त हुआ। जन्म-दिन के इस उत्सव को एक नया प्रकाश भी मिल गया था। इसका कारण था कि बडी रानीजी की विदाई का प्रतिभोज भी उसी दिन था।

बलिपुर मे जैसी विदाई हुई थी उसमे और यहाँ की विदाई के इस समारोह मे अधिक फरक न दिखने पर भी बडी रानीजी को इस बात का पता नही लग सका कि आत्मीयता मे कौन बडा, कौन कम है। परन्तु अज्ञातवास की अवधि मे हेग्गडे परिवार ने जो व्यवहार किया था, वही इस क्षणिक भावावेश का कारण था। वे उस रात बहुत ही आत्मीय भावना से युवरानी एचलदेवी को छाती से लगाकर कहने लगी, "दीदी दीदी दीदी आज मुझे कितना सन्तोष हो रहा है, कहने को मेरे पास शब्द नही। आनन्द से मेरा गला इतना भर आया है कि बात निकल ही नही पा रही है। आपको छोडकर जाने का भारी दु ख है हृदय मे। आनन्द और दु:ख के इस मिलन मे मै अपना स्थान-मान भूल गयी हूँ। मेरे हृदय मे एकमात्र मानवीयता का भाव रह गया है, इसीलिए मेरे मन से अनजाने ही सम्बोधन निकल गया, दीदी। यहाँ आये कई महीने हुए, कभी ऐसा सम्बोधन नही निकला। मेरे मन मे हेग्गडती और तुम्हारे द्वारा प्रदर्शित आत्मीयताओ की तुलना की प्रक्रिया घुमड रही है। यह मानसिक प्रक्रिया, ठीक है या नही, ऐसी प्रक्रिया ही क्यो मन मे हुई, इन प्रश्नो का उत्तर मैं नही दे सकती। यह प्रक्रिया मेरे मन मे चली है, यह कहने मे मुझे कुछ भी सकोच नही। हस्ती-हैसियत को भूलकर आपको और भाभी माचिकब्बे को जब देखती हूँ तो मुझे सचमुच यह मालूम ही नही पडता है कि कौन ज्यादा है और कौन कम है। आप दोनो मे जो मानवीयता के भाव है उनसे मै अत्यधिक प्रभावित हुई हूँ। इस दृष्टि से मेरा मन रत्ती-भर ज़्यादा भाभी की ओर हो जाये, तो आश्चर्य की बात नही। उन्हे भाभी कहते हुए सकोच होता है। आपको दीदी कहते हुए मुझे सकोच नही होता। सामाजिक दृष्टि से आप दोनो मे बहुत अन्तर है। मैं भी ऐसे ही स्थान पर बैठी हूँ। फिर भी आप दोनो की देख-रेख मे रहकर आप लोगो की गोद की बच्ची-सी बन गयी हूँ।"

भावना के इस प्रवाह मे महारानीजी की एक चिर-सचित अभिलाषा की धारा भी जुडने को मचल उठी, "मेरी प्रत्येक इच्छा मेरे पाणिग्रहण करनेवाले चक्रवर्ती पूर्ण करेगे। किन्तु उनसे भी पूर्ण न हो सकनेवाली एक इच्छा मेरे मन मे है, उसे मै आपसे निवेदन कर रही हूँ। लौकिक व्यवहार की दृष्टि से इस निवेदन का मुझे कोई अधिकार नही, लेकिन प्रसगवशात् जो नया दृष्टिकोण मेरे मन मे उत्पन्न हुआ है, आप चाहेगी तो यह निवेदन मैं युवराज से भी कर दूँगी और महाराज से भी। बात यह है कि आप शान्तला को अपनी दूसरी बहू बना ले।"

"मेरे ही अन्तरग की भावना आपने भी व्यक्त की है। परन्तु इसका निर्णय मुझ अकेली के हाथ मे नही है। प्रभुजी अब विवाह की बात उठाते ही नही। महा-दण्डनायक से भी स्पष्ट कह दिया है।"

"क्या यह कहा कि यह नही होगा ?"

"वैसा तो नही, पर यह कहा है कि अप्पाजी के विवाह की बात पर तीन वर्ष तक विचार ही नही करेगे। ऐसी हालत मे छोटे अप्पाजी के विवाह की बात वे सुनेंगे ही नही।"

"ऐसा हो तो दण्डनायक की पत्नी की आशा पर तो पानी फिर गया।"

"वह उन्हे चुप नही रहने देगी।"

"इस सम्बन्ध मे आपके अपने विचार क्या है ?"

"अपना ही निर्णय करना हो तो मुझे यह स्वीकार्य नही।"

"क्यो ?"

"वह लडकी जिस रीति से बढी है उससे वह महारानी बनने लायक नही हो जाती। मगर अप्पाजी का झुकाव उधर हो गया हो तो मेरी स्वतन्त्रता बेमानी है।"

"प्रभुजी की क्या राय है ?"

"उनका मत मेरे पक्ष से भी ज्यादा कडुआ है।"

"तो मतलब यह है कि आप लोगो का यह मत पीछे चलकर अप्पाजी के लिए मनोवेदना का कारण बनेगा।"

"हमने निश्चय कर लिया है कि हम ऐसा मौका नही आने देगे। मनोवेदना के बिना ही यदि यह सम्बन्ध छूट जाये तो हमे खुशी होगी क्योकि अपने भविष्य पर विवेचनापूर्ण ढग से शिक्षण के फलस्वरूप भविष्य का निर्णय स्वय कर लेने के स्वातन्त्र्य से वचित रखना उचित नही।"

"ये तीन वर्ष के बाद की बाते जरूर है परन्तु छोटे अप्पाजी के सम्बन्ध मे मेरी यह राय आपके अन्तरग के विचार की विरोधी नहीं लगती।"

"राज-परिवार पर निष्ठा रखनेवाले प्रमुख व्यक्ति कल रोक रखने का प्रयत्न भी कर सकते है, या ऐसी प्रेरणा देने का प्रयत्न तो कर ही सकते है। इसलिए अभी मैं कुछ नही कह सकूँगी। अर्हन्तदेव से प्रार्थना है कि मेरी यह मनोभावना सफल हो।"

"दीदी, आपकी आशा अवश्य सफल होगी क्योकि मेरा मन कहता है यह सम्बन्ध पोय्सल वश की वृद्धि और कीर्ति के लिए एक विशेष सयोग होकर रहेगा। छोटे अप्पाजी ने इस सम्बन्ध मे कुछ कहा है ?"

"इस दृष्टि से मैंने उससे बात ही नही की। अभी से बात करना ठीक नही, यह मेरा मन्तव्य है।"

"चाहे जो भी हो, यह तो ऐसा ही होना चाहिए। यह मेरी हार्दिक आशा है।"

"इसे सम्पन्न होने मे कोई अडचन पैदा न हो, यही मैं भी चाहती हूँ।"

"तो इस बात का निवेदन युवराज और महाराज से करने के बारे मे ।"

"अभी नही।" युवरानी एचलदेवी ने बीच मे ही कहा। फिर कुछ सोचकर बोली, "रेविमय्या ने बलिपुर से लौटने के बाद कुछ कहा होगा ?" इस प्रश्न ने इस विचार का रूप बदल दिया। "कुछ नयी बात तो नही कही न ? बिट्टिदेव के समस्त जीवन मे शान्तला व्याप्त हो गयी है। उसे कोई भी बहाना, कैसा भी सही, मिले, वह उसके बारे मे कोई अच्छी बात कहे बिना न रहेगा। परन्तु अब मैंने ध्यानपूर्वक देखा है, उसने जैसे यह निश्चय कर लिया है कि कही भी शान्तला के बारे मे एक शब्द भी नही कहेगा। मेरा यह प्रस्ताव कार्यरूप मे परिणत होगा तब इस ससार मे उससे अधिक सन्तोष किसी को नही होगा। मेरी निश्चित धारणा है कि इस पोय्सल वश ने अपूर्व मानवो का सग्रह कर रखा है। चालुक्यो के यहाँ भी ऐसे ही लोगो का सग्रह होना चाहिए। इसके लिए हम चुननेवालो मे खुले दिल से सबसे मिल सकने की क्षमता होनी चाहिए। अब हमारे साथ आनेवाली इस गालब्बे और लेक की मदद इस दिशा मे मिलेगी, यह आशा है। दीदी, मैं अब नयी मानवी बनकर यहाँ से लौट रही हूँ। हमेशा आपका यह प्रेम बना रहे, मुझे आशीर्वाद दे।" कहती हुई महारानी चन्दलदेवी ने युवरानी एचलदेवी के हाथ अपने हाथो मे ले लिये।

"आप हमेशा सुखी ही रहे, यही हमारी आशा-अभिलाषा है। यहाँ प्राप्त यह नया अनुभव चालुक्य प्रजा-जन को मानवीय आदर्शों पर चलने मे पथ-प्रदर्शन करे। हम फिर मिल सके या न मिल सके परन्तु हममे प्रस्फुटित यह आत्मीयता सदा ऐसी ही बनी रहे। भेदभाव और स्थान-मान की भावना इसे छुए तक नही।" कहकर उन्हे बाहुपाश मे लेकर एचलदेवी सिर सूँघकर उस पर हाथ फेरती रही।

कन्नड राज-भगिनियो के इस सगम का दृश्य कर्नाटक की भावी भव्यता का प्रतीक बनकर शोभा दे रहा था।

मरियाने दण्डनायक ने कवि नागचन्द्र को बुलाकर उनसे बडी आत्मीयता के साथ बात की। इस अवसर पर डाकरस दण्डनायक भी साथ रहे, यह अच्छा हुआ, क्योकि कवि नागचन्द्र ने युवरानीजी से जो बातें कही थी उनका मूल आधार डाकरस ही थे। दण्डनायक अपने को बचाने के लिए इन बातो से इनकार कर देते

तो नागचन्द्र की स्थिति बडी विचित्र बन जाती। कविजी की स्थिति सन्दिग्धावस्था मे पडी थी। डाकरस भी अपनी सौतेली माँ की बातो के कारण दुःखी था। इसलिए उसने कहा, "राजघराने के अपार विश्वास के पात्र हम उस विश्वास की रक्षा करने मे यदि अब भी तत्पर हो जायें तो हम कृतार्थ होंगे, इसके विपरीत व्यवहार-ज्ञान से शून्य और अपना बडप्पन दिखानेवाली औरतो की बातो पर नाचने लगे तो हम जिसका नमक खा रहे हैं उसी को धोखा देंगे।" निडर होकर बिना किसी सकोच के अपने पिता के समक्ष खरी-खोटी सुनाकर डाकरस ने यह भी कह दिया कि उनके व्यवहार को देखने पर उनकी दूसरी पत्नी प्रधान गगराज की बहन है, यह विश्वास ही नही होता।

प्रधानजी के मना करने पर भी पत्नी की बात मानकर विवाह-सम्बन्ध विचार के लिए वह आया था। यहाँ की हालत का अनुभव होने के बाद दण्डनायक ने तात्कालिक रूप से यह निर्णय भी कर लिया था कि आइन्दा इस तरह पत्नी की बातो मे आकर कोई कार्य नही करेगा। उसके पुत्र डाकरस पर युवराज का विश्वास है, इतना सन्तोष उसे अवश्य था। कुल मिलाकर यही कहना पडेगा कि अबकी बार दण्डनायक मरियाने का इस यात्रा पर निकलने का मुहूर्त अच्छा नही था।

शिक्षण की सारी व्यवस्था देखकर दण्डनायक ने व्यूह-रचना के सम्बन्ध मे आवश्यक सलाह दी, "योद्धा तो मृत्यु का सामना करते ही हैं लेकिन युद्ध-कला से अपरिचित नागरिको को शत्रुओ के अचानक हमले से सुरक्षित रखने के लिए हर गाँव और कसबे मे आरक्षण व्यवस्था के लिए मजबूत घेरा और जगह-जगह बुर्ज बनाना आवश्यक है। घेरे के चारो ओर पेड-पौधे लगाना आवश्यक है ताकि शत्रुओ को इस बात का पता भी न लगे कि इसके अन्दर भी लोग आरक्षित है।" ऐसी ही एक-दो नही अनेक बातें समझायी और अनेक उपयुक्त सलाहे दी उन्होंने।

दोनो राजकुमारो की प्रगति देखकर वास्तव मे उन्हे आश्चर्य हुआ। खासकर बल्लाल की प्रगति तो कल्पनातीत थी। ऐसी बुद्धिमत्ता और पौरुष उसमे हो सकता है, यह उनकी समझ मे ही आया था। दण्डनायक को गर्व का अनुभव भी हुआ, आखिर कभी तो वे उसके दामाद होंगे। यह हो ही नही सकता, ऐसा तो युवराज ने नहीं कहा था। प्रतीक्षा उसके उत्तरदायित्व पर छोड रखी है और उसने भी प्रतीक्षा करने का निर्णय कर लिया है। इसलिए बडी रानी के साथ प्रस्थान करने के पहले उसने डाकरस से इस विवाह के बारे मे राजकुमार का अभिमत जानकर सूचित करने को भी कहा जिसने कुछ न कहकर सिर्फ सिर हिला दिया।

कार्य समाप्त करके मरियाने बडी रानी के साथ दोरसमुद्र पहुँच गया। ख ु द चिण्णम दण्डनायक की देख-रेख मे चालुक्य बडी रानी अब अपने निज रूप मे थी। साथ मे हिरियचलिके नायक, गालब्बे और लेंक भी थे।

वास्तव मे वे रेविमय्या को अपने साथ ले जाना चाहती थी, लेकिन बिट्टिदेव के भविष्य का रक्षक और एक तरह से अगरक्षक होने से वह न जा सका। युवराज, युवरानी और राजकुमारो से विदा लेते समय उन्हे मानसिक वेदना हुई थी लेकिन उससे तीव्र वेदना रेविमय्या से विदा लेते वक्त हुई थी। ऐसा क्यो हुआ, यह उनकी समझ मे नही आया। उनके सारे काम वास्तव मे गालब्बे और लेक ने ही किये परन्तु रेविमय्या के प्रति बडी रानी के दिल मे उनसे भी बढकर एक विशिष्ट तरह का अपनापन उत्पन्न हो गया था। उस दिन बलिपुर मे शान्तला ने 'फूफी वह भी ऐसा ही है जैसी आप है।' कहते हुए रेविमय्या के बारे मे जो बाते बतायी थी, उनसे उसके प्रति उनके दिल मे एक तरह की व्यक्तिगत सद्भावना अव्यक्त रूप से पनपने लगी थी। यहाँ आने पर युवरानी और युवराज के उससे व्यवहार की रीति तथा अपनी विनयशीलता आदि के कारण भी वह बडी रानीजी का प्रीतिभाजन बना। इसके साथ एक और बात थी कि जो कुछ शान्तला के लिए प्रीतिभाजन था वह उन्हे अपना भी प्रीतिभाजन लगा था। उनके मन मे यह विचार आया कि शान्तला की, एक छोटी अप्रबुद्ध कन्या की, इच्छा-अनिच्छाओ का इतना गहरा प्रभाव मुझपर, एक प्रबुद्ध प्रौढा पर पडा है, जिससे प्रतीत होता है कि मानव की बुद्धि के लिए अगोचर प्रेम की कोई श्रृखला अवश्य है जो मुझे अपनी ओर खीच-कर झकझोर रही है।

बलिपुर का दो दिन का मुकाम उन्हे दो क्षण का-सा लगा। बूतुग चकित होकर दूर खडा रहा। बडी रानी ने चिर-परिचित-सी उससे कहा, "अरे, इधर आ, क्यो डरा-डरा इतनी दूर खडा है? क्या तुझे मालूम नही कि मै कौन हूँ?"

"ऐसा भी हो सकता है, माँ? आपको देखते ही मेरी जीभ जकड गयी। इस नालायक जीभ का दुरुपयोग कर मैने महापाप किया। मुझे यह कीडा-भरी जीभ भूलने देगी।"

उसकी बगल मे रायण खडा था। उसने धीरे से फुसफुसाकर कहा " रे बूतुग, वे कौन है, जानते हो? वे चालुक्य महारानी है, सन्निधान कहो, माँ-वाँ नही।"

"ऐ, छोडो भी, हमे वह सब मालूम नही। प्रेम से माँ कहने से जो सन्तोष और सुख मिलता है वह कष्ट उठाकर सन्निधान कहने पर नही मिल सकेगा। चाहे वे कुछ भी समझ ले, हम तो माँ ही कहेगे। अगर गलत हो तो क्षमा करनी होगी माँ।"

"तुम्हे जैसा आसान लगे वैसा ही पुकारो, बूतुग। परन्तु एक बात सुनो, वह पुरानी घटना भूल जाओ। वह अब मन मे नही रहना चाहिए। आगे से अपनी जीभ को कीडा मत बोला करो, समझे?"

"हाँ, समझा, माँ।"

"तुमने शादी कर ली?"

"मुझे यह बन्धन ठीक नहीं लगता। ऐसे ही किसी जकड-बन्द के बिना रहकर मालिक की सेवा करता हुआ जीवन खतम कर दूँगा।"

"गालब्बे और लेंक यह सोच रहे हैं कि दासब्बे के साथ तुम्हारी शादी कर दे।"

"हाँ, हाँ, यह बूतुग के लिए एक दिल्लगी की चीज बन गया है। बेवकूफ समझकर सब हँसी उडाते हैं। बबूल के पेड जैसा मेरा रग, अडतुल के फूल जैसी पीली वह दासब्बे, ऐसी कोमल और सुन्दर। उमे मुझ-जैसे के साथ शादी करने देगा कोई ?"

"तुम हाँ कहो तो तुम्हारी शादी कराकर ही मैं कल्याण जाऊँगी।"

बूतुग सिर झुकाये खडा रहा। दिल्लगी की बात सचमुच मगलवाद्य-घोष के साथ सम्पन्न हो गयी। उस नयी जोडी को आशीष देकर, बलिपुर छोडने की अनिच्छा होते हुए भी, अपने अज्ञातवास के समय किसी-न-किसी कारण से जिन-जिनसे सम्पर्क हुआ था उन सबका वस्त्र आदि से सत्कार कर विदा हुई। "महारानी मां कर्ण जैसी सन्तति की माँ बनकर चालुक्य वश को शोभित करें" बलिपुर के सभी लोगो ने ऐसी प्रार्थना की। बलिपुर की बाहरी सीमा तक जाकर हेग्गडे-हेग्गडती, शान्तला, रायण, ग्वालिन त्यारप्पा, बूतुग, दासब्बे आदि ने मगलवाद्य-घोष के साथ विदाई दी। बडी रानीजी की विदाई मे सारे-का-सारा बलिपुर शामिल हो गया था। अश्व-चालित रथ थोडी ही देर में आँखो से ओझल हो गया।

बूतुग और दासब्बे ने अपने हाथ मे बँधा ककण देखा और देखी वह लाल-लाल धूल जो धुनर्धारी सेना के चलने से उठ रही थी। हम कहाँ, चालुक्य साम्राज्ञी कहाँ ? कहाँ राजा भोज और कहाँ गगू तेली ? इस विवाह की प्रेरक-शक्ति वे कैसे बन गयी ? पहले यदि किसी ने यह सोचा होता तो वह हास्यास्पद बनता।

पोय्सल राजकुमारो के साथ उदयादित्य भी अब शिक्षण पाने लगा था। कवि नागचन्द्र से ज्ञानार्जन, डाकरस दण्डनायक से सैनिक-शिक्षण, हेम्माडी अरस की सिफारिश पर दृष्टिभेदी धनुर्धारी की उपाधि से भूषित बैजरस से धनुर्विद्या का शिक्षण वेलापुर के शान्त वातावरण में चल रहा था।

बल्लाल कुमार को अपने शिक्षण के कार्यक्रमो में मग्न रहने के कारण पद्मला का स्मरण तक नही आया। कल पोय्सल सिहासन पर बैठनेवाले राजा को उस सिंहासन पर बैठने योग्य शिक्षण भी पाना ही चाहिए। उसे यह पछतावा था कि

अब एक साल से जिस श्रद्धा और निष्ठा से ज्ञानार्जन किया वही श्रद्धा और निष्ठा उन गुजरे सालो मे भी हुई होती तो कितना अच्छा होता। कितना समय फिजूल गया। एक समय था कि उसके माता-पिता एव गुरु भी इसके विषय मे बहुत चिन्ताग्रस्त हो गये थे। परन्तु अब वे बहुत खुश थे। इस वजह से वेलापुर के राजमहल मे एक नवीन उत्साह झलक रहा था।

यहाँ दोरसमुद्र मे महादण्डनायक के घर मे निरुत्साह और मनहूसी छा गयी थी। बडी रानीजी का कार्यक्रम दोरसमुद्र मे महाराज से मिलकर आशीर्वाद लेने तक ही सीमित था। इसके बाद उनकी कल्याण की तरफ यात्रा थी। तब से जो मनोवेदना शुरू हुई वह क्रमश बढ़ती गयी। वेलापुरी मे जो बातचीत हुई थी उसका विस्तार के साथ बयान करने के साथ-साथ दण्डनायक ने अपनी प्यारी पत्नी को खूब झिडका। पति असमर्थ होता है तो पत्नी पर गुस्सा उतारता है परन्तु भाई अपनी बहिन पर ऐसा नही कर सकता, यह सोचकर चामव्वा ने भाई प्रधान गगराज को अपनी रामकहानी कह सुनायी। उसे मालूम नही था कि उसके पतिदेव ने पहले ही सब बाते उनमे कह दी हैं। जो भी हो, भाई से झिडकियाँ तो नही पर उपदेश अवश्य मिला, "अपनी लडकी को महारानी बनाने के लिए तुम्हे तीन-चार वर्ष तपस्या करनी होगी। तब तक तुम्हे मुँह पर ताला लगाकर गम्भीर होकर प्रतीक्षा करनी होगी। तुम औरतो को अपनी होशियारी का प्रदर्शन और प्रयोग का बहिष्कार करना पडेगा पूरी तौर से। यदि मेरे कहे अनुसार रहोगी तो तुम्हारी आशा को सफल बनाने मे मेरी मदद रहेगी। एक बात और याद रखो। प्रेम से लोगो को जीतना, अधिकार दिखाकर जीतने मे आसान है।"

"आपकी बात मेरे लिए लक्ष्मण रेखा बनकर रहेगी।" भाई को वचन देकर वह घर लौट आयी।

शिक्षण मे जितना उत्साह चामला का था उतना पद्मला का नही। इसका कारण न हो, ऐसी बात नही थी। पिता जब से वेलापुर गये उसका यह निश्चित विचार था कि दण्डनायक मुहूर्त निश्चित करके ही लौटेंगे, परन्तु उनके लौटने पर यह बात ही नही उठी। स्वय जानना चाहे तो पूछे भी कैसे। शर्म भी है, जानने की इच्छा भी। बहिन चामला को फुसलाकर जानने की कोशिश भी की, परन्तु सफल नही हुई।

माँ से कुछ भी जानकारी न मिलने पर चामला ने ढीठ होकर पिताजी से ही पूछ लिया। उन्होंने कहा, "समय आने पर सब होता है। हम जल्दबाजी करेंगे तो चलेगा नही। इतना ही नही, शादियाँ हमारी इच्छा के अनुसार तो नही होती। भगवान् ने किस लडके के साथ किस लडकी की जोडी बना रखी है, कौन जाने। तुम लोग अपने अध्ययन की ओर ध्यान दो। एक बार एक महात्मा ने कहा था, हम यदि खोजने निकलें तो वह दूर भागता है, हम विमुख हो जायें तो वही हमे

खोजता आयेगा।" चामला का कोई स्वार्थ नही था अत उसे निराशा नही हुई। वास्तव मे बिट्टिदेव के कारण उसकी लगन अध्ययन और ज्ञानार्जन की ओर बढ गयी थी। वोप्पि अभी-अभी पढाई मे लगी थी।

उधर बलिपुर मे शान्तला प्रगति के पथ पर थी। अभी-अभी उसने शिल्प-शास्त्र सीखना शुरू किया था। इसके लिए वह सप्ताह मे एक बार बलिपुर के महाशिल्पी दासोज के घर जाया करती। बोकमय्या, शिल्पी गगाचारी और दासोज की ज्ञानत्रिवेणी मे शान्तला नित्यप्रति निखर रही थी।

बडी रानी चन्दलदेवी के साथ रहकर भी शान्तला ने अनेक बाते सीखी थी। इधर कुछ महीनो मे वह कुछ बढी लग रही थी। पिता हेग्गडे मारसिगय्या ने जो लकीर बनायी थी उस तक वह करीब-करीब पहुँच गयी थी। निर्णीत समय से कुछ पहले ही शस्त्र-विद्या का शिक्षण शुरू हो गया। खुद सिंगिमय्या को हेग्गडे मार-सिगिमय्या ने यह काम सौपा था।

परन्तु बलिपुर के जीवन म थोडा-सा परिवर्तन दिख रहा था। अब हेग्गडे दम्पती और उनकी पुत्री पर विशेष गौरव के भाव व्याप्त थे। वह गौरव भावना पहले भी रही, परन्तु अब उन्हे राज-गौरव प्राप्त होता था। चालुक्य साम्राज्ञी उनके यहाँ कई महीने अतिथि बनकर रही। स्वय पोय्सल युवराज यहाँ मुकाम कर चुके थे। लोगो को यह सारा विषय मालूम था और वे इस पर गर्व भी करते थे।

बूतुग को अब गाँव के बाहर के पीपल की जगत पर बैठकर गूलर के फल अजीर समझकर खाने की फुरसत नही मिल रही थी। अनेक बार हेग्गडेजी अपने प्रवास मे उसे साथ ले जाया करते। बूतुग की मान्यता थी कि दासब्बे उसके लिए एक अलभ्य लाभ है। दासब्बे के प्रति उसके प्रेम का फल मिलने के आसार दिखने लगे थे।

दासब्बे को देखकर ग्वालिन मल्लि को ईर्ष्या न हो, पर यह चिन्ता जरूर हो रही कि भगवान् ने मुझपर कृपा क्यो नही की। इस विषय पर पति-पत्नी मे जब बाते होती तो त्यारप्पा पत्नी से कहता, "कितनी ही स्त्रियाँ शादी के पन्द्रह वर्ष बाद भी गर्भवती होती हैं, ऐसा क्यो नही सोचती।' मल्लि कहती, "किये गये पाप कर्मों का फल भोगना है न ? उस पुनीता माता को खतम करने के लिए हाथ आगे बढाया था न ? इस पाप को भोगोगे नही तो क्या करोगे। वह डक तो मारती, फिर भी आपस मे कटुता को मौका नही देती थी।"

इधर साम्राज्ञी चन्दलदेवीजी को कल्याण सुरक्षित पहुँचाकर चिण्णम दण्ड-नायक और चलिकेनायक तो लौट आये, परन्तु गालब्बे और लेक वही रह गये। उन्हे प्रतिदिन बलिपुर की याद हो आती, प्रार्थना करते, हे ईश्वर कृपा करो कि शान्तला-बिट्टिदेव का विवाह हो।

युव सवत्सर बीता, धातृ सवत्सर का आरम्भ हुआ। युवराज एरेयग प्रभु के

द्वितीय पुत्र का उपनयन निश्चित हुआ। सब जगह आमन्त्रण पत्र भेजे गये। उपनयन का समारम्भ दोरसमुद्र मे ही होनेवाला था, इसलिए इन्तज़ाम की सारी जिम्मेदारी मरियाने दण्डनायक पर ही थी। किस-किसको आमन्त्रण भेजना है इसकी सूची तैयार की जा चुकी थी। यह सूची उसने अपनी पत्नी को दिखायी, यद्यपि इधर कुछ समय से वह राजमहल की बातो का जिक्र उससे करता न था।

उसने सारी सूची देखी और पढी तो वह गरजने लगी, "बलिपुर के हेग्गडे, हेग्गडती और वह सरस्वती का अवतार उनकी लडकी नही आयेंगे तो छोटे राजकुमार का उपनयन होगा ? उन्हे नही बुलायेंगे तो प्रभु और युवरानीजी आपको खा नही जायेंगे ? ऐसा क्यो किया ?"

"हाय, हाय, कही छूट गया होगा। अच्छा हुआ, सूची तुम्हे दिखा ली। उनका नाम जोडकर दूसरी सूची तैयार करूँगा।"

"आँखो को चुभे नही, ऐसा जोडिए, पहले नाम न लिखे। सूची के बीच मे कही जोड दे।"

"अच्छी सलाह है।"

युवराज ने सूची देखी। "ठीक है दण्डनायकजी, अनिवार्य रूप से जिन-जिन को आना चाहिए उन सभी की सूची ध्यान से तैयार की गयी है। इन सबके पास सभी को मेरे हस्त-मुद्रांकित आमन्त्रण-पत्र पहले भेजे जाये।"

"जो आज्ञा।"

प्रभु द्वारा हस्तमुद्रांकित आमन्त्रण पत्रो का दुबारा मिलान मरियाने ने पत्नी के साथ किया। उन्हे मन्त्रणालय के द्वारा वितरण करने के लिए भेज दिया।

उपनयन का शुभ मुहूर्त शक सवत् 1018, धातृ सवत्सर उत्तरायण, ग्रीष्म ऋतु ज्येष्ठ मास के शुक्ल पचमी बृहस्पतिवार को जब गुरु-चन्द्र कर्कटक मे शुभ नवाश मे थे, तब पुनर्वसु नक्षत्र मे कर्कटक लग्न मे निश्चित था। इस लग्न के लाभस्थान मे रवि के रहने से माता-पिता के प्राण स्वरूपचन्द्र, रवि और गुरु की शुभस्थिति को मुख्यता गणना कर उपनयन का मुहूर्त निश्चित किया गया था।

चैत के अन्त तक सभी के पास आमन्त्रण पत्र पहुँच गये। बुद्ध पूर्णिमा के बाद युवराज-परिवार की सवारी वेलापुरी से दोरसमुद्र के लिए रवाना हुई। इन आठ-दस महीनो मे वे चार-छह बार वेलापुरी आ चुके थे। मरियाने भी दो-तीन बार वहाँ गया था। युवराज एरेयग प्रभु ने मानो दूसरे ही मरियाने को देखा था, जिससे एरेयग प्रभु निश्चिन्त-से थे।

खुद मरियाने से यह सुनकर कि चामव्वे ने ही भूल की ओर ध्यान आकर्षित करके हेग्गडेजी मारसिंगय्या का नाम लिखाया, युवरानी ने समझा कि अब दण्डनायक दम्पती ने हमारी इच्छा-अनिच्छाओ को समझने की कोशिश की है। हमारी

कृपा चाहनेवाले वे हमारे मन को दुखाने का काम अब नहीं करेंगे, ऐसी उनकी धारणा बनी।

जेठ का महीना आया। आमन्त्रित एक-एक कर दोरसमुद्र पहुँचने लगे। अबकी बार भी राजमहल मे किसी को नही ठहराया गया। सोसेऊरु की ही तरह किसी तारतम्य के बिना सबको अलग-अलग ठहरने की व्यवस्था की गयी थी। युवरानी एचलदेवी से चामव्वे ने पूछा, "हेग्गडतीजी के ठहरने की व्यवस्था राजमहल मे ही की जानी चाहिए न?"

"क्या उनके सीग हैं? किसी भी अतिथि के लिए राजमहल मे स्थान की व्यवस्था न रहेगी। ऐसे समय इस तरह का भेदभाव उचित नही।" युवरानी ने स्पष्ट कहा।

उसके दिमाग मे युवरानी के 'क्या उनके सीग है' शब्द मँडरा रहे थे। युवरानीजी के मुँह ऐसी बात, सो भी उसके बारे मे जिसपर उनका अपार प्रेम और विश्वास है? इस पर चामव्वे बहुत खुश हुई। उसने सोचा हेग्गडती का रहस्य खुल गया है। अच्छा हुआ। उसे युवरानीजी का मन तपाया हुआ सोना लगा जिसे जब वह गरम है तभी अपनी इच्छा के अनुरूप रूपित कर देना चाहिए। इसी उत्साह से वह फूल उठी। उसकी आन्तरिक धारणा थी कि राज-परिवार की सेवा करनेवाले या उसपर इतनी निष्ठा रखनेवाले उससे अधिक कोई नहीं। वह कब खाती, कब विश्राम लेती किसी को पता नही लगता। वह इस तरह कामो मे जुट गयी कि जो अतिथि आये थे उन सभी के मनो मे दण्डनायिका-ही-दण्डनायिका व्याप गयी, इसमे कोई शक नही।

तृतीया की शाम तक करीब-करीब सभी आहूत अतिथि पहुँच चुके थे। परन्तु यह बहुत आश्चर्य की बात थी कि बलिपुर के हेग्गडे का कही पता नही था। सबसे पहले जिन लोगो को आना चाहिए था उन्हीके अब तक न आने से बेचारी युवरानी परेशान थी। इस बार युवरानी ने दण्डनायक से सीधा प्रश्न नहीं करके उसे चकित किया। अलबत्ता दण्डनायक ने उससे यह प्रश्न उठाया चौथ के दिन दोपहर को। युवरानी और युवराज ने इसपर विचार किया। उनके पास आमन्त्रण पत्र कौन ले गया था, क्यो नही पहुँचा, इसका पता लगाकर सही जानकारी देने का युवराज ने आदेश दिया था मरियाने को। वह सोच मे पड़ गया, यह हेग्गडे अगर आ न सकता तो पत्र लिखकर सूचित करता। मन्त्रणालय मे

तहकीकात से मालूम हुआ कि हेग्गडे के पास आमन्त्रण गया ही नही। किससे ऐसा हुआ, इसका पता शाम तक लगाने का आदेश मन्त्रणालय के कर्मचारियो को दिया। मरियाने ने और ऐसे व्यक्ति को उग्र दण्ड की धमकी दी।

पति से यह सब सुनकर चामव्वे घबडा गयी, "मैंने खुद इसपर ध्यान देकर सब देखा-भाला, फिर भी ऐसा क्यो हुआ, इसमे किन्ही विरोधियो का हाथ है फिर भी यह अपराध हम ही पर लगेगा क्योकि सब जिम्मेदारी हमपर है। आपके मन्त्रणालय मे कोई ऐसे है जो आपसे द्वेष-भावना रखते हो?"

अब युवराज को क्या कहकर समझाऊँ, इसी चिन्ता मे मरियाने घुल रहा था कि नौकरानी सावला आयी और बोली, "मन्त्रणालय के अधीक्षक दाममय्या मिलने आये है, और वे जल्दी मे है।"

मरियाने बाहर के प्रागण मे आया तो दाममय्या ने कहा, "आदेश के अनुसार सारा शोध किया गया। आपने कितने निमन्त्रण पत्र दिये, इसका हिसाब मैने पहले गिनकर लिख रहा था। वितरित आमन्त्रण पत्रो की सख्या और मेरा हिसाब दोनो बराबर मेल खाते हैं। इससे लगता है कि बलिपुर के हेग्गडे का आमन्त्रण पत्र हमारे पास आया ही नही।"

"तो क्या उस आमन्त्रण पत्र को मैं निगल गया?"

"मैने यह नही कहा, इतना ही निवेदन किया कि जो आमन्त्रण पत्र मुझे वितरण के लिए दिये गये, उनका ठीक वितरण हुआ है।"

"तो वह आमन्त्रण पत्र गया कहाँ जिसे बलिपुर के हेग्गडे के पास भेजना था?"

"आपके युवराज के पास से आने और पत्रो के मन्त्रणालय मे पहुँचने के बीच कुछ हो गया हो सकता है।"

"आमन्त्रण पत्रो का पुलिन्दा मेरे साथ ही मेरे घर आया। वहाँ से सीधा मन्त्रणालय मे भेज दिया गया। तब आपके कहे अनुसार हमारे ही घर मे कुछ गडबडी हो गयी है। यही समझूँ?"

"यह कहनेवाला मै कौन होता हूँ? मै तो इतना ही कह सकता हूँ कि जो कार्यभार मुझे सौपा गया उसे मैंने अपने मातहत कर्मचारियो के द्वारा सम्पन्न किया है। निष्ठा के साथ। उसमे कही कोई गलती नही हुई, इतना सत्य है।"

"युवराज के सामने आप ऐसा कहेगे?"

"सत्य कहने से डरना क्यो?"

"आपके कहने के ढग से ऐसा मालूम होता है कि इसमे आपका ही हाथ होगा। और मुझे युवराज से यही विनती करनी होगी।"

"मैने सत्य कहा है, फिर आपकी मर्जी। आज्ञा हो तो मै चलूँगा।" अधीक्षक दाममय्या ने कहा। उसे दुख हुआ कि सत्य बोलने पर भी उसपर शका की जा

रही है।

मरियाने के होठ फडक रहे थे। एक क्रोधपूर्ण दृष्टि डालकर कुछ बोले बिना वह अन्दर आ गया। बाहर के प्रागण मे जो बात हो रही थी उसे दरवाज़े की आड से चामब्वे सुन चुकी थी, बोली, "देखा, मैंने पहले ही कहा था ?"

"तो क्या मुझे तुमपर विश्वास नही करना चाहिए।" मरियाने कुछ कठोरता से पेश आया।

"क्या कहा ?"

"कुछ और नही, मैंने वही कहा जो उन्होने कहा। घर मे मिलान करते वक्त तुम भी साथ थी। इसलिए तुमको भी अब अविश्वास की दृष्टि से देखना पडेगा। दाममय्या ने असत्य कहा होता तो उसमे निडर होकर कहने का सामर्थ्य नही होता।"

"तो आपका मतलब है कि मैं ही उसका कारण हूँ।"

"मैं यह नही भी कहूँ पर युवराज के सामने वह ऐसा ही कहेगा। उसका फल क्या निकलेगा ? अब क्या करे।"

"जा आमन्त्रण पत्र ले गया था वह किसी दूसरे काम पर अन्यत्र गया है, ऐसा ही कुछ बहाना बनाकर इस मुश्किल से बचने का प्रयत्न करना होगा। आमन्त्रण पत्र के पहुँचने की सूचना तो मिली है, परन्तु बलिपुरवाले आये क्यो नही, इसका पता नही लगा है, किसी को भेजने का आदेश हो तो भेज दूँगा, ऐसा उनसे निवेदन करना अच्छा होगा। आमन्त्रण पत्र नही गया, यह बताना तो बडा खतरनाक है।" चामब्वे ने अपनी बुद्धि का प्रदर्शन किया।

"ठीक है, अब इस सन्दिग्धता से पार होने के लिए कुछ तो करना ही होगा। परन्तु अब भी यह पता नही लग रहा है कि वह आमन्त्रण पत्र कहाँ गया।"

"वह सब बाद मे सोचेंगे, फिलहाल तो इस विपदा से होशियारी से बचने की सोचें।"

"वह तो होना ही चाहिए।" कहते हुए मरियाने झटपट चल पडे।

दण्डनायिका फाटक तक उसके पीछे गयी, छाती पर हाथ रख झूले पर बैठी, "हे जिननाथ, अब इस सन्दिग्धावस्था से बचाकर किसी तरह उसके पति की आन बनाये रखे।"

नौकरानी सावला आयी और बोली, "राजमहल जाने का समय हो आया है। कौन साडी निकालकर रखूँ।" वह एकदम उठ खडी हुई और अपने कमरे की ओर भागती हुई बोली, "वाहन तैयार रखो, अभी दो क्षण मे आयी।" और वह दो क्षण मे ही तैयार होकर राजमहल की तरफ चल पडी।

उपनयन के मण्डप, यज्ञवेदी आदि को अलकृत करना था इसलिए वह उसी तरफ चली। वहाँ दोरसमुद्र के प्रसिद्ध रगवल्ली चित्रकार और दस-बारह वृद्ध

सुमगलियाँ उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उन्हे वह सलाह दे ही रही थी कि युवरानीजी उधर आयी। उसने रगवल्लीकार सुमगलियो से परिचय कराकर कहाँ किस तरह की रगोली बने इस पर उनकी सलाह माँगी।

युवरानी ने कहा, "वे सब सलाह के अनुसार सजा देगी। आप आइए।" और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वे अपने अन्त पुर की चन्द्रशाला मे पहुँची। दण्डनायिका के प्रवेश करते ही युवरानी ने बोम्मला से कहा, "तुम दरवाजा बन्द कर बाहर रहो, किसी को अन्दर न आने देना।"

दण्डनायिका बैठी नही। उसके दिल की धडकन तेजी से चल रही थी। युवरानी ने फिर कहा, "क्यो खडी हैं, बैठिए।" चामव्वे बैठी। उसके बैठने का ढग कुछ गैर-मामूली लग रहा था।

कुछ देर बाद युवरानी ने कहा, "दण्डनायिकाजी, लोगो के साथ आप सम्पर्क ज्यादा रखती है और अनुभवी भी कुछ ज्यादा है, इसलिए आपको कुछ आत्मीयता से बात करने के इरादे से बुला लायी।"

"कहला भेजती तो मैं खुद आ जाती, सन्निधान ने आने का कष्ट क्यो किया?"

"कुछ काम तो हमे स्वय करना चाहिए। अब यह बात रहने दीजिए। मुख्य विषय पर बात करें।"

"आदेश हो।"

"जिनपर हम पूर्ण विश्वास रखते है उन्ही से दु खदायक काम हो जाये तो क्या करना चाहिए?"

"ऐसा करनेवाले आगे अविश्वसनीय होगे।" चामव्वे ने कह तो दिया लेकिन तुरन्त कुछ सोचकर धीमे स्वर मे फिर बोली, "क्या जान सकती हूँ कि ऐसा क्या हुआ है।"

"वही कहने को आपको यहाँ बुलाया है। आपको तो मेरे मन का अच्छा परिचय भी है।"

"यह मेरा सौभाग्य है। युवरानीजी के हृदय की शुद्धता का परिचय किसे नही है?"

"यदि सचमुच ऐसा है तो लोग मुझे दु खी क्यो करने है।"

"ऐसा किसने किया यह मालूम होने पर उसे सही ढग से सीख दी जा सकती है। वास्तव मे हुआ क्या है, सो मुझे मालूम नही, बात की जानकारी हो तो······।"

"कहूँगी। सबसे गलती होती है। उसी को मन मे रखकर दु ख का अनुभव करते रहना मेरा स्वभाव नही। क्षमा करें। ऐसी बातो को भूलना ही मेरा स्वभाव है। मेरे स्पष्ट वचन सुनकर आपको व्यथित नही होना चाहिए।

आपने हमारे अप्पाजी के उपनयन के सन्दर्भ मे बलिपुर की हेग्गडती के साथ अच्छा व्यवहार नही किया था, परन्तु मैंने उसे भुला दिया था। आपने उन्हे न्यौता देकर बडे वात्सल्य से विदा किया, अच्छा हुआ। आमन्त्रितो की सूची मे उनका नाम छूट गया था, आपने स्मरण दिलाया, यह खबर मिली, तब मुझे बहुत खुशी हुई। राज्य सचालन-सूत्र से सम्बन्धित सभी लोगो मे भाईचारा रहे, इसकी आपने गवाही दी। परन्तु ऐसा प्रतीत फिर भी होता है कि आपके मन मे कुछ चुभन है कि युवरानी को बलिपुरवालो पर विशेष ममता है।"

"मैं तो ऐसा नही समझती।"

"अगर आप प्रमाण दे सकें कि आप ऐसा नही समझती तो मुझे खुशी है, यदि सचमुच ऐसा नही है तो उस एक परिवार के लिए राजमहल मे ठहराने की व्यवस्था करने की बात मुझसे क्यो पूछी? आपकी भावना थी कि इससे मुझे सन्तोष मिलेगा।"

"तब अप्पाजी के उपनयन के बाद उन्हे राज-परिवार के ही साथ ठहराया गया था इसलिए पूछा था, अन्यथा कुछ नही।"

"उस वक्त की बात अलग है, तब हमारे साथ दूसरे कोई अतिथि नही थे। राज-परिवार भेदभाव नही रखता। प्रधान पदो पर रहनेवालों को भी राज-परिवार के ही नीति-नियमो का पालन करना चाहिए। राजघराने की रीति एव परम्परा की रक्षा मुख्य अधिकारियो के द्वारा होनी चाहिए।"

"इसके विरुद्ध कोई बात हमसे हुई?"

"नही, नही हुई है। लेकिन असह्य भावनाओ के कारण अथवा किसी तरह के स्वार्थ की वजह से ऐसा हुआ भी हो सकता है।"

"अब तो ऐसी ही व्यवस्था हुई है।"

"किन-किनको कहाँ-कहाँ ठहराने की व्यवस्था की है, मुझे जानकारी है। आपके औचित्य-ज्ञान का भी मुझे परिचय है।"

"यह तो दण्डनायकजी का मार्गदर्शन है, उसमे मेरा क्या है?"

"सकोच क्यो, आप दोनो का दाम्पत्य जीवन अच्छा है, इसे क्या मैं नही जानती?"

"राज-परिवार मे यह धारणा है तो मैं धन्य हूँ।"

"राज-परिवार अपने सभी आत्मीयो के बारे मे सब बातो से परिचित रहता है। अबकी इस छोटे अप्पाजी के उपनयन की व्यवस्था आपने अच्छी तरह से की है। इसके लिए ····।"

"वह तो मेरा कर्तव्य है।"

"परन्तु एक बात न मेरी समझ मे आयी, न प्रभु की समझ मे।"

"कौन-सी बात?'

"आज चौथ है न ?"

"हाँ।"

"कल पचमी है।"

"हाँ।"

"कल ही है न छोटे अप्पाजी का उपनयन ?"

"हाँ, निर्णीत विषयो के बारे मे सन्निधान क्यो प्रश्न कर रही है, इसका पता नही लग रहा है ?"

"दण्डनायिकाजी, समझिये, कल आपकी लडकी की शादी हो और आपके आत्मीय ही किसी को आने मे षड्यन्त्र कर रोक दे तो आपको कैसा लगेगा ?"

"तो अब किसी ने ऐसा किया है ?"

"आपसे प्रश्न की प्रतीक्षा नही है। आप अपने को अनजान प्रदर्शित कर रही है इस समस्या मे।"

"तो क्या सन्निधान का मुझपर यह आरोप है कि मैं जानती हुई भी अनजान बन रही हूँ ?"

"आप पर आरोप लगाने से मुझे क्या लाभ ? उससे जो हैरानी हुई है वह दूर होनी चाहिए। जिन्हे बुलाया है क्या वे सब आये है ?"

"सब आये हैं, जो नही आ सके उनसे पत्र मिला है।"

"तो राज-परिवार जिन-जिनको आमन्त्रित करना चाहता था उन सबके पास आमन्त्रण पत्र पहुंचा है, है न ?"

"पहुँचा है। न पहुँचने का क्या कारण है ? अवश्य ही पहुँचा है।"

"तो बलिपुर के हेग्गडे या उनके परिवारवालो के न आने का क्या कारण है ? न आ सकने की सूचना आयी है ?"

"इसका क्या उत्तर दूँ यह मेरी अल्पमति को कुछ सूझ नही रहा है।"

"हमे लगता है कि आमन्त्रण पत्र नही पहुँचा है।"

"सन्निधान का मत सदा एक-सा रहता है, परिशुद्ध, अकल्मष, बुराई की ओर जाता ही नही। इसीलिए सन्निधान को एक ही कारण मालूम होता है कि पत्र पहुँचा नही, पहुँचा होता तो वे नाचते-कूदते पहुँच जाते। उनके न आने से सन्निधान को जैसा सूझता है, वही सही मालूम पडता है। न आने के दूसरे भी कारण हो सकते है।"

"इसी पर विचार के लिए आपको बुलाया है। मुझे तो कोई दूसरा कारण सूझता ही नही। आपकी सूक्ष्म-बुद्धि को कुछ सूझता हो तो बताइये।"

"अगर सन्निधान बुरा न मानें तो अपने विचार स्पष्ट कहूँगी।"

"मगलकार्य मन मे कडुवापन आये बिना ही सम्पन्न हो जाये, इसलिए बात स्पष्ट कह दें।"

"कुछ विस्तार के साथ विचार करना होगा।"

"कहिए।"

"हेग्गडती की लडकी बहुत होशियार है, इसमे दो मत नही हो सकते। राज-घराना उदार है, गुणैक-पक्षपाती है, इसलिए सन्निधान ने उसे सराहा। इसीसे उनका दिमाग फिर गया होगा।"

"क्या बात कहती है? कभी नही।"

"इसीलिए सन्निधान ने प्रेम से जो माला देनी चाही उसे इनकार किया उस छोटी ने। उसने जो बहाना बताया उसे भी सन्निधान ने स्वीकार किया। उस वक्त मैने भी सोचा शायद उसका कहना ठीक होगा। अब अपने बच्चो के गुरु से पूछा तो उन्होने बताया गुरु-दक्षिणा और प्रेम स दिये पुरस्कार मे कोई सम्बन्ध नही होता।"

"आपके बच्चो के गुरु उत्कल के है। वहाँ की ओर कर्नाटक की परम्पराओ मे भिन्नता हो सकती है।"

"बुरा न देखेगे, न सुनेंगे, न कहेगे, इस नीति पर चलनेवाली सन्निधान को किसी मे बुराई या वक्रता दिखेगी ही नही। अच्छा उसे जाने दें। सन्निधान के प्रेम-पात्र समझकर उन्हे मैंने अपने यहाँ विदाई का न्यौता दिया था न?"

"आपके प्रेम और औदार्य का वर्णन हेग्गडतीजी ने बहुत सुनाया था।"

"है न? फिर सन्निधान से यही बात किसी और ढग से कहती तो झिडकियाँ सुननी पडती वह इतना नही जानती? चालुक्य साम्राज्ञी को उसने अपने फन्दे मे फँसा लिया है। वह हेग्गडती कोई साधारण औरत थोडे ही है। हमने यथाशक्ति पीताम्बर का उपहार दिया तो उसे उसने आँख उठाकर देखा तक नही। हाथ मे लेकर बगल मे सरका दिया। कितना घमण्ड है उसे?"

"इस तरह के दोषारोपण के लिए आधारभूत कारण भी चाहिए।"

"इसके कारण भी अलग चाहिए। वह समझती थी कि अन्त पुर की अतिथि मानकर उसे युवरानी ने खुद स्वर्ण आभरण और चीनाम्बर देकर पुरस्कृत किया है। यह दण्डनायिका क्या दे सकती है?"

"मतलब यह कि जो गति आपके उस पुरस्कार की हुई वही अब प्रभु के आमन्त्रण पत्र की भी हुई है। यही न?"

"नही तो और क्या?"

"ऐसा करेगे तो प्रभु नही क्रुद्ध होगे, ऐसी उनकी भावना हो सकती है कि नही?"

"सन्निधान को फूंक मारकर वश मे कर ही लिया है, कोई बहाना करके बच निकलेंगे ऐसा सोचकर नही आये होंगे।"

"समझ लीजिये कि आपका अभिमत मान्यार्ह है, लेकिन वे आते तो उन्हे

नुकसान क्या होता? आपके कहे अनुसार, एक बार और फूंक मारने के लिए जो मौका अयाचित ही मिला उसे वे ऐसे होते तो क्यो खो बैठते ?"

"ऐसा नही है। आते भी तो खाली हाथ नही आ सकते। इसके अलावा ग्रामीण जनता से भेंट का नजराना भी वसूल कर लाना होता। आमन्त्रण के नाम पर भेंट का जो सग्रह किया होगा उसे भी अपने पास रख सकते हैं। ऐसे कई लाभ सोचकर न आये होगे।"

"ओफ, ओह! कैसे-कैसे लोग दुनिया मे रहते हैं। दण्डनायिकाजी, लोगो की गहराई कितनी है, यह समझना बडा कठिन है। हम सफेद पानी को भी दूध समझ लेते हैं। आपका कथन भी ठीक हो सकता है। हमे लगता है कि यह सब सोचकर अपना दिमाग खराब करना ठीक नही। कोई आए या न आए। यह शुभ कार्य तो सम्पन्न होना ही चाहिए, है न? अब आप जाइए। अपना काम देखिए। आपसे बात करने पर इतना ज्ञान तो हुआ कि कौन कैसा है, निष्ठा का दिखावा करके धोखा देनेवाले कौन है, और वास्तव मे निष्ठावान् कौन है। इस बातचीत के फल-स्वरूप एक यह फायदा हुआ कि आगे चलकर लोगो को परखने मे इस जानकारी से सहायता मिलेगी। लोग कितने विचित्र व्यवहार करते है। दिखावटी व्यवहार करनेवाले ही ज्यादा हैं। परन्तु उन्हे एक बात का स्मरण नही रहता। दिखावटी-पन को कुचलकर सच्ची बाते भी निकल पडती है, दण्डनायिकाजी।"

बस, वही जाने का आदेश था।

महादण्डनायक मरियाने ने युवराज एरेयग प्रभु को इस आमन्त्रण-पत्र के सम्बन्ध मे विवरण करीब-करीब दण्डनायिका की सलाह के अनुसार दिया, और तात्कालिक रूप से एक सन्तोष का अनुभव किया क्योकि युवराज की तरफ से कोई प्रतिकूल ध्वनि नही निकली थी। उसे यह पता नही था कि दण्डनायिका और युव-रानी के बीच जो बाते हुई थी और मत्रालय से भी जो खबर मिली थी, उससे युव-राज पहले ही परिचित हो चुके है। दण्डनायक-दण्डनायिका ने विचार-विनिमय के बाद वह रात शान्ति की नीद मे बितायी।

उपनयन के दिन सब अपने-अपने कर्त्तव्य निबाह रहे थे, परन्तु उपनीत होने-वाले वटु बिट्टिदेव मे कोई उत्साह नजर नही आया। यह बात उसके माँ-बाप से छिपी नही थी, यद्यपि वे कुछ कहने की स्थिति मे नहीं थे। बहुत सोचने के बाद, सकोच मे अन्त मे उसने अपनी माँ से पूछा, "बलिपुर के हेग्गडेजी क्यो नही आये?"

युवरानी ने थोडे मे ही कह दिया, "आना तो चाहिए था, पता नही क्यो नही

आये।" इससे अधिक वह बेचारा कर ही क्या सकता था ? एक रेविमय्या से पूछा जा सकता था, उससे पूछा, लेकिन उस बेचारे को खुद भी कुछ नही मालूम था। बल्कि सबसे अधिक निराश वही था। वह अनुमान भर लगा सका कि इस तरह होने देने मे किसी का जबरदस्त हाथ होगा। यह आन्तरिक दुख-भार वह सह नहीं सका तो एक बार युवरानीजी से कह बैठा। परन्तु उसे उनसे कोई समाधान नही मिला। उसका दुखडा सुनकर बिट्टिदेव को लगा कि रेविमय्या का कथन सत्य हो सकता है। फिर भी उसने उसे प्रोत्साहित नही किया। उसने सोचा कि उसके माँ-बाप इस कारण से परिचित होकर भी किसी वजह से कुछ बोल नही रहे हैं, अतः मेरा भी इस विषय मे मौन रहना ही उचित है।

दण्डनायिका और युवरानी के बीच हुई बातचीत पद्मला ने लगभग उसी ढग से बल्लाल को सुनायी तो उसने भी सोचा कि उसके भाई के प्रेमभाजन व्यवहार मे किस स्तर के हैं, यह उसे दिखा दें। अतएव उसने बिट्टिदेव से एक चुभती-सी बात कही, "तुम्हारी प्यारी शारदा क्या हो गयी ? लगता है उसने तुम्हे छोड दिया है।"

बिट्टिदेव को सचमुच गुस्सा आया, पर वह बोला कुछ नही। भाई की ओर आँखे तरेरकर देखा। बल्लाल ने समझा कि बिट्टिदेव का मौन स्वीकृतिसूचक है, कहा, "मुझे पहले से ही यह मालूम था कि वह बडी गर्वीली है। परन्तु राजमहल मे मेरे विचार को प्रोत्साहन नही मिला। कुत्ते को हौदे पर बिठायें तो भी वह जूठी पत्तल चाटने का स्वभाव नही छोडेगा।"

तब भी बिट्टिदेव शुभ अवसर पर मनो-मालिन्य को अवकाश न देने के इरादे से कुछ बोला नही। "कम-से-कम अब तुम्हे उधर का व्यामोह छोड देना चाहिए।" बल्लाल उसे छेडता ही गया। लेकिन वह फिर भी चुप रहा।

"क्यो भैया, मेरी बात सही नही है ?" बल्लाल बिट्टिदेव से प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा कर रहा था।

"जिसे जैसा लगे वह वैसा बोल सकता है, भाई। अब, इस वक्त इसपर किसी प्रश्न की जरूरत नही। प्रस्तुत सन्दर्भ मे यह बहुत छोटा विषय है। यहाँ जो होना चाहिए उसमे उनकी अनुपस्थिति के कारण कोई अडचन तो आयी नही। तब उनके न आने के बारे मे चर्चा करके अपना मन क्यो खराब करें।" इतने मे उसे बुलावा आया तो वह उपनयन वेदी की ओर चला गया। बल्लाल भी उसके पीछे-पीछे गया। मण्डप मे हजारो लोग इकट्ठे हुए थे। स्वय महाराज विनयादित्य की उपस्थिति से उत्सव मे विशेष शोभा और उत्साह था।

राजमहल के ज्योतिषियो ने जो मुहूर्त ठहराया था, ठीक उसी मे उपनयन संस्कार सम्पन्न हुआ। मातृ-भिक्षा हुई, सबने वस्त्र, नजराना आदि भेंट करना शुरू किया। करीब-करीब सब समाप्त होने पर था कि उपनयन मण्डप के एक कोने से गोक एक पराल लेकर ज्योतिषी के पास आया और उनके कान मे कुछ

कहकर चला गया। पुरोहितजी ने बलिपुर के हेग्गडेजी के नाम की घोषणा करते हुए वटु को वह भेंट दे दी। युवराज, युवरानी और बिट्टिदेव की चकित आँखें गोक की ओर उठीं। मरियाने और चामव्वे को घबडाहट-सी हुई। बाकी सब ज्यो-के-त्यो बैठे रहे। बल्लाल की आँखे इधर-उधर किसी को खोज रही थी।

अपने भैया को आकर्षित करने का बिट्टिदेव का प्रयत्न सफल नही हुआ। अचानक ही बिट्टिदेव का चेहरा उत्साह से चमक उठा, जिसे ज्योतिषियो और पुरोहितो ने उपनीत धारण करने से आया हुआ समझ लिया।

उपनयन के सब विधि-विधान समाप्त हुए, सभी आमन्त्रित मेहमान भोजन करने गये। गोक ने भोजन के समय मारसिंगय्या को युवराज से मिलने की व्यवस्था की, यद्यपि मारसिंगय्या से सबसे पहले भेंट की इच्छा दण्डनायक की रही, जो पूरी न हो सकी। उसे इतना मालूम हो गया था कि हेग्गडे अकेला आया है सपरिवार नही। उसकी ओर किसी का ध्यान नही गया।

दण्डनायक के मन मे विचार उठे, बलिपुर के हेग्गडे के पास आमन्त्रण-पत्र नही गया, फिर भी वह यहाँ आया, अवश्य ही कुछ रहस्य है, इसका पता लगाना होगा। इन बातो मे मुझसे अधिक होशियार चामव्वे है, मगर उसकी तो रात तक प्रतीक्षा करनी पडेगी। उन्होने एक बार हेग्गडे को पकड लाने की कोशिश भी की मगर सफल नही हो सके।

भेट नजराना देते वक्त जिन लोगो ने मारसिंगय्या को देखा था वे खुश थे। किसी भी तरह उससे मिलने की कोशिश करने पर भी असफल होने के कारण कुछ झुंझला रहे थे। लेकिन वह हमे देखे बिना कहाँ जाएगा, इस तरह की एक धृष्ट भावना थी बल्लाल मे। जब उसे मालूम हुआ कि मारसिंगय्या जैसे आया वैसे ही किसी को पता दिये बिना चला भी गया तो वह भौचक्का-सा रह गया। उसे लग रहा था कि अगर उसके और बिट्टिदेव के बीच सुबह यह बात न हुई होती तो अच्छा रहता। उसमे एक तरह की झुंझलाहट पैदा हो गयी थी।

युवराज, युवरानी और नूतन वटु से मिलकर मारसिंगय्या ने अन्त पुर मे ही भोजन किया और युवराज के साथ महाराज का दर्शन कर बलिपुर चला गया।

हेग्गडे और उसके साथ जो नौकर और रक्षक दल आये थे उन सबको दोरसमुद्र की पूर्वी सीमा तक पहुँचा आने के लिए रेविमय्या गया जिसमे एक नया उत्साह झलक रहा था। राजा के अतिथि भी अपनी-अपनी सहूलियत के अनुसार चले गये। उपनयन के बाद एक शुभ दिन वसन्त-माधव-पूजा समाप्त कर महाराज

से आज्ञा लेकर युवराज और युवरानी बच्चों के साथ वेलापुरी चले गये।

अब तक पद्मला को ऐसा भान हो रहा था कि वह किसी एक नवीन लोक में विचर रही है। बल्लाल को भी यह परिवर्तन अच्छा लग रहा था। चामला और बिट्टिदेव को पहले की तरह मिलने-जुलने को विशेष मौका नहीं मिला था तो भी पहले के परिचय से जो सहज वात्सल्य पैदा हुआ था वह ज्यों-का-त्यों बना रहा।

उपनयन के उत्सव के समय की गयी सारी सुन्दर व्यवस्था के लिए महादण्ड-नायक मरियाने और चामव्वे को विशेष रूप से वस्त्रों का उपहार राजमहल की तरफ से दिया गया। उनकी तीनों बच्चियों के लिए वस्त्राभूषण का पुरस्कार दिया गया। चिण्णम दण्डनायक और चाँदला आये थे मगर वे केवल अतिथि बनकर रहे। युवराज के आदेशानुसार उनके साथ वे भी वेलापुरी लौटे।

इतने में समय साधकर चामव्वे ने कवि नागचन्द्र को अपने यहाँ बुलाकर अपनी बच्चियों की शिक्षा-दीक्षा और उनके गुरु का भी परिचय कराया। चामव्वे ने इतना सब जो किया उसका उद्देश्य नागचन्द्र को मालूम हो या नहीं, इतना स्पष्ट था कि कोई उद्देश्य था, वह यह कि अपनी लडकियों की शिक्षा-दीक्षा और उनकी प्रगति आदि की प्रशंसा वह युवराज, युवरानी और राजकुमारों के कानों तक पहुँचा दे।

बलिपुर के हेग्गडे के इस तरह आने और उनसे मिले बिना चले जाने से कुछ हैरानी हुई वरन् यह दम्पती सभी तरह से खुश था। उसे लग रहा था कि वह अपने लक्ष्य की ओर एक कदम आगे बढा है, यद्यपि हुआ इसके विपरीत ही था, जिस सचाई को युवराज और युवरानी ने समझने का मौका ही नहीं दिया।

वेलापुरी पहुँचने के बाद एक दिन शाम को बल्लाल और बिट्टिदेव युद्ध-शिक्षण शिविर से लौट रहे थे। उनका अगरक्षक रेविमय्या साथ था, दूसरा कोई नहीं था। बल्लाल ने भाई से पूछा, "छोटे अप्पाजी, शाम की यह ठण्डी-ठण्डी हवा बडी सुहावनी लग रही है, क्यों न थोडी देर कहीं बैठ लें?"

"हाँ, मैं भूल ही गया था कि रेविमय्या, तुम्हारा सलाहकार, साथ है। क्यों रेविमय्या, थोडी देर बैठें?"

"महामातृश्री सन्निधान कुमारों की प्रतीक्षा में हैं।" रेविमय्या ने विनीत भाव से कहा।

"क्या हम छोटे बच्चे हैं जो हमें चिडिया उडा ले जायेगी, अगर माँ आक्षेप

करेंगी तो मैं अपराध अपने ऊपर ले लूँगा। तुम्हे और अप्पाजी को डरने की जरूरत नही।"

"राजमहल के उद्यान मे भी शाम की सुहावनी हवा ऐसी ही रहती है।" रेविमय्या ने दूसरे शब्दो मे अपना विरोध प्रकट किया।

"खुले मे जो स्वातन्त्र्य है वह राजमहल के आवरण मे नही मिलता। चलो, अप्पाजी थोडी देर इस यगची नदी के पश्चिमी तीर के आम्र वन मे बैठकर चलेंगे।" किसी के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उसने घोडे को उस तरफ मोड दिया। अब दूसरा कोई चारा न था, इसलिए रेविमय्या और बिट्टिदेव ने उसका अनुकरण किया।

वह आम्र वन राज-परिवार का ही था। तरह-तरह के आम कलम करके बढाये गये थे। चारो ओर रक्षा के लिए आवश्यक घेरा बना था। प्रहरियो का एक दल भी तैनात था। पूर्वसूचना के बिना राजकुमारो का अचानक आ जाना प्रहरी के लिए एक आकस्मिक बात थी, वह दग रह गया। वह पगडी उतारकर आराम से हवा खाता बैठा था। राजकुमारो के आने से घबडाकर पगडी उठाकर सिर पर धारण करने लगा तो वह खुल गयी और उसका एक सिरा पीछे की ओर पूँछ की तरह लटक गया। ढीली धोती ठीक कर चला तो ठोकर खाकर गिर पडा। सँभलकर उठा और झुककर प्रणाम किया। उसकी हालत देख राजकुमार बल्लाल हँस पडा, "और कौन है ?" प्रहरी से पहले बिट्टिदेव बोल पडे, "दूसरा और कोई होता तो वह आराम से कहाँ बैठता ?"

"दूसरा कोई नही है मालिक।" प्रहरी ने जवाब दिया।

"अच्छा जाओ, किसी को अन्दर न आने देना।" कहकर बल्लाल आगे बढा। उसके इस आदेश का अर्थ बिट्टिदेव और रेविमय्या की समझ मे नही आया। थोडी दूर पर यगची नदी एक मोड लेती है, वहाँ जाकर बल्लाल घोडे से उतरा। सीढी पर बैठा। बिट्टिदेव भी घोडे से उतरकर भाई के पास जा बैठा। रेविमय्या भी घोडो को एक पेड से बाँधकर थोडी दूर खडा हो गया।

दोनो भाई थोडी देर तक मौन बैठे रहे। बल्लाल ने मौन तोडते हुए कहा, "अप्पाजी, तुम्हे यहाँ तक बुला लाने का एक उद्देश्य है। दूसरा कुछ नही। हेग्गडे के परिवार के लोग तुम्हारे उपनयन के सन्दर्भ मे जो नही आये। उस कारण से मैने तुमसे बात की थी, याद है।"

"क्या ? क्या बात की थी, भैया ?"

"उसके बारे मे बाद मे बात करेंगे। इस समय तो मेरे मन मे मुख्यत जो बात खटक रही है, उसका परिहार तुमसे हो सकेगा, बिना छिपाये सच्ची बात कहना।"

"तो भैया, तुमसे छिपाने-जैसी बात मैं जानता हूँ, यही तुम्हारा अभिमत है

न ?"

"मैं तो यह नही कह सकता कि तुम्हारा उद्देश्य ऐसा है। मेरा कहना इतना ही है कि जो बात मुझे मालूम नही वह तुम जानते हो सकते हो।"

"ऐसी बात हो भी क्या सकती है, भैया। हम दोनो को कोई बात मालूम होती है तो माँजी से। माँजी मुझसे एक बात और तुमसे दूसरी बात कहेगी? ऐसा भेदभाव माँ कर सकती है, ऐसी तुम्हारी धारणा है ?"

"यह सन्दर्भ ही कुछ सन्दिग्ध है, छोटे अप्पाजी। इसीलिए· ।"

"भैया, तुमको माँ के विषय मे सन्देह कभी भी नही करना चाहिए। यदि ऐसी कोई बात हो तो तुम सीधे माँ से ही पूछ लो। वे तुम्हारे सारे सन्देह दूर करेगी। तुम्हे क्या मालूम है क्या नही, मुझे क्या मालूम है क्या नही, यह हम दोनो नही कह सकते, माँ जरूर कह सकती हैं जिनके स्वभाव से तुम अपरिचित नहीं हो। उनका स्वभाव ही ऐसा है कि कोई उन्हे दुख भी दे तो वे उसको भी कोई अहितकर बात नही कहेगी।"

"बात क्या है सो जानने के पहले ही तुमने व्याख्यान देना शुरू कर दिया न ?"

"बात क्या है सो सीधा न बताकर तुम्हीने विषयान्तर कर दिया तो मैं क्या करूँ, भैया ?"

"बात यही है, कि वे बलिपुर के हेग्गडे तूफान जैसे आये और गये, किसी को पता तक नही लगा। ऐसा क्यो ?"

"हाँ, तुम तो उस समय दण्डनायिका की बेटी के साथ रहे। उन बेचारे ने बडे राजकुमार से मिल न पाने पर बहुत दुख व्यक्त किया।"

"यह बात मुझे किसी ने भी नही बतायी।"

"तुमने पूछा नही, किसी ने बताया नही। माँ से पूछ लेते तो वे ही बता देती।"

"कैसे पूछूं, भैया, उधर दण्डनायक के घर पर हेग्गडे और उनके परिवार के बारे मे पता नही क्या-क्या बाते हुई। दण्डनायिका कह रही थी, आह्वान-पत्र भेजने पर भी नही आये, कितना घमण्ड है, राजमहल का नमक खा ऐसा घमण्ड करनेवाले· ।"

"भैया, सम्पूर्ण विवरण जाने बिना किसी निर्णय पर नही पहुँचना चाहिए। क्या तुम्हे निश्चित रूप से मालूम है कि आमन्त्रण-पत्र उन्हे मिला था ?"

"हाँ, दण्डनायक ने स्वय कहा है। आमन्त्रितों की सूची मे उनका नाम छूट गया था तो स्वय दण्डनायिका ने उनका नाम जोडा था।"

"माँ ने भी ऐसा कहा था। फिर भी आमन्त्रण-पत्र पहुँचा है, इसके लिए उतना ही प्रमाण काफ़ी नही। आमन्त्रण-पत्र नही ही मिला है।"

"यह कैसे हो सकता है? हजारो को मिला है तो उन्हे भी मिलना ही चाहिए।" बल्लाल ने कहा।

"कुछ मालूम नही, भैया। जब हेग्गडेजी ने स्वय कहा कि आमन्त्रण नही मिला तो अविश्वास भी कैसे करे?" बिट्टिदेव ने कहा।

"तो तुम कहते हो कि दण्डनायक ने झूठ कहा है, यही न?"

"मैं तो इतना ही कहता हूँ कि हेग्गडे की बात पर मुझे विश्वास है।"

"हाँ, तुम्हे उस पर विश्वास करना भी चाहिए। इस तरह गुमशुम आकर भागनेवालो पर मेरा तो विश्वास नही।"

"भैया, हमे इस विषय पर चर्चा नही करना चाहिए।" बिट्टिदेव बोला।

"क्यो, तुम्हारे दिल मे चुभन क्यो हुई?"

"यदि मै कहूँ कि दण्डनायक झूठ बोलते है तो तुम्हारे दिल मे चुभन नही होगी? जिन्हे हम चाहते है वे गलती करे तो भी वह गलत नही लगता, जिन्हे हम नही चाहते वे सत्य बोले तो वह भी गलत ही लगता है। इसलिए मै और तुम किसी के भी विषय मे अप्रिय बाते करेंगे तो वह न ठीक होगा, न उचित। हेग्गडेजी का व्यवहार ठीक है या नही, इसके निर्णायक माँ और पिताजी है। जब वे ही मौन है, तब हमारा आपस मे चर्चा करना उचित है क्या, सोच देखो।" बिट्टिदेव ने कहा।

"तुम्हारा कहना भी एक तरह से ठीक है। फिर भी, जब अन्दर-ही-अन्दर कशमकश चल रही हो तब भी चुप बैठा रह सकूं, यह मुझसे नही होता।" बल्लाल बोला।

"इसका परिहार माँ से हो सकता है। उठिए, चले, देर हो गयी।" बिट्टिदेव घोडे की तरफ चल पडा।

तीनो महल पहुँचे।

बहुत समय बाद, इस उपनयन के प्रसग मे बल्लाल की पद्मला से भेट हुई थी। उसमे उम्र के अनुसार आकर्षण, रग-ढग, चलना-फिरना आदि सभी बातो मे एक नवीनता आयी थी जो बल्लाल को और भी पसन्द आयी। उसके दिल मे अब वह अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो गयी। बल्लाल को पहले से ही हेग्गडे और उनके परिवार के प्रति एक उदासीन भावना थी। अब वह उदासीनता द्वेष का रूप धारण कर रही थी, पद्मला की बातो के कारण जो उसने अपनी माँ से सुनकर सत्य समझ-

कर ज्यों-की-त्यों बल्लाल से कही थी।

समय पाकर बल्लाल ने अपनी माँ से एकान्त मे चर्चा की। हेग्गड के बारे मे उसने जो सुना था वह विस्तार से सुनाया। सुनाने के ढग से उसका उद्वेग स्पष्ट दिखता था किन्तु माँ एचलदेवी ने वह सब शान्त भाव से कोई प्रतिक्रिया व्यक्त किये बिना सुना।

माँ के विचार सुनने को बेटा उत्सुक था। वे बोली, "अप्पाजी, तुम्हारा झूठ का यह पुलिन्दा पूरा हो तो एकबारगी ही अपना अभिमत सुनाऊँगी।"

"माँ। यह सब झूठ है ?"

"हाँ।"

"तो क्या पद्मला ने मुझसे झूठ कहा ?"

"हाँ, यद्यपि यह हो सकता है कि उसको यह जानकारी नही हो कि वह जो बोल रही है वह झूठ है।"

"तो, माँ, उसे जो कुछ बताया गया है वह सब झूठ है ?"

"अप्पाजी, तुमको माँ-बाप पर विश्वास है न ?"

"यह क्या, माँ, ऐसा सवाल क्यो करती हो ?"

"जब मै यह कहती हूँ कि तुमने जो बताया वह झूठ है तब तुम यह सोचते हो कि मैं निराधार ही कह रही हूँ। तुम्हारा मन अभी कोमल है, अनुभवहीन है। पद्मला ने तुम्हारा मन जीत लिया है, इसीलिए वह जो भी कहती है उसे तुम सत्य मान लेते हो। पर इसीसे, मै तो असत्य को सत्य नही मान लूँगी। तुम्हे मुझपर विश्वास हो तो मैं एक बात कहूँगी, कान खोलकर सुनो। मैं किसी का मन दुखाना नही चाहती क्योकि उससे व्यथा और व्यथा से द्वेष की भावना पैदा होती है जिससे राज्य की हानि होती है। इसीलिए जो कुछ गुजरा है उसे सप्रमाण जानने पर भी हमने उस सम्बन्ध मे कही कभी किसी से कुछ भी न कहने का निर्णय किया है। इसीलिए तुमसे भी नही कहना चाहती, केवल इतना कहूँगी कि तुमने जो कुछ सुना है वह हेग्गडेजी ने नही किया है। वे कभी ऐसा करनेवाले नही हैं, उनकी निष्ठा अचल है, यह सप्रमाण सिद्ध हो चुका है। तुम्हे भी उनके विषय मे अपनी भावनाओ को बदल देना चाहिए। कल तुम सिंहासन पर बैठनेवाले हो। ऐसे लोगो की निष्ठा तुम्हारे लिए रक्षा-कवच है। तुम विश्वास ही न करो तो उनकी निष्ठा तुम्हे कैसे मिलेगी। उनकी निष्ठा चाहिए हो तो तुम्हे भी उनके साथ आत्मीयता की भावना बढानी होगी, समझे।"

"अभी मेरे मन मे जो भावना बसी है उसे दूर करने को स्पष्ट प्रमाण की जरूरत है, माँ, नही तो· "

बीच मे ही एचलदेवी बोल उठी, "अप्पाजी, जिस भावना को दूर करने के लिए तुम गवाही चाहते हो उसे मन मे स्थायी बनाये रखने के लिए किसकी गवाही

पायी थी ? केवल सुनी बात और कहनेवालो पर विश्वास ही न ? उसी तरह यदि मेरी बातों पर तुमको विश्वास हो तो वह भावना दूर करो। साक्ष्य की खोज मे मस्त जाओ।"

"वैसा ही हो, माँ।" बल्लाल ने धीरे-से कहा, मगर उसके मन मे तुलुम उठ ही रहा था। चालुक्य महारानीजी से आत्मीयता प्राप्त करके अपने स्वार्थ-साधन के लिए हेग्गडे चालुक्य-पोय्सल मे द्वेष का बीज बो रहा है। वरना दण्डनायक और पद्मला ऐसा क्यो कहते, उनके मातहत काम करनेवाले गुप्तचर ऐसा क्यो कहते ? ऐसे हेग्गडे लोगो से पोय्सल राज्य की हानि नही होगी ? शुद्ध हृदय रखने-वाले युवराज और युवरानी को ऐसे द्रोहियो की चाल मालूम नही हो पाती, दण्ड-नायिका के इस कथन मे कुछ तथ्य है।

"मेरे कथन मे तुमको सन्देह हो रहा है, अप्पाजी ?" एचलदेवी ने पूछा।

"ऐसा नही, माँ। बात यह है कि मै जिन दो स्थानो मे विश्वास रखता हूँ उन दोनो से मेरे सामने दो परस्पर-विरोधी चित्र उपस्थित हुए हैं। इसलिए ··।"

"अप्पाजी, किसी भी विषय मे जल्दबाजी ठीक नही। उनमे भी पोय्सल वश की उन्नति के प्रति श्रद्धा और निष्ठा है।"

"तो फिर ?"

"यह स्वार्थ है जो क्षणिक दौर्बल्य के कारण उत्पन्न होता है और जिसे भूलना ही हितकारक है। जैसा मैंने पहले ही कहा, यह सब सोचकर अपना दिमाग खराब न करके अपने शिक्षण की ओर ध्यान दो।"

इसी समय घण्टी बजी। "प्रभुजी आये हैं, अब मुझे चलने दीजिए, माँ।" कहकर बल्लाल चार कदम ही चला कि प्रभु एरेयग अन्दर आ गये।

देखकर बोले, "अप्पाजी, जा रहे हो क्या ?"

"हाँ, गुरुजी के आने का समय हो रहा है।" बल्लाल ने जवाब दिया।

"कुछ क्षण बैठो।" कहते हुए प्रभु एरेयग बैठ गये।

युवरानी एचलदेवी ने कहा, "बोम्मला, किवाड बन्द करके थोडी देर तुम बाहर ही रहो, किसी को बिना अनुमति के अन्दर न आने देना।" और वे प्रभु के पास बैठ गयी। प्रभु एरेयग ने कहा, "फिर युद्ध छिडने का प्रसग उठ खडा हुआ है।"

"किस तरफ से ?" युवरानी एचलदेवी व्यग्र हो उठी।

"मलेपो की तरफ से बहुत तकलीफ हो रही है, यह खबर अभी यादवपुर से मिली है। दण्डनायक माचण यहाँ से सैन्य-सहायता की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह सब चोल राजा की छेडखानी है, इधर दक्षिण-पश्चिम की ओर। यदि अभी इन हुल्लड-बाजो को दबा न दिया गया तो वहाँ काँटे-ही-काँटे हो जायेंगे, बल्कि एक काँटेदार जगल ही तैयार हो जायेगा। इसलिए हम अब दो-तीन दिन मे ही उस तरफ सेना

के साथ आ रहे हैं।" साथ ही वे बल्लाल से भी बोले, "कुमार, हमने अबकी बार तुमको साथ ले जाने का निश्चय किया है, इसलिए आज सब बातें समझाकर गुरु नागचन्द्र से सम्मति ले लो। चलोगे न हमारे साथ?"

"प्रभु की आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है।" बल्लाल ने कहा।

"यही सर्वप्रथम युद्ध है जिसमे तुम हमारे साथ चल रहे हो। बैजरसजी ने कहा है कि तुम्हारा हस्तकौशल बहुत अच्छा है। तलवार चलाने मे तुम्हारी इतनी कुशलता न होने पर भी धनुर्विद्या मे तुमने बडी कुशलता पायी है, डाकरस दण्डनायक की यही राय है। इसलिए हमने यह निर्णय किया है। परन्तु तुम्हारी अंग-रक्षा के लिए हम बैजरस को ही साथ ले चलेंगे। ठीक है न?"

"बैजरसजी साथ रहेगे तो हो सकता है।" युवरानी ने कहा।

"क्यो, तुम्हारा पुत्र बिना बैजरस के युद्ध-रंग मे नही उतर सकेगा, तुम्हे डर है?"

युवरानी ने कहा, "यह तो मैं अप्पाजी के स्वास्थ्य की दृष्टि से कह रही हूँ। जिस दिन प्रभु ने पाणिग्रहण किया उसी दिन से मै समझती रही हूँ कि मेरे पुत्रो को किसी-न-किसी दिन युद्ध-रंग मे उतरना पडेगा। छोटे अप्पाजी की बात होती तो मैं कुछ भी नही कहती।"

"परन्तु छोटे अप्पाजी को तो हम नही ले जा रहे हैं। इसका कारण जानती है?" युवरानी से प्रश्न करके युवराज ने बल्लाल की ओर देखा। कुमार बल्लाल के चेहरे पर कुतूहल उभर आया।

"प्रभु के मन की बात मुझे कैसे मालूम?"

"तुम्हारी दृष्टि मे छोटे अप्पाजी अधिक होशियार और धीर है। फिर भी वह छोटा है। अभी वह इस उम्र का नही कि वह युद्ध-रंग मे सीधा प्रवेश कर सके। इसके अलावा वह अभी-अभी उपनीत हुआ है।"

"अप्पाजी को न ले जाएँ तो क्या नुकसान है?"

"युद्ध हमेशा नही होते। अप्पाजी कल सिंहासन पर बैठनेवाला है। उसे युद्ध का अनुभव होना आवश्यक है। वह मूल-तत्त्व है। यदि अब मौका चूक जाए तो नुकसान उसका होगा। छोटे अप्पाजी को भी ऐसा अनुभव मिलना अच्छा होगा। लेकिन उसे फिलहाल न मिलने पर भी नुकसान नही होगा। अनुभव प्राप्त कर अपने बडे भाई को मदद देने के लिए काफी समय उसके सामने है। है न?"

"हम अन्त पुर मे रहती है, इतना सब हम नही जानती। जैसा प्रभु ने कहा, अप्पाजी को इन सब बातो की जानकारी होनी चाहिए। अनुभव के साथ ही तो उसमे विवेचना की शक्ति, तारतम्य और औचित्य का ज्ञान, तुलनात्मक परि-शीलन, गुण-विमर्शन की शक्ति आदि आवश्यक गुण बढेंगे। इस तरह का ज्ञान उसके लिए आवश्यक है इस बात मे दो मत हो ही नही सकते।" फिर वे कुमार से

बोली, "क्यो अप्पाजी, धीरज के साथ युद्ध-रग मे जाकर लौटोगे ? तुम सर्वप्रथम युद्ध-क्षेत्र मे पदार्पण कर रहे हो।" उस समय युवरानी एचलदेवी की वात्सल्य-पूरित भावना द्रष्टव्य थी।

"माँ, मैं जिस वश मे जन्मा हूँ उस वश की कीर्ति को प्रकाशित करूँगा, उसका कलक कभी न बनूँगा। धैर्य के साथ आऊँगा। प्रभुजी का और आपका आशीर्वाद हो तो मैं सारा विश्व जीत सकता हूँ।" कहते हुए उसने भाव-विभोर होकर माता-पिता के चरणो पर सिर रख साष्टाग प्रणाम किया। युवरानी की आँखो से आनन्दाश्रु झरने लगे। कुमार की पीठ पर माता-पिता के हाथ एक साथ लगे और हृदयपूर्वक आशीषो की झडी लग गयी।

कुमार बल्लाल उठ खडा हुआ।

"अच्छा, अप्पाजी, अपने गुरुजी को यह सब बताकर तुम युद्ध-रग मे प्रवेश के लिए तैयार हो जाओ। तुम्हे जो कुछ चाहिए वह डाकरस और बैजरस से पूछकर तैयार कर लो।" घण्टी बजायी। बोम्मले ने किवाड खोला। बल्लाल बाहर आया। फिर किवाड बन्द हुआ।

"प्रभु ऐसे विषयो पर पहले मुझसे विचार-विनिमय करते थे, अबकी बार एकबारगी निर्णय कर लिया है, इसमे कोई खास बात होगी। क्या मै जान सकती हूँ ?"

"खास बात कोई नही। इसका कारण और उद्देश्य मैंने बहुत हद तक अप्पाजी के सामने ही बता दिया है। रेविमय्या ने अप्पाजी के विचारो के सम्बन्ध मे सब बातें कही थी, बलिपुर के हेग्गडेजी से सम्बद्ध उसके विचारो के बारे मे।"

"प्रभु के आने से पहले वह मुझसे भी इसी विषय पर चर्चा कर रहा था।"

"हम कितना भी समझायें उसका मन एक निर्णय पर नही पहुँच सकता। यहाँ रहने पर ये ही विचार उसके दिमाग मे कीडे की तरह घुसकर उसे खोखला बनाते रहेगे। युद्ध-रग मे इस चिन्ता के लिए समय नही मिलेगा। वहाँ इन बातो से वह दूर रहेगा। समय देखकर उसे वस्तुस्थिति से परिचित कराना चाहिए जिसे वह मन से मान जाए। इसीलिए उसे साथ ले जाने का निश्चय किया है। ठीक है न ?"

"ठीक है। परन्तु "

"इसमे परन्तु क्या ?"

"प्रभुजी अपने इस निर्णय पर पुन विचार नही कर सकेंगे ?"

"हमे युवरानी के हृदय के भय का परिचय है। कुमार को किसी तरह की तकलीफ न हो ऐसी व्यवस्था की जायेगी। उसकी शारीरिक दुर्बलता को दृष्टि मे रखकर आप बोल रही है। पिता होकर मैं भी इससे परिचित हो गया हूँ, इसीलिए आप मुझपर विश्वास कर सकती है। हाँ, मेरे ऐसा निर्णय करने का एक कारण

और भी है।"

कहकर प्रभु चुप हो गये। युवरानी एचलदेवी ने कुतूहल-भरी दृष्टि से वह कारण जानने को प्रभु की ओर देखा।

"बलिपुर मे अगले महीने भगवती तारा का रथोत्सव होनेवाला है। हेग्गडे ने हम सबको आमन्त्रण दिया है। हम सभी को वहाँ जाना चाहिए। इस युद्ध के कारण हम नही जा पायेंगे, पर आप सबको तो जाना ही चाहिए। हमारे साथ के बिना अप्पाजी को बलिपुर भेजना अच्छा नही और दोरसमुद्र भेजने मे अच्छे के बदले बुराई के ही अधिक होने की सम्भावना है, यह तुम भी जानती हो। इसलिए अप्पाजी हमारे साथ युद्ध-शिविर मे रहे। इसमे उसे थोडा-बहुत अनुभव भी हो जायेगा, और मन को काबू रखने का अवकाश भी मिलेगा। हमने यह निर्णय इसीलिए किया है। हम और अप्पाजी युद्ध-शिविर मे तथा युवरानी, छोटे अप्पाजी, उदय, रेविमय्या और नागचन्द्र बलिपुर मे रहे। हो सकता है न ?"

एचलदेवी ने अनुभव किया कि सभी बातो पर सभी पहलुओ से विचार करके ही यह निर्णय लिया गया है। उन्होने अपनी सम्मति इशारे से जता दी।

"तुम्हारी यात्रा की जानकारी अभी किसी को नही होनी चाहिए। यह हमे, तुम्हे और रेविमय्या को ही मालूम है। छोटे अप्पाजी को भी नही मालूम होना चाहिए। हम युद्ध-यात्रा पर चल देंगे, उसके बाद आप लोगो के बलिपुर जाने की व्यवस्था रेविमय्या करेगा। यहाँ के पर्यवेक्षण के लिए चिण्णम दण्डनायक यही रहेगे। डाकरस भी हमारे साथ जायेंगे। आज ही महासन्निधान को हमारी युद्ध-यात्रा के बारे मे पत्र भेज दिया जायेगा। आप लोगो की यात्रा के बारे मे पत्र बाद मे भेजा जायेगा।"

"प्रभु युद्धक्षेत्र मे हो और हम रथोत्सव के लिए यात्रा करें ?"

"वहाँ रहने-भर मे कौन-सी बाधा होगी? रथोत्सव तो निमित्त मात्र है, प्रधान है आप लोगो का बलिपुर जाना। समझ गयी ?"

"जैसी आज्ञा।" युवराज एरेयंग प्रभु खड़े हो गये लेकिन एचलदेवी ने घण्टी नही बजायी।

"क्यो, और कुछ कहना है क्या ?"

"अर्हन्, मेरे सौभाग्य को बनाये रखने का आग्रह करो।" कहती हुई एचल-देवी ने उनके पैरो पर सिर रखकर एक लम्बी साँस ली।

"उठो, जिननाथ की कृपा से तुम्हारे सौभाग्य की हानि कभी नही होगी। भगवान् जिननाथ तुम्हारी प्रार्थना मानेंगे।" कहते हुए एचलदेवी की भुजा पकड-कर उठाया। युवरानी के मुख पर एक समाधान झलक पडा। उसने घण्टी बजायी। बोम्मले ने द्वार खोला। प्रभु ने बिदा ली।

एरेयग प्रभु ने डाकरस दण्डनायक, कुमार बल्लाल और बैजरस के साथ यादवपुरी की तरफ प्रस्थान किया। दो दिन बाद युवरानी एचलदेवी, कुमार बिट्टिदेव, कुमार उदयादित्य, कवि नागचन्द्र और रेविमय्या की सवारी बलिपुर की ओर चली। उनकी रक्षा के लिए आरक्षक दल छोटा-सा ही था। इनके आने की पूर्व सूचना देने को गोक के साथ दो सैनिक पहले ही चल पडे थे। खुद चिण्णम दण्डनायक दोरसमुद्र जाकर वेलापुर की सारी बाते एरेयग प्रभु की आज्ञा के अनुसार महा-सन्निधान से निवेदन कर लौटा था और देख-रेख के लिए वेलापुरी ही ठहर गया था।

उधर, बिट्टिदेव के उपनयन के पश्चात् बलिपुर लौटने से पूर्व ही मारसिंगय्या ने प्रभु से वेलापुरी की घटनाओ का निवेदन किया, जल्दी मे जो भेट बलिपुर मे वसूल की जा सकी थी वह समर्पित की और भगवती तारा के रथोत्सव के लिए राज-परिवार को आमन्त्रण दिया। यहाँ आने के बाद प्रभु के ठहरने की बडी सुन्दर व्यवस्था की। सारा बलिपुर नये साज-सिगार से अलकृत होकर बडा ही सुहावना बन गया। सारे रास्ते सुधार दिये गये थे, कही ऊबड-खाबड नही रहे। बलिपुर के चारो ओर के प्रवेश-द्वार इस सुन्दर ढग से सजाये गये थे कि मानो अतिथियो के स्वागत मे विनम्र भाव मे खडे मेजबान वही हो। सभी सैनिको को नयी वरदी दी गयी जिसमे सेना को एक नया रूप मिल गया लगता था।

बूतुग और दासब्बे प्रभु के निवास की सजधज के लिए नियुक्त थे। त्यारप्पा और ग्वालिन मल्लि दूध-दही प्राप्त करने के लिए नियोजित थे। धोबिन चेन्नी अब अलग ही व्यक्ति बन गयी थी, हेग्गडे ने यह परिवर्तन उसमे देखा तो उसे अपने परिवार के कपडे साफ करने को नियुक्त कर दिया। तो भी, चेन्नी ने प्रभु के वस्त्र स्वच्छ करने का जिम्मा उसी को सौंपने की जिद् की मगर हेग्गडेजी ने स्वीकृति नही दी। अन्त मे, हेग्गडती के जोर देने पर राजमहल के वस्त्र-भण्डार के सरक्षक अधिकारी के निर्देश के अनुसार काम करने का आदेश देकर प्रभु के वस्त्र स्वच्छ करने का काम दिलाने का भरोसा दिया था। बलिपुर के नागरिको मे विशेष उत्साह झलक रहा था। प्रभु के अपने यहाँ आने की खबर से खुश जनता की खुशी का यह सुनकर ठिकाना न रहा कि वे यहाँ कुछ दिन नही, कुछ महीने ठहरेगे।

गोक मे पूर्व-सूचना मिलने पर बेचारे हेग्गडे के परिवार को निराशा-मिश्रित सन्तोष हुआ। निराशा इसलिए कि परिस्थितिवश प्रभु आ न सके। सन्तोष इस-लिए कि युवरानी और राजकुमार एक महीना नही, प्रभु का आदेश मिलने तक वही बलिपुर मे ठहरेगे।

इतना ही नही, प्रभु का आदेश यह भी था कि सिंगिमय्या को वही बुलाकर राजकुमारो के सैनिक-शिक्षण की व्यवस्था करे। सयोग मे सिंगिमय्या वही था। राज-परिवार के बलिपुर पहुँचने के पहले ही उसने सैनिक-शिक्षण की व्यवस्था अपने बहनोई मारसिंगय्या से विचार-विनिमय करके उपयुक्त स्थान और अन्य

आवश्यक बातों को व्यवस्थित रूप से तैयार कर रखा था। मदद के लिए चलिके-नायक को भी बुलाने की व्यवस्था हुई। इन्हीं दोनों ने धारानगर पर हमले के समय मिलकर काम किया था।

राज-परिवार की सवारी के पहुँचने से दो-तीन घण्टे पहले ही हेग्गडे को खबर मिली थी। हेग्गडे, हेग्गडती, शान्तला, पटवारी, धर्मदर्शी, सरपंच, कवि बोकि-मय्या, शिल्पी गंगाचारि, शिल्पी दासोज और उसका पुत्र चावुण, पुरोहित वर्ग तथा गण्य नागरिक लोग बलिपुर के दक्षिण के सदर द्वार पर स्वागत के लिए प्रतीक्षा में खड़े हो गये। मंगलवाद्य-घोष के साथ आरक्षक सेना सलामी देने के लिये रास्ते के दोनों तरफ कतार बाँधे उपस्थित थी। युवरानी और राजकुमारों का रथ सामने रुका। सारथि की बगल में रेविमय्या कूद पड़ा और रथ का द्वार खोल कुछ हटकर खड़ा हो गया।

रथ से राजकुमार उतरे, युवरानीजी उतरीं। हेग्गडती और शान्तला ने रोरी का तिलक लगाया और आरती उतारी। नजर भी उतारी गयी। रथ महाद्वार को पारकर शहर के अन्दर प्रवेश कर गया। सबने पैदल ही पुर-प्रवेश किया। 'पोय्सल राजवंश चिरजीवी हो, कर्नाटक का सम्पदभ्युदय हो, युवरानीजी की जय हो, राजकुमारों की जय हो।' इन नारों से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। पुरोहितजी ने आशीर्वाद दिया।

हेग्गडती ने युवरानी के पास आकर धीरे-से कहा, "सन्निधान रथ में बैठें, निवास में जाकर विश्राम करें, हम शीघ्र ही वहाँ पहुँचेंगी।"

"इन्द्रगिरि और कटक पहाड़ पर चढ़नेवाली हम अगर चार कदम चलते ही जायें तो क्या कष्ट होगा। आपके यहाँ के नागरिकों के दर्शन का लाभ ही मिलेगा हमें।"

फिर भी रास्ते के दोनों ओर लोग खचाखच भरे थे। घर-घर के सामने मण्डप रचा गया था। पैदल चलने की बात मालूम हुई होती तो हेग्गडेजी उसके लिए आवश्यक व्यवस्था पहले से ही कर लेते। सबने युवरानीजी को आँख-भर देखा। भाव-विभोर लोगों ने समझा कि पोय्सल राज्य के सौभाग्य ने ही मूर्तिमान् होकर उनके यहाँ पदार्पण किया है।

बलिपुर की जनता से यह हार्दिक स्वागत पाकर युवरानीजी को आश्चर्य हुआ क्योंकि उन्होंने इस सबकी आशा नहीं की थी। उन्होंने सोचा, एकनिष्ठ हेग्गडे और उसकी प्रजा से प्राप्त स्वयं-स्फूर्त, संयमयुक्त, हार्दिक स्वागत को बल्लाल अपनी आँखों से देखता-समझता तो कितना अच्छा होता। निवास के द्वार पर दासब्बे और मल्लि ने आरती उतारी। हेग्गडे मारसिंगय्या ने कवि नागचन्द्र से कहा, "आप यों कहीं भी रह सकते हैं लेकिन वहाँ यहाँ से ज्यादा स्वतन्त्र रह सकेंगे।"

"युवरानीजी के आदेशानुसार करूँगा। व्यक्तिगत रूप से मेरे लिए सभी स्थान बराबर हैं।" कवि नागचन्द्र ने कहा।

"अपनी सहूलियत के अनुसार कीजिए।"

वह सारा दिन कुशल-प्रश्न, मेल-मिलाप मे ही बीता। बढी हुई शान्तला को देखकर युवरानीजी बहुत खुश हुईं। उनका हृदय मस्तिष्क को कुछ और ही सुझाव दे रहा था।

शान्तला और बिट्टिदेव स्वभावत बडे आत्मीय भाव से मिले। रेविमय्या और बूतुग मे बहुत जल्दी मैत्री हो गयी। बोम्मले और दासब्बे मे भी घना स्नेह हो गया।

शान्तला का सगीत और नृत्य के शिक्षण का स्थान घर ही रहा, परन्तु साहित्य, व्याकरण, गणित आदि का पाठ-प्रवचन युवरानीजी के निवास पर चलने लगा क्योकि कवि नागचन्द्र के सम्मिलित गुरुत्व मे शान्तला, बिट्टिदेव और उदयादित्य के ज्ञानार्जन की प्रक्रिया चल रही थी। इन दोनो कवियो मे ऐसी आत्मीयता बढी कि उसे महाकवि रन्न देखते तो शायद यह न लिखते 'वाक् श्रीयुतनोल अमत्स-रत्व आगद्।' अर्थात् वाक्-श्रीयुत जो होता है उसमे मात्सर्य रहेगा ही। महाकवि रन्न की यह उक्ति शायद स्वानुभूति से निकली थी। चुडिहारो के घराने मे जन्म लेकर कोमल स्त्रियो के नरम हाथो मे आडी हड्डी के अडे होने पर भी बडी होशियारी से दर्द के बिना चूडियाँ पहनाने मे कुशल होने पर भी जो वह कार्य छोडकर अपने काव्य-कौशल के बल पर वाक्-श्रीयुत कवियो से स्पर्धा मे जा कूदा और स्वय वाक्-श्रीयुतो के मात्सर्य का विषय बन गया हो, ऐसे धुरन्धर महाकवि की वह उक्ति स्वानुभूतिजन्य ही होनी चाहिए।

नागचन्द्र और बोकिमय्या कभी-कभी शिष्यो की उपस्थिति को ही भूलकर बडे जोरो से साहित्यिक चर्चा मे लग जाया करते यद्यपि इस चर्चा का कुछ लाभ शिष्यो को भी मिल जाता। किसी भी तरह के कडुआपन के बिना विमर्श कैसा होना चाहिए, यह बात इन दोनो की चर्चा से विदित हुई शिष्यो को।

इस सिलसिले मे मत-मतान्तर और धर्म-पथो के विषय मे भी चर्चा हुआ करती। इस चर्चा से शिष्यो को परोक्ष रूप से शिक्षा मिली। वैदिक धर्म ने समय-समय पर आवश्यक बाह्य तत्त्वो को आत्मसात् करके अपने मूल रूप को हानि पहुँचाये बिना नवीन रूप धारण किया, लेकिन गौतम बुद्ध ने घोर विरोध किया।

और उनका धर्म सारे भारत मे जड जमाकर भी दो भागों में विभक्त हो कान्ति-हीन हो रहा था जबकि उन्ही दिनों जैन धर्म वास्तव में प्रबुद्ध होकर सम्पन्न स्थिति में था। कालान्तर मे वैदिक धर्म विशिष्टाद्वैत के नाम से नये रूप में विकसित होकर तमिल प्रदेश मे श्री वैष्णव पथ के नाम से प्रचारित हुआ जिसका तत्कालीन शैव चोल-वशीय राजाओ ने घोर विरोध किया। यह विरोध भगवान् के शिव और विष्णु रूपो की कल्पना से उत्पन्न झगडा था। यह वह समय था जब आदि शंकर के अद्वैत ने बौद्ध मत को कुछ ढीला कर दिया था। किन्तु उन्ही के द्वारा पुनरुज्जीवित वैदिक धर्म ने फिर से अपना प्रभाव कुछ हद तक खो दिया था। शैव सम्प्रदाय के कालमुख काश्मीर से कन्याकुमारी तक अपना प्रसार करते हुए यत्रतत्र विभिन्न मठो की स्थापना कर रहे थे। बलिपुर के पास के तावरेकेरे मे भी उन्होंने एक मठ की स्थापना की जो कोडीमठ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। विश्व-कल्याण की साधना तभी हो सकती है जब मानव मे ऊँच-नीच की भावना और स्त्री-पुरुष का भेद मिटाकर "सर्व शिवमय" को उद्देश्य बनाया जाए, और इसी उद्देश्य के साथ वीर-शैव मत भी अकुरित हो बढ रहा था।

अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, बौद्ध, जैन कालमुख, वीरशैव आदि भिन्न-भिन्न मार्गों मे चल रहे महयोग-असहयोग पर दोनो चर्चा करने लगते तो उन्हे समय का भी पता न चलता। वे केवल ज्ञान-पिपासु थे, उनमे संकुचित भावना थी ही नही। वे इन मत-मतान्तरो के बारे मे अच्छी जानकारी रखते थे, इससे उनकी इस चर्चा का शिष्यो पर भी अच्छा परिणाम होता था। धर्म की नीव पर सहृदयता, शोध और विचार-विनिमय के बहाने दोनो गुरु शिष्यो की चित्तवृत्ति परिष्कृत और पक्व किया करते। साहित्यिक चर्चा मे तो शिष्य भी भाग लिया करते, कई बार युवरानी एचलदेवी भी यह चर्चा सुना करती।

बलिपुर मे धार्मिक दृष्टि का एक तरह का अपूर्व समन्वय था। श्रीवैष्णव मत का प्रभाव अभी वहाँ तक नही पहुँचा था। एक समय था जब वहाँ बौद्धो का अधिक प्रभाव रहा। इसीलिए वहाँ भगवती तारा का मन्दिर था। बौद्धो के दर्श-नीय चार पवित्र क्षेत्रो मे उन दिनो बलिपुर भी एक माना जाता था। बौद्ध धर्म के क्षीण दशा को प्राप्त होने पर भी उस समय बलिपुर मे बौद्ध लोग काफी सख्या मे रहते थे। गौतम बुद्ध की प्रथम उपदेश-वाणी के कारण सारनाथ की जो प्रसिद्धि उत्तर मे थी वही प्रसिद्धि बलिपुर की दक्षिण मे थी, उन दिनो बलिपुर बौद्धो का सारनाथ बन गया था। इस बौद्ध तीर्थ-स्थान का जयन्ती-बौद्ध विहार धर्म और ज्ञान के प्रसार का केन्द्र माना जाता था। दूसरी ओर, जगदेकमलेश्वर मन्दिर, ओंकारेश्वर मन्दिर, नीलकण्ठेश्वर मन्दिर, केदारेश्वर मन्दिर, शैवो और वीरशैवो के प्रभाव के प्रतीक थे। उत्तर-पश्चिम मे सीता-होडा के नाम से प्रसिद्ध जलावृत भूभाग मे वहाँ जलशयन-देव नामक वैष्णव मन्दिर था। वहाँ जैन धर्म के प्रभाव

की सूचक एक ऐतिहासिक वसति भी थी जिसका अर्थ ही जैन मन्दिर होता है।

भगवती तारा का रथोत्सव धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ। भारत के नाना भागो से बौद्ध भिक्खु और सहवासी बलिपुर आये। किसी भेदभाव के बिना अन्य सभी मतावलम्बियो ने भी उसमे भाग लिया। हेग्गडे मारसिगय्या के नेतृत्व मे उत्साह और वैभव तो इस उत्सव मे होना ही था, पोय्सल युवरानी और राजकुमारो के उपस्थित रहने से एक विशेष शोभा आयी थी। बलिपुर मे तारा भगवती की प्रतिष्ठा करनेवाली महान् सहवासी वाप्पुरे नागियक्का अभी जीवित थी जो बहुत वृद्धा होने पर भी पोय्सल युवरानी की उपस्थिति के कारण विहार से बाहर निकलकर इस उत्सव मे भाग लेने आयी। करुणा की साकार मूर्ति की तरह लगने वाली इस महासहवासी वृद्धा नागियक्का को देखकर युवरानी एचलदेवी उसके प्रति आदर से अभिभूत हो उठी जबकि प्राचीनकाल के ऋषि-मुनियो की तरह जटा बाँधे उस वृद्धा को देखकर बिट्टिदेव आश्चर्यचकित हुआ। उन्होने युवरानी को विहार-दर्शन के लिए आमन्त्रित किया। तदनुसार रथोत्सव के बाद एक दिन वे वहाँ गयी। उनके साथ हेग्गडती माचिकब्बे, दोनो राजकुमार, शान्तला, गुरु नागचन्द्र और बोकिमय्या भी गये। यह कहने की ज़रूरत नही कि रेविमय्या भी उनके साथ था।

नागचन्द्र और बोकिमय्या यहाँ महासहवासी नागियक्का के साथ भी किसी विषय पर चर्चा करेंगे, इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे बिट्टिदेव और शान्तला जिनमे पनपते सहज सम्बन्ध युवरानी की दृष्टि मे थे। इन सम्बन्धो और उदयादित्य-शान्तला सम्बन्धो मे जो अन्तर था वह प्रगाढता की दृष्टि से कम और प्रकृति की दृष्टि से अधिक था। सबने इस महासहवासी का दर्शन कर उसे साष्टाग प्रणाम किया। उनके आदेशानुसार सभी विहार के प्राध्यापक बुद्धरक्खित के साथ विहार-दर्शन करने गये जो ध्यान, अध्ययन, निवास आदि की दृष्टि से अत्यन्त उपयुक्त, विशाल और कलापूर्ण था।

बुद्धरक्खित ने इस विहार के निर्माण और कला पर तो प्रकाश डाला ही, बौद्ध धर्म के प्रवर्तन, विकास, विभाजन, उत्थान-पतन, स्वागत-विरोध आदि पर भी सविस्तार किन्तु रोचक चर्चा की। उन्होने बताया कि लोगो को बौद्धानुयायियो की सख्या बढाने और प्रजाक्षेम को अधिकाधिक आश्रय देने के इरादे से महायान का विकास हुआ जिसमे हिन्दू देवताओ के रूप और शक्तियाँ भी समन्वित हुई। इसीलिए उसमे बुद्ध तो है ही, केशव है, अवलोकितेश्वर है, और पाप-निवारक देवी भगवती तारा भी है। यह भगवती तारा बोधिसत्व अवलोकेश्वर को प्रतिबिम्बित करनेवाला स्त्री रूप है। महायान पथ मे इस भगवती तारा का विशेष स्थान है क्योकि वह दुष्ट पुरुष को क्षमा करके उसे गलत रास्ते मे जाने से रोककर सही रास्ते पर चलाने तथा मोक्ष-साधन के ऋजुमार्ग मे प्रवर्तित करने का काम करती

है। वह ससार को निगलनेवाली रक्त-पिपासु चण्डी नही, भद्रकाली या चामुण्डी नही, वह क्षमाशीला, प्रेममयी, साध्वी, पापहारिणी पावन-मूर्ति है। बुद्धरक्खित की बातें सुनते-सुनते वे लोग सचमुच तारा भगवती की मूर्ति के सामने पहुँचे। दर्शकों की एकाग्र दृष्टि मूर्ति पर लग गयी, ऐसा आकर्षण था उस मूर्ति मे।

लक्ष्म्युपनिषत् मे वर्णित लक्ष्मी की तरह यह देवी मूर्ति कमलासन पर स्थित है। उसका दायाँ पाँव नीचे लटक रहा है, बायाँ अर्द्ध-पद्मासन के ढग पर मुडा हुआ दायी जघा पर तथा दायाँ पाद धर्म-चक्र पर स्थित है। वह कीमती वस्त्र धारण किये है। मस्तक नवरत्न-खचित किरीट से मण्डित है। उत्तम कर्णाभरण के साथ साँकले कानो की शोभा बढा रही है। माला उसके उन्नत वक्ष पर से होकर वक्षोजो के बीच वज्र-खचित पदक मे शोभित है। कटि मे जवाहर-जडी करधनी जिसकी कमान के आकार की दोलडी साँकल झूलती हुई दिखायी गयी है। हाथ कगन से शोभायमान है, बाहु पर केयूर, अगुलियो मे अँगूठियाँ, पैरो की अगुलियो पर छल्ले, पैरो मे पाजेब और एक प्रकार का साँकलनुमा पादाभरण है जो देवी के पादपद्मो पर अर्द्धवृत्ताकार से लगकर दीर्घ पादागुलियो को चूमता है। नपे-तुले मान-प्रमाण से बनी यह मूर्ति प्रस्तर की होने पर भी सजीव लग रही है। लम्बी चम्पाकली-सी नाक, मन्दहासयुक्त अर्धनिमीलित नेत्र। ध्यानमुद्रा मे कुछ आगे की ओर झुकी हुई प्रेम से अपनी ओर बुलानेवाली प्रेममयी माँ की भगिमा देखते ही रहने की इच्छा होती है।

दाएँ पैर की बगल मे सात फनवाले सर्प नागराज का सकेत है। उसकी बगल मे एक छोटी कमलासीन स्त्री-मूर्ति है, सर्वालकार-भूषिता होने पर भी जिसके सिर के बाल गाँठ के आकार के बने है। देवी के पीछे की ओर दो खम्भे है। उनमे गुल्म-लताओ के उत्किरण से युक्त सुन्दर लताकार से निर्मित प्रभावलय अलकृत है। इनपर दोनो ओर घण्टो की माला से विभूषित दो हाथी है जिनकी सूँड उस सिंह के दोनो जबडो से मिलायी गयी है। प्रभावली के उस शिल्प की महीन उत्किरण की भव्यता देखते ही बनती है।

बडे लोग महासाध्वी नागियक्का के प्रागण की ओर बढ गये, परन्तु बिट्टिदेव और शान्तला वही उस मूर्ति के सामने खडे रह गये। युवरानी ने पास खडे रेविमय्या के कान मे कुछ कहा। वह वही थोडी दूर खडा रहा। थोडी देर बाद बिट्टिदेव ने पूछा, "इस विहार को बनानेवाले व्यक्ति बडे विशाल हृदय के होंगे। वे पुण्यात्मा कौन होगे, क्या तुम्हे मालूम है, शान्तला ?"

"हाँ, मालूम है। चालुक्यो के मन्त्रियो मे एक दण्डनायक रूपभट्टय्या थे जिन्होने न केवल इसे बनवाया, यहाँ केशव, लोकेश्वर और बुद्धदेव की मूर्तियो की स्थापना भी की। यह, हमारे बलिपुर के शिल्पी दासोज जो हमारे गुरु हैं उन्होंने बताया है।" शान्तला ने कहा।

"इसका निर्माण करनेवाले शिल्पी कौन थे ?"

"क्यो, आप मन्दिर, विहार या वसति का निर्माण करानेवाले है क्या ?"

"इसे बनानेवाले शिल्पी के बारे मे जानने की इच्छा रखनेवाले सभी लोग मन्दिर बनवाएँगे क्या ?"

"सभी की बात तो यहाँ उठी नही, आप अपनी बात कहिए।"

"ऐसा कोई विचार नही, फिर भी जानने की इच्छा हुई है सो मालूम हो तो बता दें।"

"इसे बनानेवाले शिल्पी रामोज थे, हमारे गुरु दासोजजी के पिता।"

"तो बलिपुर शिल्पियो का जन्मस्थान है क्या ?"

"केवल बलिपुर नही, कर्णाटक ही शिल्पियो का आकर है।"

"यह तुम्हे कैसे मालूम ?"

"मुझे गुरु ने बताया है। कर्णाटक के किस कोने मे कौन-कौन चतुर शिल्पी हैं, यह सब वे जानते है।"

"क्या तुमने रामोजजी को देखा है ?"

"हाँ, देखा था। उन्हे सायुज्य प्राप्त किये अभी एक साल ही हुआ है।"

"इस मूर्ति को गढनेवाले भी वे ही थे ?"

"यह मैं नही जानती।"

"दासोजजी को शायद मालूम होगा।"

"हो सकता है, चाहे तो पूछ लेगे।"

"तुमने बताया कि इस विहार मे दण्डनायक रूपभट्टय्या ने केशव, लोकेश्वर और बुद्ध की प्रतिमाएँ स्थापित की। भगवती तारा की स्थापना उन्होने नही की ?"

"न। इसकी स्थापना योगिनी नागियक्का ने की है।"

"क्या कहा, उस वृद्धा ने ? उस निर्धन वृद्धा से यह सब कैसे सम्भव है !"

"अब निर्धन लगे, लेकिन तब वे महादानी बाप्पुरे नागियक्का जी थी, एक महानुभावा, सब कुछ त्यागकर आत्म-साक्षात्कार करनेवाली महान् साध्वीमणि। यह वश आदि महाबाप्पुर के नाम से प्रसिद्ध है। इन्ही के वशोत्पन्न ध्रुव इन्द्रवर्मा चालुक्य राज्य के एक भाग के राज्यपाल बनकर राज्य करते थे। सत्याश्रय रणविक्रम के नाम से प्रसिद्ध चालुक्य प्रथम पुलिकेशी की पत्नी दुर्लभादेवी इसी वश की पुत्री कही जाती है। नागियक्काजी और उसके पतिदेव हपशेट्टीजी ने अपना सर्वस्व इस विहार के निर्माण मे खर्च कर अन्त तक अपना शरीर-श्रम भी देकर अपने को इसी मे घुला दिया। वे महानुभाव हेगडे बनकर बलिपुर मे भी रहे, यह कहा जाता है।"

"तुमने उन्हे देखा था ?"

"नहीं, मेरे जन्म के कई वर्ष पहले ही उन्होंने सायुज्य प्राप्त कर लिया था। अच्छा अब, चलें, युवरानीजी हमारी प्रतीक्षा करती होंगी।"

"चलो।" दोनों चलने को हुए कि रेविमय्या को देखकर रुक गये जो हाथ जोड़े आँख मूँदकर तारा भगवती के सामने एक खम्भे से सटकर खड़ा मानो ज्ञान-समाधि में लीन था। उसका ध्यान भग न करने की इच्छा से दोनों दो-चार क्षण प्रतीक्षा करते रहे।

"वह आ जायेगा, चलो।" कहते हुए बिट्टिदेव ने शान्तला की भुजा पर हाथ रखा और चल पड़ा। शान्तला थोड़ी झुककर कुछ दूर सरककर आगे बढ़ी। बिट्टिदेव ने शान्तला की ओर देखा। उसकी उस दृष्टि में उसे कुछ दर्द और कुछ प्रश्नार्थक भाव दिखे। उसके मन में अपराधी होने के भाव दीख रहे थे। शान्तला ने भी बिट्टिदेव को देखा। शान्तला के चेहरे पर मन्द हास झलक रहा था। लज्जा-भार में कुछ अवनत-सी होकर उसने आगे कदम बढ़ाया। बिट्टिदेव ने उसका अनुसरण किया।

रेविमय्या ने आँखें खोलीं तो देखा कि वह अकेला है। वहाँ से निकलते वक्त उसने देवी से फिर प्रार्थना की, "देवि, मेरा इष्टार्थ पूरा करो।" और प्रणाम कर नागियक्काजी के प्रांगण में पहुँचा।

नागियक्का वल्क-चीर धारण किये कुशासन पर दीवार से सटकर बैठी थी। उनकी एक ओर शान्तला और दूसरी ओर बिट्टिदेव बैठे थे। दोनों के कन्धों पर उस महासाध्वी के प्रेममय हाथ थे। वह दृश्य देखते ही रेविमय्या की आँखों से आनन्दाश्रु बह चले जिन्हें वह रोककर भी न रोक सका था।

बुद्धरक्खित ने देखा तो कुछ घबड़ाकर पूछा, "क्या क्यों हुआ?"

युवरानी ने कहा, "कुछ नहीं हुआ। बहुत आनन्द होने पर उसकी यही हालत होती है। उसका हृदय बहुत कोमल है।"

"हम भी यही चाहते हैं, यहाँ जो भी आते हैं उन्हें आनन्दित होकर ही जाना चाहिए। तभी हमें इस बात का साक्ष्य मिलता है कि अभी यहाँ बोधिसत्त्व का प्रभाव है। महासाध्वी महवासी नागियक्काजी को शका थी कि युवरानीजी आयेंगी या नहीं। सन्निधान के आने से वे भी खुश हैं।" बुद्धरक्खित ने कहा।

"इस तरह की शका का कारण?"

"यहाँ अनेक राज्यों से बौद्ध भिक्षु आते है। वे बताते हैं कि उनके राज्य के राजा अपने मत पर अत्यन्त प्रेम से प्रभावित होकर अन्य-मतियों के साथ बहुत ही असहिष्णुता का व्यवहार करते है। सन्निधान के विचारों से अपरिचित होने के कारण यह शका उत्पन्न होने में कोई आश्चर्य नहीं।" बुद्धरक्खित बोले।

"तो मतलब यह कि पोय्सलवशियों की उदार भावना से महासाध्वी नागियक्काजी अपरिचित हैं। हमारे प्रभु और महाराज की दृष्टि में कोई भेद-

भावना नही। किसी भी मत के अनुयायी हो, उनमे उन्हे कोई फरक नही दिखता।" युवरानी एचलदेवी ने कहा।

"मत मानव-मानव के बीच मे प्रेम का साधन होना चाहिए, द्वेष पैदा कर मानव को राक्षस बनाने का साधन नही, यही उपदेश था भगवान् बुद्ध का जिन्होने जगत् के लोगो का दु ख-दर्द देखा और उससे स्वय दु खी होकर, अपना सर्वस्व त्यागकर भी लोक-जीवन को सुखमय बनाने के महान् उद्देश्य से प्रकृति की गोद मे आश्रय लिया। अशोक चक्रवर्ती को जयमाला के प्रेम मे पडकर अपने को विजयी समझते समय जो ध्वनि सुनायी पडी थी वह कोई आनन्द ध्वनि नही, बल्कि आहत मानवता की आर्त-ध्वनि थी। भगवान् बुद्ध की वाणी सुनकर उसका केवल भ्रम-निरसन ही नही हुआ बल्कि उसी क्षण से उसने शस्त्र-सन्यास ले लिया और धर्म-चक्र की स्थापना की। अनुकम्पा की अधिदेवी, पाप-निवारिणी भगवती तारा मानवोद्धार कार्य को उसी धर्म-चक्र के आधार पर चलाती रही है।" तापसी नागियक्का ने समझाकर कहा। उम्र के बढने के साथ मानव की ध्वनि मे कम्पन होता है, यह वयोधर्म है, परन्तु अक्का की ध्वनि मे कम्पन नही, काँसे की-सी स्पष्ट ध्वनि थी। सबने एकाग्र भाव मे अक्का की बाते सुनी।

उनका प्रवचन रुका तो बिट्टिदेव ने पूछा, "तो क्या इसीलिए आपने यहाँ भगवती तारा की स्थापना की है?"

"शिल्पी इसे बनानेवाला है, भक्त-लोग इसकी स्थापना करनेवाले है, फिर भी कोई कहे कि मैंने स्थापना की है, तो इसके माने नही है। ऐसे जन-कार्य तो जनता द्वारा जनता के लिए होने चाहिए।" नागियक्काजी ने सटीक उत्तर दिया।

"ऐसे कार्यों मे लोगो को प्रेरित करनेवाले को ही जनता कर्ता और स्थापक मानती है, जो ठीक है, योग्य है।" कवि नागचन्द्र ने कहा।

"हाँ यह एक कवि की व्यवस्था है और सटीक ही है क्योकि धर्मोपदेश नीरस होने के बदले काव्यमय हो तो वह अधिक आनन्ददायक और सहज-ग्राह्य होता है।" नागियक्के ने कवि का सुन्दर ढग से समर्थन किया।

"जातक कथाएँ तो यही काम करती है।" नागचन्द्र ने कहा।

"इन बच्चो को उन कथाओ से परिचित कराया है?" नागियक्का ने पूछा।

नागचन्द्र ने "नही" कहकर कवि बोकिमय्या की ओर देखकर पूछा, "क्या आपने अम्माजी को सुनायी है जातक कथाएँ?"

"कुछ, सो भी पढाते समय प्रासगिक रूप मे, लेकिन पहले एक बार अम्माजी जब यहाँ आयी थी तब जातक कथाएँ इन प्रस्तरो पर उत्कीर्ण देखकर उन्होने पूछा था, तब मैंने कुछ कथाएँ बतायी थी।" बोकिमय्या ने उत्तर दिया।

"मैं तो आज भी नही देख सका।" बिट्टिदेव ने तुरन्त खेद व्यक्त किया।

"झुण्ड मे अनेक बातो की ओर ध्यान नही जा पाता, एक बार फुरसत से

आकर देखेंगे।" बोकिमय्या ने समाधान किया।

इस सम्भाषण को ऐसे ही चलने दे तो आज दिन-भर यही रहना होगा। यह सोचकर माचिकब्बे ने अक्काजी से अनुमति माँगी, "वहाँ से कोई हमे बुलाने आये इसके पहले हमारा घर पहुँच जाना अच्छा होगा।" और उसने नागियक्का को साष्टाग प्रणाम किया। युवरानी और शेष लोगो ने भी प्रणाम किया। बुद्धरक्खित ने सबको प्रसाद दिया।

सबके पीछे रेविमय्या था। बुद्धरक्खित ने उससे पूछा, "सन्निधान के कहने से मालूम हुआ कि तुम बहुत खुश हो। तुम्हारी उस खुशी का स्वरूप क्या है, बता सकोगे?"

"क्या बताऊँ, गुरुवर्य, हमारे राजकुमार इस छोटी हेग्गडती अम्माजी का पाणिग्रहण कर सके, ऐसी कृपा करो देवि, यह मेरी प्रार्थना थी भगवती तारा से। यही प्रार्थना करता हुआ मै अन्दर आया तो देखा कि देवी ने मेरी प्रार्थना मान ली जिसके फलस्वरूप दोनो बच्चो को दोनो ओर बैठाकर अपने वरदहस्त बच्चो पर रखे आशीर्वाद दे रही है महासाध्वीमणि अक्काजी, इससे बढकर मेरे लिए आनन्द का विषय और क्या हो सकता है?" रेविमय्या ने बताया। क्षण-भर बुद्धरक्खित ने रेविमय्या को देखा।

"क्यो गुरुवर्य। मेरी यह इच्छा गलत है?" रेविमय्या ने पूछा।

बुद्धरक्खित ने कोई जवाब नही दिया, उनका चेहरा खिल उठा। कहाँ-से-कहाँ का यह रिश्ता, उसे चाहनेवाला कौन, विचित्र, मानव रीति ही विचित्र है। इन विचारो मे खोये भिक्षु ने इतना ही कहा, 'बहुत अच्छा।"

बुद्धिरक्खित को प्रणाम कर रेविमय्या जल्दी-जल्दी निकला क्योकि बाहर वाहन कतार बाँधे चलने की तैयारी मे थे। अन्दर पहुँचते ही बुद्धरक्खित ने रेविमय्या के विचारो का निवेदन नागियक्का से किया। राजकुमार भाग्यवान् होगा तो शान्तला का पाणिग्रहण करेगा। युवरानी को पद का अहकार नही, इसलिए ऐसा भी हो सकता है। दोनो बच्चे बडे बुद्धिमान् है। मैंने आशीष दिया है कि दोनो सुखी हो यद्यपि रेविमय्या ने जो बात कही वह मेरे मन मे नही थी।" नागियक्का ने कहा। बात यही तक रही।

सिंगिमय्या के नेतृत्व मे बिट्टिदेव, शान्तला और उदयादित्य का सैनिक-शिक्षण यथावत् चल रहा था। उदयादित्य उम्र मे छोटा होने पर भी तलवार चलाने की

कला मे बहुत चतुर था। राजवश का रक्त उसकी धमनियो मे प्रवाहित हो रहा था। बडे भाई और अपने से उम्र मे कुछ बडी शान्तला को तलवार चलाने का अभ्यास करते देख उसमे भी यह सीखने की इच्छा बढी थी।

एक दिन शान्तला और बिट्टिदेव के बीच बातो-ही-बातो मे स्पर्धा छिड गयी। यह देखकर सिगिमय्या ने कहा, "बेहतर है, आप दोनो आमने-सामने हो जाओ।"

बिट्टिदेव तुरन्त बोला, "न, न, यह कैसे हो सकता है? मैं एक स्त्री के साथ स्पर्धा नही करूँगा। इसके अलावा, वह उम्र मे मुझसे छोटी है। चाहे तो उदय और शान्तला परस्पर आमने-सामने हो जायें। वह जोडी शायद ठीक भी रहेगी।"

"उस हालत मे भी राजकुमार उदय पुरुष ही है, इसके अलावा, वे मुझसे छोटे भी हैं।" शान्तला ने उत्तर दिया।

"यह कोई युद्ध-क्षेत्र नही। यह तो अभ्यास का स्थान है। यहाँ स्त्री-पुरुष के या छोटे-बडे के भेद के कारण अभ्यास नही रोकना चाहिए। आप लोगो ने सैनिक भट मायण के साथ तो द्वन्द्व-स्पर्धा की ही थी। स्पर्धा से भी आपमे आत्म-विश्वास की भावना उत्पन्न होगी।" सिगिमय्या ने प्रोत्साहन दिया तो शान्तला वीरोचित वेष मे सजकर तलवार हाथ मे ले तैयार हो गयी और बिट्टिदेव भी तलवार लेकर खडा हो गया। शान्तला की उस वेष की भगिमा बहुत ही मनमोहक थी, उसके शरीर मे एक तरह का स्पन्दन उत्पन्न हो रहा था। उसे देखता हुआ बिट्टिदेव वैसा ही थोडी देर खडा रहा।

"चुप क्यो खडे हो?" यह स्पर्धा देखने को उत्सुक उदयादित्य ने पूछा।

दोनो स्पर्धार्थियो ने सिगिमय्या की ओर देखा तो उसने अनुमति दी, "शुरू कर सकते है।"

दोनो ने वही सर झुकाकर गुरु को प्रणाम किया, तलवार माथे पर लगाकर उसे चूमा। दोनो तलवारो की नोके एक-दूसरे से मिली और तलवारें चलने लगी।

पहले तो ऐसा लगा कि इस स्पर्धा मे बिट्टिदेव जीतेगा क्योकि उसका अभ्यास शान्तला से बहुत पहले से चल रहा था। इसलिए, इस नौसिखुए को आसानी से जीत लूँगा, यह आत्म-विश्वास था उसे। शान्तला भी कुछ सोच-समझकर तलवार धीरे-धीरे चलाती रही लेकिन क्रमश उसका हस्त-कौशल नया रूप धारण करने लगा। उदयादित्य इन दोनो को अधिकाधिक प्रोत्साहित करने लगा।

सिगिमय्या और रावत मायण इन दोनो के हस्त-कौशल से सचमुच खुश हो रहे थे। चारो ओर तलवारो की झनकार भर गयी। करीब दो घण्टे हो गये, दोनो पसीने से तरबतर हो गय। बिट्टिदेव हार न मानकर भी इस घुमाव-फिराव और उछल-कूद के कारण थक गये। परन्तु घण्टो के नृत्याभ्यास से घुमाव-फिराव या उछल-कूद का अच्छा अभ्यास होने से शान्तला को कुछ भी थकावट महसूस

नही हुई। उसकी स्फूर्ति और कौशल मे बिट्टिदेव से ज्यादा होशियारी लक्षित होने लगी। कभी-कभी बिट्टिदेव को पैर कांपने का अनुभव होता तो वह सँभलकर फिर शान्तला का सामना करने को उद्यत हो जाता।

सिपाही मायण ने परिस्थिति को समझकर सिंगिमय्या के कान मे कुछ कहा, "अब इसे रोक देने की अनुमति दे दे तो अच्छा है।"

सिंगिमय्या ने सूचना दी, "राजकुमार थक गये हो तो रुक सकते है।"

"कुछ नही।" कहकर राजकुमार बिट्टिदेव माथे पर का पसीना, तलवार के चमकने से पहले ही, पोछकर तैयार हो अपनी तलवार भी चमकाने लगा।

शान्तला भी अपने मामा की बात सुन चुकी थी। उसने समझा यह अब रोकने की सूचना है। बिट्टिदेव की स्थिति का भी उसे आभास हो गया था। फिर भी यह जानती थी कि यद्यपि वे नही मानेगे। लेकिन वह आगे बढ़ी तो उसकी तलवार से उन्हे चोट लग सकेगी। ऐसी स्थिति उत्पन्न करने की उसकी इच्छा भी नही थी। इसलिए हार की चिन्ता न कर उसने स्पर्धा समाप्त करने का विचार किया। "आज का अभ्यास काफी है। है न, मामाजी ?" शान्तला ने कहा।

"हाँ, अम्माजी आज इतना अभ्यास काफी है। आज आप दोनो ने अपनी विद्या के कौशल का अच्छा परिचय दिया है।"

दोनो खडे हो गये, दोनो हाँफ रहे थे। दोनो की आँखे मिली। हाँफती हुई शान्तला की छाती के उतार-चढाव पर बिट्टिदेव की नजर कुछ देर टिकी रह गयी।

उदयादित्य उसके पास आया और बोला, "अम्माजी थोडी देर और स्पर्धा चलती तो भैया के हाथ-पैर थक जाते और वह लेट जाते।" फिर उसने अपने भाई की ओर मुडकर कहा, "क्या पैर दुख रहे है ?"

"हाँ, हाँ, बैठकर ताली बजानेवाले को थकावट कैसे मालूम पड सकती है ? तुम पूरे भाट हो।" बिट्टिदेव ने अपनी खीझ प्रकट की।

भाटो से राजे-महाराजे और राजकुमार ही खुश होते हैं, तभी तो उन्हे अपने यहाँ नियुक्त कर रखते हैं।" शान्तला ने करारा उत्तर दिया।

"वह सब भैया पर लागू होता है, जो सिंहासन पर बैठेगे। हम सब तो वैसे ही है, जैसे दूसरे है।"

बिट्टिदेव अभी कुछ कहना चाहता था कि शान्तला का टट्टू हिनहिनाया। निश्चित समय पर रायण घोडे ले आया था। सिंगिमय्या ने कहा, "राजकुमारो के भोजन का समय है, अब चले।"

बिट्टिदेव बोले, "यह आपका भी भोजन का समय है न ?"

"हमारा तो कुछ देरी हुई तो भी चलता है। आप लोगो का ऐसा नही होना चाहिए। सब निश्चित समय पर ही होना चाहिए।" सिंगिमय्या ने कहा।

"ऐसा कुछ नहीं। चाहे तो हम अभी भी अभ्यास के लिए तैयार है। हैं न उदय ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"ओ, हम तैयार है।" उदयादित्य बोला।

"इस एक ही का अभ्यास तो नहीं है, अन्य विषय भी तो हैं। अब राजकुमार पधार सकते है।" मिगिमय्या ने कहा।

रायण के साथ रेविमय्या भी अन्दर आया था। उसने कहा, "अम्माजी को भी युवरानीजी ने भोजन के लिए बुलाया है।"

भोजन के समय शान्तला को मालूम हुआ कि आज बिट्टिदेव का जन्मदिन है तो उसने सोचा पहले ही मालूम होता तो माँ से कहकर कुछ भेंट लाकर दे सकती थी। भोजन के बीच ही मे बिट्टिदेव ने कहा, "आज शान्तला ने तलवार चलाने मे मुझे हरा दिया, माँ।"

"नहीं, मामा ने ऐसा निर्णय तो नहीं दिया।" धीमी आवाज मे शान्तला बोली।

"तुम्हारे मामा बोले या नहीं। मेरे पैर काँपते थे, इस कारण उन्होंने स्पर्धा रोक दी। आश्चर्य है कि तुम्हारे कोमल पैरों मे मुझ-जैसे एक योद्धा के पैरों से भी अधिक दृढता कैसे आयी ? माँ, आपको शान्तला का हस्त-कौशल देखना चाहिए जो उसकी नृत्य-वैखरी से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"अब भाट कौन है, भैया।" उदय ने ताना मारा।

युवरानी एचलदेवी ने सोचा कि आज कोई मज़ेदार बात हुई होगी, इसलिए उन्होंने सीधा सवाल किया, "कहो भी, क्या हुआ।"

बिट्टिदेव के बोलने से पूर्व ही उदय बोल पड़ा, "माँ, मैं कहूँगा। ये दोनो अपनी-अपनी बात रंग चढाकर सुनायेंगे। मैंने स्पर्धा मे भाग नहीं लिया, बल्कि मैं प्रेक्षक बनकर देखता रहा, इसलिए जो कुछ हुआ उसका हू-ब-हू विवरण मैं दूँगा।"

मुझ-जैसा ही वह भी शान्तला के हस्त-कौशल की सराहना करता है, इसके अलावा मेरे मुँह से प्रशसा की बात होगी तो उसका दूसरा ही अर्थ लगाया जा सकता है, यह सोचकर बिट्टिदेव ने उदय से कहा, "अच्छा, तुम ही बताओ।"

बातें चल रही थी, साथ-साथ भोजन भी चल रहा था। सब कुछ कह चुकने के बाद उदय ने कहा, "कुछ और क्षण स्पर्धा चली होती तो सचमुच शान्तला की तलवार की चोट से भैया घायल जरूर होते। स्थिति को पहचानकर गुरु मिगिमय्याजी ने बहुत होशियारी से स्पर्धा रोककर उन्हे बचा लिया।"

युवरानी एचलदेवी ने बिट्टिदेव और शान्तला की ओर देखा। उनकी आँखें भर आयी थी।

"क्या हुआ, माँ, हिचकी लगी ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"नहीं, बेटा, आप लोगों के हस्त-कौशल की बात सुनकर आनन्द हुआ। साथ ही जो स्पर्धा की भावना तुम लोगों में हुई वह तुम लोगों में द्वेष का कारण नहीं बनी, इस बात का सन्तोष भी हुआ।" फिर शान्तला से बोली, "अम्माजी आज हमारे छोटे अप्पाजी का जन्म-दिन है। उन्हें तुम कुछ भेंट दोगी न ?"

"यहाँ आने से पहले यदि मालूम हुआ होता तो मैं आते वक्त साथ ही ले आती, युवरानीजी।"

"तुम कुछ भी लाती, वह बहुत समय तक नहीं टिकती। परन्तु अब जो भेंट तुमसे माँग रही हूँ वह स्थायी होगी। दोगी न ?" युवरानी ने कहा।

"जो आज्ञा, बताइये क्या दूँ ?"

"भोजन के बाद आराम-घर में बताऊँगी।" युवरानी बोली। बिट्टिदेव और शान्तला के मनों में युवरानीजी की इस माँग के बारे में पता नहीं, क्या-क्या विचार सूझ गये।

भोजन समाप्त हुआ। हाथ-मुँह धोकर सब विश्राम-गृह की ओर चले। वहाँ पान तैयार था। सब लोग भद्रास्तरण पर बैठे। युवरानीजी दीवार से सटकर तकिये के सहारे बैठीं। बच्चे युवरानी के पास बैठे।

एचलदेवी ने एक तैयार बीडा उठाया, उसे शान्तला को देती हुई बोली, "अम्माजी, यह बीडा अपने मुँह में डालने से पहले तुम मुझे एक वचन दो। आगे से तुम दोनों को आज की तरह स्पर्धा नहीं करनी चाहिए। बिट्टिदेव ज़िद पकडकर स्पर्धा के लिए चुनौती दे तो भी तुम्हें उसके साथ कभी भी स्पर्धा नहीं करनी चाहिए, मुझे वचन दो। तुम दोनों में किसी भी कारण से द्वेष की भावना कभी उत्पन्न नहीं होनी चाहिए। स्पर्धा कभी भी द्वेष का कारण बन सकती है। इस-लिए वह न करने की बात कह रही हूँ। मेरा आशय यह है कि तुम दोनों में कभी कोई ऐसी बात नहीं होनी चाहिए जो तुम लोगों में आपसी विद्वेष का कारण बन सके। है न ?"

शान्तला ने बीडा ले लिया और "अच्छा, युवरानीजी, मैं राजकुमार से स्पर्धा अब कभी नहीं करूँगी।" कहकर मुँह में रख लिया।

फिर युवरानी एचलदेवी ने बिट्टिदेव से कहा, "बेटा, छोटे अप्पाजी, वह तुम्हें हरा सकती है, इससे तुममें खीझ पैदा हो सकती है। इसी बात से डरकर मैं शान्तला से वचन की भेंट तुम्हारी वर्धन्ती के इस शुभ अवसर पर ले रही हूँ। मान-अपमान या हार-जीत तो तुम्हारे हाथ है। धीरज से युद्ध-क्षेत्र में डटे रहने-वाले राजाओं को सदा हार-जीत के लिए तैयार रहना होगा। प्रभु कभी-कभी कहा करते हैं, तैलप चक्रवर्ती ने हार-पर-हार खाकर भी अन्त में परमार राजा भोज को पराजित किया। मुझे तुम्हारे सामर्थ्य पर शंका की भावना हो, ऐसा मत समझो। इसके पीछे माता होने के नाते, कुछ दूसरा ही कारण है जिसे मैं पोय्सल

युवरानी की हैसियत से प्रकट नही कर रही हूँ, केवल माँ होकर यह चाह रही हूँ, इसलिए तुमको परेशान होने की जरूरत नही।"

उसे भी एक बीडा देती हुई युवरानी फिर बोली, "इस प्रसग मे एक बात और कहे देती हूँ, अप्पाजी। तुम्हारे पिताजी बलिपुर के हेग्गडे मारसिंगय्याजी और उनके परिवार पर असीम विश्वास रखते हैं। अपने आप पर के विश्वास से भी अधिक उनका विश्वास इन पर है। तुम्हे भी ऐसा ही विश्वास उनपर रखना होगा। उसमे भी यह अम्माजी अकेली उनके वश का नामलेवा है। उनके लिए बेटा-बेटी सब कुछ वही अकेली है। तुम्हे अपने सम्पूर्ण जीवित-काल मे, कैसी भी परिस्थिति आये, इस अम्माजी को किसी तरह का दु ख या तकलीफ न हो, इस तरह उसकी देखभाल करनी होगी। उसका मन बहुत कोमल है किन्तु बिलकुल साफ और परिष्कृत भी है। किसी भी बात से उसे कभी कोई तकलीफ न पहुँचे, ऐसा उसके प्रति तुम्हारा व्यवहार होना चाहिए। जब मैं यह बात कह रही हूँ तब मेरा यही आशय है कि परिशुद्ध स्त्रीत्व के प्रति तुम्हारा गौरवपूर्ण व्यवहार रहे। कल मै और प्रभुजी नही रहे तब भी इस राज-परिवार और हेग्गडे-परिवार के बीच इसी तरह का प्रेम-सम्बन्ध और परस्पर विश्वास बना रहना चाहिए। तुम्हारा बडा भाई इनपर हम-जैसा विश्वास रखता है, इसमे मुझे शका है, इस-लिए तुम्हे विशेष रूप से जागरूक रहना होगा। अब लो बीडा।"

"माँ, मुझे सब बाते मालूम है। आपसे बढकर रेविमय्या ने मुझे सब बताया है। मैं आपको वचन देता हूँ, माँ, आपकी आज्ञा का उल्लघन नही करूँगा। आपकी आज्ञा के पालन मे बडे-से-बडा त्याग करने को भी तैयार हूँ।" उसने बीडा लिया और मुँह मे रख लिया।

"बेटा, अब मैं निश्चिन्त हूँ। उदय से वह वर्णन सुनकर मै भयग्रस्त हो गयी थी। मेरी सदा यही इच्छा रहेगी कि तुम दोनो मे कभी भी स्पर्धा की भावना न आये। मेरी इस इच्छा की पूर्ति की आज यह नान्दी है। लडको को विवाह के पहले इस तरह पान नही दिया जाता, फिर भी, आज जो मैने दिया उसे मैं अपचार नही मानती। इसलिए उदय से भी यही बात कहकर उसे भी यह बीडा देती हूँ।" युवरानी ने उसे भी बीडा दिया और स्वय ने भी पान खाया। फिर आँखे मूँदकर हाथ जोडे। भगवान् से बिनती की, "अर्हन्, इन बच्चो को एक-मन होकर सुखी रहने का आशीर्वाद देकर अनुग्रह करो।"

दण्डनायिका चामव्वा के कानो मे दोनो समाचार पड़ते देर न लगी और दोनो ने ही उसके मन मे किरकिरी पैदा कर दी। उसे तो यह मालूम ही था कि उसका भावी दामाद कितना दृढाग है, ऐसे दुर्बल व्यक्ति को युद्ध-क्षेत्र में क्यो ले जाना चाहिए इसका जो उत्तर उसे सूझा वह अपने पतिदेव से कहने को समय की प्रतीक्षा कर रही थी। राजघरानेवाले जाकर एक साधारण हेग्गडे के घर रहे, यह अगर महाराज जानते होते तो वे शायद स्वीकृति नही देते।

उसने यह निश्चय कर लिया है कि मुझसे बदला लेने को हेग्गडती ने षड्यन्त्र रचा है, अपने स्वार्थ की साधना के लिए उसने यह सब किया है। उसे कार्यान्वित करने के लिए उपनयन के दिन का पता लगाकर उसने उस भस्मधारी को यहाँ भेजा जिसने वामाचारियो के द्वारा अभिमन्त्रित भस्म लाकर यहाँ फूँक मारी। बडे राजकुमार पद्मला से प्रेम करते है, यह बात जानकर ही उसने ऐसी बुरी तरकीब सोच रखी है। इसकी दवा करनी ही चाहिए। अब आइन्दा दया और सकोच छोडकर निर्दयता से व्यवहार न करें तो हम मिट्टी मे मिल जायेंगे। कौन ज्यादा होशियार है, उसे दिखा न दूँ तो मैं एचिराज और पोचिकब्बे की बेटी नही। यदि वह परम घातुकी हो तो मैं उससे दुगनी-चौगुनी घातुकी बन जाऊँगी। इस चामव्वा की बुद्धि-शक्ति और कार्य साधने के तौर-तरीको के बारे मे खुद उसका पाणिग्रहण करनेवाला भी नही जानता, हेग्गडती क्या चीज है। उस हेग्गडती के मन्त्र-तन्त्र से अपनी रक्षा के लिए पहले सोने का एक रक्षायन्त्र बनवा लेना चाहिए। यह बात मन मे आते ही किसी को पता दिये बिना वह सीधी वामशक्ति पण्डित के घर चली गयी। वहाँ उसने उससे केवल इतना कहा, "देखिये पण्डितजी, मेरा और मेरे बच्चो का नाश करने के लिए वामशक्तियो का प्रयोग चल रहा है। उसका कोई असर न पडे, ऐसा रक्षायन्त्र तैयार कर दे जिसे किसी जेवर के साथ छिपाकर पहिने रख सकूँ। परन्तु किसी तरह से यह रहस्य खुलना नही चाहिए। आपको योग्य पुरस्कार दूँगी।"

"हाँ, दण्डनायिकाजी, परन्तु यह काम आप लोगो की बुराई के लिए कौन कर रहे है, यह मालूम हो तो आपकी रक्षा के साथ उस बुराई को उन्ही पर फेंक दूँगा।" वामशक्ति पण्डित बोला।

"इसको बुराई करनेवालो पर ही फेर देना अगला कदम होगा। वह विवरण भी दूँगी। फिलहाल मुझे और मेरी बच्चियो के लिए रक्षायन्त्र तैयार कर दीजिये।"

"अच्छा, दण्डनायिकाजी, एक यन्त्र है, उसका नाम 'सर्वतोभद्र' है। उसे तैयार कर दूँगा। परन्तु आपको इतवार तक प्रतीक्षा करनी होगी। वह धारण करने पर सबसे पहले भय-निवारण होगा फिर इष्टार्थ पूर्ण होंगे, फलस्वरूप आप सदा खुश रहेगी, भाग्य खुलेगा, प्रतिष्ठा बढ़ेगी।"

"हाँ, यही चाहिए है। परन्तु यह बात पूर्णत गुप्त रहे। कुल चार यन्त्र चाहिए।"

"जो आज्ञा।"

"सभी यन्त्रो के पत्ते सोने के ही बनाइये, उसके लिए आप ये बीस मुहरें लें। काफी है न, इन्हे ताम्बूल मे रखकर देना चाहिए था, मै यो ही चली आयी, अन्यथा न समझें।"

"कोई हर्ज नही, इसमे अन्यथा समझने की बात ही क्या है? इतवार के दिन यन्त्र लेकर मैं खुद ही "

"न, मैं ही आऊँगी, तभी पुरस्कार भी दूँगी।" कहकर दण्डनायिका वहाँ से निकली।

वामशक्ति पण्डित ने गुन लिया कि अब किस्मत खुलेगी। अब होशियारी से इस बात का ख्याल रखना होगा कि कोई उल्टी बात न हो।

उसके लौटने के पहले ही दण्डनायक घर जा चुके थे। अहाते मे कदम रखते ही उसे खबर मिल गयी। आम तौर पर वह बाहर सवारी लेकर ही जाया करती थी, पर आज इस उद्देश्य से कि किसी को पता न लगे, वह आँख बचाकर वामशक्ति पण्डित के यहाँ पैदल ही गयी। उसने आँचल से सिर ढँक लिया था फिर उन्होने साडी पहचान ली थी। उसे इस बात की जानकारी नहीं थी। अन्दर आयी ही थी कि उन्होने पूछ लिया, "आप उस मन्त्रवादी वामशक्ति पण्डित के घर पधारी थी, क्या बात है?"

वह सीधा सवाल सुनते ही सन्न रह गयी, "आप आँख मूदकर बैठे रहे, मै तो नही बैठी रह सकती। कन्याओ को जन्म देनेवाली माँ को क्या-क्या चिन्ताएँ होती हैं यह समझते होते तो आप ऐसे कैसे बैठे रहते।"

"बात कही से भी शुरू करो, यही लाकर जोडती हो। अभी कोइ नयी अडचन पैदा हो गयी है क्या? तुम्हारे भाई ने भी कहा है, प्रतीक्षा करनी होगी। तुम्हे यदि महाराज की सास ही बनना हो तो प्रतीक्षा करनी ही होगी। अन्यत्र अच्छा वर खोजने को कहो तो वह देखूँगा। लेकिन तुम माँ-बेटी तो एक ही जिद् पकडे बैठी हो, मै क्या करूँ?"

"और कुछ न कीजिए, युद्ध-क्षेत्र मे राजकुमार को वापस बुलवा लीजिए। आपकी उम्र ही ऐसी है, आप सठिया गये है। षड्यन्त्र, जालसाजी, आप समझते ही नही। लेकिन इस जालसाजी की जड का पता मैंने लगा लिया है। इसीलिए कहती हूँ कि राजकुमार को युद्ध-क्षेत्र से वापस बुलवा लीजिये। बुलवाएँगे?"

"यह कैसे सम्भव है, जब स्वय युवराज ही साथ ले गये है?"

"तो आपकी भी यही अभिलाषा है कि वह वीर-स्वर्ग पाये, हमारे विद्वेषियो ने अपने रास्ते का काँटा हटाने के लिए यह जालसाजी की है, बेचारे युवराज को

या राजकुमार को यह सब नही सूझा होगा। आपसे मैंने कभी लुका-छिपी नही की लेकिन यह बात मुझे अन्दर-ही-अन्दर सालती है सो आज जो कुछ मेरे मन मे है उसे स्पष्ट कहे देती हूँ, फिर आप चाहे जैसा करे। कह दूँ ?" बडी गरम होकर उसने कहा।

"तो क्या तुम कहती हो कि युवराज अपने बेटे की मृत्यु चाहते है ?"

"शान्त पापम्, शान्त पापम्। कही ऐसा हो सकता है। उनके मन मे ऐसी इच्छा की कल्पना करनेवाले की जीभ मे कीडे पडे। परन्तु राजकुमार की मृत्यु चाहनेवाले लोग भी इस दुनिया मे हैं। ऐसे ही लोगो ने उकसाकर युवराज और राजकुमार को युद्ध-क्षेत्र मे भेज दिया है। यह सब उन्ही के वशीकरण का परिणाम है। युवराज को इस बात का पता नही कि वे जो कर रहे है वह उनके ही वश के लिए घातक है, वशीकरण के प्रभाव मे उन्हें यह मालूम नही पड सका है। उस राजवश का ही नमक खाकर भी आप चुप बैठे रहे तो क्या होगा ?"

"तुम्हारी बात ही मेरी समझ मे नही आती। तुम्हारा दिमाग बहुत बडा है। दुनिया मे जो बात है ही नही वह तुम्हारे दिमाग मे उपजी है, ऐसा लगता है। राजकुमार की मृत्यु से किसे क्या लाभ होगा ?"

"क्या लाभ ? सब कुछ लाभ होगा, उसे, वह है न, परम-घातुकी हेग्गडती माचि, उसके लिए।"

"क्या कहा ?"

"मैं साफ कहती हूँ, सुनिये। उसे स्पष्ट मालूम हो गया है कि वह चाहे कुछ भी करे, राजकुमार बल्लाल उसकी लडकी से शादी करना स्वीकार नही करेंगे, वे हमारी पद्मला से ही शादी करेंगे, कसम खाकर उन्होने वचन दिया है। वह हेग्गडती खुद राजकुमार की सास नही बन सकती क्योकि बल्लाल इसमे बाधक है। अगर वह नही होगा तो उसके लिए आगे का काम सुगम होगा।" बात समाप्त करके वह उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा मे रही।

मरियाने ने कोई जवाब नही दिया। चामव्वे ने समझा कि बात उनके दिमाग मे कुछ बैठी है। दाँव लगा समझकर उसी तर्ज पर उसने बात आगे बढायी। "इसीलिए अन्तिम घडी मे उसने अकेले अपने पति को भेजा था, हम पर दोष आरोपित करने को। किस्मत की बात है कि हम पहले ही से होशियार हो गये, नही तो युवराज और युवरानी सोचते कि हमने ही जानबूझकर आमन्त्रण नही भेजा।"

"एक बात तो तय है कि आमन्त्रण-पत्र नही गया।"

"वह क्यो नही गया ?" चामव्वे ने सवाल किया।

"क्यो नही गया, यह अब भी समस्या है। परन्तु इतना निश्चित है कि आमन्त्रण-पत्र गया नही। पत्र न पहुँचने पर भी वह ठीक समय पर कैसे आया,

यह भी समस्या है।"

"कुतन्त्र से अपरिचित आपके लिए सभी बाते समस्याएँ ही है। आमन्त्रण-पत्र पहुँचने पर वह आया और झूठ बोल गया कि नही पहुँचा।"

"मैंने सब छान-बीन की, कई तरह से परीक्षा कर डाली, इससे यह निश्चित है कि आमन्त्रण-पत्र नही गया।"

"हमपर अविश्वास करके युवराज ने अलग पत्र भेजा होगा।"

"छि, यह सोचना बडा अन्याय है। युवराज पर दोषारोपण करनेवाली तुम्हारी बुद्धि महाकलुषित हो गयी है, यही कहना पडेगा। तुम्हे ऐसा जिन्दगी-भर नही सोचना चाहिए।"

"तो वह ठीक मुहूर्त के समय कैसे पहुँच गया? अपनी तरफ से और गाँववालो की तरफ से भेंट-वाट उपनयन के लिए ही लाया था, इसलिए उसका आना एक आकस्मिक सयोग तो हो नही सकता न।"

"चाहे कुछ भी हो, यह प्रसग ही कुछ विचित्र बन गया है मेरे लिए।"

"विचित्र बन गया हो या सचित्र, उससे क्या होना-जाना है? अब तो आगे का विचार करे। बडे राजकुमार को मरने के लिए युद्ध-क्षेत्र भेजकर युवरानी, बिट्टिदेव वगैरह को अपने यहाँ बुला लेने के क्या मान होते है? बडे राजकुमार को मृत्यु-मुख मे ढकेल, मौका मिलते ही अपनी लडकी के मोहजाल मे छोटे राजकुमार को फँसाकर अपने वश मे कर लने के लिए ही यह षड्यन्त्र नही है? उस घातुकी हेग्गडती की यह जालसाजी हम नही समझते, क्या हम इतने मूर्ख है?"

"रथोत्सव के मौके पर युवराज का भी जाने का विचार था, परन्तु युद्ध के कारण वे न जा सके। इसलिए युवरानी वगैरह को ही भेजने की व्यवस्था की गयी लगता है।"

"यह सब ढकोसला है, मै जानती हूँ। हमारा राजघराना हमारे ही जैसा शुद्ध जैन घराना है, उसकी तरह सकर नही। उस विभूतिधारी शैव से विवाह करने के बाद उसका जैन-धर्म भी वैसा ही होगा।"

"वह तो उनका व्यक्तिगत मामला है, इससे तुम्हारा क्या नुकसान हुआ?"

"मेरा कोई नुकसान नही, परन्तु बात स्पष्ट है। आप ही बताइये, राजघराना जैन है, भगवती तारा के उत्सव मे उसका क्या सम्बन्ध? आप विश्वास करें या न करें, यह जालसाजी है निश्चित। उस हेग्गडती ने कुछ माया-मन्त्र करके युवरानी और युवराज को अपने जाल मे फँसाकर वश मे कर लिया है। आप महाराज से कहकर राजकुमार को युद्ध-क्षेत्र से तुरन्त वापस बुलवा लीजिये, युवरानी को बलिपुर से लौटा लाने की व्यवस्था कराइये। आप ऐसा नही करेंगे तो हमारी पद्मला अपने का किसी कुएँ या पोखरे के हवाले कर देगी।"

"कुछ भी समझ मे नही आता। तुम्हारी बात को भी इन्कार नही कर

सकता, किस बाँबी मे कैसा साँप है, कौन जाने। अब तो तुम्हारे भाई से विचार-विनिमय करने के बाद ही देखूँगा कि इस हालत मे क्या किया जा सकता है।"

"चाहे तो मैं स्वय जाकर भैया से कहूँ ?"

"तुम चुप बैठी रहो। ऐसी बातो मे तुम सीधी कोई कार्रवाई न करो। उस हेग्गडती ने जो मन्त्र-तन्त्र किया उसी का प्रतिकार करने को तुम उस मन्त्रवादी वामशक्ति के यहाँ गयी थी न ?"

"गयी थी तो इसमे गलती क्या हुई ?"

"स्त्रियो मे विषय की पूरी जानकारी तो रहती नही। जो तुम करने जाओ उसका उल्टा असर तुम पर हो जाये तो ? इसमे मन्त्र-तन्त्र करानेवाले और उसका विरोध करनेवाले दोनो की इच्छाओ मे अधिक इन वामाचारियो की कुप्रवृत्तियाँ प्रेरक शक्ति बनकर प्रतिक्रियाएँ बढाने लगती है। इसलिए हमे कभी इनको प्रोत्साहन नही देना चाहिए।"

"पण्डित ने तो यही कहा था कि उनका जादू उन्ही पर फेर दूँगा। लेकिन मैंने ही कुछ दूर की बात सोचकर कहा, वह सब मत करो, हमारी रक्षा हो, इतना मात्र पर्याप्त है। ऐसा हई रक्षायन्त्र तैयार कर दने को कह आयी हूँ।"

"मगर वह डीग हाँकता फिरेगा, पता नही क्या बकता फिरेगा, तब क्या तुम उसका मुँह बन्द कर सकोगी ? तुमने बिल्कुल बेवकूफी की है। तुम्हारी आशा-आकाक्षाएँ पूरी करने मे मैंने कभी आगा-पीछा नही किया। फिर भी तुमने मेरे ऊपर ही अविश्वास मे सलाह लिये बिना यह काम किया। क्या कहूँ ? तुम्हारी जल्दबाजी हमारी बच्चियो के सर्वनाश का भी कारण नही बनेगी ?"

"यदि कहेगा तो वह इतना ही कह सकता है कि उसने दण्डनायिका को यन्त्र बनाकर दिया है। मैंने उससे किसी के बारे मे कुछ नही कहा है, किसी का नाम तक नही बताया है। इससे कोई कठिनाई नही होगी। अगर कोई पूछे तो कहिए कि बच्चे भयग्रस्त हो रहे थे इसलिए रक्षायन्त्र बनवाया है। मै ऐसी बेवकूफ नही हूँ कि ऐसी बातो मे असावधानी करूँ। इस सम्बन्ध मे वह चूँ तक न करेगा।"

"उससे कह रखा है कि यदि कोई बात इस बारे मे उसने इधर-उधर की तो उसे इस गाँव से ही निकलवा दूँगी।"

"ठीक है। वैसे इस विषय पर मैं तुम्हारे भाई से बातचीत कर चुका हूँ। उनकी भी यही इच्छा है कि पद्मला बल्लाल की पत्नी हो, लेकिन तुम मनमाना सोचकर अपनी ही ओटे जाओगी तो अपने भाई की भी सहानुभूति खो बैठोगी। सचमुच तुम्हारे भाई तुम्हारे काम से बहुत नाखुश हैं कि तुमने हेग्गडती के बारे मे युवरानीजी के समक्ष अण्टसण्ट बातें की। यह काम तुम्हारी बडी बेवकूफी थी।"

"तो मतलब यह है कि राजकुमार का युद्ध-क्षेत्र मे जाना, युवरानी आदि का भगवती तारा के उत्सव के बहाने बलिपुर जाना, इन सब कामो मे हेग्गडे-हेग्गडती

का हस्तक्षेप नही, उनका स्वार्थ नही, यही आपकी राय है ?"

"स्वार्थ हो सकता है, परन्तु यह नही माना जा सकता कि उनमे कोई बुरी भावना होगी।"

"जब स्वार्थ हो तब बुरी भावना भी रहेगी ही।"

"तुम्हारा भी तो स्वार्थ है, तो क्या यह समझ लूं कि तुममे भी बुरी भावना है ?"

"मैने तो किसी की बुराई नही सोची।"

"उन लोगो ने ही बुराई सोची है, इसका क्या प्रमाण है ?"

"कारण दिन की तरह स्पष्ट है। मुझ-जैसी एक साधारण स्त्री को भी जो बात सूझती है वह महादण्डनायक को न सूझे तो इससे ज्यादा अचरज की क्या बात हो सकती है। आप ही कहिए कि राजकुमार युद्धक्षेत्र मे जाकर करेंगे क्या। उन अकेले को साथ ले जाने की प्रेरणा युवराज को क्यो दी गयी। आप स्वय कहा करते है कि छोटे राजकुमार बिट्टिदेव बडे राजकुमार से ज्यादा होशियार और समर्थ है, शक्तिवान् है फिर वे उन्हे क्यो न ले गये साथ। यहाँ चल रहा शिक्षण छोडकर उन्हे उस गँवई गाँव बलिपुर मे जाकर क्यो रहना चाहिए, यह सब और क्या है ?'

"बस, अब बन्द करो, बात न बढाओ। मुझपर भी गोली न चलाओ। हाँ, तुम्हारे कहने मे भी कुछ सिलसिला है, परन्तु उसीको ठीक मानकर उसे स्थिर करने की कोशिश मत करो। तुम्हारी यह बात भी दृष्टि मे रखकर प्रस्तुत विषय पर विचार करूँगा, डाकरस से वस्तुस्थिति जानने को गुप्तचर भेजूँगा। तब तक तुम्हे मुँह बन्द रखकर चुप रहना होगा। समझी ?"

"यह ठीक है। वैसे मुझे मालूम ही है कि वहाँ से क्या खबर मिलगी। कम-से-कम तब आप मेरी बात की सचाई समझेगे। लगता है, आजकल आप भी मुझे शका की दृष्टि से देख रहे है, पहले-जैसे मेरी बात सुनते ही मानते नही।"

"सो तो सच है, मगर वह शक के कारण नही, तुम्हारी जल्दबाजी के कारण है। जल्दबाजी मे मनमाने कुछ कर बैठती हो और वह कुछ-का-कुछ हो जाता है। इसलिए तुमसे कुछ सावधानी से बरतना पडता है। अब यह बहस बन्द करो। युद्धक्षेत्र से वस्तुस्थिति जब तक न मिले तब तक तुम्हे मुँह बन्द रखना होगा। तुम्हे अपनी सारी आलोचनाएँ रोक रखनी होगी।"

"जो आज्ञा।" उसने पतिदेव से अपनी अक्लमन्दी की प्रशसा की प्रतीक्षा की थी। उसकी आशा पर पानी फिर गया। इसलिए असन्तुष्ट होकर वह वहाँ से चली गयी। जाते-जाते उसने निश्चय किया कि वह वामशक्ति पण्डित तो आयेगा ही, उसे अपने वश मे रखना ठीक होगा। यदि प्रयोग घातक हो तो उसकी प्रतिक्रिया शक्ति भी हमारे पास तैयार रहना आवश्यक है।

चामव्वे की बातें मरियाने के दिल मे काँटे की तरह चुभने लगीं। उसमें कितनी भी राजकीय प्रज्ञा हो, कितनी भी जानकारी हो, फिर भी उसकी शका मे असम्भवता उसे महसूस नही हो रही थी। युद्धक्षत्र से हर हफ्ते-पखवारे एक बार राजधानी को खबर भेजते रहने का पहले से रिवाज़ बन गया था। ऐसी हालत मे यहाँ से गुप्तचर भेजकर खबर लेने की कोशिश करने के माने ही गलतफहमी का कारण बन सकता है। आजकल तो महाराज कोई आदेश-सन्देश नही देते। वे अपने को निमित्त मात्र के महाराज मानते और सबकुछ के लिए युवराज पर ही जिम्मेदारी छोड़ते है। उनका यह विश्वास है कि युवराज जो भी काम करते हैं, खूब सोच-समझकर करते है इसीलिए इसमे दस्तन्दाजी करना ठीक नही।

प्रधान गगराज बड़ होशियार हैं। वे कोई काम अपने जिम्मे नही लेते। अपनी बहिन और उसकी बच्चियो का हित चाहने पर भी वे उसके लिए अपन पद का उपयोग नही करते, उदासीन ही रहते है। यो तो वे निष्ठावान राजभक्त है। जो भी हो, इस विषय मे बात करने मरियाने प्रधान गगराज के घर गया। उसे इन बातो क बारे म सोच-विचार कर निर्णय मे एक सप्ताह से भी अधिक लगा।

महादण्डनायक को देखते ही प्रधान गगराज ने कहा, "आइए, बैठिए। आप आये, अच्छा हुआ। मैं खुद ही आना चाहता था।"

"कोई जरूरी काम था?" कहते हुए मरियाने बैठे।

"हाँ महाराज हम दोनो से मिलना चाहते है।"

"क्या बात है?"

"कुछ मालूम नही। दोनो को तुरन्त उपस्थित होने का आदेश है। आपके आने का कोई कारण होगा?"

"कोई विशेष कारण नही, यो ही चला आया।" उसे अपनी बात प्रकट करने का वह समय उपयुक्त नहीं जँचा।

"अच्छा, बच्चो की शिक्षा-दीक्षा कैसी चल रही है। साहित्य, व्याकरण आदि पढाने के लिए नियुक्त वह स्त्री ठीक पढाती है न?"

"इस सम्बन्ध मे मैं ज्यादा माथापच्ची नही करता। चाहे तो पता लगाकर बता दूँगा। आपकी बहिन ने कोई शिकायत नही की, इसलिए मैं समझता हूँ कि सब ठीक ही चल रहा है। महाराज मे कब मिलना है?"

"अभी-अभी दो क्षण मे, मैं राजदर्शनोचित पोशाक पहनकर तैयार होता हूँ।" कहकर गगराज अन्दर गये।

मरियाने सोचने लगा कि दोनो को एक-साथ मिलने का आदेश दिया है, इससे लगता है कि काम महत्त्वपूर्ण होगा और कुछ रहस्यपूर्ण भी। जब कभी किसी विषय पर विचार करना पड़ता है तब महाराज पहले से ही सूचित करते है, इस बार ऐसा कुछ नही हुआ। दोनो घोडो पर सवार हो राजमहल की तरफ चल पडे।

इधर चामब्बे ने चारो सर्वतोभद्र यन्त्र पेटीनुमा लमगो मे बन्द कर भगवान् की मूर्ति के पास रखकर उनपर दो लाल फूल चढाये, प्रणाम किया और प्रार्थना की, "मेरी आकांक्षा सफल बनाओ, वामशक्ति से मैंने जो बात की है उसे प्रकट न करने की प्रेरणा दो उसे ।"

भोजन के बाद शान्तला घर लौटी। राजकुमार के जन्मदिन की और इस अवसर पर युवरानीजी ने शान्तला से जो वादा करा लिया था, उसकी सूचना हेग्गडती को सिंगिमय्या से मिल चुकी थी।

स्पर्धा की बात सुनकर माचिकब्बे ने कहा, "ऐसा कही होता है? तुम्हे ऐसी बातो को प्रोत्साहन नही देना चाहिए। वे राजा है और हम प्रजा। अभी तो वे बच्चे है, और स्पर्धा मे अपने को श्रेष्ठ समझना उनका स्वभाव होता ही है, परन्तु बडे होने के नाते हमे ऐसी स्पर्धा को प्रोत्साहित नही करना चाहिए। प्रजा को राजा पर हाथ उठाना उचित होगा क्या, सिंगि? मालिक हमेशा एक बात कहा करते है, भले ही हम बलवान् हो, अपने बल पर हमे आत्म-विश्वास भी हो, तो भी उसे कभी प्रभु के सामने नही कहना चाहिए क्योकि प्रभु का विश्वास खोने की ओर वह पहला कदम होगा, आज ही प्रारम्भ और आज ही परिसमाप्ति। ऐसा काम कभी न करो, आगे से शान्तला-बिट्टिदेव मे या उदयादित्य-शान्तला मे स्पर्धा न होने दी जाये। मै भी अम्माजी को समझा दूंगी। विद्या से विनय-शीलता बढनी चाहिए। उसे गर्व का कारण नही बनना चाहिए। खासकर स्त्री को विनीत ही रहना चाहिए, वह उसके लिए श्रेष्ठ आभूषण है, स्पर्धा से उसका महत्त्व नही रह जाता, समझे? तुम्हे उत्साह है, तुम्हारे उत्साह के साथ उनके उत्साह की गर्मी भी मिल जाये तो परिणाम क्या होगा, सोचो। फिर भी, तुमने बिट्टिदेव को हारने न देकर स्पर्धा समाप्त की यह अच्छा किया।"

शान्तला युवरानी को जो वचन दे आयी वह प्रकारान्तर से चामला की भावनाओ का अनुमोदन था, परन्तु बिट्टिदेव के जन्म-दिन की पूर्व-सूचना न मिलने से वह कुछ परेशान हुई थी जो और भी धूम-धाम से किया जा सकता था, सारे ग्रामीणो को न्यौता दिया जा सकता था। युवरानीजी ने बिना खबर दिये क्यो किया। यह बात उसे खटकती रही तो उसने हेग्गडे से कहकर राज-परिवार और राजकुमार की मगल-कामना के उद्देश्य से भी मन्दिरो, वसतियो और विहारो मे पूजा-अर्चा का इन्तजाम करने और युवरानीजी से विचार-विनिमय के बाद शाम

को सार्वजनिक स्वागत-भेंट आदि कार्यक्रम की बात सोची। हेग्गडेजी ने स्वीकृति दे दी और तुरन्त सिगिमय्या को सब काम कराने का आदेश दिया।

हेग्गडती अब युवरानीजी के पास पहुँची, बोली, "मैं युवरानीजी की सेवा में अपनी कृतज्ञता निवेदन करने आयी हूँ। सिगिमय्या ने सवेरे की घटना का विवरण दिया। ऐसा होना नही चाहिए था। हम ठहरे आपकी प्रजा, राजघराने के लोगो के साथ हमे स्पर्धा नही करनी चाहिए। बाल-बुद्धि ने शान्तला से ऐसा कराया है। उसे कडा आदेश देकर रोकने का आपको अधिकार था, तो भी आपने क्षमा की और उससे वादा करा लेने की उदारता दिखायी। सन्निधान के इस औदार्यपूर्ण प्रेम के लिए हम ऋणी है, कृतज्ञ हैं। इसी तरह, अज्ञता से हो सकनेवाले हमारे अपराध को क्षमा कर हम पर अनुग्रह करती रहे।"

"हेग्गडतीजी, इसमे आपकी ओर से क्षमा माँगने लायक कोई गलती नही हुई है। हमारी ओर से कोई औदार्य की बात भी नही हुई। किसी कारण से मैं युवरानी हूँ। युवरानी होने मात्र से मैं कोई सर्वाधिकारिणी नही हूँ, सबसे पहले मै माँ हूँ। माँ क्या चाहती है, उसका सारा जीवन परिवार-जनो की हित-रक्षा के लिए धरोहर बना रहे यही वह चाहती है। मैने शान्तला से वचन लिया, इसमे मेरा उद्देश्य केवल यही था कि परिवार के लोगो मे परस्पर प्रेम-भावना हो। हेग्गडे के घराने को हम और हमारे प्रभुजी अपने परिवार से अलग नही मानते, इसलिए यह बात यही समाप्त कर दे। यही कहने के लिए इतनी उतावली होकर आयी हो? अम्माजी ने कुछ कहकर आपको आतंकित तो नही किया?"

"न, न, ऐसा कुछ नही। वास्तव मे अम्माजी बहुत खुश है, कहती है, युवरानी जी, मुझ-जैसी छोटी बच्ची से इतना बडा वादा करा ले और वह वचन दे, इससे बडा भाग्य और क्या हो सकता है। परन्तु उसने एक और बात की, उसी बात से दर्शन लेने मुझे जल्दी आना पडा।"

"ऐसी क्या बात है?"

"यह वादा आपने राजकुमार के जन्म-दिन के शुभ अवसर पर भेंट-रूप मे करने को कहा। इसी से विदित हुआ कि आज राजकुमार का जन्मोत्सव है। यदि पहले जानकारी होती तो वर्धन्ती का उत्सव धूमधाम से मनाने की व्यवस्था की जा सकती थी। समस्त ग्रामीणो को इस आनन्दोत्सव मे भाग लेने का मौका मिल सकता था। अभी भी वक्त है। राजकुमार तथा राज-परिवार के कुशल-क्षेम के लिए आज सन्ध्या समय मन्दिरो, बसतियो, विहारो आदि मे पूजा-अर्चा की व्यवस्था तो हेग्गडेजी करेंगे ही, प्रीति-भोज की व्यवस्था भी कर ली जाये। सन्निधान की आज्ञा लेने ही चली आयी हूँ।"

"हेग्गडतीजी, आपके इस प्रेम के हम कृतज्ञ हैं। मन्दिरो, विहारो और

बसतियो, मे पूजा-अर्चा की व्यवस्था करना तो ठीक है, राज-परिवार के हित-चिन्तन के लिए और प्रभु विजयी होकर कुशलपूर्वक राजधानी लौटे, इसके लिए विशेष पूजा आदि की व्यवस्था भी ठीक है, उसमे हम सभी सम्मिलित होगे। अब रही शाम को प्रीति-भोजन की बात। यह नही होना चाहिए। जब प्रभु प्राणो का मोह छोडकर रण-क्षेत्र मे देश-रक्षा के लिए युद्ध कर रहे हो तब यहाँ हम धूमधाम से आनन्द मनाये, यह उचित नही लगता, हेग्गडतीजी। वर्धन्ती का यह उत्सव घर तक ही सीमित होकर चले, इतना ही पर्याप्त है। आप दोनो, आपकी अम्माजी, आपके भाई और उसकी पत्नी और गुरुओं के भोजन की व्यवस्था कल यहाँ होगी ही। ठीक है न ?"

"जैसी आज्ञा, आपका कहना भी ठीक है। ऐसे मौके पर आडम्बर उचित नही। आज्ञा हो तो चलूँ। शाम की पूजा-अर्चा की व्यवस्था के लिए मालिक से कहूँगी।"

युवरानी ने नौकरानी बोम्मले को आदेश दिया, "हल्दी, रोली, आदि मगल-द्रव्य लाओ।"

वह परात मे मगल-द्रव्यो के साथ फल-पान-सुपारी, रोली वगैरह ले आयी। परात बेम्मला के हाथ मे लेकर हेग्गडती को युवरानी ने स्वय दी और कहा, "आप जैसी निर्मल-हृदय सुमगली का आशीर्वाद राजकुमार के लिए रक्षा-कवच होगा। इसे स्वीकार करे।"

बहुत कुछ कहने का मन होने पर भी उस समय बोलना उचित न समझकर हेग्गडती ने मगल-द्रव्य स्वीकार कर लिये

विशेष पूजा-अर्चा आदि कार्यक्रम यथाविधि सम्पन्न हुए।

राजकुमार बिट्टिदेव का जन्मोत्सव धूमधाम के बिना ही सम्पन्न हुआ। परन्तु युवरानी ने पुजारियो को आदेश दिया कि वे पूजा के समय प्रभु की विजय और राजघराने के श्रेय के साथ ही हेग्गडे परिवार के श्रेय के लिए भी भगवान् से प्रार्थना करे, साथ ही, तीर्थ-प्रसाद राजकुमार को देने के बाद शान्तला को भी दे। पूजा के समय रेविमय्या की खुशी की सीमा नही थी। उसके हृदय के कोने-कोने मे शान्तला-बिट्टिदेव की आकृतियाँ साकार हो उठी थी, प्रत्यक्ष दिख रही थी।

दूसरे दिन भोजन के समय मारसिगय्या, माचिकब्बे, शान्तला, बिट्टिदेव, उदयादित्य और युवरानी तथा मायण, नागचन्द्र, बोकिमय्या और गगाचारी

आमने-सामने दो कतारो मे इसी क्रम से बैठे थे। सिगिमय्या की पत्नी सिरिया देवी उस दिन के किसी समारम्भ मे भाग न ले सकी। भोजन समाप्ति पर पहुँचने-वाला था, तब मौन तोडकर युवरानी एचलदेवी ने अध्यापको को सम्बोधित कर कहा, "आप लोग महामेधावी पुरुष है। अब तक इन बच्चो को ज्ञानवान् बनाने मे आप लोगो ने बहुत परिश्रम किया है। उन्होने अब तक जो सीखा है वह काल-प्रमाण की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है इसके लिए राज-परिवार आपका कृतज्ञ है। ज्ञानार्जन से मानवता की भावना का विकास हो और अर्जित ज्ञान का कार्यान्वयन सही दिशा मे हो और उसका योग्य विनियोग भी हो। उस स्तर तक ये बच्चे अभी नही पहुँच सके है तो भी विशेष चिन्ता नही। परन्तु मेरी विनती है कि आप उन्हे ऐसी शिक्षा दे कि वे विवेकी बने, मानव की हित-साधना मे योग दे सके और सास्कृतिक चेतना से उनका मानसिक विकास हो। इस विनती का अर्थ यह नही कि अभी आप ऐसी शिक्षा नही दे रहे है। आपके प्रयत्नो से हमारी आकाक्षाएँ कार्यान्वित होकर फल-प्रद होगी, यह हमारा विश्वास है। फिर भी मातृ-सहज अभिलाषा के कारण हमारा कथन अस्वाभाविक नही, अतएव यह निवेदन किया है। इसमे कोई गलती नही है न ?"

इस आत्मीयतापूर्ण अनुरोध की स्वीकृति मे कवि नागचन्द्र सविस्तार बोले, "विद्या का लक्ष्य ही मनुष्य को सुसम्कृत बनाना है, इसलिए सन्निधान की आकाक्षा बहुत ही उचित है। तैत्तिरीय उपनिषद् मे एक उक्ति है, अथ यदि ते कर्म-विचिकित्सा वा वृत्त-विचिकित्सा वा स्यात् ये तत्र ब्राह्मणा सम‍र्शिनो, युक्ता, आयुक्ता, अलूक्षा, धर्मकामा यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथा। अर्थात् कर्म क्या है क्या नही यह निश्चय न हो पा रहा हो, या चरित्र क्या है क्या नही यह निश्चय नही हो पा रहा हो तो उस व्यवहार के आधार पर निश्चय करना चाहिए जो ऐसे मौको पर ब्राह्मणो, विचारशीलो, प्रमाणित योग्यतावालो, उच्च-पदासीनो, दयालुओ या धर्मात्माओ का होता है। जो करना चाहते हो उसमे अथवा बरतना चाहते हो उसमे अनिश्चय की स्थिति मे राजघराने के सदस्यो को प्रजा का मार्गदर्शक बनने के लिए उपनिषद् की इस उक्ति के अनुसार चलना होगा। ऐसा चलनेवाला ही ब्राह्मण है। जन्ममात्र से ब्राह्मणत्व के सकुचित अर्थ मे यहाँ ब्राह्मण शब्द का प्रयोग नही हुआ, ब्राह्मण वह आदर्श-जीवी है जिसने ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त किया है। इसीलिए आदर्शजीवी बनना ही चाहिए। यही हम शिक्षको का आशय है। सन्निधान हमसे जो आशा रखती है वह हमारे लिए मान्य है।"

कवि नागचन्द्र के तर्कपूर्ण कथन का समर्थन करके भी युवरानीजी ने उसके एक समकक्ष पहलू की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा, "आपका कथन ठीक है। राजाओ का नेतृत्व बहुत उच्च स्तर का होना चाहिए। लेकिन व्यवहार और अनुसरण के स्तर की दृष्टि से समाज मे जो विविधता है उसमे और मार्ग-दर्शन मे

समन्वय होना चाहिए। राज्य साधारण ग्राम-जैसे छोटे-छोटे घटको की एक सम्मिलित इकाई है, अत ग्राम के नायक से लेकर राष्ट्रनायक तक, सभी स्तरो मे आदर्श के अनुरूप व्यवहार अत्यन्त वाछनीय है।"

इस सिद्धान्त की पुष्टि मे उन्होंने एक उदाहरण भी आवश्यक समझा। "पोय्सल साम्राज्य शुद्ध कन्नड राज्य है। अभी वह अपना अस्तित्व ही मजबूत बना रहा है। उसके अस्तित्व की रक्षा और प्रगति एक सुव्यवस्थित सामाजिक जीवन से ही हो सकती है। उदाहरणस्वरूप यह बलिपुर ही लीजिए। यहाँ के नेता हेग्गडे हैं। आपके कहे अनुसार आदर्श नीति का अनुसरण करनेवाले वे भी हैं, यह बात प्रभुजी ने मुझसे अनेक बार की है और मैंने स्वय प्रत्यक्ष अनुभव किया है। शायद आपको मालूम नही कि यह बलिपुर प्रदेश और उसके हेग्गडे का पद चालुक्य चक्रवर्ती के आश्रित कम्ब राजा के अधीन था और यह प्रदेश बनवासी प्रदेश के अन्तर्गत था। वर्तमान चक्रवर्ती विक्रमादित्य के भाई जयसिह स्वय इस प्रदेश का निर्वहण कर रहे थे। किसी पूर्वकृत पुण्य के फलस्वरूप प्रभु पर चक्रवर्ती का सोदर से भी ज्यादा स्नेह और विश्वास जम गया। जयसिह अपने बडे भाई विक्रमादित्य चक्रवर्ती के विरुद्ध षड्यन्त्र कर गद्दार बना। प्रभु ने चक्रवर्ती का सहायक बनकर जयसिह की गद्दारी का दमन करके सोदर-कण्टक का निवारण किया। इसलिए चालुक्य चक्रवर्ती ने बनवासी प्रदेश के बलिपुर प्रदेश को अलग कर उसे पोय्सल राज-व्यवस्था के अन्दर विलीन कर दिया। इसके पश्चात् हमारे हेग्गडे इस प्रदेश के हेग्गडे के पद पर नियुक्त हुए। परन्तु चालुक्य चक्रवर्ती ने अपनी कृतज्ञता दर्शाने के लिए स्वतन्त्र राज्य करने की स्वीकृति दी और हमारे कामकाज मे वे हस्तक्षेप नही करते। हम भी अपनी तरफ से, जो गौरव उनको समर्पित करना चाहिए, समर्पित करते आये है। पाय्सलो और चालुक्यो मे आपस मे सौहार्द और विश्वास चला आया है। यह जानकारी भी आप गुरुजनो को होनी चाहिए कि यह प्रदेश फिलहाल पोय्सल राज्य की पश्चिमोत्तर सीमा है। नाम मात्र के लिए यह बनवासी प्रान्त की राजधानी है। वास्तव मे बनवासी के माण्डलिक का बलिपुर पर कोई अधिकार नही। अब बनवासी महाप्रधान दण्डनायक पद्मनाभय्या की देख-रेख मे है, शायद यह आप लोगो को मालूम है। फिर भी, वे यहाँ कभी नही आये, तब भी नही जब साम्राज्ञीजी यहाँ पधारी थी, इसका कारण यही है कि बलिपुर अब उनके हाथ मे नही, पोय्सलों के अधिकार मे है।"

"सन्निधान को इन सब बातो की भी जानकारी हो सकती है, हमे पता न था।" हेग्गडे मारसिगय्या ने कहा।

"आपके प्रभु मुझे सब बातें बताते है। मुझपर उनका जो विश्वास है उसके प्रति मै उन्हे कुछ भी नही अर्पित कर सकती। ऐसे प्रभु से मेरा पाणिग्रहण हुआ है, यही मेरे लिए अहोभाग्य है।"

हेग्गडती माचिकब्बे कुछ कहना चाह रही थी कि रावत मायण तुरन्त बोल पड़ा, "यदि सभी स्त्रियाँ ऐसी हो तो पुरुष भी इसी तरह विश्वास रख सकेंगे।" उसके मुख पर मानसिक दु ख उभर आया था।

मारसिगय्या ने पूछा, "क्यो मायण, तुमने स्त्री पर विश्वास रखकर धोखा खाया है ?"

"वह अपवित्र विषय इस पवित्र स्थान मे नही उठाना चाहता, इतना जरूर कहूँगा कि जो हुआ सो अच्छा ही हुआ। दूसरे किसी तरह के मोह मे न पडकर राष्ट्र के लिए सम्पूर्ण जीवन को धरोहर बनने मे उससे सहायता ही मिली।"

"बहुत दु खी मन से बात निकल रही है। इस सृष्टि मे अपवाद की भी गुजाइश है। हमने तो केवल ऐसी स्त्री की बात की है जो सर्वस्व त्याग करने को तैयार हो और करुणा का अवतार।" युवरानी एचलदेवी ने उसे सान्त्वना दी।

"लेकिन वह तो मानवी ही नही मानी जा सकती, उसे स्त्री मानने का तो सवाल ही नही उठता। वह तो एक जानवर है।" मायण का दर्द अब क्रोध का रूप धारण कर रहा था।

"शायद ऐसा ही हो यद्यपि सन्निधान ने आदर्श स्त्री की बात की है, है न, मायण ?" मारसिंगय्या ने उसे शान्त किया।

"मुझे क्षमा करें। भूलने का जितना भी प्रयत्न करूँ, वह याद आ ही जाती है। वह पीछे पडी साढेसाती लगती है।"

"उस साढेसाती का पूरा किस्सा समग्र रूप मे एक बार कह दीजिए, रावतजी, मै उसी के आधार पर एक सुन्दर काव्य लिखूंगा। उसे पढने पर इस साढेसाती की विडम्बना आँखो के सामने आयेगी और पीछे लगी साढेसाती की भावना दूर हो जायेगी। फुरसत से ही सही, कहिए जरूर, आपके दिल का बोझा भी उतर जायेगा।" कवि बोकिमय्या ने एक प्रस्ताव रखा।

"सही सलाह है।" कवि नागचन्द्र ने समर्थन किया।

"हाँ," कहकर रावत मायण ने खाने की ओर ध्यान लगाया।

बिट्टिदेव और शान्तला रावत मायण की ओर कुतूहल-भरी नजर से देखते रहे। उस साढेसाती के विषय मे जानने की उनकी भी उत्सुकता थी, परन्तु इसके लिए मौका उपयुक्त नही था।

सब लोग भोजनानन्तर पान खाने बैठे, तब हेग्गडती ने एक रेशमी वस्त्र और हीरा-जडी अँगूठी शान्तला के हाथ से जन्मदिन के उपलक्ष्य मे बिट्टिदेव को भेट करायी। एचलदेवी ने रेशमी वस्त्र पर चमकती अँगूठी और शान्तला की सौम्य मुखाकृति बारी-बारी से देखी, बोली कुछ नही।

बिट्टिदेव बोला, "मैं यह स्वीकार नही कर सकता, जो पुरस्कार नही ले सकते

उन्हें पुरस्कार देने का अधिकार नहीं।"

"मतलब ?" शान्तला ने पूछा।

"उस दिन माँ ने पुरस्कार के रूप में जो सोने की माला दी उसे तुमने स्वीकार किया था ?"

"उसका कारण था।"

"इसका भी कारण है।"

"इसका मतलब ?"

"जिस दिन तुम माँ का वह हार स्वीकार करोगी उस दिन मैं यह अँगूठी स्वीकार करूँगा। ठीक है न, माँ ?"

"ठीक कहा, अप्पाजी।"

उधर गले में माला, इधर उँगली में अँगूठी, भगवन्, कृपा करो, वह दिन जल्दी आये, इस प्रार्थना के साथ रेविमय्या भावसमाधि में लीन था। युवरानीजी के आदेश से माला लायी गयी तो गंगाचारी ने कहा, "अम्माजी, मैं तुम्हारा गुरु अनुमति देता हूँ, माला स्वीकार करो।"

शान्तला का कण्ठ और छाती माला से सुशोभित हुई।

बिट्टिदेव की उँगली हीरे की अँगूठी से सजी।

वांछित आभूषण प्राप्त हो जाये तो स्त्रियाँ सहज ही बहुत खुश होती हैं। फिर अचानक हीरे-जड़े चौकोर बड़े पदक में जड़ी सोने की माला वक्ष स्थल को सुशोभित करे तो किसकी छाती आनन्द से फूलेगी नहीं ? इस पदक-पेटी के अन्दर सर्वतोभद्र यन्त्र था, यह उसकी तीनों लड़कियों को मालूम होता तो वे क्या करतीं सो कह नहीं सकते। माँ इस निष्कर्ष पर पहुँची कि उसकी मासूम बच्चियाँ ऐसे पेचीदा मामलों में नहीं पड़े क्योंकि न तो वे ये बातें गुप्त रख सकेंगी और न वे अपने हिता-हित के बारे में स्वयं सोच-समझ ही सकती हैं। अपने इस निष्कर्ष की सूचना उसने मरियाने को दी तो उन्होंने भी उसे सही मान लिया।

वामशक्ति पण्डित का मुँह बन्द करने के लिए उसके पुरस्कार का प्रमाण बढ़ाया गया था, यद्यपि उसने सोच रखा था कि किसी-न-किसी तरह दण्डनायिका के इस रहस्य का पता लगे तो वह मेरे वश में होकर जैसा नचाऊँ वैसा नाचने लगेगी, चाहे जमा हो, उस रहस्य का पता लगाकर ही रहूँगा।

पद्मला, चामला और बोप्पि तीनों आइने में अपने-अपने कण्ठहार और पदक

की सुन्दरता देख बडी खुश थी। चामव्वे अपना पदक छुपे-छुपे आँखो से लगाती और उसे छाती मे दबाकर खुशी मान लेती। यह सब तो ठीक है। परन्तु उसे इस बात की चिन्ता थी कि उसके पतिदेव ने एक अक्षर भी इनकी प्रशसा मे नहीं कहा। बोप्पि ने हार सामने धरकर पूछा, "अप्पाजी, यह सुन्दर है न ?" तो वे केवल 'हाँ' कहकर अपने कमरे की ओर चल दिये।

चामव्वे हार और पदक प्रदर्शित करने पति के कमरे मे जा रही थी कि अन्दर के प्रकोष्ठ मे बैठी खिन्न बोप्पि को देखकर उसकी ठुड्डी पकडकर प्यार करती हुई बोली, "क्या हुआ बेटी ?"

बच्ची ने गले से हार निकालकर कहा, "माँ, यह मुझे नही चाहिए, लगता है यह पिता को पसन्द नही।"

"ऐसा कहा है उन्होने ?"

"मुझसे कहा तो कुछ नही, आप ही पूछ ले। वे कहे कि अच्छा है तभी पहनूँगी मै इसे।"

"उन्हे क्या मालूम ? मै कहती हूँ वह तुम्हारे गले मे सुन्दर लगता है।"

"पिताजी भी यही कहे, तभी मै पहनूँगी।" कहकर वह कण्ठहार फेंकने को तैयार हो गयी।

चामव्वे ने उसे उठाया, "बेटी, इसे ऐसे फेकना नही चाहिए। इसे जमीन पर फेंकने से भगवान् गुस्सा करेंगे। इसे पहनो। अभी तुम्हारे पिताजी को बुलाकर उनसे कहलाऊँगी कि यह सुन्दर है।"

बोप्पि ने कहा, "हाँ," तब चामव्वे ने हार फिर पहनाकर उसे छाती से लगा लिया और जल्दी-जल्दी पति के कमर की ओर कदम बढाये।

इधर वे राजदर्शन के समय का लिबास निकालकर केवल धोती-अँगरखा पहने पलग पर पैर पसारे चिन्तामग्न बैठे थे। वह ठिठक गयी, सोचा कि राजमहल मे किसी गहन विषय पर चर्चा हुई होगी। इसलिए बात के लिए समय उपयुक्त नही समझ वह वैसी ही प्रागण मे आ गयी।

बोप्पि माता-पिता के आगमन की प्रतीक्षा मे वही झूले पर बैठी थी, उससे बोली, "बेटी, तुम्हारे पिताजी अभी सोये हुए है, जगने पर उनसे कहलाऊँगी, अब जाकर खेलो।"

इतने मे सन्धिविग्रहिक दण्डनायक नागदेव के घर से पद्मला और चामला लौटी। उन दोनो ने एक साथ कहा, "माँ, सन्धिविग्रहिक ने कण्ठहारो को देखकर बडी प्रशसा की और पूछा, ये कहाँ बनवाये, किसने बनाये। हमने कहा, हमे मालूम नही, चाहे तो माँ से दर्याफ्त कर बतायेगी।"

"देखो, बेटी बोप्पि, सब कहते है यह बहुत सुन्दर है। तुम्हारी दीदियो ने जो कहा, वह सुन लिया न, अब मान जायेगी ?"

"पिताजी कहे, तभी मानूंगी," बोप्पि ने मुँह फुलाकर वही बात दुहरायी।

"अच्छा, उनसे ही कहलवाऊँगी। उन्हें जागने दो।"

इतने मे नौकर ने आकर नाट्याचार्य के आने की सूचना दी तो तीनो अभ्यास करने चली गयी।

वह फिर पतिदेव के कमरे मे गयी, पलग पर बैठकर धीरे से उनके माथे पर हाथ फेरा और पूछा, "स्वस्थ तो है न, आपको यो लेटे देख घबडा गयी हूँ।" वे कुछ बोले नही, उसकी तरफ देखा तक नही तो उसने फिर पूछा, "बोल क्यो नही रहे हैं, राजमहल मे मन को दुखाने-जैसी कोई बात हुई है क्या?"

"तुम्हारा राजमहल की बातो से क्या सरोकार, इन बातो के बारे मे आगे से कभी मत पूछना। मैं बताऊँगा भी नही।"

"छोड दीजिये। अब तक बताया करते थे, इसलिए पूछा, आगे से नही पूछूँगी। आप मुझपर पहले की तरह विश्वास नही रखते, यह मेरा दुर्भाग्य है।" उसकी आँखे भर आयी, वह रुक-रुककर रोने लगी।

"ऐसी क्या बात हुई जो तुम रोओ।" पतिदेव की सहानुभूति के बदले इस असन्तोष से उसके दिल मे दु ख उमड पडा। मानो उन्होंने उसे लात मारकर दूर ढकेल दिया हो।

"विधि वाम हुआ तो भला भी बुरा होय, हमारा भाग्य ही फूटा है। मैंने कौन-सी गलती की है सो मेरी ही समझ मे नही आ रही है। जो कुछ भी मैंने किया सो बिना छिपाये ज्यो-का-त्यो कारण के साथ समझाकर बताया। इतना जरूर है, वामशक्ति पण्डित से मिलने के पहले एक बार आपसे पूछ लेना चाहिए था। लेकिन मेरा वास्तविक उद्देश्य बच्चो की भलाई ही है, साथ ही, आप भी महाराज के ससुर बनने की इच्छा रखते है, इसलिए मेरे व्यवहार और कार्य को आप मान लेगे, यही विचार कर आपकी स्वीकृति के पहले चली गयी। अगर मुझे अनुमान होता कि आप स्वीकार नही करेगे तो मैं नही जाती। इसलिए इसके पश्चात् मैंने वैसा ही किया जैसा आपने कहा। फिर भी आप असन्तुष्ट क्यो हैं? पिछली बार आपको और मेरे भाई को जब महाराज ने बुलाया था तब से आपका ढग ही कुछ बदल गया है। अगर कोई गलती हुई हो तो स्पष्ट कह दे। अपने को सुधार लूँगी। यो मौन और गुमसुम बैठे रहे तो मुझसे सहा न जायेगा। मेरे लिए कुछ भी हो जाये, परन्तु इन मासूम बच्चियो ने क्या किया है? बेचारी बच्ची कण्ठहार दिखाकर आपसे प्रशसा पाने की आशा से पास आयी तो नाराजगी दिखाकर झिडक दिया, इससे कौन-सा महान् कार्य किया। जब तक आपसे प्रशसा न सुनेगी तब तक उसे न पहनने के इरादे से उसने उसे निकाल दिया था। उसे प्यार से फुसलाती-फुसलाती मैं थक गयी। उस बच्ची को कम-से-कम 'अच्छा' कहकर उसे सन्तुष्ट तो कर दें।"

उसकी इन बातो का कोई प्रभाव न हुआ, वह टस-से-मस न हुआ। पत्थर की तरह दृढ़ और अचल रहा। न मुंह खोला, न पत्नी की ओर देखा ही।

चामव्वे पारिवारिक जीवन के आरम्भ से ही अपने पतिदेव को कठपुतली बनाकर नचाती आयी थी, अभी वह सफल भी होती आयी थी लेकिन आज उसके अह को जोर का धक्का लगा। ऐसी हालत मे आगे का कदम क्या हो, यही सोचती बैठी रही वह। सम्भव है कि राजमहल के किसी मामले ने पतिदेव के मन को कुछ कष्ट पहुँचाया हो। मगर उन्हे मुझसे कहने-सुनाने मे हिचकिचाहट क्यो? शायद इस विवाह के बारे मे बात उठी हो और महाराज ने उसका विरोध किया हो। यदि यह बात कह दे तो मुझे दुःख होगा, यही सोचकर शायद मौन हैं। हाँ, यही कारण हो सकता है। कौर भारी हो तो निगले भी कैसे, जबरदस्ती मेरे गले मे ठूँसे भी कैसे? बेचारे अन्दर-ही-अन्दर अकेले टीस का अनुभव कर रहे हैं। अब किसी-न-किसी तरह उन्हे सान्त्वना देनी ही होगी। मगर मेरा यह विचार गलत हो तो, मुझपर यह दोष तो पहले से ही लगा है कि जल्दबाज हूँ। रुककर देखूँगी, यह ज्वालामुखी कब फटेगा। वह एकदम उठ खडी हुई और चली गयी।

जब वह चली गयी, तो मरियाने ने देखा कि रग ठीक नही है। उसने उसे बुलाना चाहा। फिर उसका मन बदला। कुछ क्षण बाद धीरे-से उठा, गुसलखाने की ओर गया। हाथ-मुँह धोकर आया, अन्दर के प्रकोष्ठ मे पहुँचा ही था कि रसोई की ओर से नौकरानी देकव्वा आयी। उससे पूछा, "बच्चियाँ कहाँ गयी।"

"नाट्याचार्यजी आये हैं।"

"एक लोटा पानी ला।" दण्डनायक ने आदेश दिया। वह पानी ले आयी, तब तक वही खडा रहा। लाते ही लेकर खडे-खडे पीने लगा।

देकव्वे ने धीरे-से कहा, "कहते है, पानी खडे-खडे नही पीना चाहिए।"

"ठीक है।" कहकर इधर-उधर देखा और दीवार से लगे एक आसन पर बैठकर पानी पिया। पानी पीने का उसका यह ढग देखकर देकव्वे ने पूछा, "थोडा पानी और ले आऊँ, मालिक?"

"न, काफी है।" कहकर लोटा वही रखकर बाहर निकला। अन्दर के प्रकोष्ठ से चामव्वे के कमरे का द्वार खुलता था, उसे कुछ सरकाकर चामव्वे ने यह देख लिया था। उसने प्रकोष्ठ से लगी अन्दर की ओर बारहदरी मे प्रवेश किया कि चामव्वे ने अपने कमरे से देकव्वे को आवाज दी। देकव्वे लोटा लेकर जाती हुई मालिक की तरफ प्रश्नार्थक दृष्टि से देख रही थी कि आवाज सुनकर मालिकन के कमरे की तरफ चली गयी।

"देकव्वे, आज मालिक का रग-ढग कुछ विचित्र-सा लगता है। अपने कमरे से जब वे बाहर आयें तो मुझे बताना।"

"उनका आज का रग-ढंग मुझे भी कुछ ऐसा ही लगता है। वे तो तभी उठे,

और हाथ-मुँह धोकर बाहर भी चले गये।"

"तुम्हे कैसे मालूम हुआ कि आज उनका रग-ढग विचित्र है।"

"मालिक को क्या मैं आज ही देख रही हूँ, माँ, आज का उनका व्यवहार ऐसा ही लगा।" देकव्वे ने उत्तर दिया।

"क्या लगा ?" देकव्वे ने जो गुजरा, सो कह सुनाया।

"तुम्हारा सोचना ठीक है। जाकर देख आ कि वे फिर अपने कमरे मे गये कि नही ?"

"शायद वे वहाँ गये होंगे जहाँ बच्चियाँ है, माँ।"

"आमतौर पर वे वहाँ नही जाया करते। आज की रीति देखने पर, सम्भव है कि वहाँ गये हो। उस तरफ जाकर देख तो आ सही।"

"जो आज्ञा, माँ।" देकव्वे नाट्याभ्यास के उस विशाल प्रकोष्ठ की ओर धीरे-धीरे चली।

बडे प्रकोष्ठ मे उस कमरे का दरवाजा खुलता था। वह उस कमरे के पास गयी ही थी कि नाट्याचार्य बाहर निकले। अचानक नाट्याचार्य को देखकर देकव्वे ने पूछा, "यह क्या आचार्य, आज अभ्यास इतनी जल्दी समाप्त हो गया।"

"ऐसा कुछ नही, बच्चो मे सीखने का उत्साह जिस दिन ज्यादा दिखता है उस दिन देर तक अभ्यास चलता है। उत्साह कम हो तो अभ्यास सीमित रह जाता है। सीखनेवालो की इच्छा के अनुसार हमे चलना पडता है। आज अचानक दण्ड-नायकजी आ गये तो बच्चियो को कुछ सकोच हुआ जिससे मैंने ही पाठ समाप्त कर दिया। अच्छा, चलूँ।"

देकव्वे ने दरवाजे की आड से अन्दर झाँका। मरियाने एक कालीन पर दीवार से पीठ लगाकर बैठे थे। उनकी गोद मे बोप्पि बैठी थी। बाकी दोनों पिता के पास बैठी थी।

"आज तुम्हारी माँ ने तुम सबको पुरस्कार दिया है, है न ?"

"तभी तो मैंने दिखाया था।" बोप्पि ने कहा।

"हाँ, मै भूल ही गया था।" कहते हुए उसे अपनी तरफ मुँह करके बैठाया और उसके वक्ष पर लटक रहा पदक हाथ मे लेकर कहा, "बहुत अच्छा है, बेटी। ऐसा ही एक हार मुझे भी बनवा देने को अपनी अम्मा से कहोगी ?" उसकी ठुड्डी पकडकर हिलाते हुए प्रेम से थपथपाया उन्होने। बोप्पि ने पूछा, "ऐसा हार कही पुरुष भी पहनते हैं ?"

"क्यो नही, देखो मेरे कानो मे भी बालियाँ है, तुम्हारे भी है, मेरी उँगलियो मे अँगूठी है, तुम्हारी मे भी है।"

"तो क्या स्त्रियाँ पगडी भी बाँध सकती है ?"

"बाल कटा दे तो पगडी भी रख सकती है।"

"छे, छे, कहीं स्त्रियाँ भी बाल कटवाती हैं ?"

बाहर खडी देकव्वे ने दाँत काटा।

"तो मतलब हुआ कि पगडी नही चाहिए। मुझे तो ऐसा पदक और हार चाहिए। जाकर अपनी माँ से कहो, उसी सुनार से बनवाए। अच्छा, आज तुम लोगो ने क्या अभ्यास किया है। तुम तीनो करके दिखाओगी।"

"आप मृदग बजाकर स्वर के साथ गाएँ तो दिखायेंगी।" चामला ने उत्तर दिया।

"वह तो मै जानता नही।"

"वह न होगा तो नाचना भी नही हो सकेगा, पिताजी।" पद्मला ने कहा।

"तो जाने दो। जब तुम्हारे गुरुजी उपस्थित होंगे तब आकर देख लूँगा। ठीक है न ?"

सबने एक साथ कहा—"हाँ।"

"तुम्हारी माँ ने यह पुरस्कार तुम लोगो को क्यो दिया। मालूम है ?"

पद्मला ने कहा, "बच्चियाँ हैं, इसलिए प्रेम से बनवा दिया होगा।"

"बस, और कुछ नही बताया ?"

"और क्या कहेगी। जब कभी कीमती जेवर देती हैं तब माँ यही एक बात कहा करती है। वह चाहती हैं कि उनकी बच्चियाँ सदा सर्वालंकार भूषिता होकर सुन्दर लगें और वे अपनी हैसियत के बराबर बनी रहे। फिर दूसरो की नजर न लगे, इसलिए,सदा होशियार रहने को कहती है। आज भी इतना ही कहा। मगर इस बार एक विशेष बात कही, वह यह कि इमे सदा पहने रहे और किसी को छूने न दें।" पद्मला ने कहा। फिर टीका की, "दूसरे लोग छू लेगे तो क्या होगा, पिताजी ? माँ को शायद घिस जाने का डर है।"

"ऐसा कुछ नही। अगर ऐसा डर होता तो पेटी मे सुरक्षित रखने को कहती। चाहे वह कुछ भी रहे, तुम लोगो को यह पसन्द आया न। मन को अच्छा लगा है न ?"

बोप्पि बीच से ही बोल उठी, "माँ ने भी अपने लिए ऐसा ही हार-पदक बनवा लिया है, पिताजी।"

"ऐसा है, लल्ली ? देखा अपनी अम्मा को, उन्होने मुझसे कहा ही नही। जाकर कोई बुला तो लाओ, जरा देखूं।"

इसकी भनक लगते ही देकव्वे खिसक गयी और सक्षेप मे मालिकन को सारा वृत्तान्त सुनाकर बोली, अभी बुलावा भी आयेगा। वह रसोई की ओर चली गयी, बाल कटाने की बात वह छिपा गयी थी। स्वय बोप्पि बुलाने आयी तो पूछा, "क्यो बेटी, तुम्हारा हार तुम्हारे पिता को कैसा लगा। बताया।"

"बोले, अच्छा है। अपने लिए भी एक ऐसा ही हार-पदक बनवाकर देने को

आपसे कहने को बोला है।" यह सुनकर चामव्वे हँसी रोक न सकी।

"माँ, पुरुष भी कहीं ऐसा हार पहनते हैं ?"

"अच्छा, चलो, पूछें।" गयी तो देखते ही समझ गयी कि अब पतिदेव प्रसन्न है, सोचा अब कोई बात न छेड़े। रात को तो तनहाई मे मिलेंगे ही।

"सुनते हैं, दण्डनायिकाजी ने भी ऐसा ही हार और पदक बनवा लिया है। मुझे बताया भी नही।" आँख मटकाते हुए मरियाने ने ही छेडा।

"कहाँ, अभी तो दर्शन मिला।" कहकर उसने साडी का पल्ला जरा-सा ऐसा हटाया जिससे पदक भी दिख गया।

"अच्छा है। बच्चियाँ थकी है, उन्हे कुछ फल-वल दो, दूध पिलाओ।"

"आप भी साथ चलें तो सब साथ बैठकर उपाहार करेंगे।"

"चलो।"

बच्चियो और पत्नी के पीछे चलता हुआ वह सोच रहा था, इस पेटी-नुमा पदक के अन्दर क्या रखा गया है सो न बताकर इन बच्चियो के दिल मे इसने विद्वेष का बीज नही बोया, यह बहुत ही ठीक हुआ।

रात रोज की तरह ही आयी, मगर चामव्वे को सूर्य की गति भी बहुत धीमी मालूम पड रही थी। वे जैन थे, उन्हे सूर्यास्त के पूर्व भोजन कर लेना चाहिए, लेकिन उसे लग रहा था कि अभी भोजन का वक्त भी नही हुआ। आज देकव्वा भी जैसे इतनी सुस्त हो गयी है कि उमे हमे खाने पर बुलाने के ममय का पता ही नही लग रहा है। वह एक दो बार रसोई का चक्कर भी लगा आयी। देकव्वा अपने काम मे मगन थी। उसने रसोई की दीवार पर दो निशान बना रखे थे। जब सूरज की किरण उस चिह्न पर लगे तब उसे समय का पता लग जाता, यह निशान देकव्वा के लिए घडी का काम देता। लेकिन चामव्वा को तो रात की प्रतीक्षा थी। देकव्वे भोजन की तैयारी की सूचना देने आयी तो उसने पूछा, "आज इतनी देरी क्यो की, देकव्वा ?"

"देरी तो नही की, आज कुछ जल्दी तैयार करना चाहिए था क्या ?"

"बैठो, बैठो, वैसे ही आँख लगी तो समझा कि देर हो गयी। सब तैयार है न ?"

"हाँ, माँ, बुलाने ही के लिए आयी हूँ।"

"ठीक है, बच्चियो को बुलाओ। मैं मालिक को बुला लाऊँगी।" वह बाहर

आयी। नौकर से पूछा, "अरे दडिग, मालिक घर पर नही हैं ?" चामव्वे की ओर की यह आवाज घर-भर मे गूँज गयी।

दडिग भागा-भागा आया, बोला, "मालिक राजमहल की ओर जाते-जाते कह गये हैं कि आते देर लगेगी।"

"पहले ही क्यो नही बताया, गधा कही का।" झिडकती हुई उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना चली गयी।

बच्चियाँ आकर बैठ गयी थी। वह भी बैठी मगर बडबडाती रही, "वह दडिग बेवकूफ, यहाँ मुफ्त का खाकर घमण्डी हो गया है, काम करने मे सुस्त पड गया है, ऐसा रहा तो वह इस घर मे ज्यादा दिन नही टिक सकेगा। देकव्वा, कह दो उसे।"

भोजन रोज की तरह समाप्त हुआ।

उसे केवल एक काम रह गया, पतिदेव की प्रतीक्षा। बच्चियाँ अपने-अपने अभ्यास मे लगी। पढ-लिखकर वे सो भी गयी।

पहला पहर गया। दूसरा भी ढल गया। तब कही तीसरा पहर भी आया। घोडे के हिनहिनाने की आवाज सुन पडी तो वह पतिदेव के कमरे की ओर भागी कि ठीक उसी वक्त दूसरी तरफ से जल्दी-जल्दी आया दडिग उससे टक्कर खाता-खाता बचा। फिर भी उसे झिडकियाँ खानी ही पडी। "अरे गधे, साँड की तरह घुस पडा। क्या आँखें नहीं थी तुम्हारी ?"

"मालिक "

"मालूम है, जाओ।"

चामव्वे ने कमरे मे प्रवेश करते ही कहा, "अगर राजमहल जाना ही था तो कुछ खा-पीकर भी जा सकते थे।"

"मुझे क्या ख्वाब आया था, तुम्हारे भाई ने हरकारा भेजा तो मैं गया।"

"फिर खाना "

"हुआ, तुम्हारे भाई के घर। क्यो, अभी तक सोयी नहीं ?"

"नीद हराम करने की गोली खिलाकर अब यह सवाल क्यो ?"

"क्या कहा, तुम्हे नीद न आयी तो मैं उसका जिम्मेदार ?"

"अपने अन्तरग से ही पूछ लीजिए, आप जिम्मेदार हैं या नही।"

"मुझे तो इसका कोई कारण नही दिखता। बेहतर है, अपनी बात आप खुल्लमखुल्ला स्पष्ट कह दें।"

"मैंने अपनी बात आपसे छिपायी कब है ? सदा खुलकर बोलती रही हूँ। जिस दिन मैंने राजकुमार को युद्धक्षेत्र से वापस बुलाने की बात आपसे कही उसी दिन से आप बदल गये हैं। क्यों ऐसा हुआ, कुछ पता नहीं लगा। आज दुपहर की आपकी स्थिति देखकर मैं काँप उठी थी। राजमहल मे किसी से कोई ऐसा व्यवहार

हुआ हो, जिससे आपको सदमा पहुँचा हो, हो सकता है, पर आपने मुझे कुछ भी बताना जरूरी नहीं समझा। आपके मन का दुख-दर्द जो भी हो उसकी मैं सहभागिनी हूँ मगर मुझे लगता है कि आप मुझसे कुछ छिपाते रहे हैं। मैं कोई बडी राजकार्य की ज्ञाता नही, फिर भी मेरी छोटी बुद्धि को भी कुछ सूझ सकता है। जो हो सो मुझसे कहने की कृपा करें।"

दण्डनायक ने कुछ निर्णीत बात स्पष्ट रूप से कही, "जो अपने मन को बुरा लगे उसे दूसरो पर स्पष्ट न करके मन ही मे रहने देना चाहिए। किसी ज्ञानी ने कहा है कि अपना दुख-दर्द दूसरो मे बाँटने का काम नही करना चाहिए। एक दूसरे महात्मा ने यह भी कहा है कि बाँट न सकनेवाली खुशी खुशी नही, जबकि दूसरो मे बँटा दु ख भी दु ख नही। अत अब तुम इस बारे मे कोई बात ही मत उठाओ।"

"आपका सिद्धान्त अन्य सामाजिक सन्दर्भ मे ठीक हो सकता है। पति-पत्नी सम्बन्धो के सन्दर्भ मे नही, जहाँ शरीर दो और आत्मा एक होती है। दोनो के परस्पर विश्वास पर ही दाम्पत्य जीवन का सूत्र गठित होता है, मेरी माँ सदा यही कहा करती थी। आपसे विवाहित हुए दो दशक बीत गये। अब तक हम भी वैसे ही रहे। परन्तु अब कुछ दिन से आप अपने दुख-दर्द मे मुझे शामिल नही करते। मुझसे ऐसी कौन-सी गलती हुई है, इसकी जानकारी हो तो अपने को सुधार लूँगी।"

"तो एक बात पूछूँगा। तुम्हे अपने बच्चो की कसम खाकर सच बताना होगा। बताओगी ?"

"सत्य कहने के लिए कसम क्यो ?"

"तो छोडो।"

"पूछिए।"

"न, न, पूछना ही दोनो के लिए बेहतर है।"

"आप पूछेंगे नही तो मै मानूँगी नही।"

"उससे तुम्हारी शान्ति भग हो जाएगी।"

"आपको शान्ति मिल सकती हो तो मेरी शान्ति का भग होने मे भी कोई हर्ज नही। पूछ ही लीजिए।"

"तुम चाहती हो कि मैं तुमसे कुछ पूछूँ ही तो तुम्हे अपनी बच्चियो की कसम खाकर सत्य ही बोलना होगा।"

"मेरे ऊपर विश्वास न रखकर कसम खिलाने पर जोर देते है तो वह भी सही। मैं और क्या कर सकती हूँ ?"

"न, न, तुम्हे बाद मे पछताना पडेगा। जो है सो रहने दो। चार-पाँच दिन बाद सम्भव है, मेरा ही मन शान्त हो जाए। इस तरह जबर्दस्ती लिए गए वचन निरर्थक भी हो सकते हैं।"

"तब तो बात और भी बहुत जरूरी मालूम होती है। पूछिए, बच्चो की कसम, सत्य ही बोलूंगी। मुझसे अब ऐसी स्थिति में रहा नही जाता।"

"नही, नही। देख लो, कसम खाकर झूठ बोली तो बच्चों का अहित होगा। अपनी बच्चियो के हित के लिए जाने तुम क्या-क्या करती हो, अब तुम ही उनकी बुराई क्यो करोगी?"

"तो क्या आप यही निश्चय करके कि मैं झूठ ही बोलूंगी, यह बात कह रहे हैं? आपको जिस झूठ का भय है उसका सत्यांश भी तो आपको मालूम होना चाहिए।"

"हाँ, मालूम है।"

"तो सत्य आप ही कह दीजिए। मैं मान लूंगी। उस हालत मे बच्चियो पर कसम खाने की जरूरत ही नही पडेगी।"

"उसे सुनकर हजम कर लेने के लायक ताकत तुममे नही है। इसलिए अब यह बात ही छोडो।"

"तो मतलब यह कि आप कहना ही नही चाहते हैं। जैसी आपकी इच्छा। जब कहने की आपकी इच्छा हो तब कहे।" कहकर चामव्वे वहाँ से उठकर बाहर आ खडी हुई। चार-छ क्षण ठहरी, शायद बुलाएँ। कोई आवाज नही आयी तो अपना-सा मुँह लेकर अपने शयनागार मे आयी। पलँग पर बैठ वह सोचने लगी। दोपहर के ढग और अब की रीति मे जमीन-आसमान का फरक था। दोपहर को जो मानसिक समाधान उनमे रहा वह अब नही है। जो विषय लेकर वे चिन्ता-मग्न हुए है उसपर पूर्ण जिज्ञासा करने के बाद एक निश्चित निर्णय पर पहुँच सके हैं, ऐसा प्रतीत होता है। इसीलिए उनकी प्रत्येक बात निश्चित मालूम पड रही है। बच्चो की कसम खाकर सत्य कहने की बात पर जोर देने से लगता है कि कोई खास महत्त्व की घटना जरूर घटी होगी। बात का पता न लगने पर भी उसने निश्चित रूप से यह समझ लिया था कि इस सबकी जड मुझपर दोषारोपण करना है। परन्तु मुझपर ऐसा आरोप करनेवाले भी कौन होंगे यहाँ, मैंने ऐसा क्या काम किया है? भाई, पति या स्वय महाराज ही मुझ पर कोई दोषारोपण करें, ऐसा कोई काम मैंने नही किया है। जब मेरा मन इतना दृढ है तो मुझे किसी से डरना भी क्यो चाहिए। मैं सवेरे पतिदेव को यह आश्वासन देकर कि बच्चो की कसम खाकर सत्य बोलूंगी, उनके मन की बात जानकर ही रहूँगी। पता नही, उसकी आँख कब लग गयी।

सुबह वह बडी देर से जगी। तब तक मरियाने दो बार पूछ चुके थे कि वह जगी है या नही। उसे उठकर गुसलखाने की ओर जाते समय ही इस बात का पता लग गया था। प्रात कालीन कार्य जल्दी ही समाप्त कर वह पतिदेव के दर्शन को चल पडी।

बच्चियाँ संगीत का अभ्यास करने बैठ गयी थी इससे पति-पत्नी की बातो के बीच उनकी उपस्थिति की उसे चिन्ता नही रही। कोई मिलने आये भी तो समय नहीं देने का दडिग को आदेश देकर वह पति के कमरे मे पहुँची जो उसकी प्रतीक्षा मे बैठा था।

"सुना है कि मालिक ने दो बार याद की। आपको कही जाना था? मुझसे देर हुई, क्षमाप्रार्थी हूँ।"

वह जोर से हँस पडा।

"हँसे क्यो?"

"तुम्हे यह भी नही दिखा कि मै बाहर जाने की वेश-भूषा मे हूँ या नही, इसलिए हँसी आ गयी।"

"मेरा ध्यान उधर गया ही नही। जब यह सुना कि आपने दो बार दर्याफ्त किया तो मेरा ध्यान उधर ही लगा रहा।"

"ठीक है, अब तो इधर-उधर ध्यान नही होगा न, बैठो, बच्चियाँ क्या कर रही हैं?"

"सगीत-पाठ मे लगी है।"

"अच्छा हुआ। आज तुम्हे दुपहर को अपने भाई के घर जाना होगा।"

"सो क्यो?"

"जो बात मुझसे कहने मे आनाकानी कर रही थी वह तुम अपने भाई से कह सकती हो। इस बात का निर्णय हो ही जाना चाहिए।"

"रात को ही निर्णय कर सकते थे, आपने ही नही कहा, इसीलिए मैं चुप रही, बताने से मैंने कहाँ इनकार किया था?"

"हम तो लडाकू लोग है। हमे सवालो का उत्तर तब-का-तब देना चाहिए। युद्ध-भूमि मे गुजरने वाला एक क्षण भी विजय को पराजय मे बदल सकता है। इसलिए लम्बी-लम्बी बात करनेवालो के साथ बात करना ही हमे ठीक नही लगता। मैंने कल रात तुम्हारे चले जाने के बाद यह निर्णय किया है।"

"मैंने भी कल रात निर्णय किया है कि बच्चो की कसम खाकर सत्य कहूँगी। इसलिए जो भी सशय हो उसका निर्णय यही आपस मे हो, किसी तीसरे के सामने न हो।"

"हम दोनो मे निर्णय हो तो भी बात उन्हे मालूम होनी ही चाहिए।"

"वह आपकी आपस की बात है, मैं उसमे प्रवेश नही करना चाहती।"

"ठीक। अब बच्चो की कसम खाकर यह बताओ कि बलिपुर के हेग्गडेजी को आमत्रण-पत्र न पहुँचने का कारण तुम नही हो। बताओ, क्या कहोगी?"

"क्या कहा?"

"फिर उसी को दुहराना होगा?"

"मैं उसका कारण हूँ। यह आप मुझपर आरोप कर रहे हैं।"

"मैं आरोप नहीं करता। राजमहल की तरफ से यह आरोप है, यह झूठा साबित हो, यही मेरा मतलब है।"

"यह आरोप किसने लगाया।"

"मुझे भी इसका ब्यौरा मालूम नही। तुम्हारे भाई मुझे महाराज के पास ले गये। महाराज ने मुझसे सवाल किया, बलिपुर के हेग्गडेजी के पास आमत्रण-पत्र न पहुँचने का कारण दण्डनायिका है। मैंने निवेदन किया कि जहाँ तक मैं जानता हूँ बात ऐसी नही है तो इस तरह का प्रमाण-वचन लेने का आदेश हुआ। किसने कब यह बात कही और यह शका कैसे उत्पन्न हुई ये सब बाते मैं सन्निधान से पूछ भी कैसे सकता हूँ ? उनका आदेश मानकर 'हाँ' कह आया। बाद मे ये सारे सवालात तुम्हारे भाई के सामने रखे तो उन्होंने भी बताया कि इस विषय मे उन्हे कुछ मालूम नही। इसलिए अब तुम अकेली ही इस आरोप को झूठा साबित कर सकती हो तो कहो। इस तरह की हालत उत्पन्न नही होनी चाहिए थी। पर वह आयी है तो जो कहना चाहती हो सो बच्चो की कसम खाकर कह दो।" उसकी आवाज धीमी पड गयी। वह छत की ओर देखने लगा।

चामव्वे कभी किसी से डरी नही। वह द्रोहधरट्ट गगराज की बहिन है। साधारण स्थिति होती तो द्रोही को चीर-फाडकर खतम कर देती। कौन है वह द्रोही ? अब क्या करे वह ? उसका पत्थर जैसा दिल अब चकनाचूर हो गया। कौन माँ ऐसी होगी जो अपने बच्चो की बुराई चाहेगी, "मालिक, मैं माँ हूँ। मैंने जो भी किया बच्चो की भलाई के लिए किया। क्षमा करें।"

"तुमने मुझपर भी विश्वास न किया। अब आश्रयदाता राज-परिवार मुझे सन्देह की दृष्टि से देखता है। क्षमा करनेवाला मैं नही, महाराज, युवराज और युवरानी हैं। इसलिए तुम जाओ, अपने भाई के सामने स्पष्ट रूप से कहो, तुमने क्या किया। तुम्हारे भाई जैसा कहेगे वैसा करो। मैं तुम्हारे साथ भी नही जाऊँगा।"

"आप चलें ही।" वह नरम हो गयी थी।

"मेरा न चलना ही अच्छा होगा। अब फिर अपनी अक्लमन्दी का प्रदर्शन करके उस हेग्गडती के प्रति अपनी बुरी भावना मत दिखाना।"

"स्वय जाकर कैसे बताऊँ।"

"जो है सो कहने मे क्या दिक्कत है ?"

"भाई पूछे तो उत्तर देना आसान होगा। मैं ही बात छेडकर कहूँ, यह उतना आसान नही।"

"तो मतलब यह कि ऐसा करूँ कि वे ही पूछें, यही तुम्हारी सलाह है ?"

"जो मुझे आसान लगा सो सुझाया।"

"ऐसा ही हो, तुम्हारा यह अभिमान बडा जबरदस्त है। मैं जाकर कह दूंगा कि आपकी बहिन को भेज दूंगा, आप ही उससे पूछ लीजिए। ठीक है न?"

"हाँ।"

"तो अब चलो, नाश्ता करे। बाद मे मैं तुम्हारे भाई के यहाँ जाऊँगा। दोपहर के बाद तुम जाना।"

चामव्वा गयी तो मरियाने सोचने लगा, दुर्भावना और स्वार्थ के शिकजे मे पडकर इस औरत ने मेरा सिर झुकवा दिया, यह अविवेक की चरम सीमा है। बात मालूम होने पर उसके भाई क्या करेगे सो तो मालूम नही लेकिन उन्हे ऐसी नीचता कभी सह्य नही होती। अब तो जैसा उसका भाग्य वैसा होगा ही, जो किया सो भुगतना ही होगा। कम-से-कम आइन्दा को होशियार रहे तो भी ठीक होगा। और वो नाश्ते के बाद अपने साले के घर चले गये। चामव्वे कुछ खाये-पीये बिना ही अपनी कोठरी मे जा बैठी और सोचने लगी, यह 'सर्वतोभद्र' यन्त्र जिस दिन धारण किया उसी दिन से इस तरह की तीव्र वेदना भुगतनी पड रही है। इसे निकालकर कूडे मे फेक दूँ, परन्तु ऐसा करने पर कुछ-का-कुछ हो गया तो? अब इससे छूटने का साहस भी नही होता, और उसका तरीका भी नही मालूम।

उधर महादण्डनायक प्रधान गगराज के यहाँ जाने के लिए निकला, इधर दण्डनायिका बिना किसी को बताये वामशक्ति पण्डित के यहाँ पहुँची। अब की बार उसने बडी होशियारी से आगे-पीछे और इर्द-गिर्द देखकर सबकी आँख बचाकर, मन मजबूत करके उसके घर मे प्रवेश किया।

पण्डित तभी अपना पूजा-पाठ समाप्त कर बाहर के बडे बैठकखाने मे जा रहा था। उसे अचानक देखकर वह चकित हुआ, "कहला भेजती तो मैं खुद ही आ जाता। आपने यहाँ तक आने का कष्ट ही क्यो किया। पधारिए, विराजिए।"

चामव्वे बैठी तो वह भी सामने के एक आसन पर बैठा, "कोई खास बात थी, दण्डनायिकाजी?"

"वही, यन्त्र के बारे मे बात करने आयी हूँ।"

"क्यो, क्या हुआ, सब सुरक्षित हैं न?"

"हैं। कल वे पहने भी जा चुके है। फिर भी कल और आज के दिन कोई ठीक से नही गुजरे। कही यह यन्त्र का ही कुप्रभाव न हो, यही पूछने आयी हूँ।"

"न, न, ऐसा हो ही नहीं सकता। यदि दण्डनायिकाजी यह बताने की कृपा करें कि क्या हुआ तो यह बताने मे सुविधा रहेगी कि वह क्यो हुआ।"

"यही हुआ, ऐसा ही हुआ, यह तो निश्चित रूप से कुछ नही कह सकती। परन्तु ऐसा लग रहा है कि मानसिक शान्ति भग हो गयी है। आपने तो कहा था कि इससे वास्तव मे धैर्य, सन्तोष, श्रेय और उन्नति प्राप्त होगी। परन्तु···"

"दण्डनायिकाजी, आपको मुझपर विश्वास रखना चाहिए। नि सकोच बिना छिपाये बात स्पष्ट कह दें तो मुझे आपकी मदद करने मे सुविधा होगी।"

"विश्वास रखकर ही तो ये यन्त्र बनवाये हैं।"

"सो तो ठीक है। परन्तु दण्डनायिकाजी अपने विरोधियो के नाम बताने में आगा-पीछा कर रही हैं तो इसका भी कोई कारण होना चाहिए। मान लीजिए कि वे लोग मान्त्रिक अजन के बल से यह जान गये हो कि आपने मुझसे ऐसा यन्त्र बनवाया है और उन्होने उसके विरोध मे कुछ करवाया भी हो तो?"

"क्या कहा, मान्त्रिक अजन लगाकर देखने मे कही दूर रहनेवालो को यहाँ जो हो रहा है उसका पता लग सकता है?"

"हाँ, मानो आँखो के सामने ही गुजर रहा हो।"

"तो मैं भी यह देख सकूँगी कि वे लोग क्या कर रहे हैं?"

"कई एक बार अप्रिय बात भी दृष्टिगोचर होती है, इसलिए आपका न देखना ही अच्छा है। चाहे तो आपकी तरफ से मैं ही देखकर बता दूँगा।"

"मालिक से परामर्श कर निर्णय बताऊँगी कि आपको देखकर बताना होगा या मैं ही देखूँ। अब मेरे एक सवाल का उत्तर देंगे?"

"हुक्म हो।"

"समझ लीजिए, जैसा कि आप सोचते भी हैं, उन लोगो ने मान्त्रिक अजन लगाकर देख लिया है और हमारे सर्वतोभद्र यन्त्र के विरोध मे कुछ किया है। उस हालत मे आपके इस यन्त्र का क्या महत्त्व रह गया।"

"दिग्बन्धन करके यह इस तरह तैयार किया गया है कि इस पर कोई बुरा प्रभाव भी नही पड सकता। विरोधियो के प्रयत्नो के कारण शुरू-शुरू मे कुछ कष्ट का अनुभव तो होगा ही। परन्तु विरोध को पराजित होकर ही रहना पडेगा। तभी आप समझेंगी इस यन्त्र की ताकत की सचाई।"

"तो मतलब यह कि किसी तरह के भय का कोई प्रश्न नही?"

"किसी तरह के भय का कोई प्रश्न नही, दण्डनायिकाजी।"

"आपने बताया विरोध पराजित होकर हटेगा, इसका पता हमे कैसे लगेगा?"

"जैसे अभी प्रभाव के होने का अनुभव कर रही हैं, वैसे ही प्रभाव के हट जाने का भी अनुभव होगा। तब जो कष्ट या अशान्ति का अनुभव अब कर रही हैं, वह

न रहकर मानसिक शान्ति का अनुभव होगा।"

"तो जो भी इस यन्त्र को धारण करेंगे उन सब पर एक ही तरह का प्रभाव दिखेगा।"

"सब पर एक ही व्यक्ति के द्वारा एक ही तरह का मन्त्र-तन्त्र चला हो तो सबको एक ही तरह की शान्ति आदि का अनुभव होगा। परन्तु विरोधी शक्ति का प्रयोग सब पर नही किया गया हो तो एक ही तरह की अनुभूति कैसे हो सकती है ?"

"अभी आपने बताया कि विरोध का प्रभाव शुरू-शुरू मे होगा ही। वह कितने दिन तक ऐसा रहेगा।"

"इसका निश्चित उत्तर देना क्लिष्ट है, क्योकि यह विरोध करनेवाले की शक्ति पर निर्भर है।"

"आपने कहा कि वह विरोधी शक्ति अपनेआप हट जाएगी हारकर। मान लें कि विरोधी शक्ति बहुत प्रबल है तब उसे पीछे हटने मे कितना समय लग सकता है ?"

"हम कुछ भी न करें तो दो या तीन पखवारे लगेगे। लेकिन आप चाहे तो उसका पता लगाकर दो ही दिन मे दबा सकता हूँ। अगर आप ही बता दे कि किसपर आपकी शका है तो एक ही दिन मे उस विरोधी शक्ति को हटा सकता हूँ।"

उसने फौरन कुछ नही कहा, सोचती बैठी रही। वामशक्ति उसका अन्तरग समझने के इरादे से अपने ही ढग से घूम-फिरकर इस नुक्कड पर पहुँचा। दण्ड-नायिका के मुँह से अन्तरग की बात निकलवाने का समय आ गया। एक-दो क्षण उसने प्रतीक्षा की। फिर बोला, 'भयभीत होने का कोई कारण नही, जैसे वैद्य से रोग नही छिपाना चाहिए वैसे ही ज्योतिषी से अपनी नियति भी नही छिपानी चाहिए।"

"पण्डितजी, आपसे कुछ छिपाना मेरा उद्देश्य नही। परन्तु मैं मालिक की आज्ञा नही टाल सकती, वे मान लेंगे तो फौरन कह दूंगी। वे मान ही लेंगे। तब आपके अजन के प्रभाव से हम सब उन विरोध करनेवालो को भी देख सकेंगे। मुझ मे यह कुतूहल पैदा हो गया है कि इस अजन का प्रयोग कैसे करते हैं और उससे कही घट रही घटना कैसे देख सकते है। इसलिए आप यह न समझें कि हम आप पर विश्वास नही रखते। अच्छा, अब चलूंगी।"

वामशक्ति पण्डित भी उठ खडा हुआ उसे विदा करने।

"आज मैं अपने मायके जाना चाहती हूँ। मुहूर्त अच्छा है न ?" उसने चलते-चलते पूछा।

"आज स्थिर-वासर है। वहाँ कितने दिन तक रहना होगा।"

"रहना नही है। आज ही लौटने की सोची है। बहुत होगा तो एक दिन

रहूँगी।"

"जरूरी काम हो तो जाने मे कोई हर्ज नही। स्थिर-वासर को सूर्योदयान्तर आठ घटियो के बाद दोष नहीं रहेगा। आप राहुकाल में यहाँ आयी, अब वह खतम हो गया है। भोजनोपरान्त जा सकती हैं। आज तेईस घटी तक अश्विनी है। इसी नक्षत्र के रहते आप रवाना हो। अगर किसी अनिवार्य कारण से समय के अन्दर नही निकल सकती हो तो सोमवार को जाइएगा।"

"अच्छा, पण्डितजी, मैं चलूँगी।"

वामशक्ति पण्डित के घर जाते समय जो सावधानी, सजग दृष्टि रही, वहाँ से रवाना होते वक्त वह न रह सकी क्योंकि वह पण्डित विदा करने रास्ते तक साथ आया। यह कहने पर भी कि मैं चली जाऊँगी, आप रह जाइए, वह साथ आ ही गया। इधर-उधर देखे बिना वह पल्ला ही घूँघट-सा सिर पर ओढे निकल पडी। उसे डर रहा कि कही कोई देख न ले, उसका दिल धडकता ही रहा। घर के अहाते मे प्रवेश करते ही उसने पति और अपने भाई के घोडे देखे तो धडकन और भी बढ गयी।

वह यह सोचती हुई अन्दर आयी कि भाई को यही बुला लाने की बात पहले ही कह देते तो वह घर पर ही रह जाती। लेकिन ये हैं कि कोई भी बात ठीक तरह से बताते ही नही। अब क्या करूँ, क्या कहूँ ?

अन्दर कदम रखा ही था कि दडिग ने कहा, "मालिक ने कहा है कि आते ही आपको उनके कमरे मे भेज दें। प्रधानजी भी आये हैं।"

"कितनी देर हुई, क्या पूछा ?"

"कोई एक-दो घण्टा हुआ होगा। पूछा था, कहाँ गयी है ?"

"तुमने क्या कहा ?"

"कहा कि मालूम नही।"

"क्यो, बसति गयी, कहते तो तुम्हारी जीभ कट जाती ?"

"पता होता तो वही कहता, माँ। जो बात मालूम नही वह कैसे कहता, बाद मे कुछ-का-कुछ हो जाये तो ?"

कुछ कहे बिना वह सीधी उस कमरे मे गयी, हाँफती हुई, पसीना पोछती हुई बहिन को आते देख गगराज ने कहा, "आओ चामू, बैठो, पसीने से तर हो, इस धूप मे दूर से चलकर क्यो आयी ? गाडी मे जाती। किसी को कहे बिना कहाँ गयी थी ?"

वह बैठकर पल्ले से पसीना पोंछने लगी, फिर भी पसीना छूटता ही रहा। उसकी आँखो मे डर समा गया था। बहन की यह हालत देखकर गगराज ने कहा, "चामू, तुम जाओ, पहले हाथ-मुँह धोकर स्वस्थ हो आओ। फिर बातें करेंगे।"

उसे भी सुस्ताने के लिए समय मिला, पसीना पल्ले से पोंछती हुई चली

गयी।

मगराज ने कहा, "दण्डनायकजी ने बहुत डरा दिया मालूम होता है।"

"वह इतने से डरनेवाली नहीं, बहिन आपकी ही तो है। आज दोपहर उसकी आप ही के यहाँ आने की योजना थी, इसी के लिए मैं आपके यहाँ आया था। इतने मैं वह किधर गयी सो मालूम नहीं। किसी से कहे बिना गयी थी, इसलिए उसी से जानना होगा कि वह कहाँ गयी थी। इस वक्त आपका यहाँ पधारना उसके लिए अकल्पित बात है। इतना ही नहीं, जिस कठोर सत्य का सामना करना है उसने उसे नरम बना दिया है। सिर उठाकर इतरानेवाली आपकी बहिन के लिए अब शरम से सिर झुकाकर चलना असम्भव बात मालूम पड रही है।"

"उसने जो किया है उसे अपनी गलती मान ले तभी उसका हित होगा, नहीं तो यह बुरी प्रवृत्ति और भी बडी बुराई की ओर बढ सकती है, और मैं चाहता हूँ कि ऐसा न हो।"

"वह स्वभाव से तो अच्छी है परन्तु उसमे स्वार्थ सबसे प्रथम है। इसीलिए जल्दबाजी मे कुछ-का-कुछ कर बैठती है। जो किया सो गलत है, यह वह मानती नही। कई बार वह अपनी गलती को भी सही साबित करने लगती है। इस प्रसग मे भी उसने शायद यही किया हो। बच्चो की कसम खाकर सत्य कहने की नौबत आने से उसकी हालत दो पाटो के बीच के दाने की-सी हो गयी है। लेकिन इससे उसकी भलाई भी होगी, और उसका दृष्टिकोण बदलने मे सहायता भी मिलेगी।"

"गलती मनुष्य मात्र स होती है, परन्तु उसे सुधार लेना चाहिए और सुधार लेने के लिए मौका भी दिया जाना चाहिए।"

"यह सब हमे नही मालूम, आप कुछ भी मौका बना दे उसे यह मानना ही होगा कि उसके स्वार्थ ने उससे ऐसा कराया है।"

"क्या आप समझते है कि वह ठीक है ?"

"ठीक तो नही कह सकता, क्षम्य जरूर कह सकता हूँ। मेरी भावना के पीछे मेरा अपना स्वार्थ भी हो सकता है, इसीलिए मेरे विचार को कोई मूल्य देने की जरूरत नही। जो काम हो चुका है सो तो हो ही चुका और इससे राज-परिवार को सदमा भी पहुँच चुका है। अब तो इसका दुष्परिणाम नही बढ़े, यह देखना ही आपकी जिम्मेदारी है।"

"कितना बडा अपराध भी क्यो न हो, युवराज क्षमा कर देंगे। वे बडे उदार है। परन्तु आत्मीयो के प्रति द्रोह उनके लिए सह्य नही। जो भी हो, पहले यहाँ तो ठीक कर ले, तब वहाँ ठीक करने की बात उठाएँ।"

"आप कहे तो ठीक हो सकती है।"

"यह मेरी बहिन है सही, फिर भी मैं इस सम्बन्ध मे कोई निर्णय कर सकूँगा, यह नही कहा जा सकता।"

चामव्वे बादाम और केसर मिश्रित दूध के दो लोटे, एक परात मे लेकर आयी, "लीजिए भैया, यह दूध।" भाई के सामने परात बढ़ाया तो सही लेकिन उसकी तरफ देख न सकी।

गगराज को उसके मुख पर परेशानी और भय के वे भाव अब नही दिखे जो कुछ क्षण पूर्व दिखे थे। उसने एक लोटा लिया और परात मरियाने के पास सरका दिया। उसने भी एक लोटा लिया।

गगराज ने पूछा, "तुम नही लोगी?"

"मैं बच्चियो के साथ पीऊँगी, अभी उनकी पढाई चल रही है।" चामव्वे ने उत्तर दिया।

दोनो दूध पी चुके तब भी मौन छाया रहा। बात छेड़नी थी गगराज को ही और चामव्वे उसकी बातो का सामना करने के लिए तैयार बैठी थी। पत्नी और उसके भाई को मरियाने कुतूहल भरी नजर से देख रहा था।

अन्त मे गगराज ने कहा, "चामू!"

"क्या, भैया," कहती हुई उसने धीरे से सर उठाया।

"कई बार ऐसे भी प्रसग आते है जब अप्रिय लगने पर भी और मन के विरुद्ध होने पर भी कोई बात कहनी ही पडती है। राज-निष्ठा अलग चीज है और सगे-सम्बन्धी की बात अलग है। किन्तु इन दोनो सम्बन्धो के निर्वाह के लिए मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ। राज-परिवार से, उसमे भी युवराज और युवरानी जैसे उदार मन के व्यक्तियो के द्वेष का पात्र बनने का तुमने निश्चय किया हो तो तुम्हारी मर्जी, वरना स्पष्ट कहो कि राजकुमार के उपनयन का आमन्त्रण-पत्र बलिपुर के हेग्गडेजी को न भेजने का षड्यत्र तुमने क्यो किया। तुम्हारा यह षड्यन्त्र हम सब पर अविश्वास का कारण बना है, और अब तो यह इस स्तर तक पहुँच गया कि इस अपराध के कारण, प्रधान होने के नाते मेरे द्वारा तुम्हे दण्ड भी दिया जा सकता है। बताओ, क्या कहती हो?"

"कहना क्या है भैया, ऐसी छोटी बात यहाँ तक पहुँच सकती है, इसकी मैंने कल्पना नही की थी।"

"दीवारो की भी आँखे होती है, कान होते हैं, हवा मे भी खबर फैलाने की शक्ति होती है, क्या यह बात तुम्हे मालूम नही? तुम्हारी अकल पर परदा पड गया है जो तुम इसे छोटी बात कहती हो? बात अगर छोटी होती तो तुम्हारी तरफ से मैं ही न क्षमा माँग लेता? हेग्गडे दम्पती पर तुम्हे विद्वेष की भावना क्यो है।"

"क्यो है और है भी या नही, सो तो मालूम नही, भैया, परन्तु वे मेरे रास्ते के काँटे जरूर हैं। आप कन्या के पिता होते और उसे एक अच्छी जगह ब्याह देना चाह रहे होते कि कोई आपके आडे आता तो शायद आप समझते कि उनके प्रति मेरा व्यवहार ठीक है या नही।"

"चामू, हमने भी माना कि तुम्हारी कामना सही है, इसीलिए मैंने भी उसे सफल करने का प्रयत्न करने का वचन दिया था। फिर भी हम दोनों को बताये बिना तुमने ऐसा काम किया तो स्पष्ट है कि तुम्हे हमपर विश्वास नही। तब तो हमें यही समझना पडेगा कि तुम्हे अपनी शक्ति का पूर्ण परिचय है।"

"भैया, गलती हुई। यह सारी बात मुझ अकेली के मन मे उत्पन्न हुई और मुझ अकेली से ही यह काम हुआ है, इससे मैं समझती थी कि किसी को पता न लगेगा।"

"द्रोह, अन्याय कितने ही गुप्त रखे जाये वे जरूर किसी-न-किसी तरह से प्रकट हो ही जाते है। अभी थोडी देर पहले उस वामशक्ति पण्डित के यहाँ जो गयी सो क्या तुमने समझा कि मुझे मालूम नही हुआ? घर मे किसी को बताये बिना वहाँ जाने का ऐसा कौन-सा काम आ पडा था?"

मरियाने दण्डनायक ने चकित होकर पत्नी की ओर देखा जो भाई के इन सवालो से मर्माहत-सी होकर सोच रही थी कि भाग्य ने उसे झूठ बोलने से बचा लिया, नही तो भाई के मन मे अपनी बहिन के प्रति कौन-सी भावना उत्पन्न होती। मगर लगता है, मेरे ही भाई ने मेरे पीछे कोई गुप्तचर तैनात कर रखे है। पोय्सल राज्य के महादण्डनायक की पत्नी और प्रधान गगराज की बहिन होकर भी इस तरह सूक्ष्म गुप्तचरी की शिकार हुई तो मेरा गौरव ही कहाँ बचा। उसे सूझा नही कि अब क्या उत्तर दे, सर झुकाकर बैठ गयी।

"क्यो चामू, कुछ बोली नही, चुप क्यो बैठी हो, मनुष्य की दृष्टि सदा आगे-आगे रहती है, अपने ही पद-चिन्हो पर नही जाती। क्यो यह सब कर रही हो, तुम पर किसी दुष्ट ग्रह का आवाहन हुआ है क्या?"

"आप ही यह निर्णय करे कि क्या हुआ है, भैया। अपनी बच्चियो की कसम खाकर कहती हूँ, मेरी एक बात सुनो। मेरी बच्चियो की प्रगति मे कुछ बाधाएँ उपस्थित होने की सम्भावनाएँ दिख रही है। इन बाधाओ मे अपनी बच्चियो की रक्षा मेरा कर्तव्य है। केवल यही एक कारण है कि मैंने जो भी किया, किया है।"

"नही चामू, सभी छोटी-मोटी बातो के लिए बच्चियो की कसम मत खाओ। तुम्हारी जानकारी के बिना ही तुम्हारे मन मे असूया ने घर कर लिया है। वह तुम्हे नचा रही है और भटका रही है, बच्चियो को शापग्रस्त क्यो बनाती हो।"

"तो मतलब यह कि तुम्हे मेरी कठिनाई मालूम ही नही है।"

"तुम्हारी कठिनाई क्या है, बताओ, वह भी सुनता हूँ।"

"तुम्हे मालूम ही है कि मैं अपनी बडी लडकी का विवाह राजकुमार के साथ करना चाहती हूँ। तुमने भी कहा है कि मेरी इच्छा गलत नही। है न?"

"अब भी तो यही कह रहा हूँ। अकेली तुम ही क्यों, इस दुनिया की कोई माता अपनी लडकी के विषय में ऐसी आशा अवश्य ही कर सकती है। इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है।"

"तो मतलब यह कि हमारे पटवारी कालम्मा की पत्नी भी अपनी लडकी कालब्बे को महारानी बनाने की चाह रख सकेगी ?"

"कोई भी ऐसी आशा कर सकती है। परन्तु सबकी आशाएँ सफल नहीं हो सकेंगी।"

"तो क्या आप कहेंगे कि पटवारी की पत्नी की भी ऐसी आशा सही है ?"

"जरूर। परन्तु इतना अवश्य है कि इसके लिए राज-परिवार की स्वीकृति मिलना या न मिलना अनिश्चित है।"

"स्वीकृति देंगे, ऐसा मानना ठीक होगा ?"

"स्वीकार करे तो ठीक अवश्य है।"

"शायद इसीलिए हेग्गडती ने यह षड्यन्त्र रचा है। भैया, मेरे मन मे जो है उसे स्पष्ट बताये देती हूँ। वह सही है या गलत इसका निर्णय कर लेना। मालूम नही तुम जानते हो या नही कि बलिपुर की हेग्गडती अपनी बेटी का विवाह छोटे राजकुमार से करने के मौके की प्रतीक्षा कर रही है।"

"ऐसा है क्या, पहले तुमने कहा था कि जिसे मैं अपना दामाद बनाना चाहती हूँ, उसे ही वह अपना दामाद बनाना चाहती है? अब तुम जो कह रही हो वह एक नयी ही बात है।"

"हाँ, कैसे भी हो, मुझे भी साथ ले लो की नीति है उस हेग्गडती की।"

"माने ?"

"माने तो स्पष्ट हैं। बडे राजकुमार ने हमारी पद्मला को पसद किया है, यानी अब उसकी लडकी का विवाह बडे राजकुमार से तो हो नही सकता, यही सोचकर अब यह नया खेल शुरू किया है उसने, जिसका लक्ष्य बहुत दूर तक है।"

"तो मतलब यह हुआ कि तुम्हे ऐसी बहुत-सी बातें मालूम हैं जो हम भी नहीं जानते। यह नया खेल क्या है ?"

"भैया, वह खेल एक तन्त्र ही नही, बहुत बडा षड्यन्त्र भी है, बल्कि राज-द्रोह भी है।"

"यह क्या मनमाने बोल रही हो, बहिन, राजद्रोह कैसे है ?"

"तो यह तात्पर्य हुआ कि मेरे मालिक ने सारी बातें आपको बतायी ही नहीं है।" कहती हुई चामब्बे ने पति मरियाने दण्डनायक की ओर देखा जिसने उसकी नजर बचाकर चुप्पी साधी। उसे लगा कि अब परिस्थिति उसके अनुकूल बन रही है। उसे कुछ धीरज हुआ। उसने कुछ नये उत्साह से बातें शुरू की।

"तुमने कहा था कि राजवंशियों के द्रोही दण्डनीय है, तो बड़े राजकुमार की मृत्यु का षड्यन्त्र रचनेवालों को सूली पर नहीं चढ़ाना चाहिए क्या ? बड़े राजकुमार कल सिंहासन के उत्तराधिकारी होंगे। जिससे उनका पाणिग्रहण होगा वही महारानी बनेगी। वे मेरी लड़की से प्रेम करते हैं इसलिए कल वही महा-रानी भी बनेगी। लेकिन ऐसी दशा में, हमारी यह आशा पूरी कैसे हो सकती जब हेग्गड़ती छोटे राजकुमार से अपनी लड़की का पाणिग्रहण करके अपने लिए रास्ता सुगम बना रही है। और इसके लिए उसने अपने वांछित मार्ग से हटाकर बड़े राजकुमार को खतम कर अपना ही साम्राज्य स्थापित करने की सोच रखी है। इसीलिए उसने यह सब किया है, भैया। आप पुरुष लोग नहीं जान सकते उस हेग्गड़ती का यह षड्यन्त्र जिसने बड़े ही सज्जन का-सा व्यवहार कर अपना काम साधने के लिए वाममार्ग का अनुसरण किया है जिसके प्रभाव से युवराज और राजकुमार उसके वश में आ गये हैं। भैया, तुम ही बताओ, बड़े राजकुमार युद्ध-रंग में जाकर कौन-सा बड़ा पहाड़ उठा लेंगे। सब कहते हैं कि बड़े राजकुमार से छोटे राजकुमार अधिक सशक्त और होशियार हैं। ऐसी हालत में तो छोटे राज-कुमार को युद्ध-रंग में जाना चाहिए था और बड़े राजकुमार को राजधानी में ही रहना उचित था। परन्तु क्या हुआ है, तुम ही सोचो, भैया। बड़े राजकुमार जब इतनी सफाई से युद्ध नहीं कर सकते तो उन्हें युद्ध-क्षेत्र में भेजकर छोटे राजकुमार को बलिपुर में रहने देने के क्या माने हो सकते हैं ? और वह भगवती तारा का रथ केवल एक बहाना है, भैया, बहाना, बहाना। हम जैन, भगवती तारा बौद्ध देवी, जैनियों का उससे क्या सम्बन्ध ? अपना कार्य साधन के लिए युवराज और युवरानी की उदारता के दुरुपयोग की चरम सीमा है यह। महत्वाकांक्षा रखने वाले ये छोटे लोग कुछ भी कर सकते हैं, किसी बात में व आगा-पीछा न करेंगे। इसीलिए मैं भी अपने और अपनी बच्चियों के हित और सुख की रक्षा के लिए वामशक्ति के यहाँ गयी। किसी की बुराई के लिए नहीं, केवल अपनी रक्षा के लिए गयी, यह, बच्चों की कसम, सच है।"

गंगराज ने शान्ति से किन्तु प्रतिक्रिया व्यक्त किये बिना ही सब बातें सुनीं। चामव्वे ने उसकी दृष्टि में अपनी बातों की प्रतिक्रिया नहीं पायी तो निराश होकर एक दीर्घ श्वास ली और फिर कड़क आवाज में बोली, 'भैया ! मैंने सबकुछ खोल-कर कह दिया है अगर मुझे अपनी बच्चियों की रक्षा का कोई अधिकार है तो अब तक जो गुप्तचर मेरे पीछे रखते रहे उन्हें तुम हेग्गड़े और उनके परिवार के पीछे रखो और उन लोगों का रहस्य जानने की कोशिश करो। तब तुम्हें खुद भी मालूम होगा कि यह राजद्रोह कहाँ हुआ है।"

"तो तुम मानती हो कि तुमने खुद वह आमन्त्रण-पत्र हेग्गड़े को न पहुँचने देने का काम किया है, है न ?"

"हाँ, मुझे ऐसा करना ठीक जँचा, इसीलिए किया।"

"उस हालत मे यह काम खुलकर करने का आत्मबल होना चाहिए था। तुम्हें वह सही जँचा होता तो तुम अपने पति और सहोदर भाई से जरूर कहतीं, लेकिन तुम्हारे मन मे तो यह भावना थी कि जो किया सो ठीक नही किया।"

"ऐसा नही। आप लोगो से इसीलिए नही कहा कि मुझे शका थी कि आप लोग मेरे दृष्टिकोण से विचार करेंगे भी।"

"हेग्गडे परिवार आता तो तुम्हारा क्या बिगडता?"

"वे कोई षड्यन्त्र करते।"

"तुम्हारी दृष्टि मे, अब भी वे षड्यन्त्र ही कर रहे है?"

"हाँ।"

"ठीक है, मगर यह षड्यन्त्र तुम रोकने मे किसी भी हालत मे असमर्थ हो। जो षड्यन्त्र करेंगे वे ही फल भुगतेंगे, हस्तक्षेप करके तुम क्यो उसमे गडबड पैदा कर अपने को कलुषित बनाओ? इस षड्यन्त्र के विषय मे तुम्हारी कुछ भी भावना हो लेकिन उस आमन्त्रण-पत्र की घटना के विषय मे अपनी गलती तुम्हे स्वीकार करनी ही होगी। मैंने जैसा यह वाकया समझा, प्रभु को बता दूँगा। अगर वे तुम्हें क्षमा करेंगे तो मुझे भी सन्तोष होगा। अब तुमने जो नयी बात बतायी उस पर मैंने अभी कुछ नही सोचा। लेकिन ऐसा हुआ होगा तो हेग्गडे बचेंगे नही।"

"तुम्हे नही लगता कि ऐसा हुआ होगा?"

"कुछ भी नही लगता। इन राजनैतिक कुतन्त्रो के कई रूप होते हैं। तुम्हारे दृष्टिकोण से भी विचार करने मे कोई आपत्ति नही, हालाँकि मेरा यह स्पष्ट विचार है कि ऐसा कुछ भी नही हुआ। फिर भी किसी तरह की शका के लिए अवकाश न देकर इसकी तहकीकात करना भी मेरा कर्तव्य है। तुम्हे इसके लिए सर खपाने की जरूरत नही। मुझसे तुमने यह बात की, यहाँ तक ठीक है। दूसरो के सामने ये बात जाहिर नही कर बैठना नही तो परिणाम कुछ-का-कुछ हो जाएगा। अपना मुँह बन्द रखो। तुम्हारी इस विचारधारा का जरा भी पता उस वामशक्ति पण्डित को लगा तो वह तुमको चक्कर मे डाल देगा। ये सभी वामचारी ऐसे ही लोग होते है। उनसे सम्पर्क मत रखो। तुम्हारी भलाई के लिए यह बात कह रहा हूँ। युवराज और युवरानीजी के लौटने पर तुम स्वय प्रेरित होकर उनके समक्ष जाओ और अपनी गलती स्वीकार कर लो। तुम्हारे इस अपराध के लिए यह निकृष्टतम दण्ड है।"

"समधिन बनने की इच्छा रखनेवाली मैं ऐसा करूँ तो क्या मेरा आत्मगौरव बच रहेगा, भैया?"

"अच्छे सम्बन्ध शंकारहित वातावरण मे ही बन सकते हैं। इसके बदले जब उन्हे सब मालूम हो गया है तब भी तुम ऐंठी रहो तो सम्बन्ध और कट भी

जा सकता है। सदा याद रखो कि अपनी गलती स्वीकार करने मे ही बड़प्पन है।"

"अच्छा भैया, जो तुम कहोगे वही करूँगी, अपनी लड़की के लिए और उसके श्रेय के लिए नही करूँगी। परन्तु इस बारे मे राजमहल मे जो हुआ वह मुझे बता सकते हैं ?"

"जितना बताना चाहिए, उतना तो बता दिया है। अब और बताने की कोई वजह नहीं।"

"अगर वह मालूम हो जाए तो आइन्दा ध्यान रख सकूंगी कि वहाँ जाने पर कैसा व्यवहार करूँ।"

"वही तो अब तुम्हे करना नही चाहिए। तुम जैसी रही वैसी रहना सीखो। कोई खास बात हो तो मैं उसकी सूचना दूंगा। आइन्दा तुम स्वतन्त्र रूप से कुछ करोगी तो मैं ही तुम्हारे सम्बन्ध तुडवाने मे अगुआ बनूंगा, समझी ?"

चामव्वे को कोई दूसरा चारा नही था, हाँ, कहना ही पडा।

मयराज चला गया। चामव्वा सोचने लगी कि उसकी अपनी स्वतन्त्रता पर कैसा बन्धन लग गया।

"एक शिल्पी को इतने विषयो का ज्ञान क्यो अनिवार्य है ?" बिट्टिदेव ने सहज ही पूछा, एक बार शिल्पी दासोज से वास्तु-शिल्प के अनेक विषयो पर चर्चा के दौरान। बलिपुर के केदारेश्वर एव ओंकारेश्वर मन्दिरो का शिल्पी यही दासोज था। उसके पिता रामोज ने ही उसे शिल्प शिक्षण दिया था। वैद्यशास्त्र, सगीतशास्त्र, नृत्य-शास्त्र, चित्रकला, वास्तुशिल्प, आदि मे तो पूर्ण पाण्डित्य जरूरी था ही, वास्तव मे, मन्दिर-निर्माण के लिए आगम शास्त्र और पुराणेतिहासो का अच्छा परिचय भी आवश्यक था। बिट्टिदेव नही समझ सका कि एक शिल्पी को इतने विषयो का ज्ञाता क्यो होना चाहिए।

"इन सबकी जानकारी न हो तो कला से जिस फल की प्राप्ति होनी चाहिए वह नही हो सकती। प्रतिमा-लक्षण निर्देश करने के कुछ क्रमबद्ध सूत्र हैं। वे मानव-देह की रचना के साथ मेल खाते है, यद्यपि मानव मानव मे लम्बाई-मुटाई आदि मे भिन्नता होने पर भी प्रतिमा के लिए एक निश्चित आकार निर्दिष्ट है। प्रतिमेय के पद आकार-प्रकार, वेष-भूषा, आसन-मुद्रा, परिकर-परिवेश आदि की व्यापकता की दृष्टि से प्रतिमा का निर्माण करनेवाले को चित्र, नृत्य, सगीत आदि का शास्त्रीय ज्ञान होना ही चाहिए। इस सन्दर्भ मे विष्णु-धर्मोत्तर पुराण का निर्देश

विशेष महत्त्व रखता है।"

"मतलब यह हुआ कि कला सौन्दर्योपासना का ही साधन है।" बिट्टिदेव ने अपना निष्कर्ष निकाला।

"सौन्दर्य तो मूलत है ही, परन्तु एक आदर्श किन्तु मनोहारी प्रतिमा की परिकल्पना सत्य से बाहर नही होनी चाहिए। हमारे देश मे धर्म ही सभी शास्त्रो का मूल आधार है, प्रतिमा-निर्माण कला का भी, इसलिए कला मे प्रतिबिम्बित होने के लिए धर्म को सत्यपूत होना चाहिए, उसमे सौन्दर्य का भी सम्मिलन होना चाहिए।"

"ऐसी एक प्रतिमा का उदाहरण दे सकते है?" बिट्टिदेव जल्दी से तृप्त होने-वाला न था।

"राजकुमार ने बेलुगोल मे बाहुबली स्वामी का दर्शन किया होगा?" दासोज ने खूब ही उदाहरण दिया।

"हाँ, किया है।"

"वह प्रतिमा वास्तविक मानव से दसगुनी ऊँची है, है न?"

"हाँ।"

"फिर भी वह मूर्ति कही भी, किसी दृष्टि से असहज लगती है?"

"नही, वह सभी दृष्टियो से भव्य लगती है।"

"बस, उसकी इसी भव्यता मे कला निहित है।"

"उसकी मुखाकृति जो एक अबोध बच्चे-सी निर्मल, मनोहर हँस-मुख बन पडी है उसीमे तो कला है। वह मूर्ति यथाजात बालक की भाँति दिगम्बर अवस्था की है। परन्तु उसकी नग्नता मे असह्यता नही, सत्यशुद्धता है, जिससे सिद्ध होता है कि कला सत्यपूत और सुन्दर है।"

"बाहुबली की उस मूर्ति का आकार मानव-प्रमाण होता तो वह और भी अधिक सत्यपूत और सुन्दर न हुई होती? उस ऊँचाई पर बैठकर काम करनेवाला शिल्पी यदि नीचे गिरता तो क्या होता?"

"नही, क्योकि कलाकार का एक अनिवार्य लक्षण निर्भय होना भी है, डर-पोक कला की साधना नही कर सकता। बाहुबली मानव होने पर भी अतिमानव थे, देव-मानव थे, उनके हृदय की भाँति उनका शरीर भी अतिविशाल था। उसी की कल्पना कलाकार की छैनी से इस विशालरूप मूर्ति के रूप मे साकार हुई है। वास्तव मे कलाकार की कल्पना सकुचित नही, विशाल होनी चाहिए, उच्च-स्तरीय होनी चाहिए। हमारे मन्दिर इसी वैशाल्य और औन्नत्य के प्रतीक है।"

"इतना विशाल ज्ञान अनिवार्य है एक शिल्पी को?" बिट्टिदेव ने आश्चर्य व्यक्त किया।

"इसमे चकित होने की क्या बात है ?"

"यह कि इतना सब सीखने के लिए तो सारी आयु भी पर्याप्त नही होगी।"

"सच है, परन्तु हमारे समाज की रचना ऐसी है कि यह सब थोडे समय मे भी सीखना आसान है क्योकि बहुत हद तक रक्तगत होकर ज्ञान सस्कार बल से प्राप्त रहता ही है। इसी कारण इन कुशल कलाओ के लिए आनुवशिक अधिकार प्राप्त है, शिल्पी का बेटा शिल्पी होगा, गायक का पुत्र गायक, शास्त्रवेत्ता का पुत्र शास्त्रवेत्ता और योद्धा का पुत्र योद्धा ही होगा। इसी तरह, वृत्ति-विद्या भी रक्तगत होने पर जिस आसानी मे सीखी जा सकती है उस आसानी से अन्यथा नहीं सीखी जा सकती, एक कुम्हार के बेटे को शिल्पी या शिल्पी के पुत्र को योद्धा या वैद्य बेटे को सगीतज्ञ बनाने के माने है उसके मस्तिष्क पर बोझ लादना, एक असफल प्रयास।"

"सस्कारो से सचित ज्ञान-धन को निरर्थक नही होने देने, और मस्तिष्क की क्रियाशील शक्तियो का भी दुरुपयोग या अपव्यय नही होने देने मे हमारे देश मे आनुवशिक वृत्ति विद्यमान है। इसी कारण प्रगति करती हुई कला यहाँ नित नवीन रूप और कल्पना धारण कर विशेष परिश्रम के बिना भी आगे बढी है। अब जिस तरह, राजकुमार ने राज-शासन, शस्त्र-सचालन आदि मे निपुणता रक्तगत सस्कार से पायी है उसी तरह हमारे चावुण ने भी शिल्पकला मे निपुणता पायी है। मेरे बचपन मे पिताजी कहा करते थे कि तुम मुझसे भी अच्छा शिल्पी बनोगे। वही धारणा मुझे अपने लडके चावुण के बारे मे है। जन्म से उसने छेनी-हथौडे की आवाज सुनी है, पत्थर, छेनी, हथौडा, मूर्ति और चित्र देखे है, इसीलिए रूपित करने का अवसर मिलते ही उसकी कल्पना सहज ही प्रस्फुटित होती है। परन्तु आप अगर इस तरह का प्रयोग करना चाहे तो ।"

बिट्टिदेव ने बीच ही मे कहा, वह असाध्य है, यह कहना चाहते है न आप ?"

"यह तो नही कहता कि वह असाध्य है किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वह कष्टसाध्य है। कुछ लोगो का शायद असाध्य भी हो सकता है, जैसे कि हमारे चावुण को बहुत करके शस्त्रविद्या असाध्य ही होगी। साराश यह कि विद्या आनुवशिक है, परम्परा-प्राप्त है और उससे हमे एक आत्म-सन्तोष और तृप्ति प्राप्त होती है। मेरी ही बातें अधिक हो गयी। दोनो कविश्रेष्ठ मौन ही बैठे हैं, आप उनसे विचार-विमर्श कर सकते है कि मेरा कथन ठीक है या नही।"

"सुखी समाज की रचना के लिए और कम परिश्रम से विद्या सीखने के लिए हमारी यह वश-पारम्पर्य पद्धति बहुत ही अच्छी है, इसीलिए द्वेष-रहित भावना से सभी एक-दूसरे के पूरक होकर पनप रहे है। परन्तु सबके अपवाद भी होते ही है। सुनते है कि सुन्दर और श्रेष्ठ काव्यरचना मे सर्वश्रेष्ठ स्थान पानेवाले महाकवि पम्प

के हाथ भयकर तलवार के जौहर भी दिखाते थे।" कवि नागचन्द्र ने कहा।

"हमारी यह अम्माजी भी नृत्य और शस्त्र-विद्याओ मे एक साथ निपुण बन सकती है। शायद इस तरह के अपवादो का कारण भी पूर्व-संचित सस्कार हो सकता है।"

"हमारे राजकुमार ऐसे ही अपवाद के एक उदाहरण बन सकते हैं। उनके व्यूह-रचना के चित्र देखने पर ऐसा लगता है कि युद्ध-क्षेत्र ही सामने प्रत्यक्ष दिख रहा है।" सिंगिमय्या ने कहा।

अब बातो का रुख प्रशसा की ओर बढता देख बिट्टिदेव और शान्तला को कुछ सकोच होने लगा। बिट्टिदेव ने तो पूछ ही लिया, "इस तरह बडो और छोटो को एक ही तराजू पर तौलना कहाँ तक उचित है?"

"प्रशसा से फूलकर खुश होनेवालो की प्रगति होती यह कहनेवाले गुरु ही प्रशसा करने लगे तो वह वास्तविक रीति का अपवाद होगा।" शान्तला ने कहा।

बात का रुख बदलने के ख्याल से बिट्टिदेव ने पूछा, "दासोजाचार्यजी, शिल्पी बनना मेरे लिए असाध्य कार्य है, मानता हूँ, परन्तु शिल्पशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान पाना तो मुझे साध्य हो सकता है। इसीलिए इस शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थ कौन-कौन हैं, यह बताने की कृपा करें, कोई हर्ज न हो तो।"

"कोई हर्ज नही। गगाचार्यजी इन सब बातो को अधिकृत रूप से बता सकते है।" दासोज ने कहा।

"इन कवि-द्वय से हमारे ज्ञानार्जन मे विशेष सहायता मिली है, तुलनात्मक विचार करने की शक्ति भी हममे आयी है। उसी तरह से आप दोनो हमे विद्यादान करके शिल्पशास्त्र का ज्ञान कराएँ तो हमारी बडी मदद होगी।" बिट्टिदेव ने विनीत भाव से निवेदन किया।

"जो आज्ञा। बलिपुर शिल्प का आकर है। यहाँ के मन्दिर, बसति, विहार आदि का क्रमबद्ध रीति से प्रत्यक्ष अनुशीलन करते हुए वे अपनी जानकारी के अनुसार समझाएँगे। इससे हमारा ही फायदा होगा, नुकसान नही होगा। जो कुछ मैंने सीखा जाना उसका पुनरावर्तन होगा।" दासोज ने कहा।

बात बातो मे ही खतम नही हुई, उसने कार्यरूप धारण किया। फलस्वरूप दूसरे दिन से ही प्रात काल के दूसरे पहर से देव-मन्दिरो के दर्शन का कार्यक्रम निश्चित हुआ। दोनो शिल्पी, तीनो विद्यार्थी, दोनो कवि, रेविमय्या और चावुण पचलिंगेश्वर मन्दिर गये। अन्दर प्रवेश कर ही रहे थे कि कवि नागचन्द्र ने कहा, "लगता है, यह मन्दिर अभी हाल मे बनकर स्थापित हुआ है।"

"इसकी स्थापना को साठ वर्ष बीत चुके हैं, फिर भी साफ-सुथरा रखा जाने और अभी हाल मे बादिरुद्रगण लकुलीश्वर पण्डितजी द्वारा खुद जीर्णोद्धार कराने

से यह नवस्थापित लग रहा है।" बोकिमय्या की ओर देखते हुए दासोज ने कहा और उनसे पूछा, "कविजी, आपको कुछ स्मरण है, इस मन्दिर मे देवता की प्रतिष्ठा कब हुई ?"

बोकिमय्या ने कहा, "युवनाम सवत्सर मे सक्रान्ति के दिन, इतना स्मरण है।"

चावुण ने फौरन कहा, "शालिवाहन शक नौ सौ सत्तावन के युव सवत्सर मे पूस सुदी पूर्णिमा को इतवार के दिन यहाँ उमा-महेश्वर की प्रतिष्ठा हुई।"

"शिल्पीजी, आपके लडके की स्मरण-शक्ति बहुत अच्छी है।" कहते हुए कवि नागचन्द्र ने चावुण की पीठ थपथपाकर कहा, "अपने वश की कीर्ति बढाओ, बेटा।"

"उसके दादा ने जिन मन्दिरो का निर्माण किया है, उन सबकी पूरी जानकारी उसे है। सदा वह उसी ध्यान मे मगन रहता है। चलिए।" उन्होने मन्दिर की परिक्रमा मे प्रवेश किया। उनके पीछे सब और सबके पीछे चावुण चल रहा था। शायद उसे सकोच हो रहा था जिसे बिट्टिदेव ने भाँपकर अपने गुरु के कान मे कुछ कहा।

कवि नागचन्द्र रुके और बोले, "चावुण साथ-साथ चलो, यो सकोचवश पीछे मत रहो।" टोली परिक्रमा कर गर्भगृह की ओर सुखनासी के पास खडी हुई। अर्चना हुई। सब मुखमण्डप मे बैठे। रविमय्या सामने के स्तम्भ मे सटकर खडा हो गया।

कवि नागचन्द्र ने अपनी बगल मे बैठे चावुण से पूछा, "यह सपरिवार उमा-महेश्वर की मूर्ति गढनेवाले शिल्पी कौन थे ?"

"हमारे पिताजी बताते है कि गढनेवाले मेरे दादा हैं।" चावुण ने कहा।

बिट्टिदेव ने कहा, "मैं समझता था कि यहाँ लिग की प्रतिष्ठा की गयी है।"

"वह है न। नीलकण्ठेश्वर मन्दिर मे केवल लिंग ही है जो हरे पत्थर का बना है। शायद हमारे देश मे यही एक हरे पत्थर का बना लिग है। ऐसा अन्यत्र कही नही, केवल यही है, ऐसा लगता है।" दासोज ने बताया।

"तब तो यह आश्चर्य भी है, और खास विशेषता भी है। क्योकि जहाँ तक मैं जानता हूँ समूचे भारतवर्ष मे लिंग काले पत्थर या सगमरमर से या स्फुटिक शिला से ही बने है।" कवि नागचन्द्र ने कहा।

"हमारा बलिपुर अन्य बातो मे भी अपनी ही विशेषता रखता है। यहाँ हरे पत्थर का शिवलिंग तो है ही, यहाँ गण्ड-भेरुण्ड का देह-मानव भी है। इसके अलावा उमा-महेश्वर मे भी एक वैशिष्ट्य है।" दासोज ने कहा।

"क्या वैशिष्ट्य है ?" नागचन्द्र ने पूछा।

"राजकुमार को कोई विशेषता दिखायी दी ?" दासोज ने पूछा।

"हाँ, कुछ विशेषता तो अवश्य है । आपसे सावधानी से पूछकर जानना चाहता था, यथावकाश । बैठे हुए महेश्वर की यह मूर्ति राज-ललित्ययुक्त है। उनकी बायी जघा पर उमा आसीन है । इतना ही नहीं, यहाँ महेश्वर का सारा परिवार दिखाया गया अपने-अपने वाहन समेत विनायक और कुमार स्कन्द हैं, वाहन नन्दी मित्र, कुबेर आदि भी निरूपित है। शिवजी के, मानव-जैसे एक ही सिर और दो ही हाथ है, यह सब तो ठीक है परन्तु महेश्वर की गोद मे उनकी अर्धांगिनी देवी उमा को बिठाने के बाद भी उन्हे शिल्पी ने सम्पूर्ण पुरुष की तरह नही बनाया, इसका कारण समझ मे नही आ रहा है । लगता है कि वह स्त्री-पुरुष के सयोग का प्रतीक है, शायद शिल्पी की ही कल्पना की यह विशेषता रही होगी ।" बिट्टिदेव ने स्पष्ट किया ।

"राजकुमार ने यह शिल्प जैसा समझा है वह सही है, परन्तु इसे स्त्री-पुरुष का सयोग समझने का कारण भी तो मालूम होना चाहिए, बता सकेगे ?" दासोज ने प्रश्न किया ।

"इसके एक-दो कारण समझ मे आते है। महेश्वर के दाये कान का कुण्डल पुरुषो का-सा है और बाये का स्त्रियो का-सा । अभय मुद्रा से युक्त रुद्राक्ष माला लिये दायाँ हाथ बलिष्ठ है जो पौरुष का प्रतीक है। परन्तु अर्धांगिनी की पीठ को सहारा देकर उसकी कमर को आवृत कर उनका बायाँ हाथ कोमल स्पर्श के लिए आवश्यक कोमलता मे युक्त है । मेरा समझना सही है या नही, मैं कह नही सकता । कोई और विशेषता हो जो मेरी समझ मे नही आयी हो तो समझाने की कृपा करे ।" बिट्टिदेव ने नम्रता से उत्तर भी दिया । बोकिमय्या और शान्तला को राजकुमार की शिल्प-कला की सूझ-बूझ बहुत पसन्द आयी ।

"राजकुमार की कला-परिशीलन की सूक्ष्म दृष्टि बहुत प्रशसनीय है । महेश्वर की गोद मे उमा के दिखाये जाने पर आमतौर पर किसी का भी ध्यान महेश्वर के अर्द्धनारीत्व की ओर नही जाता जबकि यहाँ वह विशेषता है। यह विग्रह गढ़ते समय कितनी कल्पना और परिश्रम से काम लिया गया है, इस बारे मे मेरे पिताजी कहा करते थे कि इसका वाम भाग तैयार करने के बाद ही महेश्वर का दायाँ भाग पुरुष रूप मे गढा गया । दोनो आधे-आधे भाग कोमलता और पौरुष के भिन्न-भिन्न प्रतीक होने पर भी समूचे विग्रह की एकरूपता मे अवरोधक न बने इस बात का इतना सफल निर्वाह करना कोई आसान काम नही था ।" दासोज ने कहा ।

"ऐसा क्यो किया ? पहले महेश्वर की मूर्ति को गढ लेते और बाद मे उमा का आकार गढ लेते तो ?" नागचन्द्र ने पूछा ।

"हाँ, जैसा आपने कहा, वैसा भी किया जा सकता था अगर यह मूर्ति दो अलग-अलग पत्थरो से गढ़ी गयी होती । काव्य म पद्य या वाक्य या शब्द बदले जा सकते है, शिल्प मे अदला-बदली सम्भव नही ।" दासोज का उत्तर था ।

"तो क्या आपकी यह धारणा है कि काव्य-रचना शिल्प-कला की अपेक्षा आसान है ?" नागचन्द्र ने पूछा।

"न, न, कृति निर्माण मे आपको जो सहूलियते और स्वातन्त्र्य है वह हमे नही है। एक शब्द भी ठीक नही जँचा तो उसे काटकर दूसरा लिख दिया। मगर हमारे काम मे ऐसा नही, कोई एक अश बिगडा तो सभी बिगडा, फिर तो शुरू से दूसरी ही मूर्ति बनानी होगी।" शुक्रनीति से उक्त प्रतिमा लक्षण का हवाला देकर विस्तार के साथ समझाया दासोज ने।

शान्तला और उदयादित्य मौन रहे। समय का पता ही न चला। भोजन का वक्त आने पर सब वहाँ से गये। रेविमय्या ने सबसे पीछे, गर्भगृह की ओर मुँह करके हाथ जोडकर सिर झुकाकर प्रार्थना की, हे भगवन्, आपकी कृपा से इन दोनो बच्चो का जीवन तुम्हारी ही तरह द्वन्द्व-रहित हो।

रोज का कार्यक्रम यथावत् चलने लगा। चावुण बिट्टिदेव से एक साल बडा था। वशानुगत ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति उसमे प्रबल थी किन्तु उसके पिता ने जो सिखाया था उसके अलावा अन्य विषय सीखने की उसे सहूलियते नही मिली थी। सयोग से अब अन्य बालको के साथ उसे भी साहित्य, इतिहास, व्याकरण आदि की शिक्षा प्राप्त करने की सहूलियत प्राप्त हुई। इसके फलस्वरूप उसके अन्तर्निहित सस्कार को एक नया चैतन्य प्राप्त हुआ। बहुत बडे लोगो के सम्पर्क के फलस्वरूप सयम भी उसमे आया। बिट्टिदेव मे कुछ घनिष्ठता हुई, जिससे धीरे-धीरे उनका शस्त्रा-भ्यास भी देखने का अवसर उसे मिला। अधिक समय तक अभ्यास न कर सकने-वाले उदयादित्य के साथ बैठकर उन लोगो के अभ्यास को देखना उसका दैनिक कार्यक्रम बन गया। उसने शस्त्राभ्यास की इच्छा भी व्यक्त की परन्तु वह मानी नही गयी क्योकि कोमल कला का निर्माण करनेवाली वे कोमल हस्तागुलियाँ शस्त्राभ्यास के कारण कर्कशता पाकर कोमल-कला के लिए अनुपयुक्त हो जायेगी, यह समझाकर उसके पिता दासोज ने ही मना कर दिया था। फिर भी वह शस्त्राभ्यास के ठौर पर आया करता और वही से शस्त्रास्त्र-प्रयोग की विविध भगियो के चित्र बनाने लग जाता।

उदयादित्य ने इन चित्रो से उत्साहित होकर चावुण से शिल्प-कला, मन्दिर-निर्माण आदि मे बहुत से विषयो का परिचय पाया। वह इस तरह से जो सीखता उसपर तनहाई मे बैठकर शान्तला से विचार-विनिमय कर लेता। इस पर चावुण-उदयादित्य और उदयादित्य-शान्तला मे अलग ही तरह का मेल-जोल बढा।

उस दिन हेग्गडेजी के घर एक छोटी गोष्ठी का आयोजन था। बाहर कोई धूम-धाम न थी, घर के अहाते के अन्दर उत्साहपूर्ण कार्यकलाप चलते रहे। स्वय युवरानीजी और राजकुमार भी वहाँ आये, इससे मालूम पडता था कि हेग्गडे के घर मे कोई विशेष कार्यक्रम होगा। वह शान्तला का जन्मदिन था। जब राजकुमार का जन्मदिन ही धूमधाम से नही मनाया गया तो अपनी बेटी का जन्मदिन हेग्गडे जी धूम-धाम से कैसे मनाते ?

प्रात काल मगल-स्नान, उपाहार आदि के बाद भोजन के समय तक किसी को कोई काम न था। जहाँ-तहाँ छोटी गोष्ठियाँ बैठी थी। शान्तला, युवरानीजी और हेग्गडतीजी की। मिगिमय्या, रावत और मायण की। बोकिमय्या और नागचन्द्र की। शिल्पी दासोज और चावुण नही थे। गगाचारी अकेला क्या करे, इसलिए वह दोनो कवियो की गोष्ठी मे ही आ बैठा।

दोनो राजकुमार एक जगह बैठे-बैठे ऊब गये। बिट्टिदेव ने रेविमय्या को बुलाकर उसके कान मे कुछ कहा। वह चुपचाप वहाँ से खिमक गया। थोडी ही देर मे बूतुग आया और बिट्टिदेव के कान मे उसने कुछ कहा। बिट्टिदेव ने कहा, "ठीक" और बूतुग वहाँ से चला गया।

थोडी देर बाद बिट्टिदेव और उदयादित्य घर के अहाते मे आये और वही प्रतीक्षा मे खडे बूतुग के माथ पिछवाडे की अश्वशाला मे होते हुए फुलवाडी मे गये।

चारो ओर के सुगन्धित पत्र-पुष्पो की सुरभि मे वह स्थान बडा मनोहर था। रेविमय्या वहाँ चमेली की लताओ के मण्डप के पास उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। बिट्टिदेव और उदयादित्य वही जा पहुँचे। बूतुग वहाँ मे लौटकर घर के अन्दर चला गया।

लता-मण्डप के अन्दर बाँस के सुन्दर झुरमुट की चारो ओर चौकोर हरा-हरा कोमल घास का गलीचा था। रेविमय्या ने वहाँ बैठने को कहा तो बिट्टिदेव ने पूछा, "यहाँ क्या काम है रेविमय्या ?"

"यहाँ रोशनी और हवा अच्छी है। और · " रेविमय्या कह ही रहा था कि वहाँ कही से स्त्रियो के खाँसने की आवाज सुनायी पडी। बात वही रोककर रेविमय्या छलाँग मारकर बाँसो के झुरमुट के पीछे छिप गया। उदयादित्य भी उसके साथ छिप गया। दामब्बे के साथ शान्तला आयी थी।

"रेविमय्या भी क्या जल्दी करता है ? इधर ऐमा क्या काम है ? माँ को अचानक किसी से काम से जाना पड जाये तो युवरानीजी अकेली रह जायेगी। मुझे जल्दी जाना चाहिए।" यह शान्तला की आवाज थी।

"छोटे अप्पाजी का जी ऊब रहा था। इसलिए बुलाया है आपको।"

"कहाँ है वे ?"

"बाँस के झुरमुट की उस तरफ।"

"इन्हें इधर धूप में क्यों बुला लाये, रेविमय्या ?"

"जगह सायेदार है, अम्माजी। घर के अन्दर उतना अच्छा नहीं लगेगा। इसलिए ऐसा किया। गलती की हो तो क्षमा करें, अम्माजी।"

"गलती क्या, तुम्हारे विचार ही सबकी समझ में नहीं आते। कभी-कभी तुम्हारी रीति व्यावहारिक नहीं लगती। ओहो, छोटे अप्पाजी भी यहीं है।" वहीं उदयादित्य को भी देखकर शान्तला ने कहा। बिट्टिदेव की समझ में अब आया कि रेविमय्या ने तनहाई की परेशानी दूर करने के लिए क्या किया है।

उसका मन उत्साह से भर गया। शान्तला को सन्तोषपूर्ण स्वागत मिला, "पधारना चाहिए, छोटी हेग्गडती को।" कहते हुए जब बिट्टिदेव उठ खड़े हुए।

"मुझे यह सब पसन्द नहीं। राजकुमार आसीन हों।" कहती हुई वह सामने बैठने के ही इरादे से पीताम्बर ठीक से सँभालने लगी। बिट्टिदेव ने शान्तला को सीधा सामने देखा, जैसे पहले कभी देखा न हो और आज ही प्रथम बार देख रहा हो।

"बैठिए, क्या देख रह है ?" कहकर वह अपनी पीठ की ओर देखने लगी तो बिट्टिदेव को हँसी आ गयी। शान्तला ने फौरन उसकी ओर मुड़कर पूछा, "क्यों क्या हुआ ?"

बिट्टिदेव ने उत्तर में सवाल ही किया, "छोटी हेग्गडतीजी को उस तरफ क्या दिख रहा है जो इस तरह मुड़-मुड़कर देख रही है ?"

"राजकुमार कुछ आश्चर्य से जिधर देख रहे थे उधर ही मैं भी देखने लगी थी।"

"वह दृश्य अकेले मुझे ही दिखा था।"

"तो क्या जो आपको दिखा वह मुझे न दिखेगा।"

"हाँ, हाँ, जब दृष्टि-भेद हो तब ऐसा ही होता है।"

"अच्छा जाने दीजिए। आपकी बातों से यह स्वीकृति मिली कि मुझे मालूम होनेवाले अनेक विषय आपको भी मालूम नहीं पड़ते। अच्छा, अब आप बैठिए।"

मौका देखकर रेविमय्या, दामब्बे और उदयादित्य वहाँ से गायब हो चुके थे। बैठते हुए बिट्टिदेव ने इर्द-गिर्द देखकर पुकारा, "उदय, उदय। इधर चमेली के फूल चुन रहा हूँ।" दूर से उदयादित्य की आवाज सुन पड़ी।

कुछ देर तक दोनों की मौन दृष्टि हरी घास पर लगी रही।

वह सोच रही थी कि बुलाया इसलिए था कि अकेले बैठे-बैठे ऊब गये है। अब मौन होकर बैठ गये, इसके क्या माने ! दृष्टि बिट्टिदेव की तरफ रहने पर भी बात अन्दर-ही-अन्दर रह गयी थी। दायें हाथ के सहारे बैठी शान्तला ने ठीक बैठकर पैरों का स्थान बदला। पाजेब ने मौन में खलल पैदा कर दिया।

बिट्टिदेव की दृष्टि फौरन शान्तला पर पड़ी जो यही सोच रहा था कि बात की शुरुआत कैसे करे। वह बोला, "रावत मायण ने अपनी कहानी आपके गुरुजी को सुनायी है क्या ?"

"उसके बारे मे जानना चाहकर भी मैंने गुरुजी से पूछना अनुचित समझा।"

"उस दिन रावत ने जो क्रोध प्रकट किया उससे लगा कि उन्होने बहुत दुख सहा है।"

"दुख क्या सहा होगा, परन्तु दुख के बदले अगर क्रोध उत्पन्न हो तो मनुष्य शकुनि बन जाता है और जिसे क्रोध नही आता, वह पुरुष दुख का अनुभव करते हुए भी धर्मराज युधिष्ठिर बनता है।"

"तो तुम्हारा मतलब है कि मायण का क्रोध गलत है।"

"असली बात जाने बिना निर्णय कर नहीं कर सकते। पहले मायण की बात सुननी होगी और फिर उस स्त्री की भी। उसके बाद ही किसी निर्णय पर पहुँचना होगा।"

"तो फिर शकुनि और युधिष्ठिर की तुलना का कारण ?"

"मनुष्य क्रोध के फलस्वरूप मानवता खो बैठता है, यह बुजुर्गों का अनुभव है।"

"जो भी हो, उस कहानी को जानने के बाद अब उनके उस क्रोध का निवारण करना चाहिए।"

"उन्होने हमारे गुरुवर्य से अपनी बात कही होगी तो वे उन्हे समझाये बिना न रहेगे, बल्कि उन्हे सही दिशा मे सोचने को प्रेरित भी करेंगे।"

"भोजन के लिए अभी देर है, वे सब चुपचाप बैठे भी है, रेविमय्या से कहला भेजे और उन्हे बुलवाएँ तो क्या गलत होगा ?"

"बडो को इस तरह बुलवाना ठीक नही होता।"

इनकी बातचीत पास मे उस ओर स्थित लोगो को सुनायी दे रही थी। रेविमय्या ने दासब्बे को इशारे से पास बुलाया और कहा, "ये फल ले जाकर अपनी छोटी मालकिन को दे दो, वे चाहे तो केले के रेशे मे पिरोकर एक गजरा भी तैयार करके दो। राजकुमार तुम्हारे साथ रहेगे। मै जल्दी लौटूँगा।"

दासब्बे केले का रेशा और कुछ सुगन्धित पत्ते अपने पल्ले मे भरकर, उदयादित्य के साथ बिट्टिदेव और शान्तला के पास पहुँची।

बिट्टिदेव ने पूछा, "उदय, फूल चुन चुके न ?"

"हाँ।"

शान्तला ने कहा, "आइए, बैठिए।"

दासब्बे फूलो को घास पर रखकर एक ओर बैठ गयी। उदयादित्य शान्तला के पास जा बैठा।

बिट्टिदेव ने पूछा, "रेविमय्या कहाँ है ?"

"घर की ओर गया है, अभी आता ही होगा।" दासब्बे ने कहा, और फूल गूँथना शुरू किया। शान्तला ने उसका साथ दिया।

इस तरह फूलो को रेशे मे गूँथना बिट्टिदेव और उदयादित्य ने पहली ही बार देखा था। फूल गूँथने मे दासब्बे से तेज शान्तला की उँगलियाँ चल रही थी जिससे यह काम बहुत आसान हो गया। बिट्टिदेव ने भी साथ देना शुरू किया लेकिन उससे न तो गाँठ लगी, न ही फूल गुँथ पाये बल्कि वे नीचे जा गिरे।

यह देखकर शान्तला बोली, "कहाँ तलवार पकडनेवाले ये हाथ और कहाँ ये सुकोमल फूल ?"

"फूल की कोमलता ज्यो-की-त्यो बनाये रखनेवाले ये तुम्हारे हाथ तलवार भी पकड सकते है तो मेरे हाथ फूल नही गूँथ सकेगे ?"

"यह कोई ब्रह्म-विद्या नही। सीखने पर ही यह कर सकोगे, परन्तु राजकुमार को यह सीखने की जरूरत ही क्या जबकि राजमहल मे गजरा बनानेवालो के झुण्ड-के-झुण्ड इसी काम के लिए तैनात है।" शान्तला ने कहा।

"तो भी सीखना तो चाहिए ही, सिखा देगी ?"

"हाँ, हाँ। उसमे क्या रखा है, अभी सिखा दूँगी। परन्तु सीखने के लिए राजकुमार को यहाँ मेरी बगल मे बैठना होगा।" बिट्टिदेव तुरन्त उठा और उसकी बायी ओर बैठ गया।

अपने हाथ का गजरा एक तरफ रखकर, उनके हाथ मे केले का एक रेशा देकर तथा दूसरा अपने हाथ मे लेकर वह समझाने लगी, "देखिए, यह रेशा बाएँ हाथ मे यो पकडिए और दाएँ हाथ की तर्जनी और मध्यम उँगली से डोरे को ऐसा घुमाव दीजिए।" बिट्टिदेव वैसा करने लगा तो वह फिर बोली, "न, इतनी दूर का घुमाव नही, यह डोरा फूल के बिल्कुल पास होना चाहिए।"

उसके हाथ की तरफ देखते हुए भी बिट्टिदेव ने फिर वैसा ही किया। लेकिन शान्तला ने फिर टोका, "बाएँ हाथ के फूल रेशे के घुमाव के अन्दर धीरे से गूँथकर दाएँ हाथ की डोरी धीरे से थोडी कसना चाहिए। इससे फूल डोरे मे बँध भी जाएँगे और मसलने भी नही पाएँगे।"

बिट्टिदेव ने डोरा कसते वक्त फूल कही गिर न जाये—इस डर से उसे बाएँ अँगूठे से दबाकर पकडा ही था कि तभी उसका कोमल डठल टूट गया। फूल नीचे गिर गया तो, अपने हाथ का डोरा नीचे रख शान्तला 'यो नही, यो' कहती हुई बिट्टिदेव के हाथो को अपने हाथो म पकडकर गुँथवाने लगी। तब उसे कुछ ज्यादा ही सटकर बैठना पडा। जिससे दोनो को कुछ आह्लादकर आनन्द हुआ। लगा कि ऐसे ही बैठे रहे और हाथो मे हाथ रहे। लेकिन जैसे ही शान्तला को दासब्बे की उपस्थिति का अहसास हुआ तो वह तुरन्त उसका हाथ छोडकर कुछ सरककर

बोली, "अब गूँथिए, देखूँ ज़रा !"

"एक-दो बार और हाथ पकडकर गुँथवा दो न !" बिट्टिदेव ने कहा, जैसे उसे वहाँ शान्तला के सिवाय दूसरे कोई दिख ही नही रहे थे।

"हाँ, अम्माजी, राजकुमारजी का कहना ठीक है।" दासब्बे के सुझाव से बिट्टिदेव को कुछ सकोच-सा हुआ। लेकिन शान्तला का सकोच कुछ-कुछ जाता रहा। वह उसके पास सरक आयी और चार-पाँच फूल गूँथवाकर बोली, "अब आप कोशिश स्वय करे।"

बिट्टिदेव ने कोशिश की। फूल मसलने नही पाये, टूटकर गिरे भी नही। हाँ, डोरे मे उल्टे-सीधे बँध गये।

उसकी ओर सकेत करती हुई शान्तला बोली—

"ऐसे ही करते जाइए। अभ्यास से यह बनने लगेगा।"

"उदय तुम सीखोगे ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"नही भैया," उदयादित्य ने कहा। थोडी देर फिर मौन। फूल गूँथे जा रहे थे, गजरे बन रहे थे। अचानक उदयादित्य ही बोल उठा, "भैया, आज शान्तला का जन्मदिन है। जो गजरा तुम बना रहे हो उसे आज वही भेट करो तो कितना अच्छा होगा !"

"क्या भेट कर रहे हो ?" सिगिमय्या की आवाज़ पर सबकी दृष्टि गयी। बिट्टिदेव ने अधबना गजरा वही रखकर उठने की कोशिश की।

"राजकुमार, आप बैठिए, आओ मायण। घर मे बच्चो को न पाकर बहन ने देख आने को मुझसे कहा तो इधर चले आये। सब यहाँ है तो हमे चलना चाहिए।"

"बैठिए, माँ ने बुलाया है क्या, मामाजी !"

"नही, यो ही दर्यापत किया था।" और बैठते हुए कहने लगे, "अपना गजरे बनने का काम चलाये रखिए।"

मायण भी बैठ गया। शान्तला और दासब्बे ने अपनी बात आगे बढायी।

"यह क्या, घर छोडकर सब यहाँ आकर बैठे है !" सिगिमय्या ने सवाल किया।

"यो ही बैठे-बैठे ऊब गये थे तो इधर चले आये। अब फूल चुनकर गजरे बना रहे हैं।" बिट्टिदेव ने उत्तर दिया और दासब्बे से पूछा, "रेविमय्या कहाँ गया, अभी तक नही आया !"

"उसे युवरानीजी ने किसी गाँव मे काम पर भेजा है," उत्तर दिया सिगिमय्या ने। इतने मे उदयादित्य उठा, "मै घर जाऊँगा।"

शान्तला ने कहा, "दासब्बे, जाओ, उन्हे घर तक पहुँचा आओ।" वे दोनो चले गये। मायण मौन बैठा था। सिगिमय्या ने उसे छेडा, "क्यो मायण, आज गूँगे

की तरह बैठे हो ? बोलते नहीं ? कुछ कहो। तुम्हारा पुराना अनुभव ही सुन लें। मन तो बहलेगा।"

"हम क्या सुनायेंगे। किस्सा तो मारने-काटनेवाले सुना सकेंगे। मैं कवि होता तो अवश्य बडे दिलचस्प ढग से सही-झूठ सब नमक-मिर्च लगाकर किस्सा गढ़ता और सुनाता।" मायण ने कहा।

"अब जब यहाँ कवि कोई नहीं तो, तुम ही कुछ कहो।" सिंगिमय्या ने आग्रह किया।

मायण ने सिर खुजाते हुए कहा, "कुछ सूझता नहीं।"

शान्तला बोली, "आप ही कहिए, मामाजी।"

"राजकुमार ही कुछ कहे तो " कहकर सिंगिमय्या ने बिट्टिदेव की ओर देखा।

"किस्सा-कहानी हम बालक आपस मे कहे—यह तो ठीक है, मगर बडो के समक्ष यह सब ठीक लगेगा ?" बिट्टिदेव ने मानो शान्तला की तरफ से भी यह बात की।

कुछ क्षणो के लिए फिर मौन छा गया। कुछ देर बाद बिट्टिदेव ने ही पूछा, "इस गाँव के पश्चिम मे एक मानवाकार गण्ड-भेरुण्ड की स्थापना की गयी है, इसके पीछे कोई आशय है ?"

"बिना आशय किसी की स्थापना नहीं की जाती। कोई-न-कोई आशय अवश्य होगा।" बीच मे ही मायण बोल उठा।

"क्यो रावतजी, इस बारे मे आपको भी कुछ जानकारी है ?" बिट्टिदेव ने मायण से पूछा।

"मुझे अधिक तो मालूम नहीं राजकुमारजी। परन्तु इसे जब कभी देखता हूँ, मेरे मन मे यह भावना जागती है कि दुरगी चाल चलनेवाले पर कभी विश्वास मत रखो।" मायण ने कहा।

"दुरगी चाल के क्या माने ? घोडे की चालें कई तरह की होती है। तुरकी चाल, सरपट आदि-आदि। यही न आपका मतलब ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"घोडा मनुष्य नहीं राजकुमारजी। रावत होने से मुझे घोडे की सब चालें मालूम है। मैंने तो मानव के बारे मे कहा है। बाहर कुछ और भीतर कुछ। मुँह मे राम-राम, बगल मे छुरी। इस तरह की रीति, यही दुरगी चाल है।"

"यह गण्ड-भेरुण्ड खडा करनेवाले चामुण्डराय की विरुदावली मे गण्ड-भेरुण्ड एक विरुद था, सुनते हैं। पीछे-पीछे क्या होता है या हो रहा है उसे वे प्रत्यक्ष देखकर सावधानी बरतते थे। गण्ड-भेरुण्ड की आँखें गिद्ध की-सी होती हैं, सुनते हैं। इसीलिए यह आगे और पीछे स्पष्ट दिखायी देने का प्रतीक है। ऐसा नहीं हो सकता क्या ?" शान्तला ने अपना मत व्यक्त किया।

"यह भी हो सकता है। पर मुझे जो लगा सो मैंने बताया।" मायण बोला।

"श्रवणबेलगोल में बाहुबली मूर्ति गढ़वानेवाले यही चामुण्डराय हैं न ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"नहीं, वे अलग हैं और ये अलग हैं। वे गंगराजा के आश्रित थे और ये चालुक्य राजा के आश्रय में रहे आये। बनवासी में राज-प्रतिनिधि थे। इनकी दृष्टि जितनी निर्मल थी, मन भी उतना ही विशाल। सहिष्णुता के तो वे सजीव मूर्ति थे। उनके सामने का मन्दिर शिवजी का है, मालूम है न ? इस चामुण्डराय का 'जगदेकमल्ल' विरुद था। इतना ही नहीं, बलिपुर के अपने प्रतिनिधि नागवर्म के द्वारा यहाँ जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव इन चारों मत-सम्प्रदायों के अनुयायियों के निवास के लिए गृह-निर्माण करानेवाले महानुभाव यही थे। उनका वह महान् आदर्श सार्वकालिक है। मेरे गुरुवर्य ने यही बताया है। उनकी समन्वय दृष्टि, सहानुभूतियुक्त विचार-विनिमय की रीति और मत-सहिष्णुता के बल पर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य—ये सब सुखी जीवन के लिए उत्तम मार्ग है। गुरुवर्य ने यह बात बहुत स्पष्ट रूप से समझायी है।" शान्तला के हाथ में गजरा तब तक वैसा ही रुका रहा।

"परन्तु रावतजी की दृष्टि में इस दुरंगी चाल चलनेवालों के सम्बन्ध में अगर होशियार रहने का संकेत है तो उसका कोई कारण भी होना चाहिए न ?" बिट्टिदेव ने छेड़ा।

"राजकुमारजी का कहना ठीक ही लगता है। उस दिन राजकुमार के जन्म-दिन के अवसर पर सबकी बातों से इस मायण की बातें निराली ही रहीं।" सिंगिमय्या ने कहा।

"हाँ, हाँ, तभी तो उस दिन कविजी ने कहा था कि उसपर वे सुन्दर काव्य लिखेंगे।" बिट्टिदेव ने सुर-से-सुर मिलाया।

"आनन्द-मंगल के समय उस कड़वी बात की याद नहीं करनी चाहिए।" मायण हाथ न आया लेकिन सिंगिमय्या को भी वह ठीक जँचा, "अच्छा, यह बात और कभी कह लेना। आज कुछ और कहो।"

"धारानगरी पर विजय के बाद वहाँ आग लगाते वक्त हमारे प्रभु ने जो बुद्धिमानी दिखायी थी, उसका किस्सा सुनाऊँ ?" मायण ने पूछा।

"वह किस्सा सबको मालूम है।" सिंगिमय्या बोले।

"मैं जो किस्सा बता रहा हूँ वह सबको मालूम नहीं। वह किस्सा अलग ही है। किस्सा युद्ध-रंग का नहीं। वह घटना शिविर में घटी थी। उस रात प्रभु के अंगरक्षक दल का उत्तरदायित्व मुझ पर था। कुछ और चार-पाँच लोग मेरे आज्ञानुवर्ती थे। आधी रात का समय था। प्रभु के शिविर के मुख्य द्वार पर मैं था। पूर्णिमा की रात थी वह। दूध-सी चाँदनी बिछी थी। तभी एक योद्धा वहाँ आया। किसी तरह के भय के बिना वह सीधा मेरे पास आकर खड़ा हो गया।

उसे देखते ही मुझे मालूम हो गया कि वैरी के दल का है। मैंने म्यान से तलवार निकाली। मुंह पर उँगली दबाकर वह मेरे कान मे फुसफुसाया, 'मैं महाराज भोज-राज के ठिकाने का पता लगाकर आया हूँ। मै तुम्हारी ही सेना का आदमी हूँ। लेकिन इस समाचार को पाने के लिए प्रभु से आज्ञप्त होकर शत्रुओ की पोशाक मे आना पडा है।'

मैंने कहा, रात के वक्त किसी को अन्दर न आने देने की कडी आज्ञा है, तो वह बोला, 'परमार भोज को पकडना हो तो इसी रात को पकडना साध्य है। कल सुबह के पहले वह अन्यत्र चला जाएगा। मैं प्रभु का गुप्तचर हूँ। अब तुम मुझे अन्दर न जाने दोगे तो राजद्रोह का दण्ड भोगना होगा। इसलिए मुझे अन्दर जाने दो, यही दोनो के लिए अच्छा है। प्रभु के लिए भी यह हित मे होगा।'

'प्रभु सो रहे है, उन्हे जगाया कैसे जाए ?' मैने धीरे से पूछा।

'वे वास्तव मे मेरी प्रतीक्षा मे हैं, सोये नही होगे।' उसने धीरे से उत्तर दिया।

'अगर यह बात निश्चित होती तो वे मुझसे नही कहते ?' मैंने फिर प्रश्न किया।

'उन्होने सोचा होगा, कह दिया है।' उसके इस उत्तर पर मेरा मन बहुत असमजस मे पड गया। अन्दर जाने देना भी मुश्किल, न जाने देना भी मुश्किल ! मैंने एक निश्चय किया। प्रभु की रक्षा करना मेरे लिए प्रधान है इसीलिए इस नवागन्तुक के पीछे, उसे बिना पता लगाये जाकर अन्दर के परदे के पास तलवार निकालकर तैयार रहूँगा। इसके पास तो कोई अस्त्र-शस्त्र नही है। खाली हाथ आया है। परमार भोज और काश्मीर के हर्ष—दोनो के छिपकर रहने से प्रभु परेशान थे। अगर आज ही रात को भोज बन्दी बना लिया गया तो ? यह सब सोचकर मैंने कहा, 'तुम यही रहो, प्रभु जागते होगे तो तुम्हे अन्दर चला जाने दूँगा।' परन्तु दूसरे ही क्षण, ऐसा लगा कि एक अपरिचित को अकेले अन्दर जाने देना ठीक नही। इसलिए मैने फिर कहा, 'नही, तुम मेरे ही साथ आओ, प्रभु जाग रहे होगे तो तुम अन्दर चले जाना, मैं बाहर ही रहूँगा। यदि सो रहे होगे तो दोनो लौट आयेगे।'

'तुम बडे शक्की मालूम पडते हो।' वह फुसफुसाया तो मैं बोला, 'यह स्थान ही ऐसा है। प्रभु हम पर पूर्ण विश्वास रखकर निश्चिन्त है। ऐसे वक्त पर हमारी गैरसमझी के कारण कुछ अनहोनी हो जाए तो उसका जिम्मेदार कौन होगा ? इसलिए हम तो हर बात को तब तक सन्देह की ही दृष्टि मे देखते हैं जब तक हमे विश्वास न हो जाए।'

'इतना सन्देह करनेवाले खुद धोखा खायेगे।' कहकर उसने मुझे डराना चाहा।

'अब तक तो ऐसा नही हुआ है,' कहकर मैंने उसका हाथ पकड़ा और नकेल-लगे पशु की तरह उसे अन्दर ले आया। फिर हम द्वार के परदे के पास गये। उसमे एक छोटा-सा छेद था। उससे रोशनी पड रही थी। मैंने झाँककर देखा। प्रभु पलग पर बैठे थे। इस नवागन्तुक की बात मे कुछ सचाई मालूम पडी। मैंने कहा, 'ठीक है, तुम अन्दर जाओ, मगर जल्दी लौटना।' इस पर वह पूछने लगा, 'किस तरफ से जाना है?' इस पर मुझे फिर शका हुई। लगा कि मैं ही पहले अन्दर जाऊँ और प्रभु की अनुमति लेकर तब इसे अन्दर भेजूं—यही अच्छा होगा। वह आगे बढ़ ही रहा था कि मैंने उसे वही रोक दिया और घण्टी बजायी तो अन्दर से प्रभु ने पूछा, 'कौन है?'

'मैं हूँ मायण, एक व्यक्ति स्वय को हमारा गुप्तचर बताता है और कहता है कि परमार भोज का पता लगाकर आया है, क्या सन्निधान के पास उसे भेजूं?' मैंने पूछा।

'भेजो।'

आज्ञा हुई तो फौरन लौटा। भाग्य से वह वही खडा था। मैंने उससे कहा, 'जाओ, घण्टी है, उसे बजाना और बुलाने पर ही अन्दर जाना।' इतना सब होने के बाद मेरे मन मे फिर भी सन्देह बना रहा। इसलिए उस छेद से देखने की इच्छा हुई। परन्तु वहाँ शिविर के मुख्य-द्वार की रक्षा की याद आयी, जहाँ पहरे पर कोई और नही था। तो बाहर दौड पडा। साथ के दूसरे व्यक्ति को बुलाकर वहाँ पहरे पर खडा किया। फिर मैं अन्दर आया और छेद से देखने लगा। मैं अपनी आँखो पर विश्वास न कर सका। मुझे लगा कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ। आँखे मली। फिर समझा, जाग रहा हूँ। फिर से एक बार छेद से देखा। मुझे लगा, मैंने जिसे अन्दर भेजा था वह पुरुष नही, कोई स्त्री है। मुझे मालूम ही नही था कि हमारे गुप्तचरो मे स्त्रियाँ भी है।

'हाँ, आगे।' प्रभु के शब्द थे जो पलग पर अटल बैठे थे। उनकी ध्वनि मे आत्मीयता के भाव न थे। सन्देह और प्रश्न दोनो ही उससे व्यक्त हो रहे थे।

'प्रभुजी, मुझे क्षमा करें। मैं परमार भोज की तरफ की हूँ यह सत्य है। झूठ बोलकर अन्दर आयी हूँ। परन्तु इसमे धोखा देने का उद्देश्य नही। अनुग्रह की भिक्षा माँगने आयी हूँ। एक प्रार्थना है।' स्त्री रूप मे उसकी आवाज मधुर थी, और रूप—वह भी अवर्णनीय। पुरुषोचित दाढी-मूँछ आदि सब-कुछ अब नही थे। मैं सोच ही नही सका कि उस कराल बनावट के अन्दर इतना सुन्दर रूप छिपा रह सकता है! मुझमे कुतूहल जगा। यो तो मुझे ऐसा झाँककर देखना नहीं चाहिए था, लेकिन प्रभु की रक्षा का कार्य मेरा ही था। मुझे शका उत्पन्न हो गयी थी। इसलिए ऐसा करना पडा। कुतूहलवश ही सही, मुझे वही देखते रहने के लिए बाध्य होकर खडा रहना पडा।

'हमारे लोगो की तरफ से कुछ बाधा हुई है क्या ?' प्रभु के इस प्रश्न पर वह बोली, 'नही, लेकिन धारानगर को यदि आग न लगायी गयी होती तो आपका व्यवहार आदर्श व्यवहार होता।' फिर प्रभु के कहने पर वह कुछ दूर एक आसन पर बैठ गयी तो प्रभु ने पूछा कि वह उनसे क्या चाहती है। लेकिन वह मौन रही। उसकी चचल आँखो ने इधर-उधर देखा तो प्रभु ने उसे आश्वस्त किया। 'यहाँ डरने का कोई कारण नही। निसकोच कह सकती हो।'

'आपका वह पहरेदार ...?'

उसकी शका को बीच मे ही काटा प्रभु ने, 'ऐसी कुबुद्धिवाले लोगो को हमारे शिविर के पास तक आने का मौका ही नही। जो भी कहना चाहती हो, निसकोच कहो।' प्रभु के इन शब्दो से मुझे लगा कि किसी ने थप्पड मार दिया हो। वहाँ से चले जाने की सोची। परन्तु कुतूहल ने मुझे वही डटे रहने को बाध्य कर दिया।

'मैं एक बार देख आऊँ?' उसने पूछा।

'शका हो तो देख आओ।' प्रभु का उत्तर था।

वह परदे की ओर गयी। मै उसके आने से पहले ही आड मे हो गया था। वह लौट आयी तो मैं फिर उसी छेद के पास जा खडा हुआ। अबकी वह उस आसन पर नही बैठी। सीधी प्रभु के पलग की ओर गयी। उसका आँचल खिसक गया था। उसकी परवाह न करके वह आगे बढ गयी थी।

शायद प्रभु को उसका यह काम पसन्द नही आया था। वे उठ खडे हुए और उसे पहले के ही आसन पर बैठने को कहा तो वह प्रभु के दोनो पैर पकडकर चरणो के पास बैठ गयी और बोली, 'मुझे आसन नही, आपके पाणिग्रहण का भाग्य चाहिए।' प्रभु ने झुककर पैर छुडा लिये और उसे पीछे की ओर सरकाकर, खुद पलग के पास गये और घण्टी बजायी।

मैंने भी दरवाजे पर की घण्टी बजायी और अन्दर गया। इतने मे वह स्त्री कपडे सँभालकर आसन पर बैठ चुकी थी। प्रभु ने दूसरे तम्बू मे ले जाने का आदेश देते हुए कहा, 'सहारा खोकर तकलीफ मे फँसी यह स्त्री भेष बदलकर सहारा पाने आयी है। इसकी मर्यादा की रक्षा कर गौरव देना हमारा कर्त्तव्य है। इसलिए सावधान रहना कि कोई इसके पास न फटके। इसे तम्बू छोडकर कही बाहर न जाने दें।' लेकिन वह स्त्री न हिली, डुली। मुझे भी कुछ नही सूझा कि क्या करना चाहिए। पहले उसे पुरुष समझकर हाथ पकडकर बिना सकोच ले गया था, पर अब ऐसा करना उचित नही लगा। प्रभु की ओर प्रश्नार्थक दृष्टि से देखा तो वे उससे बोले, 'अब जाओ, सुबह आपको बुलाएँगे। तभी सारी बातो पर विचार करेंगे।'

वह उठ खडी हुई, मगर बढी नही, कुछ सोचती रही। फिर प्रभु की ओर

देखकर कहने लगी, 'आप बड विचित्र व्यक्ति हैं ! मैं कौन हूँ यह जानने तक का कुतूहल नही जगा आप मे ? मुझे विजितो का स्वप्न बनकर उनकी इच्छा के अनुसार लेकिन अपनी इच्छा के विरुद्ध परमारो के अन्त पुर मे रहना चाहिए था। परन्तु अब अपनी इच्छा…'

किन्तु उसकी बात बीच ही मे काटकर प्रभु ने कहा, 'जो भी हो, कल देखेंगे। अभी तो आप जाइए ही।' और मैं उसे दूसरे तम्बू मे छोड आया। दूसरे दिन भोजनोपरान्त उसे प्रभु का दर्शन मिला। प्रभु ने मुझे आदेश दिया कि उसे चार अगरक्षको के साथ वहाँ पहुँचा आना जहाँ वह जाना चाहे। बाद मे वह कहाँ गयी और उस दिन प्रभु मे उसकी क्या बाते हुईं—यह सब मालूम नही पड सका।"

"मै भी शिविर मे था। मुझे यह मालूम ही नही हुआ।" सिगिमय्या ने कहा।

"यह बात चार-पाँच लोग ही जानते है। बाकी लोगो को उतना भी मालूम नही, जितना मै जानता हूँ। पर प्रभु को तो सब कुछ मालूम है।" मायण ने बताया।

"प्रभु जानते है कि तुमने छिपकर कुछ देखा है?"

"हाँ जानते है। मैने ही कहकर क्षमा माँग ली थी। प्रभु बडे उदार हैं। कहा, 'तुमने कह दिया इसलिए तुम क्षमा करने योग्य हो।' मुझे अब की बार भी उनके साथ युद्ध-रग मे जाने की प्रबल इच्छा हुई थी। परन्तु प्रभु ने मुझे इधर आने का आदेश दिया तो दूसरा कोई चारा नही रहा। यहाँ रहने पर भी मुझे युद्धरग की ही चिन्ता है। वहाँ से कोई समाचार मिला।" मायण ने पूछा।

"हम तक पहुँचाने जैसी कोई खबर नही मिली होगी। ऐसी कोई खबर आयी होती तो हेग्गडेजी हमे बताये बिना नही रहते।" सिगिमय्या ने कहा।

शान्तला सारी घटना सुनने मे मगन रही आयी, इसलिए गजरा वैसा-का-वैसा ही रह गया। बिट्टिदेव भी उसे सुनने मे तल्लीन हो गया था। आगे बात किस ओर मुडती, पता नही। इतने मे रेविमय्या ने आकर कहा कि सबको बुलाया है, तो सब घर की ओर चल पडे।

यथाविधि भोजन समाप्त हुआ। युवरानीजी ने शान्तला को एक पीताम्बर, वैसी ही एक चोली, और एक जोडी सोने के कगन दिये।

माचिकब्बे ने अपना सकोच प्रदर्शित किया, "यह सब क्यो?"

"मागलिक है। आशीर्वादपूर्वक दिया है। फिर यह रेविमय्या की सलाह है।" युवरानी ने कहा।

माचिकब्बे और शान्तला दोनो ने रेविमय्या की तरफ देखा। वह उनकी दृष्टि बचाकर दूसरी तरफ देखने लगा। उसने नही सोचा था कि युवरानीजी बीच

मे उसका नाम लेंगी। उसे बडा सकोच हुआ।

राज्य की श्रेष्ठ-सुमगली युवरानीजी निर्मल मन से स्वय आशीर्वादपूर्वक मगलद्रव्य देती है तो उसे स्वीकार करना मगलकर ही है, यह मानकर शान्तला ने स्वीकार किया और युवरानीजी को सविनय प्रणाम किया।

युवरानी ने उसका सिर और पीठ सहलाकर आशीर्वाद दिया, "सदा सुखी रहो, बेटी। तुम्हारा भाग्य अच्छा है। यद्यपि भाग्य अच्छा होने पर भी सुबुद्धि रहती है, यह कहना कठिन है क्योकि भाग्यवानो मे भी असूया और कुबुद्धि सक्रिय हो जाती है। यह मैने देखा है और इसकी प्रतिक्रिया का भी अनुभव मैने किया है। उन्नत स्थिति पर पहुँचने पर तुम्हारा जीवन सहज करुणा से युक्त और असूया से रहित हो, तुम गुण-शील का आगार बनकर जिओ।"

शान्तला ने फिर एक बार प्रणाम किया, मानो बता रही थी कि आशीर्वाद, आज्ञा शिरोधार्य है। युवरानी ने उसके गालो को अपने हाथ से स्पर्श कर नजर उतारी और कहा, "ये चूडियाँ और यह पीताम्बर पहन आओ, बेटी।"

माँ की सहायता से वह सब पहिनकर लौटी तो बिट्टिदेव खुशी से फूला न समाया। क्योकि वेणी मे वही गजरा गुथा था जिसे उसने तभी सीखकर अपने हाथ मे बनाया था। शान्तला ने फिर एक बार युवरानी के पैर छुए। फिर माता-पिता, मामा और गुरुओ के भी पैर छुए। बिट्टिदेव के भी पैर छूने लगी तो वह पीछे सरकता हुआ बोला, "न-न, मुझे क्यो?"

परन्तु उसके लिए सुरक्षित वह प्रणाम उसके कहने के पूर्व ही उसके चरणो मे समर्पित हो चुका था।

पान-सुपारी का कार्यक्रम चला। युवरानी ने उस दिन पान देकर जो वादा कराया था, वह बिट्टिदेव और शान्तला को याद आ गया। उन दोनो ने अपने-अपने मन मे उसे दोहराया। बिट्टिदेव ने अपने बाये हाथ की उँगली की अँगूठी पर दृष्टि डाली। शान्तला ने उस दिन बिट्टिदेव को तृप्त करने के लिए दिये हुए हार और पदक को छाती से लगा लिया।

किसी तरह की धूमधाम के बिना, घर तक ही सीमित शान्तला का जन्म-दिन समारम्भ-सपन्न हुआ। वहाँ उपस्थित सबके मन मे शान्ति विराज रही थी। लोगो की दृष्टि कभी शान्तला की ओर तो कभी बिट्टिदेव की ओर जाती रही, मानो उनके अतरग की आशा की क्रिया यही दृष्टि हो।

श्रद्धा-निष्ठा से युक्त हेग्गडे परिवार के साथ युवरानी और राजकुमारो ने बलिपुर मे सुव्यवस्थित रूप और सुख-शाति मे महीनो पर महीने गुजारे। सप्ताह-पखवारे मे एक बार युद्ध-शिविर मे समाचार मिल जाता था। बिट्टिदेव और शान्तला की मैत्री गाढ से गाढतर होती जा रही थी। उदयादित्य और शान्तला मे, समवयस्को मे सहज ही होनेवाला निष्कल्मष प्रेम स्थायी रूप ले चुका था।

युवरानी जी और हेग्गडती के बीच की आत्मीयता देखनेवालों को चकित कर देती थी। शिक्षकगण अपने शिष्यो की सूक्ष्मग्राही शक्ति से आश्चर्यचकित ही नहीं अपितु तृप्त होकर यह कहने लगे थे कि हमारी विद्या कृतार्थ हुई। कुल मिलाकर यही कहना होगा कि वहाँ हर कही असूया-रहित निर्मल प्रेम से आप्लावित परि-शुद्ध वातावरण बन गया था।

दूसरी ओर, दोरसमुद्र मे, किसी बात की कमी न रहने पर भी, किसी मे मानसिक शान्ति या समाधान की स्थिति नज़र नही आती थी। चामव्वे सदा यही महसूस करती कि कोई छाया की तरह उसके पीछे उसी का अनुगमन कर उसे भय-भीत कर रहा है। उसे किसी पर विश्वास नही होता, वह सबको शका की ही दृष्टि से देखती। उसका मन वामशक्ति की ओर अधिकाधिक आकर्षित हो रहा था, लेकिन वह स्वय वहाँ जाये या उसे ही यहाँ बुलाये, किसी तरह उसके भाई प्रधान गगराज को इसकी खबर मिल जाती जिससे उसकी सारी आशाएँ मिट्टी मे मिल जाती। उस दिन की उस घटना के बाद वह सर उठाकर अपने पतिदेव से या भाई प्रधान गगराज से मिल भी नही सकती थी। वे भी एक तरह से गम्भीर मुद्रा मे मुँह बन्द किये मौन ही रहते। तब वह सोचती कि मेरी यह हालत देखकर वह चट हेग्गडती फूलकर कुप्पा हो जायेगी। ऐसी स्थिति मे मेरा जीवन ही किस काम का ? मैं क्या करूँ ?

दण्डनायिका के बच्चे भी खेल-खिलवाड मे ही समय बितानेवाले रह गये थे। कहाँ, क्या और कैसे हो रहा है यह सब समझने-बूझने की उनकी उम्र हो गयी थी। वे घर मे इस परिवर्तित वातावरण को भाँप चुकी थी। परन्तु इस तरह के परिवर्तन का कारण जानने मे वे असमर्थ थी। अगर पूछे भी तो क्या जवाब मिलेगा, यह वे समझ सकती थी। यों उनका उत्साह कुठित हो रहा था। इन कारणो से उनका शिक्षण और अभ्यास यान्त्रिक ढग से चल रहा था।

इस परिवर्तित वातावरण का परिणाम पद्मला पर कुछ अधिक ही हुआ था। उससे जितना सहा जा सकता था उतना उसने सह लिया। आखिर एक दिन उसने माता से पूछने का साहस किया, "माँ, आजकल घर मे राजमहल के बारे मे कोई बात क्यो नही जबकि दिन मे एक बार नही, बीसो बार कुछ-न-कुछ बात होती ही रहती थी। इस परिवर्तन का क्या कारण है ?"

माँ ने कहा, "अरी, जाने दे, हर रोज़ वही-वही बातें करती-करती थक गयी हूँ।"

उसे लगा कि माँ टरका रही है, इसीलिए उसने फिर पूछा, "तुम्हे शायद ऐसा लगे, मगर मुझे तो ऐसा नही लगता। क्या कोई ऐसा आदेश जारी हुआ है कि कोई राजमहल से सम्बन्धित बात कही न करें ?"

"लोगो का मुँह बन्द करना तो राजमहल को भी सभव नही। वैसे भी ऐसा

आदेश राजमहलवाले नही देंगे।"

"तो क्या युवराज की तरफ से कोई खबर आयी है ?" पद्मला ने पूछा।

"मुझे तो कोई खबर नही मिली।"

"पिताजी जाते होते तो आपसे कहते ही, है न ?"

"यो विश्वास नही कर सकते। वे सभी बातें स्त्रियो से नही कहते।"

"यह क्या कहती हो माँ, तुम ही कह रही थी कि वे सभी बातें तुमसे कहा करते हैं।"

"उन्ही से पूछ लो।"

"तो मेरे पिताजी मेरी माताजी पर पहले जैसा विश्वास नही रखते है ?" पद्मला को लगा कि वह बात आगे न बढाए, और वह वहाँ से चली गयी। सोचा, चामला से बात छेडकर जानने की कोशिश करूँ लेकिन फिर समझा कि उससे क्यो छेडूँ ? पिताजी के पास जाकर उन्ही से बात क्यो न कर ली जाये ? अगर पिताजी कह दें कि राजमहल की बातो से तुम्हे क्या सरोकार, अम्माजी, बच्चो को बच्चो ही की तरह रहना चाहिए, तो ? एक बार यह भी उसके मन मे आया कि यदि राजकुमार यहाँ होते तो उन्ही मे पूछ लेती। राजकुमार की याद आते ही उसका मन अपने ही कल्पनालोक मे खो गया।

राजकुमार ने युद्ध-रग मे क्या-क्या न किया होगा ? वे किस-किसकी प्रशसा के पात्र न बने होगे ? कितने शत्रुओ की आहुति न ली होगी उन्होने ? धारानगरी के युद्ध मे युवराज ने जो कौशल दिखाया था उससे भी एक कदम आगे मेरे प्रिय-पात्र का कौशल न रहा होगा ? वे जब लौटेंगे तब जयमाला पहनाने का मौका सबसे प्रथम मुझे मिले तो कितना अच्छा हो ? परन्तु ऐसा मौका मुझे कौन मिलने देगा ? अभी पाणिग्रहण तक तो हुआ नही। वह हुआ भी कैसे होता ? माँ की जल्दबाजी और षड्यन्त्र होने देते तब न ? अब पता नही, होगा भी या नही। जयमाला पहनाने का नही तो कम-से-कम आरती उतारने का ही मौका मिल जाये। भगवान से प्रार्थना है कि वे विजयी होकर जल्दी लौटे। मुझे तो सदा उन्ही की चिता है, उसी तरह मेरे विषय मे चिंता उनके मन मे भी होनी ही चाहिए। लेकिन उन्होने मेरे लिए कोई खबर क्यो नही भेजी ? आने दो, उन्हे इस मौन के लिए अच्छी सीख दूँगी, ऐसा पाठ पढाऊँगी कि फिर दुबारा कभी ऐसा न करें। उसकी यह विचार-धारा तोडी नौकर दडिग ने जिसने आकर खबर दी कि उसे दण्डनायकजी बुला रहे हैं।

पद्मला को आश्चर्य हुआ। कोई बात पिता स्वय उसके पास आकर कहा करते थे, आज इस तरह बुला भेजने का कारण क्या हो सकता है ? दिमाग मे यह बात उठी तो उसने नौकर से पूछा, "पिताजी के साथ गुरुजी भी हैं क्या ?"

"नही, अकेले हैं।" दडिग ने कहा।

"माँ भी वहीं हैं ?"

"नहीं, वे प्रधानजी के यहाँ गयी है ।"

"कब ?"

"बहुत देर हुई ।"

"पिताजी कब आये ?"

"अभी कोई आध-घण्टा हुआ । आकर राजमहल की वेष-भूषा उतारकर हाथ-मुँह धोकर उन्होंने आपको बुलाने का हुक्म दिया, सो मैं आया ।"

"ठीक" कहकर पद्मला उठकर चली गयी ।

जब वह पिता के कमरे मे गयी तो देखा कि पिता पैर पसारे दीवार से पीठ लगाकर पलग पर बैठे है। किवाड खोलकर पद्मला ने अदर प्रवेश किया तो तकिये से लगकर बैठते हुए बोले, "आओ, बेटी, बैठो ।"

"तुम्हारी माँ ने तुम्हारे मामा के घर जाते समय तुमसे कुछ कहा, अम्माजी ?"

"पिताजी, मुझे मालूम ही नही कि माँ वहाँ गयी है ।"

"मैने सोचा था कि उसने कहा होगा । कोई चिता नही । खबर आयी है कि युवराज लाट रहे है । इसलिए तुम्हारे मामा ने माँ को बुलवाया है । मैंने सोचा था कि यह बात उन्होंने तुमसे कही होगी ।"

"विजयोत्सव की तैयारी के बारे मे विचार-विनिमय के लिए माँ को बुलवाया होगा, पिताजी ?" पद्मला ने पूछा । उसे इस बात का सकोच हो रहा था । विजय के बारे मे सीधा सवाल पूछ न सकी ।

"विजय होने पर भी उत्सव नही होगा, अम्माजी । युवराज अधिक जख्मी हो गये है, यह सुनने मे आया है ।"

"हे भगवान्, राजकुमार तो कुशल है न ?" कुछ सोचकर बोलने के पहले ही ये शब्द आपसे आप उसके मुँह से निकल पडे ।

"राजकुमार तो कुशल है । उन्ही की होशियारी और स्फूर्ति के कारण, सुनते है, युवराज बच गये । उत्सव मे स्वय युवराज भाग न ले सकेंगे, इसलिए धूमधाम के साथ सार्वजनिक उत्सव नही होगा । परन्तु मन्दिर-वसतियो मे मगल-कामना के रूप मे पूजा आदि होगी ।"

"युवरानीजी के पास खबर पहुँचायी गयी है, पिताजी ?"

"वे दोरसमुद्र की ओर प्रस्थान कर चुकी है । शायद कल-परसो तक यहाँ पहुँच जाएँगी । इसी वजह से तुम्हारे मामा ने तुम्हारी माँ को बुलवा लिया है ।"

पद्मला को प्रकारान्तर से अपने प्रिय की कुशलता का समाचार मिला । इतना ही नही, उसे यह बात भी मालूम हुई कि वे युद्ध-चतुर भी हैं । इस सम्बन्ध मे विस्तार के साथ पूछने और जानने मे उसे सकोच हो रहा था । यह बात तो

एक ओर रही, उसे यह ठीक नही लग रहा था कि यह समाचार बताये बिना ही माँ मामा के यहाँ चली गयी, जबकि कोई बहाना ढूँढकर अपने भावी दामाद के बारे मे कुछ-न-कुछ जरूर कहती ही रहती। माँ अपने लिए और मेरे लिए भी जो समाचार सन्तोषजनक हो, उसे बिना बताये रह जाने का क्या कारण हो सकता है? पिताजी ने मुझे बुलवा भेजा। इस तरह उनके बुलावे के साथ माँ के इस व्यवहार का कोई सम्बन्ध है? इन विचारो से उभरी तो वह यह समझकर वहाँ से उठी कि केवल इतना समाचार कहने को ही पिताजी ने बुलवाया होगा। लेकिन मरियाने ने मौन तोडा—

"ठहरो, बेटी, तुमसे कुछ क्लिष्ट बाते करनी है, तुम्हारी माँ की गैरहाजिरी मे ही तुमसे बात करनी है, इसीलिए तुम्हे बुलवाया है। किवाड बन्द कर साँकल लगा आओ।"

पद्मला साँकल लगाकर बैठ गयी तो वे फिर बोले—

"बेटी, मैं तुमसे कुछ बाते पूछूँगा। तुम्हे निसकोच, बिना कुछ छिपाये स्पष्ट उत्तर देना होगा। दोगी न ?"

पिताजी की ओर कुछ सन्दिग्ध दृष्टि से देखती हुई उसने सर हिलाकर अपनी स्वीकृति व्यक्त की।

"बलिपुर के हेग्गडे की लडकी के बारे मे तुम्हारे विचार क्या है ?"

"पहले मैं समझती थी कि वह गर्वीली है, लेकिन बाद मे धीरे-धीरे मै समझी कि वह अच्छी लडकी है।"

"तुम्हारे बारे मे उसके क्या विचार है ?"

"यह कैसे बताऊँ पिताजी ? वह मुझे गौरवपूर्ण दृष्टि से ही देख रही थी। चामला और उसमे अधिक मेलजोल था। यह कह सकते है कि चामला उसे बहुत चाहती है।"

"तो क्या, तुम नही चाहती उसे ?"

"ऐसा नही, हम दोनो मे उतना मेलजोल नही था, बस।"

"कोई द्वेष-भावना तो नही है न ?"

"उसने ऐसा कुछ नही किया जिससे ऐसी भावना होती।"

"हेग्गडतीजी कैसी हैं ?"

"युवरानीजी उनके प्रति स्वय इतना प्रेम रख सकती हैं तो वे अच्छी ही होनी चाहिए।"

"सो तो ठीक है, मैं पूछता हूँ कि उनके बारे मे तुम्हारे विचार क्या है ?"

"वे बहुत गौरवशाली और गम्भीर है। किसी तरह का जोर-ज़ुल्म नही करती। अपने मे सन्तुष्ट रहनेवाली हैं।"

"उनके विषय मे तुम्हारी माँ के क्या विचार हैं ?"

"माँ को तो उनकी छाया तक पसन्द नही।"

"क्यो ?"

"कारण मालूम नही।"

"कभी उन दोनो मे कुछ कडवी बातें हुई थी ?"

"जहाँ तक मैं जानती हूँ ऐसा कुछ नही हुआ है।"

"तुम्हे उनके प्रति आदर की भावना है, युवरानीजी उनसे प्रेम रखती हैं, तुम्हारी माँ की भी उनके प्रति अच्छी राय होनी चाहिए थी न ?"

"हाँ होनी तो चाहिए थी। मगर नही है। मैंने भी सोचा। क्योकि पहले ही से माँ उनके प्रति कुछ कडवी बातें ही किया करती थी। उसे सुनकर मेरे मन मे भी अच्छी राय नही थी। परन्तु मैंने अपनी राय बदल ली। पर माँ बदली नही।"

"तुमने इस बारे मे अपनी माँ से बातें की ?"

"नही। माँ सब बातो मे होशियार है तो थोडा बेवकूफ भी हैं। यह समझकर भी उनसे ऐसी बातें करे भी कैसे ? अपने को ही सही मानने का हठी स्वभाव है माँ का। वे हमेशा 'तुम्हे क्या मालूम है, अभी बच्ची हो, तुम चुप रहो' वगैरह कहकर मुँह बन्द करा देती है। इसलिए मैं इस काम मे नही पडी।"

"तुम्हारी माँ के ऐसा करने का कोई कारण होना चाहिए न ?"

"जरूर, लेकिन वह उन्होने आपसे कहा ही होगा। मुझे कुछ मालूम नही।"

"जाने दो, वह कुछ भी समझ ले। जैसा तुमने कहा, उसका स्वभाव ही ऐसा है। अच्छा, तुम्हारी माँ ने कहा है कि राजकुमार ने तुम्हे एक आश्वासन दिया है। क्या यह सच है ?"

"हाँ, सच है।"

"उनके इस आश्वासन पर तुम्हे विश्वास है ?"

"अविश्वास करने लायक कोई व्यवहार उन्होने कभी नही किया।"

"तो तात्पर्य यह कि तुम्हे उनके आश्वासन पर भरोसा है, है न ?"

"क्या आप समझते है कि वह विश्वसनीय नही ?"

"न, न, ऐसी बात नही, बेटी। तुम जिसे चाहती हो वह तुम्हारा बने और उससे तुम्हे सुख मिले, इसके लिए तुममे विश्वास दृढ होना चाहिए। मुझे मालूम है कि तुम उनसे प्रेम करती हो। परन्तु, तुम उनसे उनके व्यक्तित्व से आकर्षित होकर प्यार करती हो या इसलिए प्यार करती हो कि वे महाराज बनेंगे, यह स्पष्ट होना चाहिए।"

"पिताजी, पहले तो माँ के कहे अनुसार मुझे महारानी बनने की आशा थी। परन्तु अब सबसे अधिक प्रिय मुझे उनका व्यक्तित्व है।"

"ठीक, जब तुमने सुना कि वे युद्धक्षेत्र मे गये, तब उन्हे कैसा लगा बेटी ?"

"कौन ? जब बडे राजकुमार गये तब ?"

"हाँ, बेटी।"

"मुझे भय और सन्तोष दोनो एक साथ हुए, पिताजी।"

"बडी अच्छी लडकी, तुमने भय और सन्तोष दोनो को साथ लगा दिया, बताओ तो भय क्यो लगा ?"

"उनकी प्रकृति कुछ कमजोर है इसलिए यह सुनते ही भय लगा। परन्तु वह भय बहुत समय तक न रहा, क्योकि ऐसे समय की वे प्रतीक्षा करते थे। मेरा अन्तरग भी यही कहता था कि उन्हे वाछित कीर्ति मिलेगी ही, उनकी उस कीर्ति की सहभागिनी मैं भी बनूंगी, इस विचार से मै सन्तुष्ट थी।"

"ठीक है, बेटी, अब मालूम हुआ कि तुम्हारी अभिलाषा क्या है। तुममे जो उत्साह है, सो भी अब मालूम हुआ। तुम्हारी भावना जानकर मुझे भी गर्व हो रहा है। परन्तु, तुम्हे अपनी इस उम्र मे और भी ज्यादा सयम से रहना होगा। कठिन परीक्षा भी देनी पड सकती है। इस तरह के आसार दिखने लगे है। एकदम ऐसी स्थिति आ जाने पर पहले से उसके लिए तुम्हे तैयार रहना होगा। यही बात बताने के लिए तुम्हे बुलाया है, बेटी। सम्भव है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न ही न हो। पर हो ही जाय तो उसका सामना करने को हम तैयार रहना चाहिए।"

"पिताजी, आपने जो कुछ कहा, वह मेरी समझ मे नही आया। और ये आप चुप क्यो हो गये ?"

"हाँ, बेटी। मुझे मालूम है कि यह सब तुम्हारी समझ मे नही आया होगा। पर मैं भी सोच रहा हूँ कि तुम्हे कैसे समझाऊँ ? अब देखो, मैने तुमसे सयम से रहने को कहा। ऐसा कहना हो तो सन्दर्भ कैसा हो सकता है, यह तुम्हे एक उदाहरण देकर बताता हूँ। यह केवल उदाहरण है, इसे इससे अधिक महत्त्व देने की आवश्यकता नही। बडे राजकुमार के साथ तुम्हारे विवाह की कोशिश चल रही है, अगर इस कोशिश का फल उल्टा हो जाए या वैसी हालत पैदा हो ..." उनकी बात पूरी भी न हो पायी थी कि घबडाकर पद्मला रो पडी। उसकी यह हालत मरियाने से देखी न गयी। घुमा-फिराकर बात समझाने की कोशिश की। परन्तु जिस दिमाग मे हाथ मे तलवार लेने की प्रेरणा क्रियाशील रहती हो उस दिमाग मे कोमल-हृदय बालिका को बिना दुखाये समझा सकने का मार्दव कहाँ से आता ? वे उसे अपने पास खीचकर प्यार मे उसकी पीठ सहलाते हुए बोले, "बेटी, पोय्सल राज्य के महादण्डनायक की बेटी होकर भी तुम केवल एक उदाहरण के तौर पर कही गयी बात को ही लेकर इतनी अधीरता दिखा रही हो। तुम्हे डरना नही चाहिए। तुम्हारी आशा को सफल बनाने के लिए मैं सब कुछ करूँगा। तुम्हारे मामा भी यही विचार कर रहे हैं। इस तरह आँचल मे मुँह छिपाकर रोती रहोगी तो कल महारानी बनकर क्या कर सकोगी ? कई एक बार कठोर सत्य का धीरज के साथ सामना करना होगा, तभी अपने लक्ष्य तक पहुँच सकोगी। ऐसी स्थिति मे

आँचल मे मुँह छिपाकर बैठे रहने से काम कैसे चलेगा। मुँह पर का आँचल हटाओ और मैं जो कहता हूँ वह ध्यान से सुनो।" कहते हुए अपने करवाल-पकडनेवाले हाथ से उसकी पीठ सहलाने लगे। थोडी देर बाद, उमडते हुए आँसुओ को पोछकर उसने उनकी ओर देखा तो वे बोले, "बेटी, अब सुनो। युवराज, राज-कुमार और युवरानीजी के लौटने के बाद भी उनके दर्शन शायद न हो सकें, इस तरह की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी हैं। इन परिस्थितियो के बारे मे कुछ नही पूछना ही अच्छा है क्योकि उन्हे उत्पन्न करनेवाले हमारे ही आप्त जन हैं। उनका कोई बुरा उद्देश्य नही है। परन्तु अपनी जल्दबाजी और असूया के कारण वे ऐसा कर बैठे हैं। ऐसी स्थिति उत्पन्न न होने देने के प्रयत्न मे ही तुम्हारे मामा ने तुम्हारी माँ को बुलाया है। उनके उस प्रयत्न को निष्फल होने की स्थिति मे सबसे अधिक दु ख तुम्हे होगा, यह मुझे मालूम है। तुम निरपराध बच्ची हो। ऐसी हालत का सामना करने की स्थिति उत्पन्न नही होनी चाहिए थी। पर उत्पन्न हो गयी है। इसलिए कुछ समय तक राजकुमार का दर्शन न हो तो भी तुम्हे परेशान नही होना चाहिए। दूर रहने पर मन एक तरह से काबू मे रहता है। युद्धभूमि से लौटने के बाद युवराज वेलापुरी मे नही रहेगे। महाराज की इच्छा है कि वे यही रहे। बताओ, कुछ समय तक, राजकुमार के दर्शन न होने पर भी तुम शान्ति और सयम के साथ रहोगी कि नही ?"

बेचारी ने केवल सिर हिलाकर सम्मति की सूचना दी। कुछ देर तक पिताजी की बाते मन मे दुहराती रही, फिर बोली, "पिताजी, मेरे विचार गलत हो तो क्षमा करे। जो सूझा उसे निवेदन कर रही हूँ। आपकी बातो से ऐसा लगता है कि वह आप्त व्यक्ति हमारी माँ ही हो सकती है।"

यह बात सुनकर मरियाने के चेहरे पर व्यग्य की रेखा खिंच गयी, "तुम्हे ऐसा भान क्यो हुआ, बेटी ?"

"वे कुछ समय से राजकुमार के या राजमहल के सम्बन्ध मे बात ही नही करती। एक दिन मैंने पूछा तो बोली कि रोज-रोज वे ही बातें क्यो करनी ?"

"कुछ भी कारण हो बेटी, तुम अपनी माँ से इस विषय मे कुछ भी बात न करना। और राजकुमार से मिलने मे भी किसी तरह का उतावलापन प्रकट न करना। समय आने पर सब ठीक हो जाएगा।"

"इस तरह की चेतावनी का कारण मालूम होता तो' ।"

मरियाने बीच ही मे बोल उठे, "बेटी, मैं पहले ही कह चुका हूँ कि कारण जानने की आवश्यकता नही। यह बात जितने कम लोगो को मालूम हो उतना ही अच्छा रहेगा। अब जिन-जिनको मालूम है उन्हे छोड किसी और को यह मालूम न हो, यही प्रधानजी का आदेश है। उनके इस आदेश के पालन में ही हमारे परिवार की और तुम्हारी भलाई है। बेटी, यह शरीर पिरियरसी पट्टमहादेवी

केलेयब्बरसीजी के प्रेमपूर्ण हाथो मे पालित होकर बढा है। हमारे घराने के अस्तित्व का कारण भी वे ही है। हमारे और राजघरानो मे एक निष्ठायुक्त सम्बन्ध स्थापित रहा है। कोई नयी गलती करके इस सम्बन्ध का विच्छेद होने नहीं देना चाहिए। अब मौन रहने से उत्तम कार्य कोई नही। तुम लोग अपना दैनिक अभ्यास निश्चिन्त होकर चालू रखो। अब चलो। बार-बार इसी विषय को लेकर बात करना बन्द करो।" उन्होने स्वय उठकर किवाड खोले।

पद्मला गम्भीर मुद्रा मे कुछ सोचती हुई प्रांगण को पार कर बडे प्रकोष्ठ मे आयी ही थी कि उसे माँ की आवाज सुन पडी। वह अभी-अभी ही आयी थी। इसलिए वह मुडकर सीधी अपने अभ्यास के प्रकोष्ठ मे चली गयी और तानपूरा लेकर उसके कान ऐठने लगी। श्रुति ठीक हो जाने पर उसीमे लीन हो गाने लगी। उसकी उस समय की मानसिक स्थिति के लिए ऐसी तन्मयता आवश्यक थी। सबकुछ भूलकर सयत होने का इससे अच्छा दूसरा साधन ही क्या हो सकता था ?

●●●

नमक का पुतला सागर मे (द्वि स)	धनजय बैरागी	18 00
तीसरा प्रसग	लक्ष्मीकांत वर्मा	
टेराकोट (द्वि स)	,,	
आईने अकेले हैं	कृश्नचन्दर	5 00
कही कुछ और	गगाप्रसाद विमल	7 00
मेरी आँखो मे प्यास	बाणी राय	10 00
विपात्र (च स)	ग मा मुक्तिबोध	5 00
सहस्रफण (द्वि स)	वी सत्यनारायण	16 00
रणागण	विश्राम बेडेकर	3 50
कृष्णकली (छठा स)	शिवानी	पेपरबैक 20 00 लाइब्रेरी 28.00
हँसली बाँक की उपकथा (द्वि स)	ताराशकर बन्द्योपाध्याय	25 00
गणदेवता (पुरस्कृत, छठा स)	,,	42 00
अस्तगता (द्वि स)	'भिक्खु'	9 00
महाश्रमण सुने ! (द्वि स)	,,	4 00
अठारह सूरज के पौधे (द्वि स)	रमेश बक्षी	12 00
जुलूस (प स)	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	पेपरबैक 8 00 लाइब्रेरी 12 00
जो (द्वि स)	प्रभाकर माचवे	4 00
गुनाहो का देवता (अठारहवाँ स)	धर्मवीर भारती	20 00
सूरज का सातवाँ घोडा (दसवाँ स)		पेपरबैक 6 50 लाइब्रेरी 10 00
पीले गुलाब की आत्मा (द्वि स)	विश्वम्भर मानव	6 00
अपने-अपने अजनबी (छठा स)	अज्ञेय	पेपर बैक 5 50 लाइब्रेरी 8 50
पलासी का युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	5 00
ग्यारह सपनो का देश (द्वि स)	स लक्ष्मीचन्द्र जैन	7 00
राजसी	देवेशदास, आई सी एस	5 00
रक्त-राग (द्वि स)	,,	5 00
शतरज के मोहरे (पुरस्कृत, च स)	अमृतलाल नागर	12 00
तीसरा नेत्र (द्वि स)	आनन्दप्रकाश जैन	4 50
मुक्तिदूत (पुरस्कृत, च स)	वीरेन्द्रकुमार जैन	13 00

□